੧ੴ

श्री वाहेगुरु जी की फतह ॥

श्री गुरु कलीधर चमत्कार

(द्वितीय भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू कलग़ीधर चमत्कार

(द्वितीय भाग)

श्री गुरू कल्ग़ीधर चमत्कार

(द्वितीय भाग)

अर्थात्

जीवन चरित्र

साहिब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी

जैसा कि

उनके चरणों को प्राप्त पुरुषों के द्वारा विदित हुआ

लेखक

भाई साहिब डा॰ वीर सिंह

२००१

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार (द्वितीय भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह

हिन्दी में प्रथम संस्करण : १९८३
द्वितीय संस्करण : २००१

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मूल्य : १४०/-

प्रकाशकीय

(द्वितीय भाग)

संत कवि भाई साहिब डा: वीर सिंह जी की इस रचना 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अति हर्ष हो रहा है। 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' के हिन्दी रूपान्तर का यह द्वितीय भाग है। इस रचना के पहले तथा द्वितीय भाग का प्रथम प्रकाशन कर्मवार १९७० तथा १९८३ मे हुआ था। मूल रूप में 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' पंजाबी भाषा में दो भागों में प्रकाशित है। हिन्दी में इसी रचना के चार भाग बना दिये गये हैं।

भाई साहिब डा: वीर सिंह जी पंजाबी साहित्य के एक सर्वतोमुखी मूर्धन्य साहित्यकार हैं, जिन्होंने पंजाबी काव्य एवं भाषा को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। 'श्री गुरू कल्गीधर चमत्कार' भाई साहिब जी की गद्य-रचना है। इसमें श्री गुरू गोबिंद सिंह जी का जीवन-वृत्तान्त है। भाई साहिब की इच्छा थी कि समानता के उपदेशक, ईश्वर प्रेमी, जगततारक गुरू गोबिंद सिंह जी की जीवन-लीलाओं एवं उपदेशों को पंजाबी भाषा से अपरिचित अन्य भारतवासियों तक भी पहुँचाया जाए। इस दृष्टि से भाई वीर सिंह साहित्य सदन की ओर से यह प्रयास किया गया है।

अनुवाद मूल रचना की अपेक्षा एक कठिन कार्य है। पर इसको सफल बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा और शैली अत्यन्त सरल रखी गई है, जिससे साधारण पाठक भी पूरा लाभ उठा सकें। बहुत सीमा तक मूल लेखक की ही भाषा ले ली गई है। मूल रचना में आए प्रचलित फारसी और अरबी के कुछ शब्द भी ले लिए गये हैं। गुरुवाणी की प्रामाणिकता बनाए रखने की दृष्टि से उन्हें गुरुमुखी से ज्यों का त्यों देवनागरी लिपी में दे दिया गया है।

हमारा विश्वास है कि भाई साहिब भाई वीर सिंह जी की मूल रचना का यह अनुवाद हिन्दी पाठकों को भी उसी तरह उत्प्रेरित करेगा, जैसे कि यह पंजाबी पाठकों को करता आया है।

भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
नई दिल्ली।

डा: जसवंत सिंह नेकी
आनरेरी जनरल सैक्रेटरी

प्रकरण-सूची

२० मोहना-सोहना

: १ :

मोहना और अम्मा जी

आकाश के बादलों की भूरी-भूरी चांदनी शामियाने की तरह तन गई है। नन्हीं-नन्हीं बूंदें पड़ रही हैं। मद्धम-मद्धम वेग की हवा भी लहरा रही है। ऋतु यूं भी अत्याधिक शीतल है, किन्तु इस वर्षा व वायु के रंग ने शीत को बहुत चुभने वाला कर दिया है। शीत के मारे सभी लोग घरों के अन्दर गर्माहट में बैठे हैं।

इस सुन्दर स्थान पर एक सुन्दर सुहावना उद्यान है जिसे मानीवय और प्राकृतिक सुन्दरता का एक नमूना कहा जा सकता है। किन्तु इस समय इसे लह-लहाता हुआ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सोई हुई प्रकृति के नौनिहाल इस कारण उदास विरागपूर्ण और बिना पत्तों के खड़े हैं। किसी विशेष चतुरता के कारण कोई-कोई कोना हरा-भरा हो यह अलग बात है, पर यूं सारे उद्यान की वही दशा है जो इस समय उत्तर के देशों के वनों व बाग-बगीचों की होती है। बाग के बीच में कई जगह कुण्ड हैं। कई स्थानों पर फव्वारे हैं, कई स्थानों पर मरमरी चांदनी के झरने हैं, पर गर्मी की तपिश न होने के कारण इनका बाज़ार गर्म नहीं रहा। इस बारादरी के फुव्वारों, सुनहरी कलशों, नीले रंग की मेहराबों और संगमरमर की सजावटों से सजे हुए बाग के एक कोने में एक छोटा-सा घर है। जो बाहर से मिट्टी से लिपा हुआ है। एक ओर चने के छोटे-छोटे पौधे हैं, आसपास सरसों और शलगत खिले खड़े हैं। इन्हें किसी बुद्धिमान व्यक्ति ने इस ढंग से लगाये हैं कि कच्चे कोठे के आसपास इस शरद् ऋतु में सब्जी के बीच में बसन्त खिला है जो इन्हें लगाने वाले की कारीगरी की साक्षी दे रहा है।

दोपहर का समय है, पर घड़ियों, पहरों का पता लगाने वाला सूर्य भूरे बादलों में अपना मुंह छिपाये हुए है। ऐसा लगता है कि पौ अभी-अभी ही फूटी है। इस कच्चे कोठे के द्वार बन्द हैं। उसके अन्दर क्या है इसका पता नहीं, पर बाहर एक बहुत गम्भीर और आध्यात्मिक आत्मा सुन्दरता से भरे हुए चेहरे वाली, लम्बे-पतले आकार वाली कृपा की देवी खड़ी है, जो हाथ में पकड़ रखी कृपाण की मठ से द्वार पर ठक-ठक कर रही है। आश्चर्य है, यह कच्चा मकान गरीबों का 'चिड़िया रैन बसेरा" इसके द्वार पर रानियों से कहीं अधिक आभा और

बढ़िया पोशाक वाली तेजोमय महारानी आकर इसके द्वार को खटखटा रही है। कुछ क्षणों में द्वार खुल गया और यह रानी अन्दर चली गई। अन्दर जाते ही द्वार फिर से बंद हो गया और बाहर की हड़कम्प पवन को अन्दर घुसने का अवसर न मिला।

अन्दर पंछी के घोंसले की तरह का-सा दृश्य है। यह घर इतना साफ़ है कि एक तिनका भी इधर-उधर पड़ा हुआ नहीं दीखता। दीवारों पर खड़िया जैसी मिट्टी की पुताई है। नीचे भी सुन्दर लिपाई की हुई है, उसके ऊपर छोटी चटाइयां बिछी हैं और एक ओर दरी बिछी है। एक कोने में लपलपाती हुई अग्नि जल रही है।

अग्नि के समीप पीढ़ा डालकर एक पर प्रवीण स्वच्छ और निश्छल चेहरे वाली युवती बैठी थी, जिसने उठकर द्वार खोला था। अब उसने पीढ़े पर आसन बिछाकर अपनी उच्च पाहुनी के आगे कर दिया और स्वयं चटाई पर बैठकर शीश झुकाकर प्रेम से सराबोर होकर कहने लगी-

"अम्मा जी, मेरी माता जी, आप कितनी अच्छी हैं। अम्मा जी, इतनी ठण्ड और वर्षा में क्यों कष्ट दिया, मुझ दासी को आज्ञा कर भेजतीं, मैं स्वयं उपस्थित हो जाती।"

अम्मा जी-मोहना, मैं कहकर जो गई थी कि आऊंगी।

मोहना-यह कौन सी बात थी, मैं सेविका जो हाज़िर हो जाती।

अम्मा जी-मेरी तो सभी बगीचियां हैं, सेविका क्यों? बल्कि हरि-सेवा की भिक्षा तो मैं स्वयं वाहेगुरू के द्वार से मांगती हूं।

मोहना-मेरी अच्छी अम्मा जी। रूखा-सूखा भोजन, बकरी का दूध और अपने छत्तों का शहद है, यदि आज्ञा हो तो सेवा में रखूं?

अम्मा-बिटिया जी! मैं भोजन करवा कर और स्वयं भोजन करके आई हूं। यदि तुम्हें कुछ खिलाना ही है तो मुझे वह कुछ खिलाओ जिसकी भूख मुझे तुम्हारे पास ले आई है।

मोहना-'सत्य वचन' कहकर उठी, एक कोने में खूंटी पर सरोद लटक रहा था उसे उतार कर ले आई। उसे स्वर में किया और उसकी तेज उंगलियां मन्द और हृदयग्राही झंकार देने लगीं। पहले मल्हार राग का आलाप छिड़ा, पर फिर सारंग की चाल बंध गई। कमरे के भीतर स्वर्ग का-सा वातावरण बन गया। इस समय अम्मा जी पीढ़ी से उतरकर नीचे बैठ गईं, आंखें बन्द हो गईं और शरीर ऐसा स्थिर हुआ मानो शब्द की झंकार में ही लीन हो गया हो। मोहना का अब सरोद से भी सुरीला और मीठा कण्ठ लहराया:

[सारंग मः १]

हरि बिनु किउ रहीऐ दुखु बिआपै।।
जिहवा सादु न फीकी रस बिनु प्रभ कालु संतापै।।१।।रहाउ।।
जब लगु दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूख पिआसी।।
दरसनु देखत ही मनु मानिआ जल रसि कमल बिगासी।।१।।
ऊनवि घनहरु गरजै बरसै कोकिल मोर बैरागै।।
तरवर बिरख बिहंग भुइअंगम घरि पिरु धन सोहागै।।२।।
कुचिल कुरुपि कुनारि कुलखनी पिर का सहजु न जानिआ।।
हरि रस रगि रसन नहीं त्रिपती दुरमति दूख समानिआ।।३।।
आइ न जावै ना दुखु पावै ना दुख दरदु सरीरे।।
नानक प्रभ ते सहज सुहेली प्रभ देखत ही मनु धीरे।।४।।२।।

शब्द की यह गायन-शैली, जमी हई लय में कुछ ऐसी आकर्षण-शक्ति थी और रस था कि काफ़ी समय व्यतीत हो गया। फिर और शब्द शुरू किया गया। तीसरा पहर हो गया। मोहना को जलघड़ी ने बताया कि तीसरे पहर का घण्टा बज चुका है। इतने में किले से तीसरे पहर का घण्टा बजा और तीन बार टंकार सुनाई दी। कीर्तन समाप्त हो गया था। अम्मा जी जाना चाहती थीं, पर मोहना और प्यार भरी मोहना ने—खाली जाने न दिया। ठण्ड के कारण अखरोट, बादाम आदि आगे लाकर रखे और साथ ही नमक की चाय की एक कटोरी भी दी। अम्मा जी ने प्रेम के रंग के सामने इंकार न किया। "वाहेगुरू! तू धन्य है।" कहा और मुंह जूठा किया।

जब माताजी चलने लगीं, तब मोहना की आंखों में पानी भर गया। चेहरा उदास हो गया। उसे चक्कर सा आया और बैठती-बैठती नीचे गिर पड़ी और निढाल होकर लेट गई। अम्मा जी ने उसके सिर पर हाथ फिरा कर प्यार किया। गोद में सिर को लेकर थपकी दी, तब कहीं जाकर वह सचेत हुई। अभी अश्रु थमते नहीं थे और हृदय ठिकाने पर नहीं था।

"मोहना, अब तुझे क्या चिन्ता है? तेरी चिन्ता तो मैंने ले ली है। सभी काम ठीक हो जायेंगे। तू जिस रास्ते पर चल रही है। उसी पर चलती चल।" इस प्रकार धैर्य और आशीर्वाद देती हुई देवी माँ चली गईं।

: २ :

मोहना व सोहना

अम्मा जी को गये हुए कुछ समय व्यतीत हो गया था। दिन छिपने लगा, सूरज तो चढ़ा ही नहीं था। पर बादलों में से छनकर जो प्रकाश आ रहा था, वह

भी कम होने लगा। इस समय मोहना ने बाहर आकर सरसों के कोमल-कोमल डण्ठल तोड़े और अन्दर जाकर साग पकने के लिए चूल्हे पर रख दिया। थोड़े समय के पश्चात् द्वार फिर खटका, रहिरास के पाठ के बाद अरदास कर रही मोहना ने अरदास समाप्त हो चुकने पर द्वार खोला, तो उसके पतिदेव दीख पड़े जो कई दिनों से बाहर गये हुये थे। इसने शीश झुकाया, उन्होंने आशीर्वाद दिया, कुशल-क्षेम पूछी और मुंह-हाथ धोकर, फिर दोनों आकर आग के पास बैठ गये।

पति–मोहना! मेरे पीछे तुमने अम्मा जी के फिर दर्शन तो नहीं किये?

मोहना–जी, दो बार हुए हैं, आठ दिन हुए, उनके पास मैं गई थी। आज वे स्वयं आई थीं। अभी गई हैं।

पति–धन्य भाग्य! अम्मा जी कितनी दयालु हैं। कंगालों को निहाल करती हैं।

मोहना–वे केवल अपने चरण ही नहीं रखतीं, बल्कि वे अपने कीटाणुओं को आदर भी देती हैं। मैं यदि किसी समय अपने आपको दासी अथवा सेविका कहती हूं तो मुझे झिड़ककर कहती हैं–मैंने तुझे गोद में लिया है, अपनी बच्ची बनाया है। तू दासी कैसे हुई?" यदि अम्मा कहती हूं तो प्रसन्न होती हैं। यदि किसी और सम्मान वाले नाम से पुकारूं तो हमेशा प्रसन्न रहने वाले मस्तक पर बल डाल देती हैं।

पति–सच है, शुक्र है मालिक का, जो हम जैसों पर दयालु हैं। प्रेम आकर्षित करता है। पर मोहना जी! क्या हमारी समस्या का समाधान का कोई संकेत मिला है?

मोहना–स्वामी जी! नहीं, अम्मा जी तो अभी यही कहती हैं कि आज्ञा नहीं है।

सोहना–अच्छा! जैसी उनकी इच्छा, तुम घबराती तो नहीं?

मोहना–अभाव वाली घबराहट तो अब नहीं है, पर वैराग्य और प्रेम का आकर्षण तो प्रत्येक घड़ी है।

सोहना–यही मेरी दशा है। पता नहीं मैंने इस यात्रा को कैसे पूरा किया है। प्रेम के खिंचाव और विरह की लगन ने एक क्षण नहीं छोड़ा। यदि यह काम अम्मा जी का न होता तो मैं आधे रास्ते से ही लौट आता।

मोहना–स्वामी जी, हम दास जो ठहरे, जो प्रभु की आज्ञा, वही हमारा कर्त्तव्य और उसी में हमारा कल्याण है। परमात्मा कृपा करे, हम वही काम करें जो उसे अच्छा लगे। पर यह करते हुये हमारा खिचाव और लगन दुगनी होती चली जाए। इस लागत को मन सहन करता हुआ चला जाए। जब इसे वह सहन न कर सके और इसके बोझ के नीचे टूट जाए तो इससे उत्तम बात और क्या होगी। इसी से हमारा कल्याण होगा।

सोहना–मालिक हमें जो काम दे, वही करें, जो वह हुकुम दे, उसे मानें, मालिक चाहे झिड़के, दुत्कारे, पर वह अच्छा लगता रहे, प्यार बढ़ता रहे और प्रेम से तरंगित होता रहे। फिर कभी अपने आप.....।

मोहना–हां, प्रियवर! दर्शन एक देन है, दया है, कृपा है। अम्मा जी कहती थीं कि हमारे साधन मृत हैं, जिसके कारण हम भी मृत हो रहे हैं। यह तो पंगु को ठोकर मारने वाली बात है। पंगु व्यक्ति पर्वत पर कैसे पहुंच सकता है? प्रभु की कृपा, उसकी दया उसे एक क्षण में ले जा सकती है। 'दर्शन' तो कृपा है, कृपा दाता के बस में है, हमारे बस में नहीं। हम तो भिखारी हैं। भिखारी को चाहिए कि वह झोली को फैलाए रखे, आशावादी बना रहे, मन प्रत्येक समय याचना में रहे, बस। शेष 'देना' तो कृपालु के हाथ में है। उसके द्वार पर आशावादी होकर रहना, बस इतना ही भिखारी का कर्त्तव्य है! भिखारी को चाहिए कि अधीर न हो। भिखारी को चाहिए कि वह मान न करे, वह दावा न करे। अहंकार न करे। कि प्रभु कभी न कभी अवश्य ही मिलेगा। भिखारी को चाहिये कि वह विश्वास न छोड़े। वह इस बात का निश्चय भी रखे कि दाता कभी न कभी अवश्य ही प्रसन्न होगा। आशावादी बना रहे। 'मांग-धर्म' धारण करो।' यह अम्मा जी का वाक्य था। अतः पति जी, पहले हम अपने हठ और अहं से भरे साधनों को फल तो देख ही चुके हैं हमें क्या मिला? अब तो अम्मा जी की सुमति ही हमें प्राप्त हो। हम नौकर ही बने रहें और नखरा खत्म कर दें। हमें अम्मा जी की दया मिल गई है। देखिए आज कितनी सर्दी और बूंदा-बांदी हो रही थी पर वचन की पक्की अम्मा जी जिसके हम खरीदे हुए दासों से भी निम्न दास हैं, स्वयं चलकर इस फूस की झौपड़ी में आईं और आकर मुझे आध्यात्मिक उपदेशों से कृतार्थ करके चली गई हैं।

मोहना यह कह रही थी और सोहना जी ने नेत्र मुंदे जाते थे और आंखों से कोई-कोई बूंद टप-टप टपक रही थी। अब मोहना कहती-कहती स्वयं भी खो गई।

कैसा अद्‌भुत दर्शन है, कैसे पति-पत्नी दोनों ही एक रंग के हैं, कैसा घर का सत्संग है। गुरू नानक के यश की क्या तस्वीर है? "घर सुखि वसिआ बाहरि सुख पाइआ।" कैसा मीठा फल लगा है? जिसका बीज गुरू नानक ने बोया है, जिसका पता सतगुरू इस प्रकार देता है, "कहु नानक गुरि मन्त्र द्रिड़ाइआ।" सच है। गुरू नानक का मन्त्र काया को पलट देता है, मन को पलट देता है और आत्मीय जीवन प्रदान करता है। वास्तविक रसायन गुरू नानक के गारुड़ी मन्त्र में है, जो कि विष को झाड़ देता है, प्रेम-अमृत भरता है और "सदा रहै कंचन की काइया काल न कबहू बिआपै"[१] का अमर स्वर्ण तैयार करता है।

---

१. अर्थात् सुरति में जिज्ञासा कायम रहे।

दंपत्ति काफी समय तक इसी अचल वृत्ति की रसभरी एकाग्रता में बैठे रहे। आग जल-जलकर बुझ गई और शाक उबल-उबलकर पक गया, दिया जल जलकर बुझ गया, पर इनको अपनी मांग के धन्यवाद में जो ठण्डा-ठण्डा रस आया था, वह इन्हें आपे में इतना ग़र्क कर गया कि पता ही नहीं चला कि स्थूल संसार क्या क्या रंग बदल चुका है। तब जाकर आंख खुली जब द्वार पर फिर खट-खट हुई। हित में मस्त, प्रेम से जुड़ी आंखें खुलीं। मोहना ने द्वार खोला, तो एक दास था, जिसने बड़े प्रेम से कहा, "बीबी जी! मैं सच्चे द्वार से आया हूं, अमृत वेला में आपको समाधि में से उठाया है, पर अम्मा जी ने भेजा है और कहा है कि रात को महाराज जी के समर्पण के लिये फूल कहीं से नहीं मिले थे और दर्शन का समय निकट है, यदि हो सके तो एक माला के लिये फूल दे दीजिए और शीघ्रता से दे दीजिए ताकि हमारे नियम में बाधा न पड़े, रात को संदेश भेजने का ध्यान ही नहीं रहा।

खोजबीन वाली समझ उस खुशी को क्या समझे जो इस संदेश ने आकर दी है। प्रेम के निर्भय मार्ग, ईश्वरीय और अनोखे मार्ग के पथिक मोहना और सोहना फूस-पत्तों से सम्भालकर ढक कर रखी फुलवाड़ी में चले गये। आकाश में बादलों का सफेद और काला रूप छा रहा है, इनके पीछे चन्द्रमा है। बिजली चमकती है। इस चमक में प्यारे के लिये प्रेमी फूल तोड़ रहे हैं:

ऊपरि बनै अकासु तलै धर सोहती॥
दहदिस चमकै बीजुलि मुख कउ जोहती॥
खोजत फिरउ बिदेसि पीउ कत पाईऐ॥
हरिहां जो मसतकि होवै भागु त दरसि समाईऐ॥९॥ [फुनहे महला ५]

फूलों को तोड़ते हैं, खुशी से जी उछलता है, अम्मां जी कितनी अच्छी हैं, जो इतने सुन्दर काम के लिए हमें याद करती हैं। जिनके द्वार पर बनराय करबद्ध खड़ा है, वे हमें सेवा देकर आदर देते हैं। अम्मां, अम्मां, अम्मां तू धन्य है! फिर फूलों को इस तरह प्यार भाव से बुलाते हैं और कहते हैं:

"हे मित्रो! तुम्हारे भाग्य शुभ हैं, तुम्हें पिया के गले में जाकर पड़ना है। तुम्हारा दुगना, सुन्दर लगना, खिलना प्रसन्न होना धन्य है। तुम्हारा टूटना, सूई से बिंधना माला में गुंथकर इकट्ठे होकर बैठना धन्य है। तुम्हारा हसना, तुम्हारा रोना और पिया के गले में जाकर लगना धन्य है।"

यों प्रेम भरे प्रेमियों ने सुन्दर-सुन्दर गेंदे के फूल तोड़कर और एक सुन्दर पिटारी में डालकर भेज दिये।

तीसरा पहर बीत चुका था, अब सोने का समय ही नहीं था। दंपत्ति ने स्नान किया ओर अपने पाठ-स्मरण में लग गये।

: ३ :

मोहना और ठाकुर जी

मोहना और सोहना जी कौन हैं? ये इस ग़रीबी में क्यों पड़े हुये हैं। ये किसके लिये इतने प्रेमी बन रहे हैं, इतने प्यार वाली अम्मां जी कौन हैं?

रायपुर के रहने वाले एक रसिक धनी यह सोहना जी हैं, इनकी पत्नी मोहना हैं। राग-विद्या और कविता में दोनों प्रवीण थे। कुछ समय से भक्ति में लगे हुये थे। एक वैरागी फ़कीर ने इन्हें ठाकुर की पूजा सिखाई थी और भक्ति का ढंग भी बताया था। चाहे वे अच्छे घर से थे और बाहर से खुले थे, पैसे की कोई कमी नहीं थी, पर जब भक्ति का रंग जमा तो सवेरे उठकर स्वयं कुएं पर जाकर स्नान करते और ठाकुरों के लिए स्वच्छ जल भरकर ले आते, स्नान करने के बाद अपनी फुलवाड़ी से फूल लेकर माला पिरोते, पूजा, अर्चन, दण्डवत, पूजा की सारी रीति को पूरा करते। संकीर्तन करने वाले भी थे, सोहना को वीणा में और मोहना को सरोद में प्रवीणता प्राप्त थी। ठाकुर के आगे इस तरह से संगीत और नृत्य करते कि अवधि पर्याप्त ही कर देते। एक दिन कुएं में से स्वच्छ जल ले जा रहे थे कि सीधी पगड़ी वाला एक व्यक्ति दोनों कर बांधे हुए गुरुमुख रूप मनुष्य भागा हुआ आया। इसे सख़्त चोट लगी थी और प्यास के कारण व्याकुल हो रहा था। वह इनके पांवों के पास तड़पकर आ गिरा और 'पानी, पानी' पुकारने लगा। उसकी ज़रूरत को देखकर ये चौंक तो उठे पर नियम और धर्म ने इन्हें यही सुमति दी कि ठाकुर के लिये स्वच्छ जल लिये जा रहे हैं, यह उनके (ठाकुर) लिये है, इसे जूठा किस तरह करें। वह घायल मछली की भांति तड़पता हुआ 'पानी, पानी' पुकारता रहा और ये अपने कठोर धर्म में पक्की चुप्पी धारण किये पास से गुज़र गये। घायल को सिसकती हुई अन्तिम आवाज़ जो इनके कानों में पड़ी वह यह थी:-

"एक ओर प्रेम और दूसरी ओर दो घूंट पानी के लिये तरसाना, इससे दर्शन नहीं होंगे।"

यह सुनकर भी दोनों चलते गये, घर में जाकर ठाकुरों को स्नान कराया, पूजा की, पर आज इनके कलेजे में एक चुभन-सी उठी और पूजा में मन न लगा घबराकर उठे और सोचकर चले कि चलो भाई उसे जाकर पानी पिला आयें, कहीं उसकी कोई बद-दुआ न लग जाय। जब पानी का डिब्बा लेकर आये तो वह घायल अपने थके-टूटे-मिटे शरीर का त्याग करके परलोक को जा चुका था। उसकी मृतक देह पड़ी थी और यों लगता था कि हमेशा के लिये बंद हो चुके अधरों में से कर रहा हो, 'दर्शन नहीं होंगे'। दोनों के कलेजे मुट्ठी में आ गये। दिल की जिस चुभन को हटाने के लिये आये थे, वह चुभन दुगुनी हो गई। इतने

में एक ओर से पांच-सात व्यक्ति आ गये और कहने लगे, "यही है"। पूछने पर पता चला कि यह एक शूरवीर महान भजनीक साधु है, जो कि आनन्दपुर वाले गुरू जी चेला था। सदैव वन में निवास करता था, पर माला के साथ तलवार भी रखता था। आज एक ग़रीब टोले पर डाका आ पड़ने की आवाज़ को सुनकर कुमुक के लिये पहुंचा था। यह इस तरह से लड़ा था कि डाकुओं को भगा दिया था और टोले को बाल-बाल बचा लिया था। अपने घावों और तड़पन के साथ व्याकुल होकर भागा था और फिर नहीं मिल सका। आसपास के कदरदान प्रेमी सुनकर चारों ओर भागे हैं, पर यह इस स्थान पर आकर मिला है। आकर मिला है और इस दशा में मिला है।

"दर्शन नहीं होंगे" ये शब्द दोनों के कानों में अब और तेज होकर गूंजे, आंखों में जल भर आया, अपने आपको धिक्कारा, पर अब धिक्कारने का क्या लाभ? वह समय तो अब बीत गया है जब ठाकुर का पुत्र 'पानी पानी' पुकारता था। उस समय का दिया हुआ एक घूंट, कुआं, अर्पण करने से भी कहीं ज्यादा ठाकुर को प्रसन्न करता, पर "नानक समिओ रमि गइओ अब किउ रोवत अंध।"

रायपुर की रानी को पता चला कि उसके निकट ही, उसका लाडला बालक परोपकार के लिए जान पर खेल गया है, जिसके दर्शनों को वह तरस रही थी, तो वह बहुत व्याकुल हुई। जब पता चला कि जिस टीले की रक्षा में उसने प्राण दिये हैं, वे नाम के रिसक 'गुरू के दर्शनों' को जा रहे थे, तब और अधिक रोई। हाय दुर्भाग्य! मेरी लालसा और आशा के स्वामी! हे जगत तारक सतगुरू! मेरे राज्य में तेरे प्यारे के लिए शीश देना हिस्से में आया। हमने उसकी कोई सेवा न की, एक बूंद तेल उसके घावों पर न गिराया। एक बालिश्त कपड़ा उसके पवित्र घावों को प्राप्त न हुआ। यह पश्चाताप कर रही थी कि उसकी सत्संगिनी माई आ गई। गुरू के सिख धर्म की सच्ची ज्ञाता माई कहने लगी: "रानी! यह 'जीवित आत्मा' थी, जिसे हम 'हरिजन' भी कहते हैं, यदि उसे दुख मिले तो पीड़ा प्रभु के द्वार तक जाती है। पर तू अब दुःख मत मान, तेरा कोई दोष नहीं है, तुझे केवल देह की सेवा मिली है, उसे तू धन्य भाग्य जानकर पूरा कर। इसके शरीर का सत्कार सहित दाह कर दे, जिससे यह मन्दिर जिसमें नामी बस गया है, भटकता न फिरे। यह सुनकर रानी ने बड़े सत्कार सहित उस शहीद का दाह किया और उस स्थान पर एक छोटा-सा मठ बनवा दिया।

सोहना, मोहना की अब आश्चर्यजनक दशा पलट गई। ठाकुर की पूजा तो करते हैं, पर कलेजे में अशान्ति और दुख चुभता रहता है। जब करबद्ध होकर बैठते हैं, तो वही शब्द कानों में गूंजते हैं-"दर्शन नहीं होंगे", व्याकुल होकर आंखें खोल देते हैं। जब संगीत के किसी ऊंच रस में मग्न होते हैं। संक्षिप्त में

प्रत्येक रंग और प्रत्येक चक्कर में इस एक वाक्य की गुंजार पीछा नहीं छोड़ती। विद्या और समझ के साधन और तप, हठ तथा दान के प्रयत्न के जितने साधन हो सकते थे, उन्होंने वे सभी किये, पर इस बारीक आवाज़ की स्मृति ने चित्त में से अपना अक्स मिटने न दिया, और मिटने ही न दिया।

शीघ्र ही वह सौभाग्यशाली दिन आ गया कि दयालु सतगुरू जी ने रायपुर में अपने चरण रखे। रानी और रानी के सेवक, परिवार और प्रजा में से अनेक का उद्धार हुआ। सोहना और मोहना ने भी सुना कि उस महापुरुष के गुरू जी आये हैं, जिसने अपने आपको किसी परोपकार में होम कर दिया था, और जिसे हमने एक घूंट पानी भी नहीं दिया था। वे खबरें तो कानों में पड़ चुकी थीं कि वह शूरवीर और पूरा सतगुरू है। इस सिख की करनी और जीवन सम्बन्धी समाचारों से भी निश्चय हो गया था जिसने दर्शनों की लालसा पैदा कर दी थी। जब गुरू जी रायपुर में आये और रानी सहित अगणित लोगों को जीवन-दान मिला, तब इनकी दर्शन की आवश्यकता भी तेज भूख में बदल गई, पर ये जितनी बार दर्शन करने के लिए गऐ थे, उतनी बार ही दर्शन नहीं हुए थे। अंत में जब सतगुरू जी चले तब सड़क पर आधा मील दूर जाकर खड़े हो गये। संगतें तो उधर से गुजरीं, पर कल्ग़ी वाले चोज़ी गुरू जी ने रास्ता ही छोड़ दिया और खेतों में से घोड़े को निकालकर ऊपर से ही गुज़र गये। तब निराशा के कारण इन्हें निश्चय हो गया कि 'दर्शन नहीं होंगे' ये अटल वाक्य है। इनकी उदासी और निराशा जब और अधिक बढ़ी और सतगुरू जी के चन्द्र-मुख के दर्शनों की लालसा और तीव्र हुई। जी में आता कि उस सिख द्वारा पानी मांगने और हमारा उसे पानी न देने का पता या तो उसे या हमें। चौथे कान ने यह बात नहीं सुनी थी, फिर सतगुरू जी ने हमें दर्शनों से क्यों वंचित रखा? हमारे इलाके के प्रत्येक व्यक्ति को खुले दर्शन मिले और हमें—हम जो कि भक्त हैं—राग और काव्य के रसिक हैं—गुण-ग्राहक सतगुरू जी ने दर्शन क्यों न दिये केवल यही कारण है कि मरने वाले के वाक्य अटल थे और उनका असर अचूक था, जिसकी बात को ठाकुर ने भी नहीं मोड़ा। हां, वह ठाकुर जो अंतर्यामी और दाता है, या तो इसी कल्ग़ी वाले के रूप में आया हुआ है अथवा यह रूप उसका निज प्रियतम है।

इन सोचों के कारण निश्चय और भी पक्का हो गया, प्रेम का आकर्षण बढ़ा, घर-घर में सतगुरू जी की चर्चा, उनके ही कौतुकों की बात, आध्यात्मिक शक्ति, दयालुता और कीर्ति ने और अधिक आकर्षित किया और इस बात का निश्चय हो गया कि यह धुर से अवतार धारण करके आया है। एक ओर प्रेम बढ़ता है, दूसरी ओर किये जा चुके पापों अथवा न किये हुये पुण्य के कारण कमाई लज्जा में दग्ध करती है। सारांश यह कि कुछ समय के बाद जब यह आकर्षण सीमा को तोड़कर आगे बढ़े, तब दोनों की यह राय हुई कि अपने

किसी कर्म, धर्म, गुण, विद्या में रस नहीं रहा, मन चरणार्विण्द के लिए, 'बावला' हो होकर तरसता है, क्यों न जाकर सतगुरू जी के द्वार पर सेवा की जाय, दर्शन करें और कृतकृत्य हों। मनुष्य जन्म क्या कोई जल्दी प्राप्त होता है? फिर विचार आया कि, 'दर्शन नहीं होंगे' और पहले सभी घर में आने वालों को खुले दर्शन देकर गया था और हमें दर्शनों से वंचित कर गया था, द्वार पर जाने से वह अपने विरद की आन को कब छोड़ेगा? हमें दर्शन नहीं होंगे। फिर सलाह बनी कि नौकर बनकर ज़ाया जाय, अपनी अमीरी का पता न चलने दें और चुपचाप सेवा करते रहें। पर फिर जी ने कहा कि अमीर होकर गरीब बताना? जब शरीर सेवा करेगा, मन अमीरी के विचार में पतन की ओर नहीं जायेगा, क्योंकि अंदर तो अमीरी का पक्का निश्चय बना रहेगा। यदि सुरति सचमुच गरीब होकर उनके द्वार पर न झुकी, तो जिस तरह नम्रता वाले सेवक सेवा करते हैं, उसी तरह अंदर और बाहर से सनम्र सेवा कैसे होगी? अत: गरीबी धारण करके जाना ही सच्चा प्रायश्चित है। इस तरह से विचार करके सच्ची लालसा वालों ने माल-धन बेचकर दान कर दिया और आवश्यक स्थानों पर धर्मार्थ कुए भी खुदवा दिये जिससे एक घूंट पानी न देने के बदले में हज़ारों को हमेशा पानी मिलता रहे। यों धर्म-स्थानों के लिये तथा अन्य ग़रीबों को दान देकर अंत में तन पर गरीबों के से वस्त्र पहनकर ठाकुर के दर्शनों को चल दिये।

: ४ :

मोहना और दर्शन

मोहना और सोहना विद्वान और गुणवंत थे। गुरू गोबिन्द सिंह जी के दरबार में गुणियों का बहुत सम्मान था। यदि गुणी बनकर गुण के ग्राहक के पास जायें तो सम्मान से मिलते हैं, पर सम्मान कराने के लिए तो अमीरी का त्याग करके ग़रीबी को धारण नहीं किया। अंतस को तो प्रेम की चिंगारी आराम नहीं करने देती। प्रेम कहता है कि प्यार करना है, प्यार कराने के अहं में नहीं फंसना है। सचमुच नम्रता के भाव में आकर स्मरण करने से 'प्यार' होता है। अत: सेवा ही हो, तब कहीं ठीक बात है। अब मन में यह बात ठान ली कि यदि सतगुरू जी के बाग़ में बेलदार अथवा छोटे माली, अथवा काम करने वाले, मज़दूर का स्थान मिल जाय, तो यह तो बढ़िया होगा। यह एक कला थी जिसमें दोनों को पूरी तरह पहचान, समझ और पहुंच थी। भोजन कहां से करें? वेतन तो मांगना ही नहीं, और अपनी ज़रूरत का बोझ प्रियतम के ऊपर तो डालना ही नहीं; अत: यह योजना बनाई कि खाली समय में पिटारियां, टोकरियां आदि बनाया करेंगे और इन्हें बेचकर आजीविका चलाया करेंगे और आनन्दपुर में गुरू के बाग़ के बड़े

माली के पास जाकर प्रार्थना की। माली ने पांच-सात दिन काम कराकर देखा कि ये सियाने हैं, और फिर इन्हें अपने पास नौकर रख लिया, बाग़ की पिछली नुक्कड़ में रहने के लिए एक कोठा दे दिया और बांटकर काम सुपुर्द कर दिया। प्रेमियों की सेवा ने बाग़ में कुछ सुन्दरता और स्वाद तो पैदा करना ही था। एक दिन श्री दसमेश जी बाग़ में फिरते हुये एक सुन्दर कियारे को देखकर प्रसन्न हुये। केसरा सिंह[१] को शाबाशी दी। तब उसने करबद्ध होकर कहा, "स्वामी जी! आपकी कृपा की भूख तो हमेशा है, यह काम, जिस पर आप प्रसन्न हुये हैं, दास ने नहीं किया है। यह तो छोटे माली का काम है, जो थोड़े दिनों से सेवा कर रहा है। श्रम करके भोजन करता है और प्रेम के चाव से भरा हुआ शेष समय श्रेष्ठ सेवा मे लगाता है। बहुत ग़रीब है और आपके चरणों का अनन्य प्रेमी है।"

सतगुरू जी सुनकर चुप हो गये और आंखें ऊपर की तान लीं। फिर गुस्सा सा आया और कहने लगे, "दर्शन नहीं होंगे।"

माली ने जब यह बात सोहना को बताई और सोहना के घर में जाकर बताई तब उन्होंने समझा कि "अंतर्यामी यही ठाकुर है, पर अच्छा, यदि दर्शन नहीं होंगे तो कोई बात नहीं, शुक्र है, सेवा ही सही।" ये दोनों इन विचारों में थे कि केसरा सिंह इनके घर आ गया और कहने लगा, सोहना भाई। दर्शन करने की सतगुरू की आज्ञा नहीं है, काम करो, सेवा करो, आते-जाते रहो घूमो-फिरो सब छूट है, पर सतगुरू जी के सामने मत होना, जब कभी पता चले तो दर्शन नहीं होगा 'दर्शन नहीं देना' यह आज्ञा है। यदि यह बात तुम्हें पसंद नहीं तो तुम्हारी इच्छा, जैसे मन चाहे कर लेना'। दोनों ने करबद्ध हो कहा, "प्रभु! नौकरी क्या और नखरा क्या? जिस रंग में साहब प्रसन्न हैं, हम उसी में प्रसन्न हैं, आज्ञा वही है, जो साहब ने दी दास उसी में राज़ी है। फिर वे तो स्वयं साहब हैं पर हे परोपकारी! एक बात ऐसी है जो हमारे बस में नहीं है, तेरी कृपा द्वारा आज्ञा का पालन करेंगे, पर दर्शन की लालसा अंदर से टूट जाय, यह हमारे बस की बात नहीं है।" यह सुनकर केसरा सिंह के नयन भर आये, कई बार उछले और फिर कई बार भरे। आज्ञा को सहन करना और प्रेम के तीरों की तेज़ नौक और उसमें भी प्राणों को देखकर वैराग्य थमता नहीं था, अंत में बिना कुछ कहे चला गया। अब मोहना-सोहना ने अपना नया जीवन, नए ठाकुर की पूजा आरम्भ की। जो ठाकुर जीवित है, जो ठाकुर 'सदैव हाज़िर हुज़ूर' ठाकुर में पहुंचाता है, अब उसकी पूजा है। पर कैसी अद्‌भुत पूजा है? दर्शन तो होंगे नहीं, पर पूजा करते

---

१. यह जन्म से राजपूत था, पर नवें सतगुरू जी के समय सिख मत धारण करके आसपास ही रह गया था। तब से बाग़ में माली के रूप में सेवा किया करता था।

चलो। सर्वस्व न्योछावर कर दो, फिर अभी सेवा ही मिली है, पर दर्शन से खाली सेवा, शुक्र है।

यह है मोहना और सोहना की व्यथा।

हमारी माता जीतो जी[1] प्रभु स्मरण की इतनी प्रेमी थीं और लवलीन रहती थीं कि प्रायः लोग उन्हें योगिनी कहा करते थे। अमृत वेला से पहले ही आप भजन में लग जाती थीं और महाराज जी जब सवेरे के समय दीवान में जाने लगते थे, तो माता जी चरणों पर शीश झुकाकर और कंठ में फूल माला डालकर उन्हें भेजा करती थीं और इसी रूप को नयनों में बसाकर सूर्योदय तक ध्यान मग्न बैठी रहती थी। केसरा सिंह इस माला के लिये स्वयं माता जी को फूल पहुंचाया करता था। एक दिन जब बाग़ में से फूल लेकर गया तब माता जी ने कहा, "केसरा सिंह! तेरे कल के इन जैसे फूलों पर श्री कल्ग़ीधर जी बहुत प्रसन्न हुये थे।" तब केसरा सिंह ने कहा, "अम्मा जी। यह मेरी कारीगरी नहीं है, एक अन्य ग़रीब सेवक की मेहनत है, जो निष्काम होकर सेवा कर रहा है, पर उसे दर्शन प्राप्त नहीं होंगे।

अम्मां जी–क्यों?

केसरा सिंह–सतगुरू जी की यही आज्ञा है।

अम्मां जी–फिर केसरा सिंह! तू उसके हाथों के फूल हमें क्यों लाकर देता है?

केसरा सिंह–अम्मां जी! सेवा की आज्ञा तो सतगुरू की ओर से है, पर दर्शन नहीं होंगे।

अम्मां जी सुनकर बोली–तब महाराज जी का उनके साथ गहरा प्यार है, किसी अवगुण अथवा भूल को शुद्ध किया जा रहा है।

केसरा सिंह को तो भेज दिया और रात को जब महाराज जी ने महलों में अपने भक्ति और टिकाव भरे वचनों से मोहना और सोहना के बारे में पूछा तब गुरू जी ने कहा:

"प्रभु का एक जीवित व्यक्ति ये वाक्य इनके लिये कहकर गया है कि तुम्हें ठाकुर के दर्शन नहीं होंगे। यदि गुरू किसी को मारे तो उसके लिये सिख क्षमा करवा लेते हैं, मगर सिख द्वारा मारे गये व्यक्ति को गुरू क्षमा नहीं कर सकते यह धुर विरद है। मोहना और सोहना से मुझे प्यार है, पर सिख का वचन अटल हैं, यह तो तब ही टल सकता है, जब इनकी सुरति जीवित हो उठेगी, जब मौत रूपी नदी के आर-पार का इनको संपूर्ण पता चल जायगा। अथवा वह सिख, जीवित होता तो अपने वाक्यों को पलट सकता।"

१. गुरू गोबिन्द सिंह जी की अर्धांगिनी।

अम्मां जी–हे सतगुरू जी! यदि मैं सोहना जी से मिलूं और उनकी सुरति को जीवन के प्रवाह से भरने का यत्न करूं, तो आपकी क्या आज्ञा है?

सतगुरू जी–इससे अधिक और भलाई भला क्या हो सकती है? मैं प्रसन्न हूं और मुझे इस संसार में भेजने वाला भी इसमें प्रसन्न है। हमारा बाबा तो कहता है:

"जन नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की।
जो आपि जपै अवरह नामु जपावै॥

किसी को जीवनदान, प्रदान करना, किसी के मुरदापन में नए प्राणों का संचार करना, यह काम तो वाहिगुरू को सबसे अधिक प्यारा लगता है। अंतस् में प्राणों की लहर आने से जो प्राण भरते हैं, उसी को तो जीवित कहा जाता है,

"सो जीवत जिह जीवत जपिआ"
"सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ॥
नानक अवरु न जीवै कोइ॥"

जो इस प्रकार की जीवन जीते हैं वही जीवित हैं। शेष तो, "होर मिरतक है संसार।" जीवित आत्माएं इस जीवन वाले अकाल पुरुष रूपी वृक्ष की डालियां हैं। इनके कथन और इनकी करनी का तार प्रभु के साथ मिलकर एक साझा संगीत पैदा करता है और अपनी तासीर में भी वही असर रखता है। यही कारण है कि उस जीवित सिख के वाक्य अटल हैं।

माता जी–आप समर्थ हैं, आपका विरद पतित पावन है। हम सभी मृतक थे, आपने कृपा करके जीवित किया है। हमारी भूलों पर क्या आश्चर्य! भूल तो हमारा रूप है। मेरी यह विनय नहीं है कि आप अपनी प्रतिज्ञा भंग करें, पर मुझे प्रसन्नता और बल प्रदान कीजिये, जिससे मैं इन दोनों को आपके द्वार के योग्य बना सकूं।

कलग़ियां वाले–जीतो जी! वाहिगुरू तुम्हें बल दे, तुम इस दंपत्ति का संकट दूर करो।

: ५ :

परमार्थ की गुरुवाणी में खांडे की धार से तुलना की है। इसका अर्थ धार की भांति चुभने वाला नहीं है, पर इतना बारीक और सूक्ष्म है, जितनी कि खांडे की धार होती है। ऐसी सूक्ष्म धार पर चलना कठिन होता है, किसी न किसी ओर झुकाव हो ही जाता है। परमार्थ वाले कई लोग संसार से वैराग्य करते हुये इतने उदास हो जाते हैं कि उनका स्वभाव गुस्से वाला और उदासी भरा हो जाता है। कई तो चलायमान मन वाले हो जाते हैं। दूसरी ओर, जो लोग पिता परमेश्वर को भूल जाते हैं, वे खुदग़र्ज़ हो जाते हैं। खुदग़र्ज़ी के कारण सृष्टि के लिये दुखदाई

और अपने लिये पावां पर कुल्हाड़ा मारने वाले बनते हैं। पर कई ऐसे भी हैं जो केवल परोपकार करते हैं। उनकी सुरति विचलित रहती है और वे जिनका भला करते हैं वे उनमें ही लगकर आपे में खो जाते हैं। वास्तव में ये दूसरों से प्यार करते हैं जिसका लालन-पालन लोगों की वाह-वाह पर होता है। दोनों प्रकार के अवगुणों से बचने के लिये गुरू जी का वाक्य है,

'एक पिता एकस के हम बारिक तूं मेरा गुरहाई'।

अर्थात्-वाहिगुरू को पिता समझिये, अपने आपको बच्चा और बाकी लोगों को अपने भाई समझकर उनके साथ भलाई का व्यवहार कीजिये। ऐसा करने वाले जो सृष्टि से प्रेम करते हैं, वे अहं के लिये नहीं, पर वाहिगुरू के प्रेम और उसकी आज्ञा में करते हैं। वे जो भलाई नेकी तथा पुण्य कर्म करते हैं, वे सब प्रभु के अर्पण कर देते हैं, यों वे अहं से भी बच जाते हैं। गुरू जी का वाक्य हे, 'ब्रह्म गिआनी पर उपकार उमाहा'। अर्थात् उनमें से परोपकार का स्रोत अपने आप उमग कर बहता है, अहं के धक्के की ज़रूरत नहीं रहती। जीवन एक शाश्वत वस्तु है, यह जीवन अर्थात् आध्यात्मिक जीवन भी शाश्वत वस्तु है। आध्यात्मिक जीवन शाश्वत स्रोत की भांति निरंतर और स्वभाविक रूप से उगमता रहता है। वह स्वयं शीतल सुख रूप और सुख शीतलता प्रदान करने वाला होता है।

मोहना और सोहना इस जीवन पथ पर नहीं चले थे, वे कर्मकांड, पूजा, अर्चना में लगे हुए थे। उनमें जीवन का प्रवाह नहीं बहा था। उनका मन केवल कर्मकांड में परपिक्वता पकड़ता चला गया था। इसलिये जीवित व्यक्ति के कष्ट में सुरति ने दो घूंट पानी देने की समझ नहीं की। अब इस स्थिरता को तोड़ने का प्रयत्न गुरू के द्वार पर हो रहा है।

: ६ :

मोहना और रोडा जलाली

श्रीमती जीतो जी का अपने आध्यात्मिक मण्डलों रहना 'प्रभु के ध्यान' में सावधान रहना, जीवन की हिलोर का टिके हुये वेग में जारी रहना तथा स्वाभाविक ही उनके द्वारा प्यार और भलाई होते रहना; यही उनका जीवन था। इसलिये प्यार से लोग उन्हें अम्मां जी कहकर पुकारते थे। मोहना से माता जी का प्यार भी उनके प्रेम का एक नमूना था। जब से श्रीमती जी को इस बात का पता चहा, तब से आप मोहना को बुलवा भेजतीं, कभी बाग़ में सैर करने गयीं तो उनकी झोंपड़ी में स्वयं चली जातीं, उनके साथ सत्संग के संबंध में वार्तालाप करतीं और सबसे अधिक प्रभाव वाला आशीर्वाद और उच्च स्पर्श करतीं और अपनी सुरति द्वारा उनकी सुरति को ऊंचा रखतीं।

माता जी के प्रेम द्वारा धीरे-धीरे मोहना में वाहिगुरू जी के स्मरण का निवास हुआ कि शीतलता, शान्ति, रस, मिठास और स्वाद की एक मन्द लहर उसके अंदर फैल गई। सोहना की भी यही दशा हो गई।

दमि दमि सदा सम्हालदा दंमु न बिरथा जाइ॥
जनम मरन का भउ गइआ जीवन पदवी पाइ॥ [बिहागड़ा वार मः ३]

वे जो स्वयं को अभिशापित, वे जो सर्वस्व दान करके सुख के स्थान पर पहुंचे थे, वे जिनको विद्या और सूक्ष्म गुणों ने शान्ति प्रदान नहीं की थी, वे जो कि साधनों और नृत्य से भी ठाकुर से अतृप्त रहे थे, अब नम्र होकर सतगुरू के सत्संग में आ गये और जीवित हो उठे।

मुहि मरने का चाउ है मरउ त हरि कै दुआर॥
मति हरि पूछै कउनु है परा हमारै बार॥६१॥ [कबीर]

अब दोनों की चित-वृत्ति विचलित नहीं होती, उसासें नहीं भरते। अंतस् में एक मन्द वेग का निरंतर रस शाश्वत रहता है। स्मरण में सह्य आकर्षण लगा रहता है, दर्शन की लालसा पहले की अपेक्षा कही अधिक है, पर उसमें निराशा और कमी नहीं है, प्रभु-कृपा और आशा की हिलोरों में विश्वास है, नयन झड़ी लगाते हैं, पर प्रभु कृपा में:-

जेते सास सास हम लेते तेते ही गुण गाइआ॥
निमख न बिछुरै घरी न बिसरै सतसंगे जत जाइआ॥[सारंग महला ५]

इस प्रकार करते हुये समय व्यतीत, होता गया। इनके अंतस की दशा परिपक्व होती गई। चित्त मृत्युरूपी नदी के आर-पार चक्कर लगाने लगा। यों लगता कि इस सारे भवन का एक ही ठाकुर है, जिसकी ठकुराई 'मृत्यु रूपी नदी' के आर-पार है। यह उस ठाकुर की इच्छा पर निर्भर है कि जिसे वह चाहे, उसे पार बुला ले। मृत्यु कोई दुखदाई वस्तु नहीं है और न ही वह विनाश है, न ही पक्का वियोग है। इस बात का भी पता चलता कि जो व्यक्ति स्मरण में जिये हैं उनको वियोग नहीं होगा, प्रभु से अथवा प्रभु के प्रेमियों से, सतगुरू से अथवा सत्संग से, स्मरण वाले तो कभी भी बिछुड़ते नहीं हैं:

कबहू साध संगति इहु पावै॥
उसु असथान ते बहुरि न आवै॥

यों एक नदी के आर-पार वाहिगुरू की नगरियों में आना-जाना दिखाई देने से मन 'मृत्यु के भय' से मुक्त हो गया और जीवन एक अत्यन्त ही स्वादिष्ट और रंगीली देन प्रतीत होने लगा। स्मरण के बिना जीवन एक जलन सा प्रतीत होता, जिस प्रकार चूल्हे में लकड़ियां जलती हैं, उसी प्रकार शरीर में अन्नदाना, फल आदि भोजनों का जलना। पर हां मन में प्रभु के स्मरण का निवास हो गया, तब

जीवन एक अत्यन्त रसदायक, स्वादिष्ट आध्यात्मिक लहर बन गया। जिस दाता ने मानव-जीवन का निर्माण किया, उसने उसे 'पीड़ा' नहीं बनाया था, उसने इसे 'दूख रूप' नहीं बनाया था, बल्कि हमने निर्माता को भुलाकर नाशवान और बिछुड़ने वालों के साथ प्यार कर लिया, दुख कहां से पैदा हो गया। अब मोहना और सोहना जी को जीवन रसरूप प्रतीत होने लगा। उनकी सुरति जीवित हो गई। जीवित सुरति अब जिधर को भी देखती है, उधर की सुन्दरता, रस और स्वाद फर्राटे मारते हुए नज़र आते हैं। जिस निर्माता को कठोर हाकिम मानकर प्राणों में सहस-सा भरा रहता था, वह सदैव प्रेम करने वाला दीख पड़ा।

"मिठ बोलड़ा जी हरि सजण सुआमी मोरा।।
हउ संमलि थकी जी अहु कदे न बोल कउरा।।"

'जागृत हो चुकी सुरति' निर्माता को हाकिम तथा दंडाधिपति देखती, जागृत हो चुकी सुरति को वह पिता-माता, बंधु, भ्राता, प्यार-पुञ्ज, कृपालु, दान-दक्षिणा, प्रसन्नता और, अनुकंपा का मेघ, ढक लेने वाला पर्वत और रक्षा कर लेने वाली ओट दीख पड़ता है। इस तरह के होकर दोनों ठाकुर के कौतुकों पर मोहित होकर कीर्तन करते हैं।

"हरि कीरत साध संगति है।
सिरि करमन कै करमा।।"

विद्या और दूसरे गुण जहां पर नहीं ले जा सकते वहां पर 'जीवनदान' का एक कण ले जाता है। सुखी हैं, पर दाता के प्यार की कसक मन में उठती है। 'आज्ञा नहीं है' इसलिए आज्ञा में खड़े हैं।

"सेजै रमतु नेन नहीं पेखउ इहु दुख कासउ कहउ रे।।" [आसा कबीर]

इन ही दिनों में एक दिन एक रमता फकीर बाग़ में आ गया। सब ओर सैर करने के पश्चात मोहना के द्वार पर आ खड़ा हुआ, कहने लगा-

मालिन! अलख, मालिन! अलख! फ़कीर आये हैं, भिक्षा दे।

मोहना अंदर से एक मुट्ठी ज्वार के आटे की ले आई। फकीर ने कहा:-

"देखती नहीं क्या।"

"यह ईश्वर का फ़कीर है, इसका नाम रोडा जलाली है। यदि यह आंख फेरे, तो उल्टा चक्कर दे सकता है। मालिन! यह रोडा जलाली है, रोडा जलाली है! यदि तू ईश्वर से मिलाप चाहे तो रोडा जलाली उससे भी मिला सकता है। पर रोडा इसके लिए मुंह मांगी दलाली लेता है।

मालिनी तेरे डेरे पर फकीर रोडा जलाली आया है। इससे मांगी हुई मुराद पूरी होती है। इसलिए द्वार पर आये हुए रोडा जलाली को खाली नहीं भेजना चाहिए। मालिन! रोडा फकीर काली नागिन की भांति है। वह जो कुछ मुंह से

मांगता है, उसे दे दे, पर उसे गाली मत देना। नखरे और बहाने करके इसे मत टालना। मालिन! तू रोडा को प्रसन्न कर दे, तेरा माली जिये। रोडा पैसे नहीं मांगता, रोडा पाजी भी नहीं है। चमारों के साथ उसकी मित्रता नहीं है। मालिन! यह रोडा जलाली सबर के हुजरे से आया है। रोडा को खाली न भेज। मालिन तेरा और तेरे माली का भी उद्धार हो जायेगा। हे मालिन। तेरे द्वार पर रोडा जलाली आया खड़ा है।

रोडा गदा को घुमाता हुआ नाचता और ये गीत गाता था। मोहना उसे देख-देखकर चकित होती, सहम जाती और कुछ बेचैन-सी हो जाती। जब फ़कीर चुप हो गया और उसने आंखों को नीला-पीला करके घुमाया, तो मोहना ने कहा, "साईं जी! मांगिये, जो कुछ कंगालों से हो सकेगा, हाज़िर हो जायेगा, पर कृपा करके मांगें, हम बहुत निम्न हैं, हम भिखारी हैं, दाता नहीं है, जो कुछ है वह आप का ही है।

रोडा—मालिन! यह मोतिया, बिना बहार के पैदा हुआ मोतिया, यह गुलदावदी, यह रोहनी, यह गैंदा, यह पीला गैंदा जिसे छिपाकर रखा है, इसे रोडा देख-देखकर प्रसन्न हो रहा है, इसे दे दे।

सुनते ही मालिन पर सन्नाटा-सा छा गया उसका कलेजा कांपा, इसका तार टूटा, आकाश और पृथ्वी आंखों के आगे घूम गये। निर्बल और शून्य होकर मालिन जहां पर खड़ी थी, वहीं पर बैठ गई। रोडा इस कौतुक को देखता रहा, फिर रोडा गाता-कूदता हुआ चला गया। कुछ समय के पश्चात् सोहना जी आये। छींटे मारकर पत्नी को होश में लाए, उठाकर पूछा, 'मोहना! यह क्या गति है?' मोहना ने धीरे से सारा हाल कह सुनाया और कहा, "ये फूल श्री कल्गीधर जी के लिये पालकर रखे हुये हैं और अम्मा जी की विशेष आज्ञा है कि प्रियतम जी की वर्षगांठ वाले दिन उन्हें मोतिये के फूलों की माला पहनाई जाय। उसके लिये तुमने परिश्रम करके ये बिना मौसम के पौधे तैयार किये थे। आज एक फ़कीर आकर इनको मांगने लगा, यदि मैं फूल न देती तो पहले ठाकुरों के निमित्त पानी ठाकुरों के बालक को न देने के कारण दर्शनों से वंचित हो गये हैं, अब ठाकुर का बालक ठाकुर जी के नमित्त लगाए हुए फूल मांगता है, यदि न दूं तो किस दशा में पहुंचूं? और यदि दूं तो तो अम्मां जी को क्या मुंह दिखाऊंगी? जिन्होंने हम मृतकों को जीवित किया है, उनके लिये इस तुच्छ सेवा को पूरी करूं अथवा न करूं? इस द्विविधा में ऐसी निराशा हुई कि मैं तो अपनी ओर से मर ही गई थी, पर देखती हूं कि यह मुश्किल समस्या अभी मेरे सामने है और तुम मेरे साथ इसके साझीदार हो।"

यह बात सुनकर सोहना जी को बहुत कचोटन-सी हुई। वनस्पति-विज्ञान में प्रवीण सोहना जी ने मोतिये के फूल के चार पौधों को अम्मा जी की प्रसन्नता

के लिये बड़े-बड़े चौखटों में शीशे जड़वाकर इन पौधों के ऊपर ढक्कन की भांति रखकर बिना मौसम फूलने के लिये तैयार किया था। दिन को सूरज की तपिश शीशों में से तेज़ होकर अन्दर जाती थी और रात को शीशों के आसपास थोड़ी दूरी पर धूनी जलाई जाती थी। अतः पौधों के आस-पास शीशों के अन्दर सावन की गर्मी जैसी गर्म वायु बनी रहती थी। खाद एक खास तबेले के कूड़े से तैयार करके दी थी। परिणाम यह हुआ कि अब चारों पौधे कलियों से भरे खड़े थे। इसी तरह अब गुलदावदी के पौधों को फूस की छत बनाकर ढक दिया जाता था। दिन के समय यह फूस की छत्त उतारकर धूप लगवाई जाती थी और सूर्यास्त होने से पहले उसे फिर ढक दिया जाता था और रात को उनके चारों ओर थोड़ी दूरी पर धुनी जलाई जाती थी, जिससे हवा की गर्मी कम नहीं होती थी। इसी तरह कच्चे-पीले रंग के गैंदे के फूलों को कक्कड़ से बचाकर अम्मा जी की प्रसन्नता के लिये अब तक संभाला गया था। आज ऐसा विघ्न आ पड़ा कि जिस समस्या का समाधान ही नहीं मिलता। मोहना जी इस बात को तो भांप गये कि यह फ़कीर उस सिख जैसा दिखाई नहीं पड़ता है, पर है तो आख़िर वाहिगुरू का, इसकी सेवा न करना भी बुरी बात होगी। इस तरह के विचार पति-पत्नी रात भर सोचते रहे। प्रातःकाल रोडा जी फिर आ गये। वे उसी तरह सारा गीत गाने और नाचने-कूदने लगे। अब सोहना की, जिनको अपनी बुद्धि से कुछ नहीं सूझा था, बल्कि चिन्ता ने स्मरण में से निकालकर दुखी कर दिया था, साईं पर टेक रखते ही सच की झलक पड़ी। फ़कीर से कहने लगे, "देखिए साईं के प्यारे जी! यह बाग़ गुरू का है, जो कुछ इसमें है, वह गुरू का है, हम तो बिना दाम के दास हैं, हम किसी वस्तु के स्वामी नहीं हैं; नौकरों का कोई कान नहीं कि मालिकों की वस्तुएं उठाकर अपने आप दे दें। फूलों के लिये आप बड़े माली केसरा सिंह से कहिये, वे मालिक की आज्ञा से दे सकते हैं। हम, हम फूलों को बीजने वाले, उनका लालन-पालन करने वाले, रक्षा करने वाले हैं और यहां पर हमारा धर्म समाप्त हो जाता है। फूलों को तोड़ना मालिक का धर्म है, हम मालिक नहीं हैं। यह विचार कर हमें क्षमा करें, हम दास हैं। रोडा यह सुनकर उछला और बोला:

रोडा जलाली के गीत का अनुवाद

रोडा जलाली तेरे द्वार पर से खाली जा रहा है।
हे माली! तू रोडा जलाली को खाली मत भेज,
यह चक्कर तेरे लिये उल्टा होगा।
यह रोडा फूल नहीं छोड़ेगा, थाली भरकर लेने हैं।
ये गुरू के फूल हैं और मुझे भी गुरू को ही भेंट करने हैं।
इसलिए हे माली! तू रोडा जलाली को खाली मत भेज।

सोहना–फ़कीर साईं! मैंने सच कहा है, मेरे घर में जो कुछ है सब कुछ ले जाइए, हाज़िर है। मालिक की वस्तु और मालिक की आज्ञा से तैयार हुई वस्तु को तो मालिक ही दे सकता है अथवा बड़े माली से पूछ लीजिए।

रोडा अब श्राप देकर 'तेरी जड़ न रहे' कहकर चला गया। मोहना और सोहना ने शुक्र किया और कहने लगे–अब के ठाकुर के बालक ने गाली नहीं दी है, आशीर्वाद दिया है। हम जगत में जड़ और सहारा कब चाहते हैं? यहाँ से हमारी जड़ उखड़ जाय तो अच्छा है। मन पर जो भय था वह उतर गया और मन थोड़ा सा उच्च हो गया। पति, पत्नी अन्दर बैठकर कीर्तन करते रहे। सुर्रात वाले लोगों के पास मलिन हो गई और पतित हो गई, चित्त की गति की औषधि सत्संग है अथवा कीर्तन है:–

गुन गावत तेरी उतरसि मैलु॥
बिनसि जाइ हउमै बिखु फैलु॥

सांझ के समय अंतस के बादलों ने उड़ान भरी, कुहरा उठा और धुंधलापन खत्म हो गया। मन निर्मल होकर चमका, वृत्ति का प्रवाह तेल की धारा की भांति एक रंग होकर बहने लगा और सुरति चढ़ गई। रात को बड़े आनन्द से सोए, सवेरे मग्न होकर उठे, नित्य के नियम के अनुसार पाठ के ध्यान में लग गए। जब सूरज चढ़ा, तब बाहर आये तो क्या देखते हैं:–

बुलबुल ने सारे बाग़ को उजड़ा हुआ पाया।

ज़ालिम कठोर हाथों ने खींच-खींच कर तोड़-तोड़ कर फैंक दिया।

शीशे टूटे पड़े हैं और मोतिए के फूल डालियों के साथ नहीं हैं। फूलों के ढक्कन बिखरे पड़े हैं और गुलदावदी की टहनियों से फूल टूट-टूटकर लटक रहे हैं, पीले गैंदे के फूलों का कहीं निशान तक भी नहीं है।

मोहना और सोहना! अवाक् रह गये, लाज से भर गये, "अब अम्मां जी से क्या कहेंगे, जिन्होंने जीवन-पद प्रदान किया, हम उनकी एक प्रसन्नता के लिए इन फूलों की रक्षा भी न कर सके। हा हत्यारी नींद?" कलेजे में एक तीर सा लगा जीवन प्रदान करने वाली अम्मां जी दीखीं और शरीर पसीना-पसीना हो गया। फिर संशय सा हुआ और कलेजा फट सा गया, टूट चुके फूलों वाली गुलदावदी की कियारी मे धड़ाम से गिरे। फूल रहित पौधों में बेहोश शरीर शव बनकर गिर पड़े।

: ६ :

मोहना, सोहना और शूरवीर गुरू

कल्ग़ी वाले सतगुरू जी का दीवान लग रहा है। चारों ओर संगत बैठी है। दूर-दूर से गुणी, ज्ञानी, मतों-मतांतरों के साधु आए बैठे हैं, कीर्तन हो रहा है।

जब समाप्ति हुई, तो उपहार प्रस्तुत हुये। इनमें से एक अद्भुत शरीर के एक फ़कीर ने सुन्दर लहराते हुये फूलों से भरी हुई एक सुन्दर पिटारी सतगुरू जी के आगे तख्त पर जाकर रख दी। पहले तो यह साधु सिर से नंगा रहता था, पर आज इसने सिर पर लम्बी टोपी रखी हुई थी। सतगुरू जी ने पूछा:

"साईं के फ़कीर! तू कौन है?"

फ़कीर–जी मैं रोडा जलाली हूं।

गुरू जी–रोडा पलाली?

फ़कीर–नहीं सच्चे पातशाह, रोडा जलाली।

गुरू जी–जलाली? यदि तू जलाली है तो हमारे लिए कोई ठोस वस्तु क्यों नहीं लाया?

फ़कीर–फूटे हुये मटके में नीर नहीं ठहरता, नंगे साधुओं के पास माल नहीं ठहरता। नंगे साधु बिना माल के क्या ला सकते हैं, उनके हाथ तो सदैव खाली रहते हैं, वे कंगाल होते हैं।

गुरू जी–फिर खाली हाथ ही आ जाते, फ़कीरों के खाली हाथ अच्छे लगते हैं।

फ़कीर–महापुरुषों के पास खाली हाथ जाना मर्यादा के विरुद्ध है।

गुरू जी–फकीरी क्या, और मर्यादा क्या?

फ़कीर–फ़कीरों के रंग।

गुरू जी–रंग नहीं ढंग।

यह कहकर कौतुकी सतगुरू जी ने एक सिख[१] को जो कि रोडे के पास ही बैठा था संकेत करके रोडे की टोपी उतारने को कहा। टोपी नीचे गिर पड़ी और उसके साथ पांच-सात मोहरें[२] भी गिर पड़ीं। अब सारी संगत हंस पड़ी और रोडे जलाली का चेहरा पीला पड़ गया।

गुरू जी–रोडा जलाली! जलाली का रोडा कि जलाल वाला रोडा। प्रभु के जलाल वाला अथवा सोने के जलाल वाला रोडा। भाई तूने इसे लहराते हुये फूलों को इनकी डालियों से क्यों तोड़ा?

रोडा चुप था।

गुरू जी–दिलों के साथ पैवंद हो चुके फूलों को तूने किससे पूछकर तोड़ा?"

रोडा सिर झुकाये हुए था।

गुरू जी–शोक! फूलों में सुगंधि नहीं है, सहम ही धुंध है, फूलों में सुन्दरता नहीं है, शोक की आवाज़ है। निर्जीव फ़रियाद करते हैं।...भाई तुम क्या फ़रियाद करते हो?

---

१. तवारीख खालसा में भाई मनी सिंह लिखा है।

२. पांच मोहरें और दो रुपये बीच में से निकले। [तः खा]

यह कहकर नयन मुंद गए, आधी घड़ी के पश्चात् खुले सदैव खिले हुए मस्तक पर छोटी-छोटी त्योरी भी, अधर खुले रहे थे, उनमें से दो मोती निकले और आवाज़ आई:-

रोडे! फूल नहीं टूटे, दो दिल टूट गये हैं। दिल नहीं टूटे हैं, दो जीवित आत्माएं टूट गई हैं, आत्माएं नहीं टूटी हैं, वाहिगुरू की गोदी में से दो लाल टूट गये हैं। लाड़ वाला पिता गिर चुके लालों की ओर वैराग्य-भरी दृष्टि से देख रहा है। रोडा तूने जगताधार के भक्ति-रस में हाथ डाला है। तूने वृक्ष के साथ लगी हुई डाली की बेदर्दी से तोड़ा है और इसकी कंपकंपी सारे वृक्ष को पहुंची है। हां, हां गोदी में से गिरे हुए लालों की ओर मां कैसे देखती है?

इस तरह से कुछ वाक्य कहते गये, नयनों में मोती भरते गये, दासों के प्रेमी, दासों को 'अपना जीवन' कहने लगे विह्वल होते गये। प्रेम का वेग बाढ़ की भांति उमड़ आया। उठे, चले और अब भागे जा रहे है, "मेरे लाल, मेरे लाल" कहते हैं, और मर्यादा की सभी सीमाओं और बड़ाई को पार करके भागे जा रहे हैं। संगत उदास होकर पीछे-पीछे जा रही है। निज हृदय के ज्ञाता एक सिंह जी फूलों की पिटारी को किसी भेद और हित से बंधी हुई जानकर हाथों में लिये हुये पीछे जा रहे हैं। वह देखो दासों के अंगपालक, जो सचखंड से उद्वार करने के लिये मृत्युलोक में आये, आनन्दपुर के आनन्द भरे दरबार में से पीड़ितों की पीड़ा को दूर करने के लिए भागे जा रहे हैं, वह देखो प्रेम के अवतार और कृपा-रूप, बाग़ में गये। कोई अगम्य की सीध, कोई अदृश्य का आकर्षण, कोई अरूप की खींच किसी एक ठिकाने की ओर ले जा रही है। बाग़ के अंतिम छोर पर पहुंचे। ठीक है, जगत-रक्षक सतगुरु, हे त्राण कर्ता प्रियतम जी! ठीक है, यहां पर उजड़े हुये चमन में दो प्राणी सिसक रहे हैं। माता जीतो जी अभी-अभी उस बरबादी वाले स्थान पर पहुंची थीं, उस बरबादी में वाहिगुरू के बाग़ के लिए तैयार की गयी अपनी बाड़ी को बरबाद हुआ देख रही थीं कि मां से अधिक तीव्र मोह वाले दाता गुरू जी पहुंच गये। 'मेरे लाल, मेरे लाल'। कहकर आपने दोनों शीश गोदी में ले लिये। सिर पर हाथ फेरते हैं, आंखों को पोंछते हैं, माथे को थपथपाते और कहते हैं-"निहाल! मेरे लाल, निहाल।"

कैसा अद्‌भुत दर्शन है जिसके दर्शनों की लालसा ने कई जन्मों से तिथि निश्चित कर रखी थी, शुक्र और आज्ञा को सिर पर रख लेने ने क्या रंग जमाया है? जिनके दर्शनों की प्राप्ति साधुजन के अभिशाप ने बंद कर दी थी वह दीनों का दयालु स्वयं प्रसन्न होकर दर्शन दे रहा है। मोहना और सोहना! जागो! प्यारे! होश में आओ? जरा नयन खोलो!! जिनके दर्शनों के लिए तुम तरस रहे थे, वे आज

स्वयं खरीदकर बनकर तुम्हारे दर्शनों को खरीदने के लिये आये हैं। हे गुरू के लाल! देखो तो सही। "दर्शन नहीं होंगे" में से "नहीं" अब उड़ गया है, पर उठे कौन? वाह साईं के रंग। अब दर्शन आये हैं, तो दर्शन करने वाले हाज़िर नहीं हैं। प्रेम-भक्ति की लीला अनूठी है।

माता जी ने मोहना के हाथों को पकड़ रखा है और दबा रही है और कहती है, "मेरे बच्चो! आंखें खोलो, दर्शन करो।"

बीच में यह ईश्वरीय दर्शन है, आस-पास सारी साधु संगत की भीड़ है। सभी अपने आभा वाले मालिक के प्रेम रंग को देख रहे हैं। केसरा सिंह माली पानी लेकर पहुच गया है। सतगुरू जी ने अपने पवित्र हाथों से स्वयं उनके मुंह में पानी डाला, छींटे मारे, प्यार दे देकर कहा: "मेरे नौनिहालो! आंखों खोलो।"

अब उनके नयन थोड़े से खुले, दर्शन, ईश्वरीय दर्शन आंखों में पड़ा, पर किस समय? जब नयन दुर्बल हो चुके हैं, शरीर में उठने की शक्ति ही नहीं है। दर्शनों को नयन सहन न कर सके, फिर मंद गये, पर अपने साथ खुशी की एक लहर अंदर ले गये, एक क्षण के पश्चात् फिर खुले, फिर भिंचे। इस तरह काफी समय तक खुले-बंद होते रहे। होश आ गया, ताक़त आई, सुरति लौट आई, तब माता जी ने कहा: "बच्चो! ठाकुर जी के दर्शन आ गये हैं।" अब इस खुशी की समझ पड़ी, पर निर्बल मन इतनी खुशी के बोझ के लिए तैयार नहीं था, एकाएक खुशी का धक्का लगा और फिर निढाल हो गये। अब कल्ग़ी वाले सतगुरू जी ने उनके चित्त को अपने आध्यात्मिक बल से सहारा देकर उठाया, तब फिर होश आया। धीरे से उठे और उल्टे होकर शीश वंदना में झुके, पर सतगुरू जी ने दोनों सिर गोद में लेकर सिर पर प्यार किया। ज्यों-ज्यों पिता ने अपने बच्चों की पीठ पर हाथ रखा, उनकी सुरति लौटती गई और वे उठकर बैठ गये। अम्मा जी ने प्यार से कहा: "बच्चो! सफल, सफल, तुम्हारी यात्रा सफल है।"

प्रेम की लालसा भरे नेक दर्शन करके मानो तृप्त ही नहीं होते। फूस पर बैठे हुए प्रियतम को देखते हैं, अमृत पीते हैं, फिर-फिर पीते हैं, झुकते हैं और बन्द होते हैं साथ ही सिर झुकता है। इस तरह भक्ति रस का यह गुरू रूपी समुद्र और नदी रूपी सिखों का 'संगम दर्शन' कुछ समय तक बना रहा। जिस जिसने दर्शन किये, वह जीवित हो उठा।

अब मोहना और सोहना को पता चला कि सतगुरू जी फूस पर बैठे हैं और बेअदबी हो रही है। सजल नेत्र होकर कहने लगे, "ठाकुर जी। बड़ी बेअदबी हो रही है, दया कीजिये।" अब सतगुरू जी दोनों को साथ लेकर कच्ची झुग्गी के अंदर जाकर विराज गये। जीतो जी साथ गईं। शेष संगत बाहर दीवान लगाकर बैठ गई। ये घर में आये हुये ठाकुर का क्या आदर करें, वह कीर्तन सुनायें जिसकी ठाकुर को सदैव जरूरत है। सरोद लेकर दोनों बैठ गये और इस तरह गायन किया:-

जो तेरी सरणाई हरि जीउ, तिन तू राखन जोगु॥
तुधु जेवडु मैं अवरु न सूझै ना को होआ न होगु॥१॥
हरि जीउ सदा तेरी सरणाई॥
जिउ भावै तिउ राखहु मेरे सुआमी इह तेरी वडिआई॥१॥रहाउ॥
जो तेरी सरणाई हरि जीउ तिन की करहि प्रतिपाल॥
आपि कृपा करि राखहु हरि जीउ पोहि न सकै जमकालु॥२॥
तेरी सरणाई सची हरि जीउ ना ओह घटै न जाइ॥
जो हरि छोडि दूजै भाइ लागै ओहु जंमै तै मरि जाइ॥३॥
जो तेरी सरणाई हरि जीउ तिना दूख भूख किछु नाहि॥
नानक नामु सलाहि सदा तू सचै सबदि समाहि॥४॥४॥

[प्रभाती महला ३]

मोहना और गुरू पर्व

ये घटना संवत् १७५०-५१ विक्रमी के आस-पास की है। अभी अमृत शुरू नहीं हुआ था, पर दूसरे ठाठ-बाठ और सारी सृष्टि के उद्धार का काम पूरे यौवन पर लहरा रहा था और देश की रक्षा का सारा सामान बनता जा रहा था।

फूलों की उस पिटारी को माता जी ने उन प्रेमियों के हवाले कर दिया, कि जिस नीयत से फूल तैयार हुए थे कल उसी प्रयोग में लायें अत: दोनों ने ठीक समय पर फूलों को बना संवारकर, कई भांति की मालाएं बनाकर माता जी को दे दीं और उन्होंने कुछ स्वयं और कुछ उनके हाथों से गुरू जी को भेंट कीं और करवायीं। इस समय सतगुरू जी ने भरे हुए दीवान में मोहना और सोहना को सम्मान दिया।

फिर और अधिक कृपालु होकर कहा कि, "हे लाल! मैं बहुत प्रसन्न हूं, जो चाहो, मांगो।" तब सोहना जी ने विनय की कि, "रोडे को सिखों ने बंद कर रखा है, उनके लिए आपकी कृपा हो जाये। हे दाता जी! हम जीव भूल करने वाले हैं, हमारे अवगुणों के लिए तेरी एक अनुकंपा और एक तेरा दिया हुआ स्मरण, दो ही औषधि हैं। आप रोडे का भी उद्धार कीजिये।"

इस कोमलता और क्षमा के भाव को देखकर सतगुरू जी ने रोडे को बुलाकर आशीर्वाद दिया और पीठ पर हाथ फेरकर कहा, "तू फकीर है, जो कमी थी अब पूरी हो गई है, तगड़ा हो। हां, सुन्दरता सुख के सरोवर वाहिगुरू के साथ जुड़ जा। अब तू जलाली का नहीं, बल्कि जलाल वाला रोडा हो गया है और सच्चे साईं के स्मरण में साईं के साथ संलग्न हो जुड़ गया है।

संगत में इनकी असलियत का पता चला कि ये किन-किन गुणों, विद्या और हैसियत के व्यक्ति थे, किस तरह इन्होंने परिश्रम और सेवा की है, कैसे

केसरा सिंह के पास मज़दूर बनकर काम किया, तब प्यार और भी बढ़ा, पर इनकी शुद्ध आत्मा ने सच्ची ग़रीबी में ही प्रेमी जीवन व्यतीत किया।

सूचना– इस समय के 'आत्मारूढ़' और 'ध्यानसिद्ध' गुरू के सिखों के दर्शन करने के लिए आगामी प्रसंग कुछ बानगी मात्र हैं:–

❑ ❑

१. सोहना जी को महाराज जी के विद्वानों में शमिल किया गया। सोहना जी फिर अमृत पान करने के बाद सोहन सिंह के नाम से पंथ में प्रसिद्ध हुए ओर उपेदश देने की सेवा करते रहे। मोहना जी से स्त्री जाति में, जैसी कि माता जी से सुगंधि मिली थी, परमेश्वर के प्यार और नाम की सुगंधि फैलती रही।

२१ बीबी रंगकँवर

सत्संगिनियां–"हम गुरू के दर्शनों को चली हैं, हे प्यारी रंगकँवर तू भी हमारे साथ चल। अरी! वैसे तो तू बहुत अच्छी है, तेरे सिदक की कियारी खिल उठी है। तेरी संगति से कई सत्संग में लग गये हैं, तूने स्वयं कई बिगड़े हुओं को संवारा है। पर गुरूधाम को तो तू बहुत कम ही गई है, तू योगियों की भांति अलग घर पर ही रही है। अरी! तू हमारे साथ चल, हमारा कहा मान और चलने की तैयारी कर।

तुझ से मिन्नतें करके कहा था कि तू संगति का रंग भंग न करना। अब की बार काफी संगति जाने वाली है, सबको जाने की लालसा है, हे प्यारी! तू भी साथ चल। रास्ते में भी सत्संग का रंग रहेगा, अखंड कथा–कीर्तन जारी रहेंगे।।२।।

इस तरह के वचन सुनकर रंगकँवर कहने लगी, हे गुरू की श्रद्धालु और गुरू की दुलारी! मेरे कर्म बहुत निम्न हैं, मैंने तप नहीं किये हैं, मैं दर्शनों के योग्य भी नहीं हूं, हे प्यारी सुन! जब मेरे भाग्य जागेंगे, तब अपने-आप वह बुला लेगा, हे सिदक़ वाली! अब मुझे क्षमा कर दे।।३।।

सखियां गले में पल्ला डालकर आंसू बहाने लगीं और हाथ जोड़कर कहने लगीं–हे रंगकँवर! जिस प्रकार तूने हममें गुरू से प्रेम जगाया है, बिना दर्शन के ही उनका भँवरा बना दिया है। उसी तरह तुझे भी गुरू का दर्शन करवाकर हम अपने जन्म को सफल समझेंगी। हमने गुरू का वास्ता दिया है, रंगकँवर तू हमारा कहना मत टाल।।४।।

रंगकँवर ने ठण्डी सांस भरकर कहर, "मैं तुम्हारी आज्ञा को टाल नहीं सकती। रात को मैं अपने पति से प्रार्थना करूंगी, जिसके प्यार में रंगी हुई मैं उसकी अर्धांगिनी हूं। उस प्रियतम की खुशी में ही मेरी खुशी है, मैं उनकी खुशी के बिना नहीं जाना चाहती। गुरू क्षमा करें, मुझे दर्शन प्राप्त हों, पापों का नाश हो, मेरी यही मांग है।।५।।

जब पति ने यह सारी बात सुनी तो पत्नी के साथ स्वयं भी जाने को तैयार हो गया। संगत चली और वे दंपत्ति भी चले, जिन्होंने कइयों के हृदय में नाम का

बीज बोया था। ये सदैव स्वाभाविक ही ईश्वरीय ध्यान में रहते थे, इनका हृदय कभी भी ग़ालिफ होकर नहीं सोया था।।६।।

जब ये आनन्दपुर पहुंचे, डेरा डालकर तैयार होकर चले। फिर दीवान में जा पहुंचे, काफी भीड़ थी, संगतों ने रास्ते को घेर रखा था। निष्छल व्यक्तियों के जत्थे के जत्थे आ रहे थे, सभी, खडे हुए थे कोई भी हिल नहीं रहा था। वहां पर चुप्पी थी, शब्द की लहर प्रवाहित थी, सुरति कीर्तन में लगी हुई थी।।७।।

सबके पीछे रंगकँवर खड़ी थी, वह अभी दहलीज़ पर ही खड़ी थी। दर्शनों की लालसा ने उसे वहीं पर दबा रखा था, उसने एक ओर चबूतरे पर एकान्त स्थान देखा। विवश होकर वहां पर बैठ गई, और सुरति को ध्यान में लगा दिया। भीड़ की बाधा आंखों के आगे से हट गई और गुरू जी की विमल ज्योति आँखों में बस गई।।८।।

तेज़ और शान्ति वाला दर्शन साफ दीखता था, और हृदय की स्मृति ने घेरकर संवारा। फिर देखते-देखते स्मृति चारों ओर फैल गई, मानों सारे ब्रह्माण्ड को नाम ने धारण कर रखा है। वह नाम अब आत्मा में जाकर धंस गया, अनाहत रूप का अनूप प्रसार हो गया। उसका साथ पति भी इसी ध्यान में मग्न होकर बैठ गया, जिसके आपे को ज्ञान ने चमका दिया है।।९।।

उधर भोग पड़ा, सत्संग की समाप्ति हुई, संगत दर्शन-परसन करने लगी। बारी-बारी सभी उपस्थित होकर विदा होने लगे। काफी समय लग गया, आखिर अंत आ गया। प्रेमीजन अपने आप ठिकानों पर जाने लगे। अब इनकी संगत की भी बारी आई, इन्होंने उपहार भेंट किये, इनके भाग्य जागे। गुरू जी ने सबकी आशा-मुराद को पूरा किया, फिर आपने पूछा, "तुम्हें प्रभु संवारे!।।१०।।

वह कहां है जिसे बांधकर अपने साथ लाये थे, वह कहां पर रुक गई है तुम्हारे साथ नहीं आई। यह सुनकर सबने पीछे मुड़कर देखा, पर वहां तो रंग कंवर का साया भी न दिखाई पड़ा। सभी चकित हो गये, क्या कोतुक घटित हुआ है? वह माता, द्वार तक तो संगत के साथ थी। वह तो गुरू को पीठ दिखाने वाली नहीं है, फिर वह भागकर कहां लुप्त हो गई?।।११।।

गुरू जी तब हंसकर कहने लगे कि ज़बर्दस्ती करने वाले प्रेमियों के तार को नहीं समझते हैं। जिन्होंने प्रभु को हृदय में बसा लिया है, ध्यान में मस्त रहते हैं, जिनका तार लौ से पार नहीं आया है। उन मिले हुओं को अब और क्यों मिलना है, जिन्होंने अंतस में मिलाप प्राप्त कर लिया है।।१२।।

रंगकँवर पति की सेवा करती थी, और उसी से प्रेम भी करती थी, वह ठीक तरह से प्रतिव्रत धर्म का पालन कर रही थी, सच्चे नाम में रंगे हुए पति की सेवा करती थी और स्वयं नाम की कमाई करती थी। वह भलाई करती थी

और उसे कभी भी प्रभु भूलता नहीं था, वह 'हरि सेवा' को सम्भाल कर सफल हो रही थी। वह तो हरि से मिल रही थी और किसी समय भी नहीं बिछुड़ती थी, वह तो बिछुड़े हुओं को मिलाती फिरती थी।।१३।।

आओ चलें और जाकर उसका दर्शन करें, वह जो कि साईं से मिलकर अभेद हो चुकी है। वह भंवर की भांति कमल में बंधी हुई है, वह लपट में बंध गई है। उसके और साईं के बीच में कोई दूरी नहीं रही, वह इस तरह से डूब रही है कि उसकी आत्मा में से अहं दूर हो गया है। वह डूबकर मर गई है और मरने के पश्चात् तर गई है। वह नये प्राण लेकर जीवित हुई है, अब वह अमर हो गई है।।१४।।

बिरदपालक गुरू जी ने यह कहा और स्वयं तख्त से उठकर बाहर को चल दिये। आप समुद्र बनकर सिख रूपी नदी को आगे लाने के लिए जा रहे हैं, ज़ाहिर, प्रत्यक्ष पीर जगद्गुरू बाबा जी हैं। द्वार से बाहर जाकर चबूतरे के पास आ गये, आप गुरू जी, जो कि जगदाधार हैं।।१५।।

उसके भारी प्रेम को देखकर गुरू जी की सुरति प्रेम के सिंधु में डूब गई। नयन मूंदकर गुरू जी की सुरति सिख के ध्येय के स्थान पर जा पहुंची। आपने वहां पर जाकर उन्हें कहा कि नयन खोलो। सारी संगत प्रेम से लालसा धारण करके खड़ी है। प्रभु ने स्वयं तेरा कल्याण किया है, तूने अकाल प्रभु में निवास पाया है।।१६।।

जब उसके नयन खुले, तब क्या देखती है कि गुरू जी आये हैं, दोनों प्रेम में विह्वल होकर चरणों पर झुककर रोते हैं। शरीर में कुछ भी कहने की शक्ति न रही, अश्रु ही प्रेम के अलिखित चिट्ठों का पता बता रहे हैं। नयन जो प्रार्थनारत हैं गुरू जी उसे समझते हैं, गुरू की दया ओस की भांति चुपचाप पड़ रही है। अंतस से मिले हुओं ने गुरू को आकर्षित किया, प्रभु स्वयं प्रेम से बंध हुए आकर प्रसन्न हुये हैं।।१७।।

तब संगतों ने उस चुपचाप रहने वाली स्त्री के सम्मान को समझा जो कि प्रेम की डोरी डालकर बांधती थी, जो कसकर प्रेम के बाण लगाती थी। सबको उसके रहस्य का पता चल गया और कहने लगे कि हक तो कभी-कभी मिलते हैं, पर यह गुरू की प्रेमी दिन-रात मिल रही है। पति से प्यार करके प्रभु का स्मरण करती है और गुरू में ध्यान लगाकर इसने सारी सृष्टि का उद्धार कर दिया है।।१८।।

❑ ❑

२२ दुखित, आनन्दचित्त, प्रसन्नचित्त[१]

: १ :

दुःखित

विश्व को दुखी देखकर राजकुमार सिद्धार्थ[२] को दुःख हुआ, राज्य का त्याग कर भिक्षुक हो गये। तप किये और आयु 'शुभ करनी' और उपदेश में लगा दी।

जलते हुये जगत को देखकर गुरू नानक देव जी को दुःख हुआ—

"बाबा देखै धिआन धरि, जलती सभ पृथमी दिसि आई॥"

जगत का दुख, जो बुरे कर्मों के कारण था, जिसे सिद्धार्थ ने देखकर उदासी धारण कर ली थी, अब उसी दुख के साथ धर्मवादिता और राज्यवादिता का और दुख बढ़ गया था। प्रजा धर्म से गिर चुकी थी, विद्याहीन थी, सत्संग कुसंग बन गये थे। ज़ालिम पठानों का राज्य था और अत्याचारी मुग़ल पैर जमाने की फिक्र में थे। बाबा को और दुख हुआ और पुत्र, पत्नी का त्याग करके—

"चड़िआ सोधण धरत लुकाई"

'बाबे डिट्ठी पृथवी नवै खंड जिथै तक आही।'

सब ओर घूमकर शब्द की शन्ति फैलाई और गृहस्थ तथा उदासी का मार्ग चलाया।

आह! आज फिर से महाज्योति को कष्टप्रद संसार का दुःख मालूम हुआ। उसी गुरू नानक की दशम ज्योति ने देखा कि अज्ञान और राज्य के कष्ट से बढ़कर अब प्रजा पर 'धर्म का धक्का' एक और क्लेष बनकर टूट पड़ा है। राज्यगर्दी नहीं, पर राज्य की ओर से क्रमिक प्रजा पर ज़ोर और ज़बर्दस्ती से धर्म को पराजित करने के लिए धक्का हो रहा है। इस ज्योति को दुःख कि किसी

---

१. यह प्रसंग १२ पौष सं॰ ४५० गुरू नानक (२६ दिसम्बर, १९१८) के गुरूपर्व सप्तमी पर 'खालसा समाचार' में प्रकाशित था जो इसमें सम्मिलित किया गया है। 'खाल़सा समाचार' का शीर्षक था—"सतपरतावे सम्वत् ४७३ (२५ दिसम्बर, १९४१ ई॰) वाला।

२. भगवान गौतम बुद्ध।

तरह प्रजा का कल्याण हो। एक तो लोग धर्मी बने रहें दूसरे स्वतन्त्र हों, क़ैद, बंदिश, ज़बर्दस्ती, ज़ुल्म के नीचे न दबें, दुःख हुआ कि आज दशम ज्योति आनन्द से भरे हुये आनन्द पुर में से किले पत्नी पुत्र, पदार्थ, सेवक, प्यारे मित्रों को छोड़कर वन में, पहाड़ की कोख में जा बैठे रहे, रात और दिन। हाथी, घोड़े, ऊंट खाली खड़े हैं। महल चौबारे, किले आपके बिना सुनसान हैं, दर्शनों के प्यासे लोग आते हैं और निराश चले जाते हैं। दृष्टिमान जगत का कोई पदार्थ, कोई हर्ष, सुख का सामान, कोई मोह प्यार का आकर्षण खींच नहीं रहा। सारा साज़बाज़ पड़ा हुआ है, पर आप एकान्त में बैठे हुए इस दुःख में है कि "धरा का भार कैसे हरा जाय?"

सारे मण्डल में धूम मच गई कि आप मस्त और बावले हो गये हैं, पर आह! बुद्धिमानों का सिरताज, जलते हुए जगत के कष्टों को दूर करने वाला दुःखी है।

अवतार है, ब्रह्मवेत्ता है, उसे दुःख काहे का जी! काहे का दुःख जो दुखिया सृष्टि की औषधि की खोज कर रहा है, वह दुखिया जगत के दुःखी ध्यान में बस रहा है, यों उसे दुःख है। बैठे-बैठे ग्यारहवें महीने आंख लग गई, फिर आवाज़ आईः-

मैं अपना सुत तोहि निवाजा॥ पंथ प्रचुर करबे कहु साजा॥
जाहि तहां तै धरम चलाइ॥ कुबुध करन ते लोक हटाइ॥२९॥

सोचते हैं-"ठीक यह वरदान सचखंड से चलते समय मिला था, आज्ञा हुई थी पर कैसे करूं? मगर नये उपद्रव ज़बर्दस्त हैं, हे पिता! हे प्यारे पिता!! सहायक हो जिससे प्रज्वलित संसार में शीतलता प्रवाहित हो।"

दुःखी सतगुरू कल्ग़ी वाले पर और निद्रा छा गई, अगम्य में और अगम्यता आई, अंतस् की ज्योति 'जागृत' है पर शरीर और संसार की ओर से अब मानो निद्रा है, इस मग्नता में एक गूंज उठी, एक ध्वनि उठीः-

"खालसा"

तीन बार ध्वनि हुई अब इस ध्वनि की सूक्ष्म लहर, इसका अदृष्ट लहराना आदि कुछ इकट्ठा होने लगा, कुछ रूप बनने लगा, कुछ मूर्ति साकार हुई। हां जी, एक सचमुच का नमूना बन गया, साक्षात् रूप धारण करके एक जीवित, जागृत सुरति खड़ी हो गई, जिसके रूप का वर्णन इस प्रकार है-

"साबत सूरति दसतार सिरा"

आभापूर्ण मुखमण्डल, सुन्दर डील-डौल, एक जैसे अंग और नक्श, सुडौल शरीर, सिर पर केश और प्रभावपूर्ण पगड़ी चमकता हुआ मस्तक चमकते हुये और प्यार भरे नयन, गाल सेब की भांति लाल-गुलाबी किन्तु मिठास से भरपूर,

अधर गुलाबी, पर उन्नाव जैसे मधुर। प्यारी-प्यारी दाढ़ी, चौड़ी बलवान छाती, मांसल, बलवान और लम्बी बाहें, कमर शेर की भांति तनी हुई, टांगे भारी बोझ को सहन करने योग्य और फुर्तीली। दिल में वीरता की चमक पर धक्का और जुल्म नहीं। उत्साह की उछाल मगर गुस्सा नहीं। रौबदाब वाला चेहरा पर, न्याय का तराजू अडोल है। प्यार है, पर मन खचित नहीं। उपकार है, पर व्यग्रता भी है। गृहस्थ है, पर उदासी की लहर भी है। त्याग है, पर हुकुम हासिल है। फ़कीरी है, पर दुःख नहीं है। हाथ में तलवार है, पर है ढाल के रूप वाली। हाथ में कलम भी है, पर न्याय और दया वाली है। गले में अंगरखा है और कमरबंद है, नीचे कच्छा है। बल देकर हीरों की भुजाओं पर बाजूबद बंधा है। पर सीने में नाम की दमक प्रकाशमान है। दिल में कोमलता और रसभरी सुन्दरता का नक्शा है। पर दिमाग़ में विवेक का नक्शा है; जोर है, स्वयं पर बेमुहताजी का विश्वास है। मस्तक पर रेखाएं हैं, जिनमें अगम्य अक्षर लिखे हुए हैं–

"चढ़ती कला"

दुःख ११ महीने, ११ दिन की कष्टप्रद अवस्था में बैठे महामुनि जी पूछते हैं तू कौन है?

मानो सूरत बोली "मैं खालसा हूं।"

आपने ध्यान से देखकर कहा–"तू कहां का बासी है? तुझे किसने जन्म दिया है?" सूरत बोली, "आपके पवित्र हृदय में से मेरा जन्म हुआ है, मैं आपके अंतस् के 'सरमखंड' का बासी हूं "तिथै घाड़ति घड़ीअै बहुत अनूपु।" हां सरमखंड[१] मेरा देश है। दिलगीर जी ने पूछा–क्यों आया है? सूरत बोली–मुझे आप अपने अंदर से बाहर के देश में जन्म दीजिये, ताकि मैं मनुष्य के भीतर घुस जाऊं। एक आदर्श, एक आदर्श रूपी पुरुष आने जैसा व्यक्ति पैदा करूं, इस दृष्टिमान जगत में 'खालसा' पैदा करूं। वह धरा का भार हरे।

यह कहकर अब सूरत दिमाग़ में आकर बैठ गई, ध्वनि के कानों के पर्दे पर डेरा डाल दिया। दिलगीरी में बैठे इच्छा और आवश्यकतार हित गुरू जी ने नयन खोले। प्रत्येक पत्ते और शाखा पर वही 'खालसा' की सूरत दीख रही है। कानों में 'खालसा' 'खालसा' हो रहा है। आहा! ग्यारह महीनों की दिलगीरी ने एक लाल पैदा किया है। अब आप दुःखी नहीं हैं। जगत के लिए भी चढ़ती कला में हैं। लोगों के लिये बावले पर अक्ल के सरदार वनों को विदाई देकर फिर आनन्दपुर में आ गये।

१. सरमखंड की बाणी रूपु। (जपुजी)

: २ :

आनन्दचित्त

वे जो दुखी थे, अब आनन्दचित्त हो गये हैं। आपने जब उस समय की कठिन समस्या को सुलझाने का विचार किया और उसका उपचार 'खालसा आदर्श' का निर्णय कर लिया, तब पहले इस बात की आवश्यकता थी कि कोई चुनाव हो, ताकि खरे-खरे परखे हुए व्यक्तियों को लेकर काम को आरम्भ किया जाये। अत: आपने चुनाव का ढंग धर्म की परीक्षा करने का रखा।

प्रथम परीक्षा–वैष्णव ब्राह्मण

आचरण ही व्यक्ति का सबसे पहला गुण है। राष्ट्र का पतन और उत्थान आचरण पर निर्भर करता है। आचार-भ्रष्ट जितने बल से सफल होते हैं, यदि आचारवान उतनी शक्ति लगायें तो लाभ का कोई अंत ही न हो। आचार ही धर्म की नींव है, आचार ही संसार में सफलता की नींव है। गुरू जी आचरण और धर्म तथा साहस को इकट्ठा करना चाहते थे, अत: आपने पहले धर्म वालों और आचारवानों की परीक्षा लेनी चाही। भारत में शताब्दियों से ब्राह्मण ऊंचे और आदर्श माने गये थे। एक समय था जब वे समयानुसार आदर्श थे और समाज का नेतृत्व करने के योग्य थे, पर अब आदर्श का पतन हो रहा था। गुरू जी ने अब पहल इनसे ही की। अत: आपने आज्ञा दी कि एक ब्रह्म-भोज किया जाय। दो प्रकार का पकवान तैयार किया जाये, एक मांस वाला, दूसरा खीर-खांड, भाजी वाला। अत: जो ब्राह्मण मांस खाने वालों में बैठे, उन्हें एक मुहर दक्षिणा दी जाये और जो शाकाहारियों में बैठे उन्हें एक रुपया दक्षिणा दी जाये। जब पंक्ति बनी तो लगभग सभी ब्राह्मण मांस खाने वाली पंक्ति में जा बैठे और खीर-खांड-भाजी वाली पंक्ति में बहुत कम लोग बैठे। जब भोजन कर चुके तो मांस वाली पंक्ति वालों को तो एक मुहर ही दक्षिणा में मिली, पर खीर, खांड वालों को वचनानुसार एक रुपया दक्षिणा के अतिरिक्त पांच-पांच मुहरें और उपहार में मिलीं। इस कौतुक को देखकर सभी आश्चर्य-चकित रह गये, कोई भी न समझ सका कि इसका क्या कारण है। यह ख्याल आ सकता है कि गुरू जी ने इससे मांस खाने अथवा न खाने वालों का निर्णय किया हो। नहीं। सतगुरू जी यह तो देखना चाहते थे कि इनमें अपने धर्म वाले अथवा उसूल वाले कितने व्यक्ति हैं। ब्राह्मण अपने स्वयं के धर्मानुसार अहिंसा के कायल हैं, उनमें मांस खाना विहित नहीं। अहिंसा परमो धर्म: इस व्यवहार से सतगुरू जी ने देखा कि इनमें से बहुत कम लोग अपने माने हुये सिद्धान्त पर कायम हैं। अत: थोड़े से लोगों, पर धर्म वालों को सम्मान सहित अपने पास रख लिया और दूसरों को जवाब दे दिया। पर एक बात और भी देखी कि इन अपने उसूल वाले ब्राह्मणों में भी साहस नहीं है।

दूसरी परीक्षा शक्ति के उपासकों की

हिन्दू बुज़ुर्गों का दूसरा सम्प्रदाय उन लोगों का था जो देवी के उपासक हैं। देवी को यह मांस आदि का भोग लगवाते हैं। जिसे गुरू जी का देवी-पूजन कहा जाता है। लगता है कि वह दूसरी परीक्षा शाक्त सम्प्रदाय वाले बुज़ुर्गों की थी। अत: नैना देवी के टीले पर मुखिया ब्राह्मण पहले और बाद में सबसे मुखिया अग्निहोत्री[१] केशवदास आदि अपने बताये हुये आदर्श के मुताबिक पूरे न उतरे। देवी के प्रकट होने का दावा किया, पर उस यत्न मे अंत तक पूरे न उतर सके और खिसक गये। उनका इस तरह से खिसक जाना, उनका इस परीक्षा में पूरा न उतरने की साक्षी देता है। गुरू जी ने उसके पश्चात् एक यज्ञ किया, उसमें इन ब्राह्मणों को नहीं बुलाया। इससे पता चलता है कि ये भी पूरे नहीं उतरे थे और सतगुरू जी ने यह प्रतीत करके इनको ध्यान से भुला दिया। उस समय इस केशवदास ब्राह्मण को न बुलाने के कारण प्रतिवाद करने पर जो वाक्य गुरू जी ने कहे थे, उससे पता चलता है कि परीक्षा में ये पूरे नहीं उतरे थे और मिश्र जी उसूल के लिये नहीं बल्कि आजीविका के लिए आडम्बर रचकर बैठे थे-यथा: "खोज रोजि के हेत लग दीओ मिसर जू रोइ।" पा० १० इस समय जो यज्ञ किया गया उसमें अपने सिखों को मुखिया बनाया और कहा, "इन्हीं की कृपा से सजे हमे हैं।"

तीसरी परीक्षा योगियों-संन्यासियों की

लगता है कि इस प्रकार आपने संन्यासी और योगियों आदि की परीक्षा की और उन्हें भी उनके आदर्शों से नीचे गिरा हुआ देखा, क्योंकि सतगुरू जी ने अपनी वाणी में उनका उल्लेख इस प्रकार किया है-

जे जुगिआन के जाय, कहै सभ जोगन को गृहमाल उठैदै॥
जो परो भाज संनयासन के, कहि दत्त के नाम पै धाम लुटैदै॥

चाहे योगियों और संन्यासियों का पूरा प्रसंग कोई लिखित रूप में नहीं मिलता, फिर भी संन्यासियों की चिप्पियों (कमंडल) की लाख में से मुहरें निकलना और योगियों के साथ किये गये विचार और उपरोक्त वाक्य बताते हैं कि गुरू जी ने परीक्षा लेकर उनके आदर्श से गिरे होने के प्रमाण लिये थे। इस तरह से परख करके उच्चारण किये गये वाक्य और भी हैं-

---

१. हवन आदि करने वाला ब्राह्मण।

स्रावगु सुध, समूह, सिधान के देख फिरिओ घर जोग जती के।[1]
पुनः–**पउण अहार जती जत धार, सभै सुबिचार हजारक देखे।**[2]
[दस सवैये]

चौथी परीक्षा राजाओं की

जब कर्म के आगुओं की परीक्षा की गई और वे पूरे न उतरे और इनमें से जो सिद्धांत वाले व्यक्ति निकले वे साहसहीन प्रतीत हुए तब आपने साहस वालों की परीक्षा ली। इसलिए राजा-राणाओं की परख थी। वास्तव में राणाओं की परख तो सबसे अधिक हो चुकी थी। ये आपस में फूटे हुए थे। देश अथवा प्रजा, धर्म अथवा सच के लिए इनमें बलिदान की भावना ही नहीं थी। ये गुरू जी के साथ कई बार युद्ध करके उन्हें पराजित करने के प्रयत्न कर चुके थे, पर जब से शहज़ादा मुअज्जम पंजाब में आया था और गुरू जी के साथ मित्रता का व्यवहार करके गया था, तब से पहाड़ी राजा सुलह-शान्ति का व्यवहार करते थे। इन्हीं दिनों में किसी भेंट के समय गुरू जी ने उन्हें प्रेरणा दी और विचार आरम्भ किया और उन्हें समझाया कि हमें भारतवासियों को जातीय भेद और उससे उत्पन्न होने वाली घृणा ने प्रथक कर दिया है और हम दलित दशा में और पराधीनता में दुख सहन कर रहे हैं, अब मैं चाहता हूं कि यह भेद मिटा दिया जाय। एक ऐसी रीति प्रचलित की जाय कि जो इसके द्वारा जन्म ले, वह जातीय भेद से मुक्त होकर एक क्षत्र्यधर्म में आ जाय, तब कहीं जाकर अपने देश का भार दूर किया जा सकेगा। चाहिये यह कि परस्पर प्रेम बढ़े, सभी भाई-भाई बन जायें और एक दूसरे पर प्राणों को न्योछावर कर दें। पूजा के लिए एक महाकाल अकाल की ही शरण ली जाय, जो कि सबका पूज्य है। फिर धर्म और आचरण की उच्चता को ही मनुष्य की परख समझा जाय। ऐसे व्यक्ति बलिदान कर सकेंगे। तुम इस देश के उद्धार के काम में सहयोग दो, चाहे इस काम के लिए अगुआ बन जाओ। पर राजाओं ने तुर्कों की शक्ति को अजेय समझा और सहयोग देने से इन्कार कर दिया।[3]

पांचवीं परीक्षा अपने धर्म के आगुओं की

अब सतगुरू जी को 'पहले धर्म वालों' की ओर से और 'पहले बल पराक्रम वालों' की ओर से निराशा हो चुकी थी। इनकी ओर से निराश होकर

१. स्रावग=जैन; सुध=वैष्णव; जोग=योगी; जती=संन्यासी; सुविचार=पण्डित।
२. हज़रक देखे=लगभग एक हज़ार की मैंने परीक्षा ली है।
३. सूरज प्रकाश में राजाओं का मिलना अमृत से पहले दिया है, मगर तवारीख खालसा में इसके बाद, मेल दोबारा हुआ लगता है।

आपको जिस काम को पूरा करना था उसके लिए शेष नज़र तो अपने ही घर अवश्य ही पड़नी थी, अत: आपने अपने घर में बने हुए बुज़ुर्गों की ओर दृष्टिपात् किया। गुरू के घर में जो बड़े थे, वे कौन थे? वे मसंद थे। ये लोग चौथे गुरू के समय में नियुक्त किए गये थे, जोकि संगतों में प्रचार करते थे, नाम का दान प्रदान करते थे और संगतों की ओर से मिलने वाली भेंटें आदि गुरू जी के दरबार में पहुंचाया करते थे। गुरू के धाम में आया हुआ सारा धन परोपकार आदि में खर्च होता था। ये लोग पहले पहल नाम और गुरुवाणी के प्रेमी, गुरुमुख और सच्चे सेवक हुआ करते थे। जिस प्रकार पहले सतगुरू मंजी प्रदान किया करते थे, उसी तरह ये संगत में मसन्द लगाकर बैठते थे और प्रचार किया करते थे पर धीरे-धीरे इनमें भी लोभी लोग आकर मिलते गये और छठे सतगुरू जी के बाद सतगुरू जी के दूर जाकर निवास करने के कारण, फिर आठवें गुरू जी के समय और फिर नवें गुरू जी के पटना आदि चले जाने के कारण और फिर गुरू गोबिन्द सिंघ जी की छोटी आयु के कारण ये सर्वेसर्वा हो गये थे। पुराने भले मसंद मर चुके थे और कुछ वृद्ध घर पर ही बैठ गये थे, नये-नये मसंद आचारीहीन हो गये थे। अत: ये नाम और वाणी के पाठ से खाली होते चले गये थे। इनमें लोभ बढ़ चुका था, पूजा का धन और उसे भी चोरी-चोरी छिपाकर हज़्म करते थे। भाई फेरू जैसे कई मसन्द अब भी कुछ थोड़े से अच्छे व्यक्ति इनके बीच में थे। जिस महान काम को गुरू जी आरम्भ करना चाहते थे, उसके लिये आप देख रहे थे कि किसी ओर से सहायता मिलेगी, और किसी ओर से विरोध। विरोध का प्रबन्ध करना और सहायता की आशा करना आदि बातों पर पहले से ही विचार कर लेना प्रत्येक बड़े काम को करने से पहले ज़रूरी हुआ करता है। इधर आपको ये खबरें भी मिल रही थीं कि मसन्द उपद्रव भी करने लगे गये हैं। गुरू के सिखों को पाखंड करके ठगते और दुख देते थे। इनके इस तरह के व्यवहार को बंद करना भी आपका एक प्रयोजन था। पर आपके मार्ग में एक भारी कठिनाई थी, वह यह कि सभी संगतें मसंदों के हाथों में थी। साधारण विचार से भी पता चलता है कि इनके बिगड़ जाने पर आमदनी के द्वार बंद होने का भारी खतरा था। मसंदों को भी अपनी इस शक्ति का ज्ञान था और गुरू जी को अपने महान परोपकार के कामों के लिए धन की भी आवश्यकता थी, पर सच के प्रेमी, बदी और झूठ के साथ कभी भी सच का आदान प्रदान न करने वाले सतगुरू जी ने सब बातों को मुख्य रखकर उस समय कुरबानी करने की जो छलांग लगाई उसका अनुमान हम नहीं लगा सकते। सोचिए, देश गुलामी में है, साधारण प्रजा में साहस नहीं, पातशाह का ज़ोर है, उसकी शक्ति मध्याह्न के सूर्य की भांति प्रबल है, जुल्म हो रहा है, राजा तेजहीन और साहसहीन

हो रहे हैं, धर्म के अगुआ लोभी हो रहे हैं, घर में मसंदों ने संगतों पर ज़ुल्म कर रखा है और इस तरह से उनको अपने वश में कर रखा है कि गुरू और संगतों के बीच में ये एक ओट बनकर खड़े हो गये हैं। कितनी कठिनाई है, पर सच के स्वामी ने सत्य फैलाया एक दिन हुकमनामे भिजवा दिये कि वैसाखी पर दीवान सजेगा, सभी मसंद इकट्ठा किया हुआ धन लेकर आएं और संगतों को साथ लेकर आएं।

वैशाखी से पहले ही संगतें आकर जुड़ गईं। मसन्द भी आकर इकट्ठे हो गये। सतगुरू जी की सेवा में प्रेमियों ने अपनी आय का दसवां भाग भेंट किया। तब सतगुरू जी ने मसंदों को अलग बुलाकर कहा कि 'तुम सभी आये हो, धन लाये हो, पर धन जो इकट्ठा हुआ है, वह बहुत थोड़ा है और यह धन प्रतिवर्ष कम होता जा रहा है! इधर जगत की रक्षा के बड़े-बड़े काम शुरू हो रहे हैं और होंगे। इसका क्या कारण है?' तब उन्होंने कहा कि 'हुजूर! धनी सिख मर गये हैं, गरीब सिख जो कुछ प्रेम-भावना से देते हैं, वह हम लेकर आपको पहुंचा देते हैं।' गुरू जी मुस्कराये और कहने लगे, 'न तो मेरे सिखों में कोई खास महामारी आई है जिससे कि वे मर गये हों और शेष लोग जीवित बच रहे हों और न ही महामारी के कारण केवल धनवान ही मारे गये हैं और ग़रीब बच रहे हैं। धन सिखों के घरों में से आकर रास्ते में अटक गया है, उसे वहां से लेकर खज़ाने में जमा करवा दीजिये।'

मसन्द उदास होकर उठकर अपने में से सबसे बड़े मसन्द 'चेतो' के घर में गये और उसके पास जाकर शिकायत की कि 'न जाने गुरू जी को क्या हो गया है, कठोर ढंग से बातें करने लगे हैं, सीधी बात मुंह पर मार देते हैं, हमको चोर समझते हैं। पहले तो ऐसा व्यवहार नहीं था कि गुरू जी हमें डांट डपट दें। हमारा बनाया हुआ गुरू है, वह अकेला क्या कर सकता है?' तब चेतो ने कहा, 'तुम डरो मत, सब कुछ ठीक हो जायेगा। जब से गुरू जी ने नैना देवी के टीले पर ठाठ जमाया है तब से उनका स्वभाव ही कुछ ऐसा हो गया है।'

अगले दिन चेतो, सांसारिक चालाकी और रहकारी की एक बानगी, चेतो एकान्त में जाकर गुरू जी से मिला और उन्हें समझाने लगा–'हे पातशाह, आप मालिक हैं, हम दास हैं, सभी मसन्द आपके सेवक हैं। पर सेवकों को सेवा करते समय स्वामी की ओर से सम्मान मिलता है, आपको चाहिए कि आप इनको सम्मान दें। आप तो अब यहां पर रहते हैं आप कहां-कहां पर जा सकते हैं। सिख तो प्रभु की दया से दक्षिण में रामेश्वर तक, पूर्व में आसाम चिट्टगांव तक, पश्चिम में बलखबुखारे तक, उत्तर में कश्मीर तिब्बत तक फैले हुए हैं। सभी स्थानों से भेंटों का धन तो मसंदों को ही लाना पड़ता है, इसकी सेवा और क़दर करना योग्य है और ठिकाने की ज़रूरत का पता भी हमें है और ज़रूरत को पूरा

भी हम ही करते हैं। फिर ये सब आपकी आज्ञानुसार चलने वाले हैं, आपके प्रदान किये हुये धन से इनका पालन पोषण होता है और ये प्रत्येक तरह से आपकी सेवा करने को तैयार हैं, इन पर कृपा कीजिये और परीक्षा न लीजिये।' गुरू जी मुस्कराये और कहने लगे 'चेतो! ये कहते हैं कि धनी सिख मर गये हैं क्या धनवानों के लिये कोई विशेष रोग पैदा हुआ है?...हैं? एक तो ये धन की चोरी करते हैं और दूसरा झूठ बोलते हैं, तीसरा संगतों में कई प्रकार के उपद्रव भी करते हैं। मुझे धन का लालच नहीं है, संगतों की भलाई के लिये, प्रजा के कल्याण और संगतों द्वारा प्रसन्नता से दिया हुआ धन यहां पर सफल होता है। संगतों से इस तरह से धन को इकट्ठा करना मेरे लिए लोभ की पूर्ति करना नहीं यह तो मेरा उत्तरदायित्व है जो मैं संगत की भलाई के लिये लेता हूं और इसे सफल करता हूं। ये लोग संगतों को कष्ट देकर उनसे धन लेते हैं। सिखों की यह पीड़ा मेरी पीड़ा है। मेरा निवास सिखों में है। मुझे तो प्रजा की पीड़ा के द्वारों को बन्द करना है, मैं अपने सिखों की पीड़ा को किस तरह सहन कर सकता हूं। यदि ये भले हो जायें तो काम सहल हो जाय, अन्यथा पहले घर को ठीक करना होगा।' तब चेतो ने हाथ जोड़कर कहा, 'मसन्द सभी आपकी आज्ञा में हैं, कहा नहीं जा सकता कि यदि कोई एकाध बुरा हो तो हम उसे मक्खन में से बाल की भांति निकाल देंगे। आप निश्चिन्त रहें और इन पर भरोसा करें और इन पर कृपा करते रहें। लोगों की बातों पर विश्वास न करें। मसन्दों के विरोधी यूँ ही बढ़ा चढ़ाकर बातें कर जाते हैं। जब तक मैं बैठा हूं आप इनकी चिंता न करें।'

गुरू जी–मुझे तो जगत की रक्षा करनी है, मुझे तो स्वयं पीड़ा को सहन करना है, और संसार की पीड़ा का नाश करना है। यदि तुम इस बात पर चलोगे और दूसरे मसंदों को चलाओगे, तो तुम मेरे होओगे, अन्यथा मुझे तो अब बात का फैसला ही करना है।

इस प्रकार बातचीत करते हुए और पक्ष छिड़ गया और गुरू जी और काम में लग गये। समय व्यतीत होता गया। गुरू जी इसका उपचार सोचते रहे। इधर मसन्द बड़ी माता जी के पास अपने पक्ष की बात पहुंचाते रहे। माता जी ने एक-दो बार उनकी सिफ़ारिश भी की पर गुरू जी यही उत्तर देते–'कि यदि ख़रे हैं तो मेरे और यदि खोटे निकलेंगे तो मेरे नहीं होंगे।'

एक दिन सतगुरू जी दीवान सजाकर बैठे थे। कीर्तन हो चुका था, संगतें पेश हो चुकी थीं, आप कुछ वार्तालाप कर रहे थे कि अचानक चुप हो गये और नयन बंद कर लिये। संगत में भी मौन छा गया। संगत वैसे भी सत्कार में रहती थी, पर यदि आप अडोल हो जाते तो संगत में बिल्कुल मौन छा जाता और सभी ध्यान-मग्न हो जाते थे। कुछ समय के पश्चात् आप जी ने रसिक नयन खोले और इधर-उधर देखा। फिर चोबदार को संकेत किया। वह सत्कार

सहित आगे बढ़ा, तब आज्ञा हुई कि 'बाहर जाओ, एक सिख अमुक स्थान पर इधर-उधर एक वक्ष के नीचे बैठा है, उसके नयनों में पानी है, चेहरे पर उदासी है, कभी चुप हो जाता है कभी अपने-आप से बातें करने लगता है, जाकर उसे प्यार से लेकर आ जाओ।' चोबदार शीश झुकाकर चला गया, जब उस स्थान पर पहुंचा, तो ठीक एक सिख उसी तरह बैठा हुआ था। उसके नयन बंद थे और कभी-कभी आंसू बहाता था। चोबदार चुपके से वृक्ष की ओट में जाकर खड़ा हो गया कि उसकी आंख खुले तो आगे बढ़कर आज्ञा सुनाऊं, मग्न बैठे हुये के आनन्द में बाधा न डालूं। एक क्षण के पश्चात् सिख के स्वागत कथन की आवाज़ आने लगी—कहने लगा, 'हे मन! तू सोच, सतगुरू का द्वार सबके लिये खुला है, सतगुरू पुत्रों की भांति सिखों को प्यार करता है, सतगुरू सूझ प्रदान करता है और उसी मार्ग पर चला देता है, जिस पर चलकर सिख का अंतस प्रबुद्ध हो जाता है और उसकी करनी और कथनी एक हो जाती है। यह सतगुरू क्या धन का प्रेमी है अथवा शोभा का लोभी है। यह तो सिखों पर से आपे को न्योछावर करता है और जलती हुई आग को अपने हाथों से बुझाता है और अनेक गुरू घर-घर में बैठे हुये हैं, सब को छोड़कर इसके द्वार पर आकर झुके थे कि यहां पर सच चलता है और सच की देन मिलती है। लेने को यहां पर कोई इच्छा नहीं है, यह तो 'दाता द्वार' है! यदि हम सांसारिक मैल को यहां पर लाकर रख देते हैं, तो वह उसे भले कामों में लगाकर सफल बना देता है। स्वयं तो दाता, 'निराहार, निर्वैर सुखदाता है।[१] यह तो हो ही नहीं सकता कि ऐसे दाता ने अपने द्वार मेरे लिये बंद किया हो…(चुप)…मैं कितनी बार गया, पर चोबदार कहता है तेरे लिये आज्ञा नहीं है। चेतो से कहा था, वह आजकल कह देता है। कहता है—'तेरी भेंट गुरू साहब ने स्वीकार कर ली है और वरदान भी दिये हैं', फिर दर्शन क्यों नहीं होते? यह तो सच का द्वार है, चोबदार झूठ क्यों कहेगा, चोबदार सिख है, सच का प्रेमी है, संगतों का अनुसारी है, चेतो गुरू का निकटवर्ती है। …अतः हे मन! तुझ में कोई खोट है, कोई कमी है, हां तुझ में कोई पाप है, इसीलिये 'सच का प्रेमी गुरू' तुझे मुंह नहीं लगाता। देखा! रास्ते मार्ग पर प्रतीक्षा करता रहा हूं, नींद में भी दर्शन नहीं हुये। अब मैं क्या करूं? निराशा की गोदी में चढ़कर प्राणों को शुष्क करवा लू?…नहीं, नहीं, मैं गुरू का सिख हूं, यदि बुरा हूं तो बुरा ही सही, गुरू को ही मेरी लाज है। मैं गुरू का हूं, महाराज का वाक्य है—'भगतरीणु नानक जे होइगा तां खसमै नाउ न जाई।' गुरू अंतर्यामी है, सिखों के संकल्पों को देख लेता है। हां दूसरे के विचारों को गुरू स्वयं पढ़ लेता है; अतः अरदास कर, हे मन! अरदास भी काफी समय से बैठा हुआ कर रहा हूं,

१. अज़ हरताइत वा अज़हर ख़िदमत बे-निआज़ गंजनामह—अर्थात् गुरू गोबिन्द सिंह किसी सेवा अथवा बंदगी की आवश्यकता नहीं समझता।

गुरू जी ने सुन ली होगी, मैं पापी हूं, इसी लिये तो वह पसीजता नहीं है, मैं पापी…। चुप, हे मन! निराश मत हो। गुरू का घर निराशा नहीं सिखलाता। गुरू बाबा नानक ने उस समय रायबुलार से कहा था, जब आप सुलतानपुर को जाने लगे थे–हे राय! जब तेरी अपनी शक्ति कुछ न बना सके तो दोनों हाथ- जोड़कर कर्तार की शरण में पड़ जाया करना। हे मन! तू शरण में पड़ा रह, लगाए रख ध्यान को, अरदास किये जा, दाता स्वयं करेगा। यह कहकर सिख दोनों हाथों को जोड़कर नमस्कार में लग गया, कुछ समय के पश्चात् उठा ओर इधर-उधर देखा। अब चोबदार ने आगे होकर कहा: 'गुरू के प्रेमी! तुझे गुरू जी ने याद किया है, मेरे साथ चल। सिख! गुरू का द्वार वाहिगुरू का द्वार है, जहां पर सभी सिख प्यारे हैं–'सिखां पुतां भाईआं भा इको जेहा' आ, उदास मत हो! भोले! ऐसा द्वार और कहां पर है जो सिख को दुखदाई 'अहं' से मुक्त करवाकर गुरुमुख बना देता है। अपने आप पर संशय मत कर, तू सच पर चलने वाला है तेरी भूल चूक को गुरू क्षमा करेंगे', चोबदार से हमदर्दी से भरे हुये गुरू के हुकुम के वाक्य सुनकर सिख का मन प्रफुल्लित हो उठा। 'धन्य दाता, धन्य दाता' कह कर उठा, कहने लगा, 'हे गुरू के प्रेमी! तेरा दान गुलाब की भांति है! यह गुरू का घर ही है जहां के चोबदार सहानुभूति वाले हैं, यदि कोई राजसी चोबदार होता तो न जाने किस तरह से बोलता! शाबाश तेरे!

दोनों चल दिये, जब दरवाजे के सामने आये तब पहरे पर खड़े हुये चोबदार ने कहा, इस सिख को अन्दर जाने की मनाही है।

साथ आया चोबदार–मनाही किसने की है?

पहले वाला–मुझ से चेतो ने कहा है कि इसके अंदर जाने की मनाही है, यह आये तो रोक देना।

साथ आया चोबदार–मैं चेतो के स्वामी की आज्ञा से इसको लेने के लिये गया था और लेकर आया हूं।

पहले चोबदार ने सिर झुका दिया और अंदर जाने दिया। गुरू जी के संमक्ष उनकी हुज़ूरी में प्रस्तुत होकर सिख ने दर्शन किये। निहाल हो गया, शीश झुकाया और नयनों को चकोर की भांति गुरू के दर्शन रूपी चन्द्रमा में लगाकर बैठ गया। मन में कहता, है न दाता गुरू, किस तरह इसने मेरी पीड़ा को पहचाना है और किस तरह मेरे संकल्पों को जान लिया है और अपने आप बुलवा लिया है। इतने में कौतुकी सतगुरू जी एक चोज़ी स्वर बनाकर कहने लगे हे सिख! मेरे लिये क्या लाया है?

सिख बोला–तेरा दिया ही खाते-पीते हैं, सिख क्या और देना क्या, तू दाता है और जगत भिखारी है, तेरे दिये हुये में से जो कुछ बन पड़ा है, हाज़िर कर दिया है।

गुरू जी—हाज़िर, कब?

सिख कहने लगा—जी, चेतो मसन्द को दिया था, वह बताता है कि मेरी भेंट सेवा में अर्पण हो चुकी है।

सतगुरू जी ने तोशाखाना से पता मंगवाया, जो खज़ांची ने बताया कि सिख की ओर से भेंट का इतना धन खजाने में जमा हो चुका है। तब सिख ने बताया कि गैंडे का बना हुआ हीरे जड़ित एक चूड़ा था, जिसे कारीगर लेकर आया था, उसे मैं गुरू की हुज़ूरी करने के लिये साथ लाया था, जिसे चेतो को दे दिया था, पर खज़ाने में इसके दाखिल होने का कोई उल्लेख नहीं है।

यह सुनकर गुरू जी मुस्कराये और चेतो को बुलवा भेजा। जब कई प्रकार के विचार करता हुआ चेतो आया और गुरू के हुज़ूर में हाज़िर हुआ, तब चूड़े वाले सिख को वहां पर बैठा देखकर चौंका। कवि जी ने लिखा है—

गुर माया चेतो बिरमाइओ।
लोभ लहर मै गोता खाइओ॥
जिसने बड़े बड़े डहकाये।
क्या बपुरा चेतो ठहराये॥ [सूरज प्रकाश]

चेतो को देखकर सिख ने कहा, 'भाई चेतो! मैं गुरू जी के लिये जो कुछ थोड़ा बहुत लाया था, वह आपको दे दिया था, वह सब कुछ खज़ाने में पहुंच चुका है, मगर चूड़ा नहीं पहुंचा।'

चेतो—अरे झूठ क्यों बोलता है, तूने किसी और को दिया होगा, स्मरण कर ले किसको दिया था? मेरे सिर पर वैसे ही चूड़े का झूठा दोष मत लगा।

सतगुरू—चेतो मुझे चूड़े की जरूरत नहीं है, यदि वह तुझे पसंद है तो तुझे ही मिल जायेगा, सिख की इतनी भावना को तो पूरा कर दे कि एक बार लाकर दिखा दे, फिर तुझे ही दे दिया जायेगा।

यह सुनकर चेतो गुस्से में आ गया, पहले तो उसने सिख को झिड़की दी, "इस गुरू के मारे हुये ने झूठ बोला है।" फिर गुरू जी से कहने लगा, "आप हमें चोर समझते हैं और इस कंगाल को साधु समझते हैं। इस दुष्ट को, इस झूठे को इस बुद्धिभ्रष्ट को अच्छा समझते हैं और हमें बुरा। हम जो सारा धन लाकर आपकी भेंट कर देते हैं, सब कुछ खज़ाने में जमा करवा देते हैं। स्वदेश और परदेश में हमारा मान सम्मान बना हुआ है, आप हमारी क़दर नहीं करते हैं, झूठ और सच की परख नहीं करते, वैसे ही कोसने लगते हैं। सभी कामों को तो हम सुधारते हैं, देखिये। बुलवाइए खज़ांची को जो कुछ इसने मुझे दिया है, मैंने वह सब कुछ खज़ाने में जमा करवा दिया है कि नहीं? चूड़ा या तो इसने दिया ही नहीं, या किसी और को दे बैठा है, कंगाल मेरे सिर मढ़ता है। जब मैंने सारा धन

जमा करवा दिया तो चूड़ा क्या मैंने सिर पर मारना था।" तब सतगुरू जी कहने लगे—"चेतो! देख होश कर, बताऊं तुझे, सच और झूठ का पता लगाने का ढंग मुझे आता है कि नहीं? तुम लोगों का ठीक मूल्यांकन कर सकता हूं कि नहीं, यह करके दिखाऊं? अन्यथा सच कह दे।"

चेतो कहने लगा—आप ज़बर्दस्ती कहते हैं, देवी क्या आई है, हमारे लिये...

तब सतगुरू जी ने पांच शस्त्रधारी सिखों को बुलवाया और आज्ञा दी कि चेतो के घर चले जाओ, ऊपर वाले चौबारे पर चढ़ जाओ, उसमें एक अल्मारी है, उसका ताला तोड़ दो और उसमें एक जड़ित चूड़ा रखा है, उसे निकालकर ले आओ। सिख चले गये, पर चेतो उदास हो गया, अब उसे कुछ सूझता नहीं। बुरे कामों का अंत यही होता है कि वे मनुष्य को कहीं न कहीं पर फंसा ही देते हैं, जहां से फिर निकलना कठिन होता है। थोड़ी देर के पश्चात् सिख आ गये और चूड़ा लाकर गुरू जी को पेश कर दिया। गुरू जी ने सिख को दिखाकर पूछा कि क्या यही चूड़ा है? उसने कहा जी हां, यही है। आपने सिख की ओर तो प्यार भरी दृष्टि डाली, पर चेतो की ओर झिड़की भरी दृष्टि डाली और कहा, 'चेतो, एक चोर एक चतुराई अब बता, मेरा सिख झूठा है कि तू? मेरा सिख दुष्ट है या तू, मेरे सिख की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है या तेरी? मैंने तुम लोगों की क़दर नहीं की तुमने मुझे और मेरे महान काम को नहीं पहचाना, जिसके लिये मैं जन्म धारण करके जगत में आया हूं।[१]

इस प्रकार मसंदों की परीक्षा करने के पश्चात् मसंदों का त्याग कर दिया और सिखों को सीधा अपने साथ चलाने का विचार किया।[२]

छठी परीक्षा—सिखों की

गुरू जी ने जो महान काम करने के लिये विचार किया था उसके लिए परीक्षा कर रहे थे किस ओर से सहायता मिलेगी और किस ओर से विरोध होगा। यह मुखिया मसन्द था इसकी कलई खुल गई। इसके पश्चात् दूसरों को भी देखा। अंत में आपने यह परिणाम निकाला कि इनमें लोभ घर कर चुका है, धन का

---

१. तवारीख खालसा में लिखा है कि जब चेतों को दण्ड देने की आज्ञा हुई, तब उसकी पत्नी ने माता जी के चरण पकड़ लिए। चाहे माता जी ने उसकी पत्नी पर दया करके चेते को गुरू जी से छुड़वा दिया, पर सभी मसंदों को चेतावनी दी गई।

२. मसंदों की परीक्षा ली गई। उनको दिये गये दण्डों के बारे में कई सख़्त हालात, दंतकथायें बन गयीं और लिखे गये, पर सभी से पुरातन ग्रंथ में केवल इस प्रकार लिखा है—

तज मसन्द प्रभु एक जप यह विबेक तहा कीन।
सतगुरु सौं सेवक मिले नीर मध्य ज्यों मीन।। —गुरू शोभा

प्रेम इनकी सिख भावना को खराब कर गया है, ये अब काम के नहीं रहे। चाहे इनमें से कोई एक आध खरा भी है, पर ऐसे लोग बहुत कम हैं। मसंदों की परीक्षा लेकर सतगुरू जी ने उन पर पर्दा नहीं डाला। जिस तरह केशवदास की परीक्षा पर सच्चे वाक्य कहे थे, जिस प्रकार योगियों, संन्यासियों को परखकर वाक्य कहे थे, उसी तरह मसंदों को परखकर ये वाक्य उच्चारण किये: 'जोकर कोऊ मसंदन सों, कहैं, "सरब दरबि लै मोहि अबै दै।" जौकर सेव मसंदन की कहि–"आन प्रसादि सभै मुहि दीजै। जो कुछ माल तवालय सो अबही उठ भेंट हमारी ही कीजै।। मेरी ही ध्यान धरो निस बासर भूलकै और को नाम न लीजै। दीने के नाम सुने भज रातहि लीने बिना नहि नैक प्रसीजै।"

मसंदों की परीक्षा के पश्चात् गुरू जी ने इन पर से सारा विश्वास उठा लिया और पंथ में से इन्हें निकाल देने की ठान ली। यह काम कठिन था क्योंकि सारा प्रबन्ध इनके हाथ में ही था। शेष संगत थी, जिसकी टेक सतगुरू के ऊपर थी। आपको इस बात का पता भी था कि नौ गुरू साहबान के परिश्रम से ही सिखों में नाम का निवास है, वाणी का प्रेम है, सिखों का वाहिगुरू में सत्यता का निवास और भरोसा है, सिखों में सच है, सच का व्यवहार है परस्पर प्रेम है, बलिदान की भावना है, पर आप चाहते थे कि जो ढंग छठे गुरू जी ने सिखाया था कि 'मरा कैसे जाता है', वह ढंग अब केवल अपनी सेना में ही न रहे, बल्कि सारे पंथ में प्रचलित हो जाये पर यहां पर भी आपकी महान आत्मा ने परीक्षा लेनी ज़रूरी समझी। जैसे कि भाई संतोख सिंह जी लिखते हैं:

"पुन सोधन संगति गुर चाहित।
परखनि सिखी बीच उमाहति।।
खोजन करिकै पंथ चलावन।।
अजब खालसा करौं उपावन।।
रिदै मनोरथ को धरि अैसे।
चितवति स्त्री सतिगुरू बिधि तैसे।।"

इस मनोरथ की सिद्धि के लिये आपने परवाने (आज्ञापत्र) जारी करवाये कि वैशाखी पर सभी देशों देशान्तरों से संगतें आयें। तब संवत् १९५६ विक्रमी था।

संगतें आ गईं, एक दिन एक दीवान सज रहा था, बीच में श्री गुरू जी विराजमान थे। जब सारा दीवान भर गया, तब आपने हाथ में पकड़े हुए तीर को तरकश में डाला। तलवार खींच ली और खड़े होकर बोले, "ऐ मेरे कहलाने वालो! आओ, मुझे अपना शीश भेंट दो। मुझे तुम्हारे शीश की ज़रूरत है, आओ अपने आपको मेरी तलवार की भेंट कर दो। मेरी प्यारी संगत जी! है कोई मेरा ऐसा अति प्रेमी जो अपना शीश भेंट में दे सके। हां, कोई ऐसा काम आ रहा है

जिसके लिये शीश की भेंट ज़रूरत है। यह कहकर खींच रखी तलवार पर नज़र टिका ली और संगत में हलचल मच गई। लोग एक-दूसरे के मुंह की ओर देखने लगे, सोचते, विचार करते उमड़ते और फिर सोच में पड़ जाते। जब गुरू जी की ओर देखते तो देखा न जाता, कोई चमकता हुआ प्रज्वलित प्रकाश दिखाई देता। आप फिर दूसरी बार गरज़ कर बोले, "है कोई सिख! जो देह के प्यार का त्याग करके अपने आपका दान दे दे।"

आह! कौन उभरे? लोग कहते हैं-"पहले तो मस्त बावला था और अब शोर करके बावला हो गया है।" हा शोक! हे जगत? हे सुलतान! तू जिसके लिये तलवार खींचकर खड़ा है, वह उसे शोर मचाने वाला बावला कहता है। कह दे, यही तेरा स्वभाव है, पर दाता को तेरा रोग भी तो काटना ही है।

'आनन्दचित्त' जी ने अब फिर से ललकारा और फिर सिर मांगा-"कोई है?"

संगतों में चुप्पी और स्तम्भित अवस्था छा रही थी, अकल काम नहीं करती थी। इन्कार तो किया नहीं जा सकता था, यह सिख धर्म के उसूलों के विरुद्ध था, हां, हो नहीं सकती थी प्राण तो अत्यन्त प्रिय हैं। 'देवी उलटी पड़ गई है', यह विचार सिखों में मसंदों ने फैला रखा था। वे सोचते थे कि सिर लेकर आप क्या करेंगे। मसंद सच्चे हैं जो कहते हैं कि देवी उल्टी हो गई है। फिर सोच आई; गुरू पूरा है, बुद्धिमान है दाता है, प्रेम है, भूल कभी नहीं कर सकता। इस तरह की द्विविधा अंत में स्तंभित कर देती कि इतने में लाहौर का एक खत्री सिख जो गुरू घर की अनुभव वाली विद्या के सिवाय वेदांत और योग मत का ज्ञाता भी था उठा। उसने सोचा कि शरीर को तो रहना ही नहीं है और आत्मा को मरना नहीं है। शरीर जैसी नाशवान वस्तु को ज्ञान तथा भक्ति का दाता गुरू मांग रहा है, ऐसा अवसर फिर कब हाथ आयेगा। जन्म को सफल कर ले, इस मिट्टी की हांडी को दाता के चरणों में दे दे। यों अमर भावना में आकर सिख सिर को न्योछावर करने के लिये आगे बढ़ा।

सिर बिख दी है तूंबड़ी तूं अमृत दी खाण।
रीझें जे सिर लीतियां, लै मेरे सुलतान॥

'दिल ज़ोर (आनन्दचित्त) जी सिर की भेंट देने वाले को बांह से खींचकर तंबू में ले गये, खून से लथपथ तलवार को चमकाते हुए फिर बाहर आये।

सिखों ने खून से लथपथ तलवार को देख लिया और जान गये कि सिख को मार दिया गया है। अब पहली सोचों पर और अधिक भय छा गया। संशयों के बादलों वाले आकाश पर भय की काली घटाएं छा गईं। आप फिर आकर खड़े हो गये, फिर ललकारा। अब स्वर अधिक गर्ज भरा था। तीन बार फिर से उसी तरह शीश की मांग की। आह शीश! खलबली मच गई--बावला हो गया--। गुरू नानक की

गद्दी है। हैं शीश, पर उधर देखिये एक और ग़रीब पर मज़बूत सूरत, गुरू जी की बावला कहने वालों में से उठी, आगे बढ़ी, तलवार के वार के घेरे में जाकर खड़ी हो गई: 'जिस दिन सीस झुकाया उसी दिन सीस भेंट हो गया। दिये हुये को फिर कैसे दें? 'तेरा' हे जगदीश'। 'आननदित्त', जी इसे भी पकड़कर अंदर ले गये, पहले सिख दया राम के पास इस धर्मदास को बिठा दिया और खून से लथपथ तलवार को चमकाते हुये फिर बाहर आ गये और तीसरी बार फिर शीश की मांग की।

संगतों में से अब कुछ मसंद धीरे-धीरे खिसक गये और माता जी के पास जाकर फरियाद की कि माता! देवी उलटी पड़ गई है, गुरू जी बावले हो गये हैं, इनको घर में बंद करके पहरे में रखिये और गुरू की गद्दी पर पोते को बिठाइए, तब गुरू घर का काम चलेगा। माता जी ने सुनकर एक दास को ठीक खबर लाने के लिए भेजा। उधर शहर में शोर मच गया कि गुरू को कुछ हो गया है अपने ही सिखों के सिरों को काटते चले जा रहे हैं। गुरू जी ने तीसरी बार आकर फिर ललकारा 'एक शीश! कोई सिख शीश भेंट करे।' तीन बार कहने के बाद नामा बंसी जाति का मोहकम नामक द्वारिका का निवासी एक सिख उठा और उसने सिर झुकाकर शीश भेंट किया। 'पातशाह! शीश ले लीजिये' और क्षमा कीजिये कि इतनी देर लगाकर तेरा दिया हुआ तुझे अपर्ण करने के लिये लाया हूं।

जो कुछ मेरे पास है यह तेरी प्रदान की हुई अमानत है। अमानत का माल लौटाने से ही महान सुख मिलता है।

इस सिर को न्योछावर करने वाले को भी आप तंबू के अंदर ले गये और फिर लथपथ तलवार को लेकर बाहर आ गये और गर्जकर बोले, "एक और।"

अब और मौन छा गया। पर फिर एक सूरत निकली, नयनों में लाली और लाली में खुशहाली। सूरत[१] आगे आई झुक गई:

झुककर सिर जग आया झुका द्वार द्वार।
यह वडभागी झुक जाये आगे तुझ तलवार॥

दिलज़ोर (आनन्दचित्त) जी इसको भी खींचकर तंबू के भीतर ले गये और लाल अंगार की भांति नेत्र लाल करे फिर आकर बोले, "क्या कोई और भी उभरेगा?"

जब संगत ने चार सिखों का मारा जाना जान लिया तब मुर्दनी छा गई। दूर बैठे हुओं में से कुछ लोग दबे पांव खिसकने लगे। कई स्तम्भित होकर बैठे रहे, कई लज्जा के मारे हुये न उठे, पर बहुत से द्विविधा में सजे रहे। कभी मन कहता है कि गुरू सर्वज्ञ है, भूल रहित है, उठो शीश भेंट करो, अंत में तो किसी रोग के कारण मरना ही है। यह तो तत्काल शस्त्र की मौत है। कभी मन कहता है कि गुरू जी काली

१. साहबराम जाति का नाई, बिदुर शहर का निवासी।

देवी के प्रभाव के अधीन हैं, आपे में नहीं हैं, इस समय बलिदान देने का क्या लाभ? पर फिर भी हिम्मत नामक एक सिख साहस बटोरकर उठ बैठा! यह जगन्नाथपुर का निवासी, जाति का झींवर था, आगे आ गया:–

'धुर से उस नक्काश ने नक्शा किया तैयार।
सिर मेर झुका रहे तेरी हो ऊपर तलवार॥

धरती के ऊपर जो खिंचा है वही धुर का नक्श है। इसमें आश्चर्य की क्या बात है, उसी का अक्स पड़ रहा है।

आप इस सूरत को भी अंदर ले गये।

: ३ :

प्रसन्नचित्त

संगत ने यह समझ लिया कि यह भी गया। अंदर कब क्या घटना घटी। शीश की भेंट मांगने वाले ने पांचों को गले से लगाकर उनमें प्यार किया और ये वाक्य उच्चारण किये, "तुम आपे से मर गये हो अब, 'मम स्वरूप तुम अब भये हउं भा तुमहिं स्वरूप। ब्रह्म ज्ञान दृढ़ हृदय है, पद अति लीन अनूप।' यह वरदान देकर बाहर निकले। हां दुखित हृदय जी! जो आनन्दचित्त होकर अंदर गये थे, अब प्रसन्नचित्त होकर बाहर निकले हैं। खून से लथपथ तलवार अब मिआन में है। पांचों जीते-जागते, सही सलामत तारों के परिवार की भांति गुरू रूपी चांद को अपने में घेरे हुये आ रहे हैं। संगत के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। क्या मर चुके भी जीवित हो जाते हैं? न जाने मार-मारकर गुरू ने अपनी दैवी शक्ति से उन्हें फिर से जीवित कर दिया है? न जाने कोई और कौतुक हो। गुरू की गति को तो गुरू ही जाने। पर मसन्द ग़लत कहते हैं कि देवी उलटी होकर पड़ी है। गुरू तो गुरू ही है, बावला नहीं हुआ है। संगत की इस हैरानी में सतगुरू उच्च गहन गम्भीर स्वर में बोले–श्री गुरू नानक देव जी की परीक्षा में सिखों की आन गुरू अंगद देव जी ने रखी थी, आज की परख में सिखों की आन इन पांच सिखों ने रखी है। इन पांचों के समुदाय को अब मेरे तुल्य समझो, मुझ में और इनमें अब कोई भेद मत समझो। अब सिख संगत ने समझा कि शोक! यह तो कसौटी थी, हम क्यों पूरे न उतरे। फिर शुक्र करने लगे कि हममें से पांच तो निखरे, सिख धर्म की लाज बच गई है। यदि ये भी न निखरते तो न जाने गुरू जी मसंदों की भांति आज सिखों की ओर से भी उदस हो जाते। धन्य हैं ये पांच आपा न्योछावर करने वाले सिख, जिन्होंने सब सिखों की लाज रख ली है। सभी उन पांचों के आगे सत्कार सहित शीश झुकाने लगे। कुछ समय इसी तरह गुरू साहब को और इन पांच प्रेमियों को दर्शन देते हुए व्यतीत हो गया।

अब उस भीड़ में से एक और सिख आगे बढ़ा और झिझकता हुआ चरणों पर गिर पड़ा: "पातशाह! क्षमा करना, हम तीन पीढ़ियों से सिख हैं, जीवन दान मिला है, मैं तो देखते-देखते ही रह गया कि बारी आयेगी, पर मेरी बारी तो आई ही नहीं। अब इस निरार्थक शीश को ले लीजिये। अवसर चूक जाने के बाद ही ले लीजिए। फिर एक और ने आगे बढ़कर कहा, कि मैं कई बार आगे बढ़ा, कई बार रुका, हे दाता! क्षमा करना। मैं पूरा नहीं उतरा, परन्तु तेरी प्रीति का तार तो अंदर है। यदि उस समय सामने न आने के कारण आप दुत्कार देंगे तो भी मैं रो-रोकर मर जाऊंगा, क्योंकि तेरे बिना मेरा और कोई आश्रय नहीं है तीसरा एक और चरणों पर गिर पड़ा और रोकर बोला-पातशाह! पांच शीश तो प्रसन्नता से भेंट हुये, अब मेरे शीश को इस दंड के कारण काट दीजिये कि मैं अपने दाता की मांग पर पहले आगे क्यों नहीं आया, मैंने देह को हुकुम से अधिक प्यार क्यों किया? अब यह शीश ले लीजिये। इस तरह से पांच हो गये। जब सतगुरू ज़ी ने देखा कि अनेक तथा अगणित लोग और हैं जो कि रो रहे हैं और प्यार में पश्चाताप कर रहे है तब:

दर्शन कर रही पर आंधी आ गई जिसके कारण नैन झपक गये, प्रेम को आकर्षित करने लगे। अब आंधी गुज़र गई है, नैन फिर से खुल गये। अब दर्शन दे और यह कृपा कर कि ये नैन फिर न झपकें।

तब कहने लगे-"तुम सब मेरे हो, मैं तुम्हारा हूं, तुम विमुख नहीं हो, विमुख तो भाग गये हैं, कोई दो कोस की दूरी पर चला गया है, कोई चार कोस पर चला गया है, भागे जा रहे हैं, और बार-बार पीछे देखते हैं कि कहीं उन्हें कोई सवार पकड़ने के लिये न आ जाये। तुम सम्मुख हो जो प्यार में उमड़ते भी रहे डरते भी रहे हृदय उछलता भी रहा है, फिर मेरी फिक्र भी करते रहे हो, पर हिले नहीं हो। सम्मुख बैठे रहे हो और गये नहीं और न ही पल्ला छुड़वाया है। तुम अपनी भूल को समझते हो, द्वार पर ही गिर पड़े हो और शीश अर्पण कर रहे हो। हां तुम सम्मुख हो, जिनकी दृष्टि लोगों के विचारानुसार मेरे बावले हो जाने पर भी दूसरी ओर नहीं गई है और मुझ पर ही टिकी रही है। ये जो मेरे साथ हैं, 'पांच प्यारे' ये गुरुमुख हैं, तुम सभी सम्मुख हो। जो तर्क करते रहे हैं, वे मनमुख हैं। जो भाग गये हैं वे विमुख हैं। सिख धन्य हैं, जिनमें से गुरुमुख और सम्मुख निखरे हैं। यह पंथ जीवित है, जिसके प्राण ये पांच प्यारे हैं। मैं प्रसन्नचित हूं कि पांच गुरुमुख और तुम सभी सम्मुख निखरे हो और दूसरे उम्मीदवार हज़ारों खड़े हुये दीख रहे हैं। मुझे तो हे सज्जनो! लोगों के प्राणों की ज़रूरत नहीं है, तुम्हें मारना नहीं अपितु जीवित करना है, तुम में से 'तुमको'

मारकर मैं एक ईश्वरीय मूर्ति को निकाल लाया हूं, उसे तुम में दाखिल करना है, जीवन के प्रेम की ओर से मृत्यु के भय की ओर से[१] मारना है और तुम में कुछ अन्य को जीवित करना है, यों शीशों की मांग की थी।"

कुछ समय तब साहिब गुरू गोबिन्द सिंह जी चांद की भांति चमकते-दमकते हुये खड़े रहे, पांचों के इर्द-गिर्द चमकते हुए सितारों की भांति परिवार बनाये हुए दर्शन देते रहे और फिर गुरू जी तथा पांचों सिख गुरू जी के साथ चले गये और संगत अपने-अपने ठिकाने पर जाकर टिक गई।

अमृत

जहां पर कल सिखों की परख की थी, जहां पर तलवार शीश मांग रही थी, जहां पर मसंद कांप रहे थे और संगत स्तम्भित हुई खड़ी थी, आज वहां पर (केशगढ़ में) सिंहासन लग रहा है। संगत जुड़कर बैठी है चारों ओर शस्त्रबद्ध शूरवीर खड़े हैं, ग्यारह सौ का कड़ाह प्रसाद लट्ठे की चद्दरों से ढका रखा है। सिंहासन पर श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी श्वेत वस्त्रों में विराज रहे हैं। लोहे की चमकदार परांत आगे रखी है, उसमें जल पड़ा है और दोधारू खांडा भी रखा है।

सामने कल वाले पांचों शीश भेंट करने वाले जीवन मुक्त व्यक्ति खड़े हैं। इन्होंने सफेद वस्त्र पहने हुए हैं, नीचे कच्छा पहन रखा है, गले में अंगरखा है, सीधी-सादी सफेद दस्तार बंधी है, कमरबंद सजा हुआ है, कमर में कृपाण लटकाई है और हाथ जोड़कर खड़े हैं। संगत विस्मय की भावना में है, आज डर, भय नहीं रहा, पर आश्चर्य है कि देखें और क्या खिलता है आज। इतने में गुरू साहब ने आवाज़ लगाई और निखरे हुए और तलवार से निखरे हुए पांचों को कहने लगे कि भाई 'वाहिगुरू' गुरू मन्त्र है गुरू बाबा का, एक चित्त होकर 'वाहिगुरू' का जाप करो। पांचों इसी काम में लग गये और गुरू साहब का अपना बलवान और दाता हाथ खांडे पर गया, जो जल में फिरने लगा और आप वाणी का पाठ करने लगे, इस ध्वनि से कि वायु मण्डल में मानो दिल का हिलाकर ऊंचा करने वाली चोट पड़ रही है। परम पवित्र योगीराज माता जीतो जी आ गई। सारी संगत ने सत्कार सहित रास्ता दिया, सभी सिर सत्कार से झुक गये। पवित्रता की देवी पक्के और स्थिर कदमों से आगे बढ़ीं, जिस तरह सुबह की पवित्र और मन्द समीर फूलों की सुगन्धि से लदी हुई सरसों के बाग़ में से

---

१. पांचवां क्लेश अभिनिवेष है। अर्थात् प्राणों के साथ प्यार अथवा मृत्यु का भय। यह 'शीश-भेंट' था, जो गुरू जी ने मांगा था। अभिनिवेष दूर करके निकम्मा नहीं करना था, पर जगत के सुख के लिए शीश भेंट करने वाले जीवन-मुक्त शूरवीर की सर्जना करना था।

गुज़रती है। देवी सिंहासन के बिल्कुल पास आ गई, हंसमुख चेहरे और खिले हुये मस्तक वाली ने मुस्कुराते हुये अधर खोले और कहा, "मेरा हिस्सा भी।" यह कहकर गोद में से आकाश के तारों की भांति सफेद चमकते हुए बताशे उस परांत में डाल दिये, जिसमें कि 'प्रसन्नचित्त जी' खांडा चला रहे थे। "मेरा हिस्सा 'प्यार', शान्ति और वीरता में 'प्यार', मेरा 'प्यार', आपका 'प्यार', सच्चे वाहिगुरू का 'प्यार' जी प्यार वीरता शान्ति।"

यह देखकर सतगुरू जी के नयन-कोटर उठे, कृपा-दृष्टि से देखा। "तेरा हिस्सा पहले पड़ा करेगा।"

देवी-माता, सच्ची माता, प्यार और पवित्रता की अवतार माता, माता जीतो जी, यह हिस्सा डालकर पास बैठ गईं और सभी दूलों की ओर कृपादृष्टि डाली।

अब वीर रस और शान्ति रस को इकट्ठा करके पंथ में प्रवेश करने लगे हैं। वाणी का पाठ करके आप खड़े हो गये। 'कल वाले तलवार की धार के आगे मरने के लिये आपा न्योछावर करने वालों' के सम्मुख खड़े होकर एक-एक से पांच बार मूल मन्त्र का पाठ करवाया। पहले वह, जो कुछ परांत में तैयार हुआ था, मृतकों को अमर करने वाला 'अमृत', सतगुरू जी ने परांत में से लिया, आंखों में पांच बार छींटे मारे और गरज कर उनसे नया बोल जो आज पहली बार सतगुरू जी के मुख से रूपधारी हुआ-'वाहिगुरू जी का खालसा वाहिगुरू जी की फ़तेह' बुलवाया। पांच बार अमृत की अंजुलियां पिलाईं, फिर नेत्रों पर पांच बार छींटे मारे पांच बार अमृत की अंजुलियां केशों में दशमद्वार के स्थान पर डालकर, इसी अमृत की अंजुलि दे देकर प्रत्येक बार यही जैकार बुलवायी[१] इस तरह से पांचों को अमृत पान करवाया, फिर आज्ञा दी, तुमने अकाल पुरुष वाहिगुरू का अमृत पान किया है, उसके नाम की देन तुम्हें प्रदान की गई है, नाम स्मरण ही वाहिगुरू का स्मरण है। वाहिगुरू के स्वरूप को तुमने मूलमन्त्र में सुना है, उसे समझा भी है। इस रूप वाला नामी वाहिगुरू है, जिस पर सदैव तुम्हारा विश्वास कायम रहना चाहिये। तुम्हें उस वाहिगुरू का खालसा बना दिया है, तुम अब खालसा हो, तुम वाहिगुरू के हो, फतेह तो सदैव वाहिगुरू की है। उस वाहिगुरू की स्तुति, गुण, कीर्ति, बड़ाई को विचारकर उसके साथ मिले रहो। 'अमृत वेला सचु नाऊ वडिआई वीचारु।।" यह बात तो वाणी से ही होगी। अतः वाणी का पाठ नित्य नियमानुसार करना है, गुरुवाणी की ओर से अचेत नहीं

१. अमृत की विधि और मर्यादा के सारे विस्तार के लिए, गुरुमत प्रकाश पुस्तक का संस्कार भाग पृष्ठ २९-३० देखिये। यह पुस्तक चीफ़ खालसा दीवान, अमृतसर से प्राप्त की जा सकती है।

होना। वाणी पढ़ना, सुनना, वाणी का विचार करना उस पर अमल करना, इस प्रकार के नित्य के कर्म नहीं चूकना। नाम और वाणी की टेक धारणा करके मर्यादा धारण करो। फिर दाता ने मर्यादा पालन करने का उपदेश दिया। फिर ताकीद की कि केशधारी रहना है। इसी से उस स्थान का नाम केशगढ़ पड़ गया, जहां पर कि दाता ने केशधारी पंथ की रचना की। फिर मसंदों, धुन्नों, धीरमल के अनुयाइयों आदि के साथ लेन-देन और बोल-चाल की मनाही कर दी और आपसी प्रेम का उपदेश दिया। आज से अपने आपको आनन्दपुर का निवासी, पिता का नाम गुरू गोबिन्द सिंह और सिंह नाम रखने की आज्ञा की। एक सिंह दूसरे सिंह का भाई। फिर पंथ की सेवा में आपे को न्योछावर करने का उपदेश दिया—तुम पांचों ही एक पंथ के हो गये हो, तुम पांचों के समूह में मैंने अपनी ज्योति रखी है!

"कर अरदास रहत की भले।। पंचामृत अचि पाँचउ मिले।
जात पात को भेद न कोई।। चार बरन अचवहिं एक होई।।
मति ऊची राखउ मन नीवां।। सिमरहु वाहिगुरू सुख सीवां।।
गोर मढ़ी अर पंथ अनेका। आन न मानहि राख विवेका।।"

कवि संतोख सिंह जी खालसा के जन्म के संबंध में लिखते हैं—

वाहिगुरू जी का भयो खालसा सु नीका अति
वाहिगुरू जी की मिल फते सु बुलाई है।
पीर पातशाह करामाती जे अपर पंथ,
हिन्दू कि तुरक हूं की कान कौ मिटाई है।
तीसरा मजब जब देखि के अजब महां,
बैरी के गजब परयो छीनै ठकुराई है।
धरम सथापबे को पालन के खापबे को।
गृरू जापबे कौ नई रीति यौं चलाई है।"

सातवीं परीक्षा—गुरू

खालसा की रचना हो चुकी थी। यह था आदर्श जो सतगुरू जी ने अपने आदेशीय दिमाग़ में से, वह सुरति जो सदैव वाहिगुरू में चुभी रहती थी, उसमें से निकाला और उसे मूर्तिमान कर दिया। परीक्षाएं हो चुकी थीं; अब एक परीक्षा बाकी थी, वह गुरू जी की अपनी परीक्षा थी गुरू स्वयं संपूर्ण था, संपूर्ण है, और संपूर्ण रहेगा। हमारी परिभाषा में गुरू उस्ताद मात्र का नाम नहीं है, पर वाहिगुरू ज्योति, जो पूर्ण पुरुषों, दस गुरुओं में टिकी रही, उसका नाम गुरू है। "भुलण अंदरि सभु को अभुल गुरू करतारु;" अभूल की परख कौन करे, पूरे की परख करने का बल किस में है और इसकी ज़रूरत ही क्या। पर कौतुकी दाता गुरू नानक देव की ओर देख रहा है। जब सिखों की परख की गई, तब श्री पावन

लहणा जी पूरे उतरे, तब गुरू नानक ने अपनी परख की अपने ही अलग तरीक से और जैसे कि हमें दीख पड़ा जब 'सिख लहणा' जी को अपनी ज्योति देकर गुरू बना लिया। पूरे उतरने वाले को गुरू गद्दी दे देना, यह था, हमारी दृष्टि से पूरे गुरू का पूरा उतरना। आज पूरा उतरने वालों को दशम गुरू जी ने अमृत छकाकर अपने तुल्य बना लिया। बराबरी प्रदान करना गुरू का अपनी परीक्षा स्वयं लेकर पूरा उतरना है। पर यहां पर ही बस नहीं है। उधर देखिए सिंहासन से छलांग लगाकर नीचे आकर खड़े हो गये हैं और पांचों से कहते हैं, तुम पांचों ही मेरा रूप हो, अब मेरी तरह अमृत तैयार करके मुझे छकाओ गुरू ने सिखों की परख की, सिख पूरे उतरे, तब गुरू को पूरा उतरता देखिए कि सिखों में, सिखों को बराबरी देने में संकोच नहीं किया, यहां तक कि अब पूरे सिख समाज के सामने दाता स्वयं खड़ा हो गया है। सारा आपा सिखों पर से न्योछावर कर रहा है। है न 'पूरे का कीआ सभ किछु पूरा घटि वधि किछु नाहीं।"

यह वाक्य सुनकर संगत में फिर हैरानी छा गई, संभ्रम होते हैं और देखते हैं कि हैं! गुरू सिखों के आगे आकर खड़ा हो गया, कहता है–मुझे अमृत छकाओ! सिख गुरू बन गये, गुरू सिख बन गया। यों हैरान होते हुये फिर संशय की लहर उठी कि गुरू जी को क्या हो गया है? पर आज का संशय पंखों वाला है उड़ता हुआ आता है और उड़ता हुआ चला जाता है और विचार उठता है कि हमारी समझ के परे का कोई कौतुक है, कल की भांति हम भूल न करें और न ही डरें। इधर पांच प्यारे हैरान होकर बैठे हैं, स्तब्ध हो रहे हैं कि सेवक होकर अपने साहब को हम अमृत छकायें? पांचों की भक्ति भावना और अटूट प्रेम इस बात को अपने प्यारे की बेअदबी ख्याल करती है। देखिये कवि जी ने कैसे इस दृश्य का चित्र प्रस्तुत किया है–

अद्‌भुत बानी सुनि कान में हरानी होइ सिंघन बखानी
'कहां कहो आप बैन को?
जाति के कमीन, दीन रंक हैं, अधीन, हीन, काम
क्रोध, पीन, मन छीन है न चैन को?
विषयी मलीन जीव सभि ते सदीव नीव जंतु,
सु गरीब हम, भलो गुन है न को।
एक बल भयो तुम हाथ दयो सीस धर,
नयो रंग थियो मयो कियो सुख अैन को'।

देखिए इसके उत्तर में श्री दशमेश पिता जी क्या कहते हैं–

'जोती रूप एकाकार सभि के आधार नित आप।'
निराधार जांको जानत असेस हैं।
भगति अधीन काल छीन महीआन

महां ताको सुत जानो मोहि सभि ते विशेष है।
सिक्खन अधीन तिम मोकउ चीन लेहुचित,
पंथ के रचन को हुकम जगतेश है।

अर्थात् जिस प्रकार परमेश्वर निराधार और स्वयं आधार है, पर वह कहता है कि मैं भक्तों के अधीन हूँ¹, वैसे ही मैं उस परमेश्वर का पुत्र सिखों के अधीन हूं।

पांचों ने अब विचार किया कि चाहे हमारा गुरू को अमृत छकाना बेअदबी है, हमारे सत्कार और हमारी भक्ति-भावना की दृष्टि से, पर गुरू की आज्ञा को शिरोधार्य करना भी तो हमारा कर्म है। हम शीश की भेंट कर चुके हैं, हम मर चुके हैं, अब जो कुछ है, वह गुरू का है, इन शरीरों के साथ, जोकि हमारे नहीं हैं, गुरू जो चाहे सो करे, ये तो उसके हैं। इसलिये अब जो कुछ करना है, काठ की पुतली को खिलाने वाले के हाथ में कौतुक मात्र है। यों अपने पूर्ण प्रेम, पूर्ण आपा न्योछावर करने की भावना और भक्ति की अवधि के आशय से उठे और पूर्ण को पूर्ण करने के लिये पूर्ण की आज्ञा का पालन किया। नदियां सागर को कम अथवा अधिक नहीं कर सकतीं। वह पूर्ण है, पर नदियां उसमें जाकर गिरती हैं। वैसे ही सिख रूपी नदियों ने गुरू में उसकी आज्ञानुसार आपा न्योछावर करने की भांति आज्ञा मानकर गुरू को अमृत छकाया-

'तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ।
नाम तेरा तुही चवर ढोलारे।'

किसी प्रेमी ने प्रेम के उल्लास में जैजैकार की। 'वाह वाह गोबिन्द सिंह आपे गुरू चेला'?

यह वाक्य आज तक शताब्दियां व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी खालसे की स्मृति में हैं।

गुरू जी का यह कौतुक आपकी बुजुर्गी और आपा न्योछावर करने वाला बलिदान है जो कि उन्होंने अपने सारे जीवन में अपने पंथ के लिये, दुखी प्रजा के लिये और सृष्टि मात्र के लिये दिया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम गुस्तखा होकर बराबरी और बेअदबी की भावना में आकर गुरू की बराबरी का घमण्ड करें। गुरू जी अमृत छककर फिर तख़्त पर जाकर विराजमान हो गये और खालसा सदैव अदब में रहा। गुरू सच्चा पिता बना रहा, आज तक भी गुरू को सच्चा पिता और सच्चा पातशाह कहा जाता है। खालसा सदैव गुरू के आगे शीश झुकाता रहा और विश्वास और श्रद्धा में रहता रहा है और हमको भी इसी तरह रहना है।

जब दाता स्वयं अमृत छककर सिंहासन पर जा बैठा तब संगत में आपका एक ऐलान पढ़कर सुनाया गया। ऐलान सुनकर कुछ तो डर गये, कुछ अपने हठ

१. वाहिगुरू जी का वाक्य-"मैं गुन बंध सगल की जीवनि मेरी जीवनि मेरे दास।"

में दृढ़ रहे, पर बहुत से निखर आये और खालसा बनने के लिये तैयार हो गये!

बहुर पंच सिंह खरे करि अंमृत दियो छकाए।
संज्ञा मुकते जिन कहे भये सिंह हरखाइ॥

चौपाई– देवासिंह रामसिंह धीर। टहलसिंह ईशर सिंह बीर।
फतेहसिंह पंचहुं इह भये। मुकते नाम गुरू कहि दये॥
अपर अनेक खरे पुन होइ॥ अंमिृति खंडे का ले सोइ[1]।
अपनी वासी नाम बतावैं। गुरू ते सीखहिं रहित दृढ़ावैं॥
बहुर इकादश ह्वै सिख खरे। अंमृत लीन बीर रस भरे।
बख़श सिंह बखशीश सिंह पुनः। सिंघ कलाल जाति रहित सुनि॥
भैरोवाल ग्राम के सोइ॥ रहे हजूर सदा ई दोइ।
सुर सिंह का सिधू सिख भयो। नाम दयाल सिंह कह दयो॥
खत्री सिख गुलाब सिंह जानो। गोतम रिखि जी कीन बखानो।
बेग सिंह अंबरीक सिंह दुइ। जंबर मघयान्ने बासी सुइ॥
भंडारा सिंह सिंह, हजारा। दरबारा सिंह तृतीय उचारा।
सीरंद के वासी सिख बनीएं। अंमृत लीनि रहित सभ मनीए॥
भयो खरो घन सिंह सुनामू। बरन सिंह फाजल तिह ग्रामू।
आलम सिंह नचना गुरू कहैं। स्यालकोट की वासी अैहं॥
जात हुती रजपूत तिसो की। सीख रहित ले पाहुल नीकी।
पुरि मुलतान अलीपुरि नेरे। माईदास रजपूत बसेरे॥
तिसके मनी राम सुत होयो। आइ तहां गुरूदरशन जीयो।
पंच पुत ले अपने साथ। शरनी परियो रहयो गुरू नाथ॥
सो पंचहु भ्राता करि खरे। सिंह नाम तिन के गुरूधरे।
बड़ी बचित्र सिंह भट भयो। उदैसिंह दूसर बिदतयो॥
अनक सिंह अरु अजब सिंह पुन। पंचम भयो अजाइब सिंह गुनि।
अमृति खंड को तिन दीना। मनहूं पंच पांडव बल पीना॥
रण महिं करे करम जिन भीखन। रिपु मारे जिन शस्त्रेन तीखन।
इन ते आदिक भये हज़ारे[2]। अमृति लेत रहित को धारे॥

---

१. जिन १०५ व्यक्तियों ने बाद में अमृत छका उन्हें 'दीदारी' और उनके बाद वालों को गुरू जी ने 'अपर अपारी' के नाम से पुकारा।
२. इस दिन को औरंगज़ेब के पत्रकार ने जो ख़बर औरंगज़ेब को भेजी उसमें उसने लिखा था कि बीस हजार व्यक्तियों ने उस दिन को गुरू जी की आज्ञा को मानकर अमृत छका। इसके लिए गुरू प्रताप सूरज ग्रंथ का पृष्ठ ४९९८ देखिये।

आदर्श खालसा

अब खालसा पूर्ण रूप से सज गया। कल्गी वाले पातशाह ने खालसा का आदर्श स्वयं इस प्रकार लिखा है:

जागत जोति जपै निस बासुर एक बिना मन नैक न आनै।।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै ब्रत गोर मड़ी मट भुल न मानै।।
तीरथ दान दइआ तप संजम एक बिना नहिं एक पछानै।।
पूरन जोत जगै घट महिं तब खालसा ताहि न खालस जानै।। [३३ सवैये]

जब खालसा मूर्तिमान हो गया तब कवि सेनापति जी आनन्दपुर में थे। आपने खालसा के प्रकट हो जाने के विषय में आंखों देखे समाचार इस प्रकार लिखे हैं:–

निरमल कर संसार जगत मैं बचन सुनाए।
कीओ खालसा प्रगट सुनति दुरजन डरपाए।
सुनि जन करत बिचार चार अचरज सुनि भाई।
गुपत बात भई प्रगटि अंत गुरदेव बताई।

पुनः–

खालसा खास कहावै सोई। जांके हिरदे भरम न होई।
भरम भेख ते रहै निआरा। सो खालसा सतगुरू हमारा।
गुरू हमारा अपर अपारा शबद बिचारा अजर जरं।
हिरदै धर धयानी उचरे बानी पद निरबानी अपर परं।[१]

इस खालसा को सतगुरू जी ने खांडे का अमृत देकर मूर्तिमान किया। इस पर श्री सेनापति जी अपनी आंखों देखी साक्षी देते हैं:–

खांडे की पाहुल दई करनहार प्रभु सोइ।।
कीओ दसो दिस खालसा तां बिन अवर न कोइ।। [गुः सः]

यह खालसा खांडे का अमृत छककर तेजवान और बलवान हो गया।

---

१. खालसा वेषाखी वाले दिन सजाया गया था। सेनापति जी ने लिखा है:–

चेत मास बीतत सकल भयो अपार।
बैसाखी के दिवस में सतिगुरू कियो विचार।।११८।।
गोबिन्द सिंह गुर की खुशी संगत करी निहाल।।
कियो प्रगट तब खालसा चुकियो सकल जंजाल।।१२०।।
तब समूह संगत मिली सुभ सतद्रव के तीर।
केतिक सुन भये खालिसा केतिक भये अधीर।।१२१।।
तजि मसद, प्रभु एक जप, येह विवेक तहि कीन।
सतिगुर सौं सेवक मिले नीर मध्य ज्यों मीन।।१२२।।

सेनापति जी लिखते हैं:–

'दे खांडे की पाहुल तेज बढ़ाया
जोरावर कर सिंह हुकम वरताया।'

सेनापति जी बताते हैं कि खालसे को मूर्तिमान करके गुरू जी ने मर्यादा इस प्रकार बताई:–

कीए जद बचन सतिगुरू कारन करन,
सरब संगत आदि अंत मेरा खालसा।
मानेगा हुकम सो तो होवेगा सिख सही,
न मानेगा हुकम सो तो रोवेगा बिहालसा।
पांच की कुसंगत तजि संगत सों प्रीत करे,
दया और धरम धार त्यागै सभ लालसा।
हुका नहीं पीवे, सीस दाढ़ी न मुंडावै,
सो तो वाहिगुरू गुरू जी का खालसा।'

पुन:– **'जांकै हिरदै भरम न होई।**
भरम भेख ते रहे निआरा।
सो खालसा सतिगुरू हमारा।'

फिर आप बातते हैं कि खालसा के आदर्श में परमेश्वर जी का भजन एक मुख्य उसूल साहिब श्री गुरू जी ने दृढ़ किया था:–

"जिन जिन उपजति नाम धुनि तिन जन निरमल रीति।
भजि गोबिन्द भये खालसा जिन अंतरि परतीति।।"

पुन:– **जहि दूतन को त्रास परत जत जालसा।**
साचा नाम पुनीत ओट भई ढालसा।
बिनसे सगल कलेश गयो जंजाल सा।
चूकिओ आवन जान मिटी सभ लालसा।
खालस जप गोबिन्द भयो है खालसा।

खालसे की कमाई, जो सतगुरू जी ने बताई है, उसे सेनापति जी ने इस प्रकार लिखा है:–

वचन कियो करनहार, संतन कियो बिचार,
सुपनो संसार जान काह लपटाइऐ।
बिखियन सौं तज स्नेह, सतगुरू की सिख लेहि,
बिनसै छिन मांहि देहि जमपुरि न जाइऐ।
सीस न मुंडाव मीत, हुक्का तजि भली रीति,

मन में करि प्रेम प्रीत, संगत में जाइऐ।
जीवन दिन चार समझ देख, बुझि,
मन विचार, वाहिगुरू जी का खालसा कमाइऐ। [गुरू शोभा]

आज खालसा के अर्थ केवल एक सिख अथवा समूह पंथ में लिये जाते हैं, पर खालसा एक असीम अर्थों वाला आदर्श है। ऊंचे और स्वच्छ गुरुमुख सिख का जो वाहिगुरू के साथ हुजूरी में निवास करता है और पवित्रता, धर्म, नेकी, परोपकार और आचरण की मूर्ति है। प्रत्येक अमृतधारी सिख जो मर्यादा पर चलने वाला, भजन करने वाला और आचरण वाला है, वह खालसा है। पर खालसा पंथ भी है। सारे पंथ को भी खालसा कहते हैं। खालसा गुरू है, देखिए आज गुरू अमृत को धारण करके खालसा बन गया है। 'गुरू सिख' समुच्चय पंथ है, यह समुच्चय खालसा है। खालसा आदर्श व्यक्ति है, जिसका काम है प्रत्येक को खालसा बनाना। खालसा एक स्फुरण मंत्र है, एक जीवित शक्ति है, जिसमें आपा न्योछावर करने वाला बलिदान की ज्वाला से भरा हुआ पर्वत प्रत्येक समय चमकता रहता है। खालसे के चित्त में प्रत्येक खालसा के लिये सबसे अधिक प्यार, बलिदान की भावना, बलिदान हो जाने का चाव और आपा न्योछावर कर देने का अमिट उन्माद भरा रहता है। खालसा कह देने से प्रत्येक खालसा में एक प्यार का कंपन होता है, उसके अन्दर प्रत्येक उस व्यक्ति के लिये जो कि खालसा कहलाता है। जब चुनौती मिलती थी कि खालसा के लिए यह कुछ करना है, तब ज्योति के ऊपर परवानों की भीड़ लग जाती थी और ज्योति के लिए इतने बलिदानों को शीघ्रता से स्वीकार करने के लिए मुश्किल बन जाती थी। समय अथवा देशों की दूरी के कारण खालसे में कोई दूरी नहीं होती थी। जितना कुछ खालसे के अर्थ में कहा जाये उससे उसके बारे में इतना कुछ पता नहीं चल सकता, जितना कि उसके अमल से, करनी से, रहन-सहन से और प्रत्यक्ष नमूने में खालसा हो चुका है और आज भी दमक मारने से नहीं टलता, पता चलता है। 'वाहिगुरू प्रेम' अर्थात् नाम में लौ, हृदय की पवित्रता, उच्च आचरण, निर्भयता, चढ़ती कला, कौम के भाइयों के लिए प्यार, बलिदान, बलिदान हो जाने का चाव उल्लास, सुख देने की प्रसन्नता, फिर सेवा करने की खुशी, फिर सेवा करके सफल हो चुके खालसा का भाव, यह सारा अर्थ तीन अक्षरों वाले शब्द 'खालसा' में, अमल में, और व्यवहार में शमिल है। जहां पर खालसा है, वहां पर इतना कुछ कह चुकने के बाद भी खालसा का अर्थ बाकी है। यह एक फ़कीरी रहस्य था कि जो ग़रीबी में व्यक्तिगत और राष्ट्रीय दशा में, अपने आपको पवित्रता, बलिदान और प्यार में चमकती हुई, अभी और भी है और होगा, के अदृष्ट जगत में लौ लगवाये रखती थी। एक खालसा को भोजन

करवाकर मन इस तरह से उछलता था कि कल्ग़ी वाले और अकाल पुरुष ने भोजन किया है और भोजन करवाने वाला कृत कृत्य हुआ है। धन, धाम, पुत्र, सर्वस्व प्रत्येक समय खालसा का ही समझा जाता था। अंतस में नाम का निवास और उसके आश्रय चढ़ती कला का प्रभाव, पाप और बदी के सामने न झुकना, फ़तेह का निश्चय, अपने आप पर भरोसा, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक आकार पर भारी होना, ये खालसे के उस समय स्वाभाविक ही भाव थे और अब भी हैं।

खालसा कहने से इतिहास, हठ, तप, जप, कर्म, शहीदी बलिदान, विजय की घटनायें आंखों के सामने आ जाती हैं और प्राण फूंककर जीवित कर जाती हैं। खालसा वाहिगुरू का है और फतेह भी वाहिगुरू की है, अतः फतेह खालसा की है।

❑ ❑

२३ श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी महाराज का पहाड़ी राजाओं को उपदेश

अब खालसा पूर्ण रूप से तैयार खालसा, सजा संवरा सशस्त्र खालसा, सच्चे पातशाह के विचार मण्डल में से, उनके भीतर की सुन्दरता के मण्डल में से, ऊंचे-ऊंचे पारलौकिक स्वप्न देशों में से रूप रंग धारण करता हुआ 'प्रत्यक्ष होकर' धरती पर आकर खड़ा हो गया ओर आनन्दपुर की भूमि पर मनुष्य के शरीर में चलता-फिरता दिखाई देने लगा। औरंगज़ेब के पास भी खबर पहुंच गई और देश में भी यह बात फैल गई कि श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी ने खालसा प्रकट किया है। पहाड़ी राजाओं को सबसे पहले खबर मिली थी, अब उनमें फिर से चर्चा चली। सारे राजा बिलासपुर में इकट्‌ठे हुए कि यह जो सतगुरू जी ने हमारे राज्य में रहकर गड़बड़ शुरू कर दी है इसका अंत क्या होगा? कई बार लड़ाई की, कई बार युद्ध हुए, मगर हमारा कुछ भी न बना और अब तो उन्होंने धर्म-कर्म के सिर में भी राख डाल दी है और साथ-साथ युद्ध जंग का और सामान बना लिया है, हमारा भला किस बात में है?

इस समय के विचार वैसे ही थे जैसे किसी फूट पड़ी हुई क़ौम में होते हैं। कइयों ने बीच में यह भी कहा कि यदि हम राजा लोग रह जायें तो यह बात तो गुरू जी की मानने योग्य है कि तुर्कों ने अति अत्याचार कर रखे हैं और हमारे जीवित रहने का कोई कर्म नहीं है। यदि कोई प्रयत्न हो सके तो ये नष्ट हो जायें, तब कहीं सुख होगा। पर ये बहुत ज़बर्दस्त हैं, इनकी आपस में एकता है, इनके आगे कौन टिक सकता है? विभिन्न विचारों के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि आनन्दपुर में आप जाकर देखें तो सही कि गुरू क्या कहता है और क्या करता है। अतः उसके आपसी विचार के परिणामस्वरूप आनन्दपुर जाने की बात तय हुई। पांच-सात राणा चुने गये और बिलासपुर वाला उनका प्रतिनिधि बना। इनके जाने का कारण एक तो भारी आश्चर्य था, जो उन्हें गुरू जी के कारनामों को सुन-सुनकर हो रहा था, दूसरे अपने बचाव का खतरा था और तुर्कों के साथ दिली शत्रुता के कारण उनकी तबाही के सामान को देखने का दबी घुटी चाल भी थी और आवश्यकता पड़ने पर तुर्क नरेश के लिए यह दिखावा भी सोच रखा था कि हम भेद लेने के लिए गये थे।

वे आनन्दपुर पहुंचे। गुरू जी की ओर से सम्मान सहित रहने का प्रबन्ध करवाया गया। राजाओं ने खालसा को देखा, शक्ल-सूरत देखी, प्रकाशमान आभा को असह्य पाया। लक्षण बताते हैं कि ये लोग धरती का बोझ दूर कर सकते हैं, मातृभूमि के कष्टों को दूर कर सकते हैं, पर इनके शक्ति पा जाने पर तुर्कों के साथ ही अपनी तबाही का भय भी होता, फिर साहस भर जाता और कभी-कभी खुशी भी होती। इस प्रकार की उधेड़बुन में मुलाकात का समय आ गया और एक बढ़िया, सजे हुए शामियाने के नीचे राजाओं ने आकर गुरू जी के दर्शन किये। शीश झुकाया, कुशल-क्षेम पूछी और बधाई दी। नीति के ढंग से वार्तालाप करते हुए इस तरह के प्रश्न करने लगे। इनका सार यह था कि खालसा तुर्कों की समाप्ति किस तरह से करेगा? और धर्म के अवतार होकर, शांति के दाता गुरू नानक की गुरूगद्दी के अधिकारी होकर तलवार से मारना किस तरह उचित समझेंगे।

उत्तर-खालसा किसी की समाप्ति नहीं करेगा, पर अशुद्धता को शुद्ध करेगा। तुर्कों में पाप का निवास है। पहले गुरू जी ने उनके पाप को धोने और हिन्दुओं में प्राण भरने पर बल लगाया था। तुर्कों ने पातशाह की हैसियत में गुरू जी द्वारा प्रदान किये गये नवजीवन को लेकर परिवर्तन नहीं किया, इसलिए ज़रूरी हो गया है कि जिन लोगों ने गुरू के घर से जीवन प्राप्त किया है, उन्हें ही संगठित कर लिया जाये। ये लोग प्रभु के द्वार पर स्वीकार होने के लिए जीवन मुक्त बनाये गये थे, पर अब समय आ गया है कि या तो यह भूमि बरबाद हो जाय या इस जीवन मुक्त हो चुके व्यक्तियों के हाथों ही इसकी रक्षा करवाई जाय। यह रक्षा करना तुम राजाओं का धर्म था, पर अब इन फ़कीरों के सिर पर देश-रक्षा का बोझ आ पड़ा है, क्योंकि तुम एक प्राण होकर उठते ही नहीं। एक तिहाई धरती से अधिक जब भी हिन्दू राजाओं की है, पर राजाओं पर भी मुर्दनी छा रही है। आपस में एका नहीं है, ज्ञान के बिना प्रजा अंधी होकर मर रही है। प्रजा में न तो प्राण हैं और न ही शक्ति है। न राजाओं में संगठन है और न साहस और न बलिदान न परोपकार। इसलिए अब फ़कीरों ने तलवार उठा ली है।

अजमेर चन्द[१]-धर्म में दया होनी चाहिए और युद्ध में निर्दयता, फ़कीरी और तलवार, कैसे निभेंगी।

गुरू जी-इसलिए खालसा आकाश से उतरकर आया है। आत्मा के मण्डल से तलवार की काट के मार्ग से इसका जन्म हुआ है। 'आत्मा और तलवार' अमृत

---

१. १७४५ विक्रमी में बिलासपुर का राजा भीमचन्द मर चुका था और उसका पुत्र अजमेर चन्द गद्दी पर बैठा था। (तवारीख खालसा)

में मिलकर, लोहा और मिसरी घुल मिलकर एक होकर 'नये व्यक्ति' ईश्वरीय प्राणी की काया का निर्माण करने वाले बने हैं। ये व्यक्ति जो 'आत्मा और तलवार' के इकट्ठे ही पिघल जाने से बना है, वह अब धरा का भार दूर करेगा।

अजमेर चन्द–क्या खालसा एक नया धर्म है?

गुरू जी–यह द्वेष वाला धर्म नहीं है, भेदभाव भरा रास्ता नहीं है, यह कोई नसल नहीं है, कोई कुल नहीं है, कोई जाति नहीं है, कोई गोत्र नहीं है, आदेश में से संकलित करके, चयन करके, एकत्रित करके स्वप्न देश में से आया हुआ 'आदर्श' है, जो उस इन्सान का है, जो जीवित है। यह गुरू नानक शान्ति के पुंज द्वारा पैदा किये गये फ़कीर इन्सानों के संगठन का एक समुच्चय आकार है। यह शान्ति के पुजारी जीवित इन्सानों का–एक एक का और फिर संगठित हुआ एक रूप है, जो शान्ति में निवास करता है, पर शान्ति के शत्रुओं को, आवश्यकता पड़ने पर तलवार से भी शान्ति से रहने के लिए विवश करेगा और अतंस में से प्रभु के द्वार पर उपस्थित भी रहेगा। जिसके 'चित्त में हरि का निवास होगा और जिसकी जिह्वा पर पाप के साथ युद्ध करने की बात का निवास होगा[१]।' स्वयं यह निर्भयता में विचरकर बतायेगा और भय से भर रहे लोगों को निर्भय बनाकर बतायेगा। भय देने वालों को भय देकर भय देने से असमर्थ करके बतायेगा, ताकि जगत निर्भयपद पर पहुंचे। यह खड़गधारी होकर अन्याय को डांटेगा, धर्म को अभय करेगा।

अजमेर–गुरू जी! आप बड़े ऊंचे पद पर हैं, ज्ञान, फ़कीरी, जैसे भी चाहें, पूरा करें, आप गुरू नानक के हैं, पर हे भगवन्! एक एक तुर्क एक एक दुंबे को खा जाता है। ये हम शाकपात खाने वाले उनके साथ कैसे लड़ेंगे, चिड़ियां बाज़ को कैसे मारेंगी?

गुरू जी–चिड़ियां बाज़ों को मारेंगी, शाकपात वृक्षों को खा जायेंगे, दुंबे शेरों का भोजन करेंगे।

अजमेर–सत्य है, पर हमें तो दीखता नहीं, कैसे होगा?

गुरू जी–तुम खालसा को 'एक व्यक्तित्व' देख रहे हो, यह ठीक है। पर इन व्यक्तियों का एक समुदाय भी है। तुमने खालसा के समुदाय को बाज़ारों में, जंगलों में देखा होगा, पर खालसा कुछ और भी है। यह समुदाय एक संगठन है, पक्का संगठन है, एक तरीके और ढंग वाला। यह संगठन तुर्कों के संगठन के मुकाबले का नहीं है कि आपे को बचाये और दूसरों के घर बार, भूमि, प्रदेशों को छीनकर जुल्म करने के मनोरथ पर आपस में संगठित हो। यह संगठन एक

१. मुख ते हरि चित मैं युद्ध विचारे [पातशाही १०]
मुंह से युद्ध और चित्त में हरि का विचार करेगा।

दूसरे को सगा भाई मानकर बना है, इस संगठन के सदस्य मौत के लिए पहले से ही तैयार हैं, इन्होंने पहले शीश भेंट कर दिये हैं, प्राण अर्पण कर दिये हैं, तन की पीड़ा को ब्रह्मज्ञानी के तुल्य जीत लिया है। अपने जीवन की किसी वस्तु से इनका प्यार नहीं है। राजन्! जिन्होंने जीवन दे दिया फिर उनका किसके साथ मोह शेष रह जाता है? ये वास्तक में संन्यासी हैं। तुम पूछोगे कि संन्यासियों का संगठन क्यों बना है? इसलिये कि पापी लोग धर्म को नष्ट कर रहे हैं, प्रजा को दुख दे रहे हैं, सृष्टि भार के नीचे दबकर बिलबिला रही है, इनका संगठन हो रहा है इसलिए कि ये सभी दुखों को दूर करें और राजयोगी बनकर सृष्टि को राज्य करके बतायें, इस तरह का राज्य जिस तरह के राज्य को प्रजा के सुख के लिए आवश्यकता होती है। यह संगठन उनका है, जिनके पूर्वज दो सौ वर्षों से नाम जपते चले आ रहे हैं और जप रहे हैं। इनकी आत्माएं परमात्मा की लगन में सजग हो रही हैं। ये आध्यात्मिक पद पर पहुंचकर जीवित हो उठे लोग हैं जो आपस में संगठित होकर संगठित हो गये हैं, खालसा के ऊंचे आदर्श में, जहां पर प्रसन्नता और उभार इनके पास अपना है और इनका अंतस आध्यात्मिक है। ये धन, दौलत से उत्पन्न हुई प्रसन्नता के लोभी नहीं हैं। ये अंतस से अंतस के सुख के अनुभव वाले लोग संगठित हुए हैं–मौत का व्रत लेकर! ये एक-एक खालसा हैं, इनका संगठन (असिपान ईश्वर) और असि (तलवार), आत्मा और तलवार से हुआ है। यह संगठन खालसा है, मैं भी खालसा हूं, प्रत्येक सिख खालसा है, खालसा गुरू है! फिर खालसा प्रत्येक सिख के मस्तिष्क में एक उच्च आदर्श है, सब कुछ उस खालसा का है। एक खालसा अपने सर्वस्व समस्त खालसे का ही समझता है। ये मुझमें आकर इकट्ठे हुये हैं, ये आपस में मेरे पुत्र बनकर इकट्ठे हुये हैं। इनका संगठन नहीं बना है, ये तो आपस में भाई बने हैं, एक परिवार के सदस्य बने हैं। इनका लंगर (रसोई) एक है, इनका धर्म, इनका इष्ट एक है, इनका आशय एक है। इनका लिबास एक है, इनकी सूरत भी एक नमूने की बना दी गई है। इनका नाम एक है, सिंह। यह एक शरीर बना है, जिसके ये सभी अंग हैं। ये केवल संगठित ही नही हुए हैं, ये एक अंग हो गये हैं। इनका संगठन 'एक अंगों' का है। इनका एक अंग दूसरे अंग से कभी पृथक नहीं है, एक सिख दूसरे सिख से कभी पृथक नहीं है। हे राजन्! यह संक्षिप्त में उस इन्सान का आदर्श है, जिसके बिना धरती का भार दूर नहीं किया जा सकता। यह उस ऊंचे आदर्श का प्रत्यक्ष स्वरूप खालसा राज्य बन रहा है, इसके क्रियान्वित होने से दुखी प्रजा का कल्याण होगा।

हमने एक बार आपके पिता को और आपको पहले भी कहा था कि इस देश का भार दूर कीजिये। यह भी कहा था कि देश मर रहा है, आदेश से धरती

के भार को हरने वाला एक नया आदर्श उतरेगा तब कहीं जाकर भार दूर होगा और तुम उसके साथ तद्रूप होने के लिए तैयार हो जाओ। मर चुकी कौमें नये आत्मीय आदर्श के बिना जीवित नहीं हो सकती। आज फिर से न्योता देते हैं कि तुम सामने आओ और खालसा बनकर बागडोर को सम्भालो, तुम्हारा पीढ़ियों तक नेतृत्व बना रहेगा।

अजमेर चन्द–(चिढ़कर) महाराज! हमारा हिन्दू धर्म है; शिखा, सूत्र, धोती तुमने उड़ा दी है; वर्ण, जाति, भेद खत्म कर दिये हैं, एक लंगर बनाकर चौका दूर कर दिया है, निम्न और अछूत लोगों को साथ मिला लिया है, हमारे लिये इसे मानना कठिन है। फिर आप योगी हैं, योग की शक्ति से तुर्कों को मार सकते हैं, हम कमज़ोर राजा हैं, तुर्क शक्ति के सामने नहीं ठहर सकते।

गुरू जी–हे राजा! अपनी राजपूतों वाली वास्तविकता का विचार कीजिये। याद करो, कभी तुम्हें अग्नि कुंड से भार दूर करने के लिये उत्पन्न किया गया था, तब भी तो तुम जाति वर्ण को एक करके राजपूत बने थे और प्रजा तथा धर्म की रक्षा की थी। आज तुम्हारे कुटुम्ब, कबीले, बहु, बेटी, धन–धाम को तुर्क छीनते फिरते हैं। देश में स्वाभिमान नही रहा, स्वसत्कार नहीं रहा। कई राजा तो अपनी बेटियों तक को अत्याचारियों को दे देते हैं, धर्म कहां पर है? शिखा, सूत्र कहां पर है? वर्ण, जाति की उच्चता कहां पर है? खाने पीने की स्वच्छता कहां पर है? विश्वनाथ जैसे मन्दिरों को गिराकर मस्जिदें बना दी गई हैं, तलवार के बल से हिन्दू तुर्क बनाये जा रहे हैं। कश्मीर के लोग कश्मीर से भाग रहे हैं, जो कोई वहां पर रह गये हैं, वे मुसलमान बनकर गुलामी कर रहे हैं। गंधार, सिंधु सागर, चज्ज, लगभग सभी बदल चुके हैं। घर–घर में, गांव–गांव में नमाज़ और रोज़े चल पड़े हैं, व्रत और धर्म भंग किये जा रहे हैं। जिस समय काज़ी फतवा देते हैं कि अमुक राजा की बेटी का विवाह अमुक नवाब से कर दिया जाय, तब राजा जी डोली लेकर स्वयं वहां पर पहुंच जाते हैं, वहां पर धर्म किधर को चला जाता है? धर्म तो एक ओर रहा स्वसत्कार भी नहीं रहा है। निज का आदर स्वाभिमान की भावना, सब कुछ तबाह हो चुका है। स्वतन्त्रता तो रही ही नहीं है। राज्य तो ठेकेदारी बन गये हैं, तीर्थों पर कर और जज़िये लग गये हैं, धर्म कहां पर है? राजा! यह भारतवासियों का जीवन है अथवा निर्जीवन है? अथवा यह 'हाय जीवन' है?

हे राजन्! मैंने जो खालसा रचा है, धर्म का स्वरूप रचा है, साबित सूरत दी है, जो कि सनातन हुआ करती थी। यह सूरत आध्यात्मिक शक्ति को सुरक्षित रखती है। इस सूरत में रोब है, शान है, शत्रु के लिये भय है, आन है, बान है। जिस कौम का शरीर तगड़ा ओर शानदार नहीं है, वह जीवित नहीं रह सकती।

राजा–हमें इसी तरह की जाति-पाति में रहने दीजिये और हममें फिर से प्राण भर दीजिये।

गुरू जी–जिस कौम में गुलामी के कारण मुर्दापन आ गया, जिसको जाति अभिमान ने तोड़-फोड़ दिया, वह किसी अग्निकुंड में से अथवा अमृत के कुण्ड में से पुनर्जन्म धारण किये बिना जीवित नहीं हो सकती। उससे तो बल्कि भय सा रहता है कि कहीं जीवित लोगों को अपना स्पर्श लगाकर मार ही न दे।

राजा–उच्च जाति के लिए बड़ा कठिन है और अमृत को लेना निम्न जाति वालों के लिये आसान है।

गुरू जी–जाति भेद ने ही देश को टुकड़े-टुकड़े कर दिया है। राजन्! पहले वर्णाश्रम थे, वही जाति अभिमान बन गया। अब तो हजारों जातियों ने तुम्हारे संगठन को तबाह कर दिया है। इसीलिये तुर्क तुम्हारी कमज़ोरी पर पल रहे हैं। राजा! वह देश और वे लोग कैसे स्वतन्त्र हो सकते हैं जो अपने भाइयों में नीचता और उच्चता के अंतर के कारण बंटे हुये हैं? तुम सैकड़ों राजा, देशों, माल, रुपयों, शस्त्रों, हाथियों, घोड़ों और सेनाओं वाले हो, फिर निर्बल ओर गुलामी की भांति निर्बल हो रहे हो। आपस में मिल जाओ, बलिदान की गोद में एक दूसरे से चिपक जाओ फिर देखो कि गुलामी दूर होती है अथवा नहीं। जाति के अभिमान का त्याग कर दो, आपस में मिलकर बैठो, फिर मिलकर बैठने के प्रताप को देखो। सुन लो राजा जी! सच्चा वचन, यदि तुम राजपूतों, खत्रियों, ब्राह्मणों को अमृत के हवन कुण्ड में पड़कर नया जन्म लेकर एक नहीं बनना, तब फिर दूसरी जातियां अवश्य ही नया जन्म लेंगी, वे उठेंगी और जाति-अभिमान को नीचे करेंगी। समय आयेगा जब तुम जाति के भेद और छुआछूत को स्वयं बुरा मानोगे और निम्न जाति वालों के साथ लेन-देन करोगे, पर शताब्दियां गुलामी में व्यतीत हो जायेंगी। हां, आज ही समझने का और देश की रक्षा कर लेने का समय है।

राजा–आप ठीक कहते हैं, पर बिना सोच के धर्म का त्याग करना कठिन है।

गुरू जी–हमें दीख रहा है कि तुमको सोचना है और बार-बार सोचना है और इसी सोच में समय गुज़र जायेगा। हमने तुम्हें अवसर दे दिया है। प्रभु की अटल आज्ञा आ गई है। तुर्क जो कि इस समय मालिक फालिक और सर्वोसर्वा बन रहे हैं, जिनके सामने महाराणा थरथर कांपते हैं इनके चक्रवर्ती राज्य का निशान तक नहीं रहेगा।

राजा (दांत पीसकर)–अस्तंबोल से लेकर ब्रह्मपुत्र तक जिनका एक विशाल समुद्र ठाठें मार रहा है; क्या इनका राज्य भारत में नहीं रहेगा?

गुरू जी—नहीं रहेगा, और इसे कौन उड़ायेंगे! वे जिन्हें तुम नीच कहते हो, वे जो कि तुम्हारे सामने शुद्र हैं।

राजा—शायद औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् समय आ जाय। बात को उस कल पर छोड़ दीजिये।

गुरू जी—कल तो नाम काल का है। उठने का समय तो अभी है। इस निम्न संगठन के अंग बन जाइए और नेतृत्व अपने हाथ में ले लीजिये। सृष्टि बच जायेगी और तुम सदैव वीरता में जीवित रहोगे; अन्यथा मौत तो एक दिन अवश्य ही आयेगी, यदि सुख भोगकर मर गये, तब भी मर गये, और यदि बलिदान करके यश प्राप्त करके मारे गये तो भी अंत को मरनी ही है, अंतर को देख लीजिये।

अज़मेर चन्द—पातशाह! आपका कथन ज़ोरदार है। हम इस पर विचार करने के लिये समय चाहते हैं। बाईस धारा के सभी राजा इकट्ठे होकर और सोच-विचार करके फैसला करेंगे, फिर आपके पास विनती कर भेजेंगे। आज तो हंडूर, गुलेर, जसवाल, काठगढ़ आदि पांच सात राजा ही इक़ट्ठे हुये हैं।

यों राजा टालने वाला उत्तर देकर गुरू जी से विदा हुए। सभी राजाओं को यह संदेश मिला, पर वे उसी दलदल में फंसे रहे जिनमें अत्याचारी तुर्कों ने उनके सम्मान का हनन करके शताब्दियों से डाल रखा था। उन्हें बताया गया था कि जो कुछ गुरू जी ने कहा है, वह हमारी भलाई के लिये है पर आपाधापी ने और जाति के अभिमान और स्वार्थपरता ने उन्हें उठने न दिया। गुलामी के दलदल में भारतीय प्रजा ओर राजा-राणा फंस रहे थे, अंत में उसमें से वे न निकल सके और न ही निकल सके।

सच्चे पातशाह ने राजाओं के चले जाने के बाद अपनी संगत को समझाया—

"तुम्हारी आत्मा भजन और स्मरण करके शुद्ध हुई है, तुम खालसा हो। तुमने मौत का व्रत धारण किया है, तुम मरकर जीवित हुये हो। तुम्हारे शुद्ध मनों को मैंने गोदी में लेकर, पुत्र बनाकर एक किया है। तुम एक परिवार खालसा हो। तुम्हारे हाथ में तलवार देकर तुम्हें एकांगी बनाया है, तुम सरदार खालसा हो। तुमको तलवार के साथ बुरा नहीं करना है, गुलामी और बुराई जो अब शक्ति सम्पन्न है, उसकी जड़ को काटना है।

"हे ख़ालसा! प्रजा मरी पड़ी है, राजा फंसे पड़े हैं, तुम जो जाग रहे हो, यदि तुम भी न उठे तो सृष्टि मरकर खत्म हो जायेगी, धर्म नहीं रहेगा; स्वतन्त्रता लौटकर नहीं आयेगी, प्रजा के कष्ट दूर नहीं होंगे। यदि तुम जागे हो और अब यदि सिंह नाद से गरज पड़े तो दुष्टों की सारी सभा भाग जायेगी, मुर्दे जीवित हो उठेंगे। समय आयेगा जब तुम्हारे कारनामों को जगत देखेगा और सराहेगा।"

❑ ❑

२४ नोहग्राम की शुद्धि[१]

सतगुरू श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी संवत १७५६ विक्रमी में खालसा का सृजन कर चुके थे। शान्त रसी सिख पंथ साथ-साथ में अब वीर रसी भी बन चुका था। वीर रसी लोगों को नीति की ज़रूरत पड़ती है। नीति वाले झूठ, असत्य, पाप और आचरण से गिरकर बातें करने से भी संकोच नहीं करते हैं। उनका विचार ऐसा बन जाता है कि अपनी बात को पूरा करना है, अपने सारे हठ को पूरा करना है, सफलता प्राप्त करनी है, वह चाहे किसी तरह भी क्यों न प्राप्त हो। कर्म, चरित्र, अकल, धन सब कुछ न्योछावर कर देता है। यह था जगत का व्यवहार, पर श्री कल्ग़ीधर महाराज ने वीर रसी सामान तैयार करवाकर यह बात न सिखाई। उन्होंने जगत को एक नया अनुभव करके दिखाया कि नेकी, कर्म, नाम की टेक रखकर फिर वीर रसी कार्यों को करना है। आपने ही क्या, दसों ही गुरूओं ने कभी भी बदी के साथ आंट सांट करके तबादला नहीं किया। आनन्दपुर के अंतिम युद्ध में आक्रमणकारियों ने झूठ और दुष्चरित्रता से काम लिया था पर गुरू जी सच पर टिके रहे थे। विजय आक्रमणकारियों को मिली, पर झूठ कपट और दुष्टचारित्रता से गुरू जी अपने वायदे पर जमे रहे और सच पर टिके रहे। सारी बरबादी को झेल लिया, जगत की दृष्टि से चाहे वह गुरू जी की हार थी, पर गुरू जी ने उसे 'विजय' कहा है। औरंगजेब को जो आपने पत्र लिखा था उसका नाम आप ने 'ज़फरनामा' रखा था। सांसारिक दृष्टि से उसका नाम 'शिकस्तनामा' होना चाहिये था, पर गुरू जी चारित्रक दृष्टि से विजयी थे। औरंगज़ेब और उसके कर्मचारी चारित्रिक दृष्टि से पराजित हो गये थे, उनकी पराजय थी। उस समय तो इस बात का पता नहीं चलता था कि भारत के शाहंशाह की पराजय कैसे हुई है, पर उसकी पराजय का आरम्भ हो चुका था और उसके मरते ही कटी हुई पंतग की भांति उसकी सल्तनत रसातल को चली गई। इसलिये गुरू साहब जी ने अपनी चिट्ठी का नाम ज़फरनामा रखा और

१. सम्वत् २०३९ (२५ दिसम्बर, १९४१) को गुरू पर्व पौष सुदी सप्तमी पर लिखे गये प्रसंगों में से एक यह भी था।

औरंगज़ेब को लिखा था कि शाहंशाह यह पत्र तेरी पराजय और हमारी विजय का है। गुरू धर्म, नेकी, चरित्र को मुख्य रखते थे, नीति और वीर रसी जीवन में भी इसी तरह का व्यवहार करना सिखा रहे थे। उन्होंने अपनी कथनी में और अपने व्यवहार में दीन और दुनिया को इकट्ठा करके दिखाया था। आप के समय और आपके बाद भी सिख इसी तरह करके दिखाते रहे हैं।

अतः गुरू जी ने अपने खालसा विशुद्ध शुभाचरण के सांचे में ढाला था। अमृत छकाकर खालसा सजाया गया तो सारे पंथ की काया पलट गई। वे जो सहनशील और अत्याचारों के सहने वाले थे, अब दयाशील और अत्याचारियों को खत्म करने वाले बन गये थे। पहले तो इस काम पर इनेगिने और थोड़े से व्यक्ति हुआ करते थे, पर अब तो आम सिखों को अमृत छककर शस्त्रधारी होने की आज्ञा मिल गई थी। इसका फल यह हुआ कि प्रत्येक सिख खड़गधारी हो गया और बन्दूक के निशाने लगाने का अभ्यासी हो गया था। कवि संतोख सिंह जी लिखते हैं–

सुपने मात्र न आयुध जानहि।
सुनत लराई जे डर मानहि
सो अमृत छक होवत जोधे
पिख अनीति शत्रुन पर क्रोधे।
शस्त्रन को बिसाह नहि करैं।
रात दिवस अंगन संग धरैं।

पहले तो रास्ते में जब कभी संगतों को कोई दुख देता तो उसे सहनकर जाते थे, अब आगे से मुकाबला करते हैं और अपने पर अनीति होने पर उसे रोकते हैं, यदि मरने की ज़रूरत हो तो मरते भी हैं, डरते नहीं हैं। आनन्दपुर के रास्ते में 'नोह' नामक एक ग्राम था। यह रंघड़ों का ग्राम था। जब एक बार संगत वहां से गुज़री तो रंघड़ों ने इसको यह सोचकर लूट लेने की सलाह की कि इनके पास काफी धन लगता है, जिसे ये गुरू के पास लिये जा रहे हैं। अतः सबने आकर घेरा डाल लिया। इस संगत में जो सिख शस्त्रधारी थे उन्होंने मुकाबला किया। सिखों की संख्या बहुत कम थी, वे लड़े तो सही मगर लुटेरों पर उनका बस न चल सका। संगत की रंघड़ों ने बिल्कुल लूट लिया। खाली संगत अत्यन्त दुखी होकर और कई सिख घायल होकर आनन्दपुर पहुंचे। इनकी दर्दनाक व्यथा को सुनकर गुरू जी ने खालसा को चुनौती दी कि देखो यह अन्याय हुआ है, इसका दण्ड दिया जाना चाहिये। खालसा दल नये रंगों और ऊंचे ढंगों तथा चढ़ती कला में था, झटपट तैयारी हो गई। 'नोह' गांव पर चढ़ाई हो गई, पर चुपचाप। इस गांव के निवासियों और लुटेरे रंघड़ों तथा गूजरों को इस बात की आशा कदाचित नहीं थी कि उनके किये का फल उन्हें इतनी जल्दी मिलेगा। वे खालसा को इतना

शक्तिशाली नहीं समझते थे अतः वे अचेत रहे। अब रणजीत नगारा बज रहा है, पीछे-पीछे खालसा जा रहा है, पर लगता यों है कि दल शिकार को जा रहा है, क्योंकि गिनती कोई ज़्यादा नहीं थी। जब 'नोह' पहुंचे तब लुटेरों ने देखा कि नया सजा खालसा आया है, पर वे बेपरवाह होकर खड़े देखते रहे। जब सिख गांव की ओर झपट पड़े, तब उन्होंने समझा कि यह दल तो उन पर चढ़कर आया है, सिर पर दल को चढ़ आया देखकर तलवारें, बन्दूकें लेकर जल्दी-जल्दी सामने आकर मुकाबला करने लगे। बिना पूछे ही कि किधर को और क्यों आये हो, खालसा की ओर से बिना गोलीबारी के रंघड़ों की ओर से गोलीबारी होने लगी। तब सिखों ने समझा कि फैसला करने की इनकी इच्छा नहीं है, युद्ध करने की इच्छा है। अब इधर से गोलाबारी शुरू हो गई। इधर से कुछ खालसे और उधर से कुछ रंघड़ मारे गये। रंघड़ अब एक गोलाई में होकर एक ओर से धावा बोलकर टूट पड़े और इसी तरह से दूसरी ओर से गूजर उमड़कर आ पड़े और तीरों तथा बन्दूकों की बाढ़ लगा दी। इस बार जब खालसा के कुछ सिख वीरगति को प्राप्त हुये तो बंदूकों की एक इकट्ठी बौछार करके खालसा जी अत्यन्त तेजी से आक्रमण करके वैरी पर जाकर झपटे और हाथों हाथ लड़ाई पर उतर पड़े। इन्होंने जाकर तलवारों से इतनी तेज़ी से धावा बोला कि वैरी के हाथों में बन्दूकें पकड़ी ही रह गईं। यह धावा इतना ज़बर्दस्त था कि रंघड़ मुकाबला न कर सके। जब उनके कोई पच्चीस व्यक्ति मारे गये तब 'गुरू की दुहाई' शुरू हो गई। खालसा को इस समय गुरू की आज्ञा का पता नहीं था और गुरू जी दूर खड़े होकर युद्ध का नज़ारा देख रहे थे, अतः खालसा ने अपने धावे को न रोका। इतने में दया सिंह जी आ गये, उन्होंने रंघड़ों से जाकर कहा कि यदि सुरक्षा चाहते हो तो उधर को चले जाओ। अतः बहुत से गुजर और रंघड़ रणभूमि को छोड़कर और शस्त्रादि को रास्ते में डालकर 'गुरू की दुहाई' 'रक्षा करो रक्षा करो' कहते गये गुरू जी की शरण में आ गये। गुरू जी ने आने वालों को शरण दी। इधर सिंहों ने लड़ने वालों को अधीन करके लूट का सारा माल निकलवा लिया और लुटेरों के कई घर गिरवा दिये। इस तरह अब सभी शरण में आ गये अतः गुरू की आज्ञा हुई—जाओ आराम से रहो। यदि तुमने फिर किसी को मार्ग में जाते हुये अथवा संगत को लूटा तो मार दिये जाओगे। इस तत्काल की कार्रवाई का असर सारे इलाके पर पड़ा और खालसा का रोबदाब छाने लगा। ऐसे अत्याचारी जोकि शासकों के साथ मिलकर उपद्रव करते रहते थे, वे सभी डरने लगे।

सूचना—गुरू जी केवल तेग़ के ही धनी नहीं थे, अपितु कलम के महान शूरवीर भी थे और कलम के शूरवीरों के बड़े ही कदरदान थे। कलम के एक शूरवीर का जीवन इस प्रकार है:

❑ ❑

२५ भाई नन्दलाल का उद्धार

: १ :

किसी समय पठानों की धरती पर गुंजान आबादी वाले कंधार नगर में श्री गुरू नानक देव जी ने चक्कर लगाया था। वहां पर ईश्वर के मार्ग में लगे मगर अटके और भटके हुये यारवली, शाहशरफ़ और खत्री आदि का उद्धार किया था। श्री गुरू जी १५९६ विक्रमी संवत में अपने आदेशी वतन को गये थे और अब संवत १६९३ है। इसी कंधार से कोई सवा दौ सौ मील उत्तर को कंधार से काबुल जाने वाली सड़क पर आज ग़ज़नी नामक नगर में एक गुरू नानक के प्यारे का जन्म हुआ है, उसी ग़ज़नी नगर में, जिसके शासक महमूद ने हिन्दुस्तान को सत्रह बार लूटा था, बरबाद किया था और लाहौर में विदेशी और बेगाने राज्य की नींव डाली थी। यह पहाड़ी स्थान है और लगभग शिमले जितनी इसकी ऊँचाई है। जिस भक्त-जन का आज पठानों की धरती में जन्म हुआ है, उसका नाम नन्दलाल रखा गया। इसका पिता हिन्दू है, उसका नाम छज्जूराम है, जाति का खत्री है। आजीविका की खोज में यह अपने प्रिय देश पंजाब को छोड़कर गजनी में आकर बसा था। यह फ़ारसी भाषा में निपुण था और 'प्रबंधक योग्यता' में कमाल रखता था। इसलिये यहां के हाक़िम का मीर मुंशी होकर सुख पा रहा था और सुख दे रहा था। स्वयं विद्वान होने के कारण पुत्र को अच्छी विद्या देने का इच्छुक होना एक स्वाभाविक बात थी। बचपन से ही छज्जू राम जी ने नन्दलाल को एक अच्छे मक्तब (स्कूल) में पढ़ने के लिये भेजा और घर में भी बालक को विद्या में प्रवीण करने का यत्न जारी रखा। छज्जूराम की पहले बहुत सी संतान जन्म लेकर मर चुकी थी, नन्दलाल जी का जन्म उनकी पचास वर्ष की आयु में हुआ था। आपका स्वभाव कुछ तो स्वाभाविक ही और कुछ इन सदमों के कारण नर्मी वाला, भक्ति के अंग वाला और सन्तान की ओर बहुत प्यार वाला हो चुका था। अपने बच्चे को समय की प्रधान विद्या में प्रवीण करने के साथ-साथ छज्जूराम की यह कोशिश भी रहा करती थी कि बच्चा धर्मभावना वाला बने। बारह वर्ष की छोटी आयु में नन्दलाल अच्छा पढ़ लिखा गया था, जैसे कि सूरज प्रकाश में लिखा है-

नन्दलाल नित मकतब जाए।
इलम फारसी पढ़हि बनाए।
तीखण बुद्धि पुनहि अभ्यासे।
नित प्रति विद्या बहुत प्रकाशे।
ब्रिंद किताबनि को पढ़ि गयो।
इलम बिख कामल बहु भयो।

होनहार सुपुत्र को फ़ारसी और अरबी में अच्छी उन्नति को देखकर छज्जूराम अपने आप में फूला नहीं समाता था और उसे और अधिक पढ़ाने के प्रयत्न जारी रहते थे कि इन दिनों में वैरागी मत के एक अगुआ, जो कि वैष्णव मत के उपासक खत्रियों के कुल-गुरू थे, अपनी भेंटें लेने के संबंध में ग़ज़नी आ पहुंचे। ग़ज़नी पठानों की धरती है, वहां पर ऐसा अवसर प्राप्त हो जाना एक दुर्लभ बात थी। छज्जूराम जी स्वयं वैष्णव मत के अनुयायी थे वैरागी आचार्य के आने को धन्य भाग्य समझकर पुत्र को दीक्षित करने की सोच आई कि हो न हो इनके द्वारा ही पुत्र के गले में कंठी पड़ जाय, मन्त्र मिल जाय और यह विधि के अनुसार अपने कर्म-धर्म में प्रवेश कर ले। इस तरह से विचार करके आपने एक दिन निश्चित् किया और महात्मा को अपने घर में बुलाया। कंठी ड़ालने वाला भला पुरुष था सीधा-सादा पर वास्तविक आध्यात्मिक जीवन की ओर से कोरा। वह रस्म को तो पूरी करना जानता था मगर किसी जीव की रूहानी भूख की तृप्ति के लिये सामान तैयार नहीं कर सकता था। जैसा कि बड़ी आयु में इनके द्वारा लिखी गई कविताओं से सिद्ध होता है। बालक नन्दलाल एक तो स्वयं चमत्कारी बुद्धि का पुरुष था, दूसरे फ़ारसी, अरबी पढ़कर उसकी बुद्धि विचार की ओर जाती थी और प्रत्येक बात की खोजी की ओर ध्यान करती थी। बालक ने चरित्र की पुस्तकें पढ़ रखी थीं और फ़कीरों के रंग की किताबें भी पढ़कर याद कर रखी थीं। इसलिये उसे एक साधारण से सांप्रदायिक चिन्ह धारण करवाने वाले से किस तरह तसल्ली हो सकती थी? घर में सारी तैयारी हुई थी, केवल आचार्य की ओर से रस्म पूरी करने की देर थी। जब उस मुहूर्त का समय आ पहुंचा तब बाबा वैरागी जी कंठी पहनाने लगे। तब नन्दलाल जी ने ससत्कार कहा, 'हे साधु हे भले पुरुष! आप यह कंठी मेरे गले में क्यों डालते हैं?

बैरागी-बेटा! तुझे वैष्णव मत में लेने लगे हैं। तू आज से इस मत का सेवक होगा। तेरे गले में डाली जाने वाली यह कंठी तुझे यम से बचायेगी। तेरे इस मत के सेवक होने का यह चिन्ह होगा, फिर तुझे मन्त्र देंगे यह कंठी मन्त्र की धारणीय होगी। इस कंठी से तू निगुरा' नहीं रहेगा, तू चेला होगा और हम तेरे गुरू होंगे।

नन्दलाल–क्षमा करें गोसाईं जी! इस कंठी को पहन कर मैं एक भारी जिम्मेदारी लेने लगा हूं, वह यह कि मैं सेवक बन गया हूं और आप मेरे गुरू बन गये हैं। आगे के लिये मेरे लिये द्वार बन्द हो गये कि मैं अब किसी अन्य की खोज न करूं और यदि देवयोग से मुझे कल्याण करने वाला रहबर मिल भी जाय तो मैं अपने आज के दिन किये हुये नियम से विमुख होऊं। अतः अभी आप मुझे इस धर्म के नियम में न बांधो, मैं ज़रा बड़ा होकर अपने गुरू की खोज स्वयं कर लूंगा, जहां पर मेरी इच्छा हो जायेगी, वहां से फिर अपने गले में कंठी अथवा कोई दूसरा चिन्ह डलवा लूंगा।

बाबा–बेटा! यह तो कुल की रीति है। बातें तो तू सियानी करता है। यदि तेरे भाग्य में होगा तो कोई महापुरुष आकर तुझे मिलेगा, पर इस बात को अब कर लेने में कोई डर नहीं है।

नन्दलाल–गोस्वामी जी! बार-बार गुरू धारण करना तो एक खेल हो जायेगा। मेरा चित तो ऐसी कंठी पहनना चाहता है जो कि वाणी रूपी हो, पर मेरे कंठ में उसका उच्चारण हो और उसमें भगवंत का यश हो। मेरा ध्यान तो प्रभु की स्तुति की ओर है।

गोस्वामी–बेटा, तू धन्य है। मेरी कामना अच्छी है। भगवंत तुझे वाणी रूपी कंठी स्वयं दे, मेरे पास तो ऐसी कंठी नहीं है। यह कंठी जिसके पास है, वह स्वयं तुझे दे देगा।

इस तरह के वाक्य कहकर गोस्वामी जी अपने डेरे को चले गये। पिता ने समझा कि गोस्वामी जी बालक के हठ करने के कारण गुस्से हो गये हैं। इसीलिए पहले पुत्र को समझाया कि "बेटा! यह कुल की रीति है और इसे पूरा करना ज़रूरी है। इसके न करने से अपयश होगा और दूसरे कुल के गुरू जी नाराज हो गये हैं।" तब नन्दलाल जी ने हाथ जोड़कर कहा, "पिता जी! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर गोस्वामी जी कहते हैं कि कंठी को पहनकर हम तेरे गुरू हो जायेंगे और तू हमारा सेवक हो जायेगा और मुझे तो गोस्वामी जी गुरू दीखे नहीं हैं। मुझे गुरू की खोज स्वयं करना है। इसलिए मुझे आज दिखावे के लिए गुरू धारण कर लेना ठीक नहीं लग रहा। मैं अभी से अपने आपको बांध लूं, यह अच्छा नहीं लगता। पिता को ये वाक्य सुनकर पुत्र की सचाई से कुछ तसल्ली हो गई और वह चुप हो गया कि बच्चा ठीक बात कर रहा है, इसलिये मैं और ज़ोर न दूं, ऐसा न हो कि यह उदास हो जाय और दुखी हो। फिर पिता क्षमा मांगने के लिए गोस्वामी के पास गया। पर उस भले पुरुष ने उत्तर दिया कि 'भाई! तेरा पुत्र स्वाभाविक तौर पर ही परमार्थ का जिज्ञासु है, इसको किसी उच्चकोटि के महापुरुष की खोज करना है, उससे ही इसका कल्याण होगा। ऐसे

संस्कारी जीवों पर हमें और आपको ज़ोर देना अच्छा नहीं। मैं गुस्से में नहीं हूं, मैं तो आशीवार्द देता हूं कि तेरा कुल फले फूले। तुम सदैव सुखी रहो!" छज्जूराम ने शीश झुकाया और फिर पितृ मोह में बंधकर और लोक-लज्जा की ओर से सोच में पड़कर उसके विद्यालय के अध्यापक और सहपाठियों से कहलवाया, पर नन्दलाल ने सबको नम्रता सहित यह कहा कि, "मेरे अंदर गुरू की पहचान करने के कुछ लक्षण हैं, मुझे अभी खोज करनी है और यदि मैं अभी से बंध गया, उससे जिससे कि बंधने को मेरा मन कदाचित नहीं चाहता, तो मैं दुखी होऊंगा और दुखी ही रहूंगा। वैसे मैं पिता जी की आज्ञा से इन्कार नहीं करना चाहता।" इस प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् पिता जी की ओर से और दबाव बंद हो गया और नन्दलाल जी अपनी विद्या की बढ़ोतरी में लगे रहे।

: २ :

पांच वर्ष और व्यतीत हो गये। नन्दलाल जी ने न तो कंठी धारण की और न ही विवाह करवाया। शिक्षा लेने में लगे रहे। इस समय आपकी प्यारी माता जी का देहांत हो गया। इस सदमें को आपने तनिक कठिनाई से झेला। परदेश में घर के तीन ही तो सदस्य थे; एक माता, एक पिता और एक स्वयं; अब दो रह गये। माता के वियोग के पश्चात् नन्दलाल जी को इसी दशा में दो वर्ष और व्यतीत हो गये। अभी विद्या प्राप्ति में ही धुन लग रही थी कि आपके पिता जी का देहांत हो गया। यह सदमा अब बहुत बड़ा था। आप पराये देश, पराये राज्य और पराये लोगों में अकेले रह गये; पर मनुष्य के सिर पर जो कुछ आ पड़ता है, वह उसे सहन कर ही लेता है। आपने इस सदमें को भी सहन कर लिया। जब पितृकर्म से मुक्त हुए तो सज्जनों, मित्रों ने सलाह दी, "अब शासक के पास जाना चाहिए और उसे कहा जाये कि वह इनके पिता वाला स्थान आपको दे दे। आप हर तरह से योग्य हैं, इससे मन लगा रहेगा और बहला रहेगा। कहते हैं कि काम आधी बन्दगी होता है। फिर आपका विवाह किसी अच्छे घर में हो जायेगा।" इस विचार के पश्चात् शासक के सामने विनय की गई। शासक छज्जूराम जी पर प्रसन्न था और नन्दलाल जी की विद्या और योग्यता से परिचित था, वह कहने लगा कि, "मैं तुम्हारे पिता के स्थान पर तुम्हें ही लगाऊंगा, तुम योग्य हो, पर तुम्हें अभी कोई अनुभव नहीं है, इसलिए कुछ समय के लिए कार्यालय में निचले स्तर पर काम सीखो।" नन्दलाल जी ने यह बात समझ ली पर उनका चित्त और अधिक उदास हो गया। यह उदासी इतनी बढ़ी कि आपने फिर स्वदेश को लौटने की ठान ली और अपना सामान, नौकर चाकर आदि को संभालकर एक काफ़िले के साथ चुपचाप चल दिये और पंजाब में आ गये। मुलतान पहुंचकर आपको यह जगह

पसंद आ गई और यहां पर डेरा लगा दिया। ग़ज़नी से पिता का संचित धन अपने साथ लाये थे, इसलिए रोज़गार की तलाश की कोई जल्दी नहीं थी। यहां पर रहकर आपने दिल्ली दरवाज़े के बाहर एकान्त स्थान देखकर कुछ भूमि खरीदकर अपने रहने के लिए मकान बनवा लिया। यहां पर धीरे-धीरे मुहल्ला बन गया और बहुत सी आबादी हो गई। इसका नाम 'आग़ापुर' पड़ गया; संभवतः इसलिए कि नन्दलाल जी के साथ ग़ज़नी से आये हुए नौकर उन्हें 'आग़ा' कहकर बुलाते थे। फ़ारसी में 'आग़ा' मालिक को कहते हैं और उन देशों में नौकर मालिकों को 'आग़ा' कहकर बुलाते हैं।[१] यह भी ख्याल किया जाता है कि भाई साहब (नन्दलाल) ने परदेश से आकर स्वयं इस मुहल्ले का नाम 'आगमनपुरा' रखा, जो बिगड़कर 'आग़ापुर' बन गया। वैसे मुहल्ले का नाम अब तक भी 'आग़ापुर' है।

नन्दलाल का स्वभाव बहुत मिलनसार था। आप काफी विद्वान थे, धन भी आपके पास था, मुलतान में जल्दी ही लोगों से आपका मेलजोल बढ़ गया। पुराने पूर्वजों के मिलने वाले रिश्तेनाते वाले भी आदर-सम्मान करने लगे। चाहे अभी तक कोई रोज़गार नहीं मिला था, पर भाईचारे, बिरादरी में आन-बान काफी कायम हो चुकी थी। आपकी सहनशीलता और उपरोक्त गुणों और भाईचारे में मान-सम्मान के कारण आपका विवाह एक अच्छे खत्री घराने में हो गया। इस बात से आपका दिल और अधिक सुन्दर और ऊंचा हो गया और अंतस को एक नई रंगत चमकाने लगी। फ़कीरों और साधुओं से तो आपका मेल था ही, कंठी अभी ली नहीं थी, इस कमी का आपको पता था, पर अभी कोई मिला ही नहीं था कि जिसके हाथों से कंठी को गले में धारण करने के लिए गरदन झुकती। विवाह को हुए अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था कि आपको अपनी सतवंती पत्नी में सुशील होने के अलावा एक और बात दिखाई पड़ी और यह बात समझ में आ गई कि सतवंती अमृत वेला में उठकर स्नान कर लेती है, कुछ समय चुप करके बैठती है और फिर कुछ पढ़ती है, जिसका स्वर तो सुनाई देता है, पर इतना ऊंचा नहीं पढ़ती कि उसकी समझ हा सके। आप विद्वान तो थे, सौभाग्यवान पत्नी के लक्षणों में, जो साधारण स्त्रियों की अपेक्षा विलक्षणता देखते थे, वह इस कारण करके अनुभव हुई। तब आपने एक दिन अपनी पत्नी से पूछा कि 'भाग्यवान्! सुलक्षणी! सुबह को तू जो अभ्यास और आराधन करती है और फिर दिन के चढ़ने के बाद जो जाप तू जपती अथवा उच्चारण करती है, वह तो कोई सुन्दर बात है और मैं खुश हूं इस भले काम से मेरे मन में किसी तरह का कोई विरोध नहीं है। लगता है कि तू डरती है और खुलकर नहीं पढ़ती, मेरी ओर से

१. फ़ारसी शब्द आक़ा है और तुर्की 'आग़ा' है, पर अफ़ग़ानों की बोलचाल मे 'आग़ा' शब्द आम है।

कोई डर मत कर।" इस प्रकार के प्यार भरे वाक्यों को सुनकर उनकी पत्नी ने अपने मायके घर के स्वभाव के अनुसार बाणी का पाठ खुले स्वर से करना आरम्भ कर दिया। बाणी के पाठ को सुनने से नन्दलाल जी के कान प्यार वाले होने लगे, वाणी का रस असर करने लगा और वाणी के अर्थ और भाव से मन को सहारा मिलने लगा। यों आपको पता चला कि यह वाणी गुरू नानक देव जी की है और जो सतवंती मेरी अर्धांगिनी बनी है, वह गोस्वामियों की चेली नहीं है, और न ही केवल सिख घराने की लड़की है, बल्कि सिख धर्म के व्यवहारों में भी तगड़ी है।[१] वाणी को सुनते-सुनते वाणी का सम्मान मन में बढ़ता गया और मन में कभी-कभी यह भाव उत्पन्न होने लगा कि इस बह रही मधुर अमृत नदी के स्रोत के यदि कभी दर्शन हो जायें तो शायद मन की चिरकाल से दबी हुई अभिलाषा पूरी हो जाये।

धीरे-धीरे आपका गुरू नानक देव जी में विश्वास बंधता गया और गुरुवाणी को पढ़ने और कंठाग्र करने का स्वभाव बनता गया। उधर आपकी फ़ारसी, अरबी की विद्वत्ता का शहर में चर्चा हो गया, जिससे मुलतान के शासक को खबर पहुंच गई। उसने आपकी विद्वता को देखकर आपको मीर मुंशी नियुक्त कर लिया। मुद्दतों आप मुलतान में टिके रहे अपने इस पद के कार्यभार को ईमानदारी से निभाते रहे। आपकी योग्यता और गुणों के कारण शासक का आप पर बहुत एतबार हो गया और हर बात में आपकी राय ली जाने लगी। इस बात से कर्मचारियों में ईर्ष्या होने लगी। यह ईर्ष्या दिन ब दिन बढ़ती गई, पर इससे आपका कुछ भी न बिगड़ा।

: ३ :

एक दिन आपने अपनी इस तरह की दशा को अच्छा न समझकर नौकरी त्याग दी और अपना जीवन दोबारा स्वतन्त्र कर लिया, पर निवास मुलतान में ही रखा। लगभग चालीस वर्ष की आयु में आपके घर में सन्तान उत्पन्न हुई। बेटे का नाम लखपतराय रखा गया और इसके दो वर्ष पश्चात् एक और बच्चा पैदा हुआ, जिसका नाम लीलाराम रखा गया। दोनों के पालन-पोषण में एक नया

---

१. सिख इतिहास की खोज करने वाले भाई रामकृष्ण सिंह जी बताया करते थे कि उनको इस बात का पता चला है कि मुलतान में भाई नन्दलाल जी को गुरू घर के एक उदासी संत भी मिले थे। इसी शुभ मिलाप में अपने गुरू की गद्दी का यश सुना और गुरू के सिख मत की सूझ प्राप्त की थी।

भाई मेघराज जी लिखते हैं कि मुलतान में बेदी साहब का एक गुरुद्वारा था, जिसका बाद का नाम बाबा कानपति की धर्मशाला है, भाई नन्दलाल जी के ससुर इस गुरुद्वारे के सेवक थे।

उद्यम था जो कि बड़ी आयु में एक नया और अत्यन्त मीठा काम था। कुछ वर्षों तक इनमें दिल बहता रहा, पर चिंगारी जो प्रारम्भ से अंतस में बैठ गई थी, जिसने वैरागी साधु से सत्संग की प्राप्ति से बीचोंबीच सुलगती रही थी, वह अब धधक उठी।

एक दिन गुरुद्वारे में कीर्तन करते हुए रागियों ने यह श्लोक पढ़ाः-

देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर॥
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूर॥

हां, नन्दलाल जी को ख्याल आया कि आयु पचास के निकट आ रही है। शास्त्रानुसार भी वानप्रस्थी होने का समय आ गया है और आज के गुरुवाक्य ने भी 'अगा नेड़े आइआ' का संदेश दिया है। हे मन! कब तक, ये बाल बच्चे, स्त्री मान में गफलत? रास्ता तो मिल गया है पर अगुआ-अदेशी अगुआ-जब पृथ्वी पर है तो दर्शनों से वंचित रहना कितनी दुर्भाग्य की बात है। ये संकल्प गहरे होते गये और वैराग्य का रूप धारण करते गये। अंत में अंदर लगी हुई आग प्रचंड हो गई। आपने गुरू के दर्शनों के लिए अपनी पत्नी से विदा ली और बच्चों की पढ़ाई का प्रबन्ध किया और कुटुम्ब को सुसराल वालों के सुपुर्द करके और उनकी आजीविका का पक्का प्रबन्ध कर दिया और आप घर से चल पड़े। ग़ज़नी से आपके साथ दो नौकर आये थे, दोनों ही बहुत आज्ञाकारी और ईमानदार थे। दोनों में से एक को तो घर पर छोड़ दिया ताकि बच्चों की सेवा, सुख में फ़र्क न पड़े और दूसरे को अपने साथ ले लिया। चलते-चलते पहले आप लाहौर पहुंचे। कुछ दिन यहां पर ठहरे; सत्संग का आनन्द लिया और फिर अमृतसर पहुंचे। अमृतसर के दर्शन करके निहाल हो गये। कीर्तन और सत्संग का आनन्द अंदर से वैराग्य को और भी दुगुने भाग्य लगा गया। आध्यात्मिक प्रभाव और अद्‌भुत प्रसन्नता जो सदैव हरि मन्दिर में रहती है, उस आश्चर्य के रहस्य का पता भी चल गया। अब आप विह्वल हो गये और गद्दी के स्वामी जी के चरणों की शरण प्राप्त होने का आकर्षण और अधिक होने लगा। अतः आप यहां से भी चल पड़े और शनैः-शनैः चलते हुए आनन्दपुर पहुंचे और एक ओर एक मकान लेकर उसमें टिक गये। यह समय १७४०-४३ विक्रमी के लगभग का है। हर दशा में यह समय पाउंटे जाने के पहले का था। आप इस समय सियानी अवस्था में हैं, विद्या और सांसारिक अनुभवों का कमाल है। प्रत्येक रंग के फ़कीरों की संगति को देख चुके हैं। आगे जिस साहब की सेवा में जा रहे हैं वे चढ़ती हुई जवानी की आयु में हैं ठाठ बाठ शाही हैं, इर्द-गिर्द के सामान त्याग और वैराग्य के दिखाई नहीं देते। यह एक कुदरती बात है कि सियाना और सोचवान मन सोच में पड़े। परन्तु दूसरी और वैराग्य है, चित्त उदासीन है और साथ ही गुरुवाणी का प्रभाव है। गुरुवाणी से अनुमान लग चुका है कि इस गद्दी

के मालिक न केवल (गुरुमुख) ही हैं, बल्कि कारक हैं, अवतार हैं और अवतारों से ऊंचे 'गुरू अवतार' हैं। हां नन्दलाल महिमा सुनते हैं कि इस छोटी आयु से गद्दी के गुरू पूर्ण गुरू अवतार के लक्षण दिखाते हैं, अंतर्यामी हैं और उद्धारकर्ता हैं। दोनों प्रकार के विचारों से अब दिल में यह विचार आया कि पहले से ही गुरू जी के दरबार में हाज़िरी न भरी जाये, कोई ठिकाना बनाकर बैठ जायें और देखें कि गुरू मुझे बुलाते हैं कि नहीं। यदि हृदय का यह मनोरथ सिद्ध हो जाये तो यह बात निश्चित हो गई कि गुरू सम्पूर्ण है मुरशिद है और अंतर्यामी गुरू है। फिर मन में यह विचार आया कि इस तरह करने से निश्चछलता में कमी आती है, और यह गुरू परीक्षा है। पर विद्वान दिमाग़ ने तर्क-वितर्क कर लिया कि अग्नि के साथ अग्नि रूप होने वाले दो तरह के पदार्थ हैं—'एक तो पास आकर अथवा स्पर्श मात्र से अग्नि बन जाते हैं, जैसे काग़ज़, घी, खांड आदि। दूसरे तनिक अधिक ताप लेकर उस रूप में प्रविष्ट होते हैं, जिस तरह सोना आदि। जिज्ञासु भी उसी तरह से दो प्रकार के हैं। एक तो दर्शन मात्र से विश्वास कर लेते हैं, दूसरे देखभाल और परीक्षा करके विश्वास करते हैं। इस समय कुछ तो समय के प्रभाव के कारण अथवा अपने तर्क-वितर्क वाले स्वभाव के कारण ही मैं दूसरी किस्म का जिज्ञासु हूं।' फिर सोचने लगे, 'क्या मेरा पक्ष कुछ असम्मान वाला है?' पर फिर विचार किया कि, 'मेरा मन निश्चय वाला है।' इसलिए आप घर में बैठ गये। मन की बात किसी को न बताई और सतगुरू के दर्शनों की लालसा को अंदर दबा लिया। यह लालसा ऊपरी मन अर्थात् विचार वाले मन से कहीं अधिक गहरे स्थान पर निवास करती थी और विचार वाले मन ने इस समय परीक्षा की वृत्ति धारण कर ली थी। वह अंतस में गहरे स्थान पर निवास करने वाली बढ़ी हुई लालसा हिलोर लेती थी और कसक वाला आर्कषक बनकर उमड़ती थी और विचार वाला मन अपने इरादे से किये हुए संकल्प से उसे दबाता था और उसे व्यवहार में लाने से रोकता था। इस खींचातानी में दर्शन की लालसा कहीं अधिक कसक मारती थी। कई दिन व्यतीत हो गये, आप अपने ठिकाने पर टिके हुए हैं, हां शरीर और विचार वाला मन टिका है, पर गहरा मन अचल है और शरीर के अंतरिक्ष में नहीं टिकता है, प्रयत्न करता है और उड़-उड़कर जाता है प्यारे के देश को और तड़प लेकर दर्शनों की लालसा करता है। कवि संतोख सिंह जी लिखते हैं:—

सतिगुरू चरन प्रेम बड जागा।
निस बासुर इक सम अनुरागा।

आपका दिली प्यार वाला नौकर देखता है कि स्वामी जी कहीं बाहर-अंदर नहीं जाते, घर पर ही टिके रहते हैं, खाना पीना कम हो गया है, रंग पीला पड़ गया है, प्रायः ठण्डे श्वांस भरते हैं और नयन, जो विद्या के चमत्कार से सदैव

चमकते और प्रत्येक वस्तु पर उच्च दृष्टि डाला करते थे—प्राय: जल से भरे हुये दीखते हैं और कई बार आपके यत्न करते हुये, अधर काटते हुये, मस्तक पर बल डालते हुये उन नयनों में भरे हुये अश्रु विवश हो गालों पर गिर पड़ते हैं और ढलते-ढलते प्रकाशमान दाढ़ी में मोतियों की आभा से चमकते यों लगते हैं कि मानो यह भी किसी को देख रहे हैं और दृष्टि में किसी अत्यन्त गहरी खोज का भाव है। आपका पुराना चाकर और हार्दिक स्नेह वाला चाकर घबराता है पर अपने स्वामी से कुछ पूछ नहीं सकता; स्वामी के लिये सुख के सारे सामान करता किसी तरह से भी कोई तकलीफ नहीं होने देता। पर संकोच करता है कि पूछने से न जाने चित्त के वेग का, जिसका पता नहीं कि क्या है, ठोकर न लगे। कई दिन व्यतीत हो जाने पर स्नेह करने वाले दास की विह्वलता अपने मन के रोकने से रुक न सकी। अपनी अकल के अनुसार काफी मना करता रहा, पर अंतस के गहरे आपे की विह्वलता न रुकी और हाथ बांधकर खड़ा हो गया: "आग़ा! आपको क्या कष्ट है, आप किस सोच में हैं? आपकी उदासी और व्याकुलता मुझसे देखी नहीं जाती। मैं हूं तो आपका नौकर पर यदि मैं कोई बात कर सकूं तो आप दुखी हो जाएं तो कहें, यह निकम्मा शरीर आग़ा के काम न आये तो इसे कब इस्तेमाल करना होगा। दया कीजिए और हुकुम दीजिए।"

द्रवित नन्द लाल जी प्रेम मन वाले पहले से ही भीतर से द्रवित हो रहे थे, इस प्रेम भावना से और भी अधिक द्रवित हुए, कुछ देर से जो अश्रु रोक रखे थे, वे अब न रुके और विवश होकर बह चले। बोलने लगे पर अधर घुट गये और कंठ रुक गया। प्यार वाला सेवक देखकर और विह्वल हुआ कि मेरे प्यारे का क्या कष्ट है, जो इतना विवश हो रहा है। कुछ समय तक दोनों ओर से यह समा बंधा रहा। सेवक अपने प्यार में पीड़ित है और मालिक एक ओर अपने प्रियतम के आकर्षण में, और दूसरी ओर सेवक की आकर्षण भरी हार्दिक पीड़ा के प्रभाव से द्रवित हो रहा है। अंत में विवश होकर नन्दलाल जी के नयन वर्षा कर चुके और ठण्डे श्वास आने लगे। ज्यों-ज्यों ये आये। त्यों-त्यों शरीर हलका-सा हो गया और सुखदाई भाव प्रतीत होने लगा। जब आपकी जिह्वा भी खुली और कहने लगे, "प्रियवर उदास मत हो, मैं दुखी नहीं हूं। मन के किसी वेग में हूं, जो सुखदाई पीड़ा वाला हो रहा है। तू चिंता मत कर, ईश्वर भला करेगा।"

इधर प्रेमी नन्दलाल जी इन रंगों और तरंगों में थे, उधर 'प्रियतम जी'[१] के मन पर आर्कषण के कारण झटके लग रहे थे। प्यार का भाव मूर्तिमान होकर नयनों के आगे आकर खड़ा होता था और मन में जाकर उसे अपनी ओर पिघला देता है। कई बार इधर-उधर एक आश्चर्यजनक चंचलता से देखते और एक लम्बा श्वास लेकर

१. श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी।

कह उठते, "अच्छा" फिर चुप हो जाते। कवि संतोख सिंह जी लिखते हैं:

श्री गुरू गोबिन्द सिंह सुजाना।
करी प्रेम ने खैंच महाना।।
रह्यो न गयो धीर कर गुर ते।
जो सिमरति अनुरागति उर ते।।

एक दिन आपने मेवड़े को पास आने का संकेत दिया। जब वह पास आया तब आपने कहा कि अमुक ठिकाने पर एक सिख है उसकी उम्र पचास वर्ष के लगभग है और उसका नाम नन्दलाल है, उसे जाकर कह दे कि तुझे याद कर रहे हैं। उसे अपने साथ लेकर आना। मेवड़ा उसी समय सीधा वहां पर चला गया और उस ठिकाने पर पहुंच गया। आप सुन्दर दालान में एक चटाई पर बैठे हुये थे, नयन बन्द थे, पर भरे हुए, मस्तक टिका हुआ था पर आकर्षण से भरपूर। दास अन्दर गया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। आपने कुछ समय के बाद 'हां' कहा तो सेवक ने कहा, "आग़ा! एक आदमी आया है, कहता है कि मैं सतगुरू जी का मेवड़ा हूं और मेरा संदेश यह है कि साहब ने आपको याद किया है और उनकी आज्ञा आपको साथ लेकर जाने की है। नन्दलाल जी 'सतगुरू जी का मेवड़ा' सुनते ही अंदर ही अंदर द्रवित हो रहे मन में बहते जा रहे किसी निराशा में पहुंच चुकी आशा के अचानक मन के वेग आ जाने वाले प्रभाव से और द्रवित होकर सूक्ष्म होते हुये मानो वायु रूप होते हुये उड़ने लगे। हां, पंख मारता हुआ होश उड़ा और आप सुनते हुये अंदर खो गये। नौकर कह चुका और आगे से उसे कोई उत्तर न मिला, जो उसने फिर अपनी 'बात दुहराई। इतने में आपके अंतस ने उलटा काम किया और होश फिरा कि देख आशा पूर्ण हो रही है।" वह शुक्र का भाव आया। अनसुनी बात को फिर से सुनने के लिए थोड़ा-सा खांसकर बोले, "क्या कहा है?" जब नौकर ने तीसरी बार संदेश सुनाया तब मूंदे हुये नयन खुले, चारों ओर दृष्टिमात् किया और ऊपर को देखकर कहा:

"अलहमदुलिल्ला, शुक्र, तेरी असीम कृपा, हे ईश्वर तेरा अहसान, मुझ नाचीज पर तेरी अनुकम्पा शुक्र, शुक्र, शुक्र।" फिर आकाश की ओर देखा फिर चारों ओर दृष्टिपात् किया, फिर दास की ओर देखा, "शुक्र तेरा, मेरे प्यारे! तेरी जुबान के सदके, शुक्र।" यों कुछ समय तक सिर हिलाते और देखते-बोलते और अश्रु बहाते हुए कवि-रस-रंग में भीगे सुन्दर नन्दलाल जी यों लगते रहे, जैसे प्रेम रस का काव्य मूर्ति धारण किये बैठा है और पिघल पिघलकर, बह-बहकर, द्रवित हो होकर अपनी मूर्तिमान सूरत में से फिर अमूर्त हो रहा है। सेवक की समझ में अपने मालिक की यह दशा कुछ अर्ध बावले की सी दिखाई पड़ रही थी और उसके कोमल भाव अंदर से उठ-उठकर और आंसू बन बनकर बह रहे थे।

सचमुच नन्दलाल जी बावरे लग रहे थे। सुधि सम्पन्न मन, असीम कृपा के भाव इच्छापूर्ति के सहसा दु:ख' की मिज़राव जैसी रसभरी चोट से थर्रा उठा था और गहरा आपा इस चोट से तारों के ठाठ की भांति कांप रहा था। हां, इस अंतस के–जीवन में कभी किसी पर घटित होने वाले–संगीत में आपा लहर हो रहा था। चेहरे की कान्ति इस समय अर्ध बावली न दीखती तो और क्या दीखती! पास अपने मोह में, मोह के कारण द्रवित होने में, आपको इस दशा में देख-देखकर प्यार से पिघलता हुआ लहरा रहा है।

समय ठहरता नहीं, हां, हमारे लिये तो चलता हुआ ही लगता है, अतः चलता गया और वे क्षण, जो संगीत का रूप धारण करके आपे को राग रूप, नाद रूप कर रहे थे, व्यतीत हो गये। अंतस–तारों की भांति लहरा उठने की योग्यता वाला अंतस–तारों का ठाट टिक गया तो आपके नयन खुले, नयनों से नीर बहा रहे सेवक की ओर देख: "बेटा! तेरी रसना धन्य है। जा बेटा मेवड़े का सत्कार कर, उसे सिर मस्तक पर बिठा, मेरे नयनों में बैठा दे, उसे कह दे कि बलिहारी तेरे रास्तों की, मैं अभी आया।"

आप उठे, हां उठे, मानो शरीर हल्का है, जो किसी तौल रहित वस्तु का बना हुआ है। आप उठे और चल दिये। दो कदम चलकर रुके और बोले: "खाली हाय! अरे बेअदब खाली हाथ!" फिर लौटकर अंदर गये, प्रसाद लिया, बाहर आंगन में आये। दो कदम चले, "अरे बेअदब! हैं दस्तार तो अटपटी है, शाहों की हुजूरी में टेढ़ी पगड़ी!" फिर लौटकर अंदर आ गये, सत्कार वाली पगड़ी बांधी, चादर ओढ़ी, प्रसाद उठाकर चल दिये।

: ४ :

साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी आनन्द मग्न बैठे हैं। मीठा-मीठा कीर्तन हो रहा है। सारंगी का मन को खींचने वाला लम्बा स्वर और रबाब की हृदयग्राही झंकार आश्चर्यजनक मेल खा रही है। तबला इतना हलका बज रहा है कि बजाने वाले के पौर ही छूते हुए लगते हैं, जैसे कोई राजहंस पानी में तैरे तो नहीं मगर उसके ऊपर किसी ताल बंधी चाल में धीरे-धीरे फिसले। सारंग रास का आलाप हो रहा है, बीच-बीच में रागी सिंह एक अत्यन्त खूबसूरती से बरवा को एक तान लगा जाते हैं और फिर सारंग राग में जा घुसते हैं। इस तरह आश्चर्यजनक टिकाव वाला रस बंध रहा है। दिल ढल रहा है, संगीत की लहर विरह के झटके दे रही है, श्रोताओं के कान अचल हो रहे हैं और रसज्ञ मन गगन-मण्डल में सीध बांधे बैठे हैं। इस तरह के सुहावने प्रभाव के वातावरण के अन्दर बाहर सुहावने सतगुरू जी स्थित बैठे थे कि मेवड़े ने श्री नन्दलाल जी को आपके हुजूर में पहुंचाया। इस समय इनके आ जाने की सूचना देने के लिये गुरू जी को आवाज़ लगाकर

बताना ठीक नहीं था, इसलिए उसने आपको श्री गुरू जी के सम्मुख थोड़ी दूरी पर बैठ जाने का संकेत किया ओर स्वयं भी उस प्रवाहमान संगीत रस के अद्‌भुत प्रवाह में बह गया।

इस समय सतगुरू जी की आयु जवानी की है। नख-शिख तेज़ और मोहक हैं। रंग, मोह लेने वाली चमक वाला है। सुन्दरता चेहरे पर से यों बाहर को पसरती और बरसती हुई लगती है, जैसे किसी दीपक से प्रकाश की किरणें। शारीरिक आभा के साथ आध्यात्मिक सौंदर्य और इस समय के टिकाव की छवि और जादू कर रही हैं, मानों शान्त रस अद्‌भुत् श्रृंगार रस एक रूप होकर समाधि लगाये बैठे हैं।

श्रृंगार रस कौन-सा? जिसमें आध्यात्मिक मण्डलों का स्वामी प्रियतम हो और उसके सुन्दर स्वरूप से प्रेम का भाव स्थायी हो। यह भाव प्रियतम में सुरति को चुभोकर रखता है और प्रेम रस वाले तरंगों की लहर देकर रंग-रंग के विरह में आनन्द देता है। हां शान्त रस कौन-सा जिसका स्थाई भाव जगत से वैराग पर जगताधार से राग हो और अद्‌भुत रस कौन-सा? जिसका स्थायी भाव ऐसा आश्चर्यजनक है जो कि एक ओर अपने प्रियतम वाहिगुरू जी की सबसे अलग पृथक 'अवधूत' आपे में संपूर्ण, अक्रिय, अविनाशी देखे और दूसरी ओर हर रंग में, प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक भेस में, देश में, 'प्रेम' होकर पसर रहा दीखकर विस्मय के रंग में अद्‌भुत हो रहा हो। साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी मग्न बैठे हैं, जगत में रुष्ट होकर और आपे में खोकर नहीं, पर जगताधार के प्रेम में प्रेम स्वरूप होकर प्रेम में, आर्कषण में, खिचे हुए, मिले हुए, एक हुये पर इधर जगत से मिले जगत को जगत में सुखी और परलोक में सुखी कर देने के सामर्थ्य वाले। देखो न उठ रही लहरों पर भवनों का निर्माण करते हैं और फिर उसे जलकर टिकाते हैं और उसमें न डूबने की शक्ति भरते हैं और पार पहुंचने और पहुंचाने का सामर्थ्य भरते हैं, कहते हैं–

बन से सदन सभै करि समझहु मन ही माहि उदासा।"

[पातशाही दस]

हां, आज काव्य के रसों के रसिक मन ने दीदार देखा, विरह रूपी कसाई द्वारा मार दिये गये मन ने, उस मन ने जो प्यार झन्नाहट से सूक्ष्म होता होता इतना सूक्ष्म हो रहा था कि रसावेश होते ही रस रूप हो जाये। सुन्दर ने सुन्दरों के सुलतान का दर्शन किया। हां, उस मोहन मूर्ति पर, उस छवि के पुतले पर उस सौंदर्य और सुन्दरता की सूरत पर, उस सुन्दरता के रूपधारी दर्शन पर, उस फबन की झांकी और उस सुन्दरता के दीदार पर नयन पड़े हैं उस विरह भरे मन पर, जिसने दीदार के मार्ग में स्वयं अपनी बुद्धि के मण्डलों में बाधा डाल रखी थी, जिसे आज तोड़कर दिखा दिया है, प्यार मण्डल की नरम और कोमल कलाइयों

ने। दर्शन हुए विद्युतीय स्वरूप के, जिनके इतने नूरी नैनों ने भी न झेला। कलेजे में कसक चुभी मन के नयनों के छप्पर गिरा दिये और रसना ने अनसुनी पुकार में कहा: बस, मेरे गुणों के सुलतान! रूप की चमक और मत दिखा मुझ में सहन करने की शक्ति नहीं है। हां, बस मेरे सौंदर्य के सरदार! मुझमें तेरे रूप को सहन करने की और शक्ति नहीं है। हे सुन्दरता की अवधि! और ज्यादा सुन्दर मत बन, मुझमें सहन करने की शक्ति नहीं है।

मस्त अंगारे रूपी अपने नयनों से, हाय मेरी रक्षा कर ले, मैं तेरी दुहाई देता हूं। अपने मीठे मुखड़े और मधुर होंठों से मेरी रक्षा कर ले, मैं तेरी दुहाई देता हूं। तुझसे बिछड़कर बीते हुए श्वांसों पर, हा शोक है, शोक है, हे सुन्दर! शोक है। मुझ इस ग़ालिफ की तेरे आगे फरियाद है और तेरी दुहाई है। मैं झगड़ों को देखते-देखते उदास हो गया हूं, वे झगड़े जो दीन धर्म और कुफर तथा अधर्म वाले हैं। हे सबके मालिक! तेरे द्वार पर आया हूं, तू रक्षा कर मैं तेरी दुहाई देता हूं। मुझे तो मोहिनयों ने ठग लिया है, हाय! मेरे लिये सारे जगत को ठग लिया है।

इसलिए तू स्वयं आकर इनसे मेरी रक्षा कर, मैं तेरा वास्ता देता हूं और तेरी

---

१. यह ग़ज़ल भाई नन्दलाल जी की पन्द्रहवी ग़ज़ल का अनुवाद है, जिसमें उसके वर्णन ढंग को और दिली भाव को मुख्य रखकर, असल के निकट रखकर यहां हिन्दी रूपान्तर किया गया है, फारसी भाषा में ग़ज़ल इस प्रकार है:

अज़ दुचश्मे मस्त शुअला अलग़यास।
अज़ लबे दहिने शकरखा अलग़यास।
वाय बा नफसे कि बेहूदह गुज़श्त।
अलग़यास अज़ ग़फ़लते मा अलग़यास।
अज़ निज़ अए कुफिरे दीं दिल बरहम अस्त,
बर दरे दरगाहि मौला अलग़यास।
लोलीआने शेख आलम दर रबूद,
में कुनम अज़दस्ते आहां अलग़यास।
अै जि दस्ते खंज़रे मियगाने ऊ।
कै शव्वद खामोश गोया अलग़यास।

हाफिज़ जी ने भी 'से' की तख्ती में एक ही ग़ज़ल कही है और उसकी रदीफ भी अयग़यास है। यह अर्बी का पद्य है, इसके अर्थ हैं—फरियाद, दुहाई, हाय, न्याय करो, रक्षा करो, हाफिज़ की ग़ज़ल का और भाई साहब की ग़ज़ल का तौल एक ऐसा है। हाफिज़ जी रिंदों वाले तरीके में वियोग से दुहाई देते हैं, भाई जी सेवक भाव से कविता का मेल करके दुहाई देते और अपनी असर्थता और अपनी सुस्ती के कारण फरियाद करके शरण मांगते है और सतगुरू से उनकी सुन्दरता के गुणों को झेलने और असहय को सहन करने की देन माँगते हैं।

दुहाई देता हूं। तेरे तेज़ नयनों की भटकन से, जो कि खंजर की भांति घाव लगाते हैं, हे मेरे सज्जन! मैं कैसे चुप होऊं? इसलिए तू स्वयं ही रक्षा कर, मैं तेरी दुहाई देता हूं।[१]

हा, जी, रसिक मन असह्य चमत्कार को देखकर मन से अ+मन हो गया। नयन मुंद गये, सिर झुक गया और अनेक रसों में से गुजरता हुआ सुन्दर धरती पर टिक गया और टिका ही रहा।

समय व्यतीत होते पता न चला। देखने वाला मन अलख सुन्दरता के घेरे में फंस रहा है। प्रसन्न मूर्ति दाता जी के साईं रंग-राते अंतस के भाव अपने रसावेश के देश से रसदान करने के देश की ओर नीचे को उतरे। सुन्दर नैन कटोरे जो अमृत से भरपूर थे, वे खुले, अमृत की फुहार से उछल-उछलकर पड़ रही दृष्टि, कृपा की वर्षा करती हुई चारों ओर घूमी। जिस जिस पर दृष्टि पड़ी, उस उसमें एक झनझनी-सी पैदा हो गई। जिस जिसने इस दृष्टि को देखा, उसकी आंख अमृत से भर गई। सभी देखने वालों के नयन कटोरे रस से लबालब भर गये।

हे ईश्वर अब ऐसा हो कि आज शताब्दियां व्यतीत हो चुकने के बाद हमारे पढ़ने सुनने वाले मनों को भी इस दृष्टि का स्मरण वही रसदान प्रदान करे।

प्यार पुंज जी की 'बरसने के लिये आतुर' अधीर दृष्टि उस निशाने को देख रही है, जिस पर आज दृष्टि के तीरों को बींधने वाला घाव लगाता है। हां उस पर कि जो 'निशाना' सतगुरू जी की मस्त और रस मुंदी हुई आखों में से निकल रहे सुन्दरता की शोखी के शोलों को देखकर पहले से ही तड़पकर कह रहा था:

अपने मस्त नैन अंगारों से मेरी रक्षा कर ले,
मैं तेरी दुहाई देता हूं।
मस्त मुखड़े और मधुर होंठों से
मेरी रक्षा कर ले, मैं तेरी दुहाई देता हूं।

हां, कोमल रसिक मन पहले से ही तड़प रहा था। जिस रसिक मन ने मस्त नयन से, जो अभी खुले नहीं थे, इश्क की आग की लपट निकलती हुई देखी थी, बंद होठों से मिठास और टिके हुये चेहरे से मधुरता टपकती थी, वह दुहाई दे रहा था कि जब ये खुलेंगे तो इन्हें कौन सहन करेगा। हां, असह्य को कौन सहन करेगा, इसीलिये तो दुहाई दे रहा था। पर लो देखो! वे नयन अब खुले हैं और चारों ओर अपने निशाने की खोज कर रहे हैं। हां, खोज कर रहे नयन, अपने सामने सिर-गर्दन झुकाए हुए शिकार पर टिक गये हैं; जिसे दया की एक दृष्टि पड़ते ही बींध गई है। शरीर कांपा और तीव्र होकर पड़ रही उसी दृष्टि से खिंचा हुआ सिर उठा। रस से शरीर भर गया है और अब सिर उठ नहीं सकता है, पर उठाने वाले

१. यहां पर लेखक की पंजाबी कविता का अनुवाद प्रस्तुत है।

की दृष्टि उठा रही है। सिर उठा नयन दाता की ओर उठे, पैर उठे और चले और कुछ कदम आगे बढ़कर गुणों के सम्राट के पास ले गये, जहां चरणों पर झुककर सिर टिक गया। बन्दगी की लालसा वाला, चरण चुम्बन की तड़प वाला चरणों को छूने की कामना वाला मस्तक रसभरे चरणों पर टिक गया, हां रसज्ञ मस्तक रस-स्रोत से जा लगा।

जब कभी अपनी सुन्दरता की लहर को वाहिगुरू जी ने चमकाया था तो गुणवान की ज़रूरत साथ ही पड़ गई थी। इसलिये वाहिगुरू जी के साथ ही तब से ही, गुण का निर्माण किया था। 'सुन्दरता' और 'गुण' इकट्ठे ही बनाये गये थे, एक ही सांचे में ढाले गये थे। सुन्दरता में गुण के लिये आकर्षण है और गुण में सुन्दरता के लिए खोज है। दोनों का संगम 'रस' है।

इस समय गुण और सुन्दरता का संगम हो गया है। दोनों मिल रहे हैं, हां, मिलाप हो रहा है 'सुन्दरता' का और 'गुण' का, दोनों मिलकर एक 'यकरंगी' (एक रंग) में हैं। रसिक मन तो मग्न है, सम्मान करने योग्य वस्तु की प्राप्ति में और सम्मान योग्य वस्तु मस्त है, रसिक मन के आपा न्योछावर करने वाले प्यार में सुन्दरता सम्मानित हो रही है, सम्मान करने वाले की कदर की पहचान करने वाली सुन्दरता की।[१]

सुन्दर दाता जी के हाथ उठे और प्यार से सिर पर चले गये, आशीर्वाद दिया, 'नन्दलाल सावधान'।

आपका सिर उठा और सावधान होकर बैठ गये।

आप बेसुधी की मस्ती में नहीं थे, आप न्योछावर करने वाले प्यार के निर्मल होश भरे मग्न प्रवाह में थे, जैसे कि आपने बताया है:

'बादह हाय शौक में नोशद दिले हुशियारे मा।' होशियार दिल होशियारी के कमाल में मोहित करने वाले सभी प्रभावों से मुक्त होकर जब विमल होकर टिकता है तो वह मस्ती वाला आत्म विशेष अवस्था का निर्मल प्रवाह[२] होता है, जिसे भाई नन्दलाल जैसे नीरोग लोग 'मस्ती' कहते हैं, दूसरी शारीरिक अथवा मानसिक मस्ती पर आप कहते हैं:-

'सर ता बकदम बहोश मस्ती नाकुनंद'

सिर से लेकर पैरों तक मेरे धर्म वाले लोग होश में रहते हैं, वे मस्त नहीं होते। हां, इस तरह के कमाल वाली विमल सुधि वाली मस्ती में कदमों पर पड़े

१. अर्थात् गुरू जी भाई नन्दलाल जी के गुणों की पहचान वाली सुन्दरता को पहचानने वाले हो रहे हैं।

२. माई री मनु मेरो मतवारो। पेखि दड़िआल अनंद सुख पूरन हरि रसि रपिओ खुमारो।।१।। रहाऊ।। निरमल भए ऊजल जसु गावत बहुरि न होवत कारो। चरण कमल सिउ डोरी राची मेटिओ पुरख अपारो।।१।। करु गहि लीने सरबसु दीने दीपक भइओ उजारो। नानक नामि रसिक बैरागी कुलह समूहां तारो।।२।।

हुए रसिक मन ने सिर को उठाया, नज़र ऊंची की, देखा, उधर से कृपादृष्टि की देन प्राप्त हुई। एक क्षण में नन्दलाल जी के मस्त नयनों में से झलक गुज़र गई–

"मस्त नयनों की झलक हमसे सहन नहीं की जाती, हमारे प्राण भरने वाली एक दृष्टि ही बस, हमें चाहिये[१] हमारे प्रियतम की आंखों में जो कटाक्ष हैं, हम उन्हें सहन नहीं कर सकते। यदि वे दास पर कृपा की एक दृष्टि डाल दें तो प्राण भर जाएं बस इतनी ही कृपा हमारे लिये पर्याप्त है। यह है कि उनकी दृष्टि में अनेक आध्यात्मिक बल और शक्तियां हैं, "हरन भरन जा का नेत्र फोरु।" हमें तो उनकी वह कृपादृष्टि काफी है कि जिससे नाम का जीवन प्रवाह हमारे अंदर प्रवाहित हो जाय। सारे को झेलने की और सहन करने की शक्ति हममें नहीं है। प्रभु के वास्तविक प्रेमी धीरे-धीरे नाम के रस को लेते हैं और सहन करते हैं।

अत: दाता जी की एक ऐसी दृष्टि से रौ रुमक पड़ा 'यादे खुदा' (प्रभु की स्मृति) विद्वान के मन में, जो कि वाणी का ज्ञाता था, जिसे अनेक धर्मों के परमार्थ का पता था, जिसने धारण, ध्यान आदि को भी सुन, समझ रखा था। हां, जो 'नाम' रस रूप होकर इस समय उसके अंदर प्रवेश कर गया, वह गुरू अवतार के महत्व का भी गहरा असर लेकर अंदर बैठ गया।

श्री गुरू जी ने मधुर होंठ खोले और कहा 'नन्दलाल निहाल'! अब नन्दलाल जी को सहन करने की शक्ति भी मिली और बोलने के लिये भी गोया[२] (बोलने वाले) हो गये और आपके मुख से ये वाक्य निकले–

"नानक नदरी नदरि निहाल।"

आधी शताब्दी से निहाल होने की लालसा और याचना कर रहे नन्दलाल जी निहाल हो गये। इसके संबंध में कवि संतोख सिंह जी लिखते हैं:

कृपा दृष्टि सों देखनि करयो।
भ्रम अज्ञान सु तिस परहरयो।।
मोह महान नींद मैं सोवा।
जागत भयो गुरू रवि जोवा।।
ताउ कसौटी बिन मल खोवा।
बारहि बंनी कंचन होवा।।।

अदेशी स्पर्श प्राप्त करके वह 'आचरण' जो कवि हृदय होने के बावजूद, मन के विद्वान होते हुए, अंतस सरल, गुणग्राही और खोजी होते हुए, भलाई की खोज

---

१. मन नमे आरेम ताबे गमज हुए मस्ताने ऊ,
यक निगाहे जां फ़जाइश बस बवद दरकारे मा। (भाई नन्दलाल)

२. फ़ारसी भाषा में गोया का अर्थ बोलने वाला है।

करते और नेकी का दान करते तथा अनुभवी होने के बावजूद भी पचास वर्षों से जो अंधेरा छा रहा था वह दूर हो गया। अंतस् जिस नींद[१] में था उससे जाग उठा।[२] अब एक आश्चर्यजनक ताज़गी का भाव अंतस में प्रतीत होता है कि आंखें खुल गई हैं, कोई नया सूरज चढ़ा है, कोई नया ज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिसमें उच्चता की प्रभा है। कोई ज्ञान हो गया है जो कि पहले पर्दे के अन्दर था और अब घूंघट उठाकर दर्शन दे रहा है। सतगुरू जी के साथ प्यार ने क्या कला दिखाई कि स्पर्श की चिंगारी मिलते ही वे सैकड़ों जन्मों की चिन्ताओं के बोझ दग्ध होकर प्यार का वैसंतर देवता सैंकड़ों चिताओं के बोझों को जलाकर खत्म हो गया? नहीं, 'उज्जवल प्यार' होकर रोम-रोम में बैठ गया है। साईं स्वयं प्यार है, सारी रचना में आप अलग होकर अखंड[३] टिक रहा है, पर प्रत्येक देश, भेस, दिशा में प्रेम का रूप धारण करके भी फैल रहा है।[४]

जैसे कागज़ों को गोंद जोड़ देता है, चूना पत्थरों को जोड़ देता है, सरेश लकड़ी को जोड़ देता है, वैसे ही आत्माओं को जोड़ने वाला आत्मा का आकर्षण है। हां, हमारी आत्मा क़ो परमात्मा के साथ जोड़ने वाला गोंद 'प्रेम' है। हमारा आपा निर्मल होकर आत्मा है, साईं जो कि सदैव है, वह 'परम आत्मा' है। 'आत्मा' को मिलाने वाला गोंद 'प्रेम' है, आत्मा को मिलाने वाला और कोई साधन नहीं है।[५]

कवि, ज्ञानी, और प्रेमी भाई नन्दलाल जी अगम स्रोत से तृप्त होकर जब घर आए, तो आपका प्यारा दास आपको देखकर प्रसन्न हो गया। उसने आज आपके मुरझाए और पीले पड़े चेहरे पर सौंदर्य देखा,[६] सौंदर्य की खुशहाली देखी, अधरों पर मुस्कराहट देखी, मस्तक पर चमक देखी नैनों में चमक देखी[७] कदमों में एक फुरती और बाहों में शक्ति की चाल पर उसकी नज़र पड़ी। हां उसकी दृष्टि इन सब को देखकर पूर्णतया शीतल हो गई। जब शीतल दृष्टि ने और टकटकी

---

१. मन सोइआ माइआ बिसमादि।। (गउड़ी म: ५)

२. सिमरि सिमरि गुरू अपुना सोइआ मनु जागाई।
पुनः—मिटिओ अधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी।।

३. जत्र तत्र बिराजही अवधूत रूप रिसाल। (जापु जी)

४. जत्र तत्र दिसा विसा होइ फैलिओ अनुराग (जापु जी)

५. साच कहौ सुन लेहु सभै जिनि प्रेम कीओ तिनि ही प्रभ पाइओ। (पा: १०)
तथा—प्रेम करे प्रभु पाइअत है। (पा: १०)

६. नानक सोहागणि का किआ चिहनु है अंदर सचु मुख उजला, खसमै माहि समाइ।। (वार सूही म: ३)

७. रस भिंनिअड़े अपुने राम संगे से लोइण नीके राम।। (बिलावल महला ५ छंत)

बांधकर देखा तो अपने प्यारे का उत्साह मुलतान वाले स्वस्थ रंग से भी बढ़-चढ़ कर प्रज्वलित था। इस प्रकार का दर्शन करके प्यारा दास खुश हो गया और खुशी से आंसू भर आये उसने अपने स्वामी के चरणों पर सिर रखा और अपनी दृष्टि से ही बता दिया कि अपने स्वामी को इस तरह का रंग लगने से उसे कितनी प्रसन्नता हुई है।

शाम हो गई है, अंधेरा हो रहा है, बढ़ता जा रहा है और पैर-पैर पर सहम भरा होता जाता है, गहरा होता जा रहा है। अचानक गगन मण्डल में छा रहे अंधेरे की गहराई में अदेश दमक उठा, हां, प्रकाश की अगणित ज्योतियां जल उठीं। प्रकाश से सौंदर्य की फुहार पड़ने लगी। भाई साहब अपने आंगन के चबूतरे पर बैठे हैं। दास कामकाज से निपटकर पास आकर बैठ गया है। हो तो दास, पर पुराना है और दर्दमंद है और प्यार वाला तथा सब कुछ जानने वाला होने के कारण कुछ खुला हुआ भी है। प्यार और छूट तो इकट्ठे ही रहते हैं, प्यार रहित छूट बेअदबी के आंगन में घुसती है। प्यार वाली छूट सम्मान की गोद में रहती है। हां, प्यार के कारण चिकने हो चुके और छूट के कारण पिघले हुए सेवक ने अब पूछा, "आग़ा मन तो नहीं चाहता कि आपको विचलित करूं, आप सुखी बैठे हैं, मगर आज आपको सुखी देखकर सुख के हिस्से में से अनुग्रह लेने को जी चाहता है।"

नन्दलाल जी-कहो बेटा, खुल कर कहो!

सेवक-आप बड़े चाव से यहां पर आये थे, फिर आकर आप एकान्तवासी हो गये थे, एक ओर होकर बैठ गये थे। फिर इस तरह से पीले पड़ गये, इस तरह दुर्बल हो गये जैसे कि कोई रोग लग गया है। मैंने उस समय आपको कष्ट के बढ़ाने के भय से नहीं पूछा था, पर जिस तरह जलती हुई लकड़ी की तपिश से दूर पड़ी हुई लकड़ी भी धुआं निकालने लगती है, वैसे मैं भी अंदर ही अंदर जलता रहा कि हाय मालिक कष्ट में क्यों है, खुश क्यों नहीं होता, सुखी क्यों नहीं है? आज आपको अत्यन्त प्रसन्नता वाली दशा में देखकर पूछता हूं कि वह क्या था जो आपको दुखी कर रहा था और यह क्या है जिससे आज खुशी लौटकर आ गई है?

नन्दलाल-'सम्पूर्ण गुरू' जी-तुझे पता है कि मैं यहां पर प्रियतम की खोज में आया था?

जी हां, 'सम्पूर्ण गुरू' जी-क्या यहां मौजूद था?

नन्दलाल-सम्पूर्ण गुरू ही नहीं, गुरू और परमात्मा के दूत दोनों के गुणों का जामाए-औ साफ (गुणों का घर) यहां पर मौजूद था। मेरा तो दिल काफ़िर हो गया था, साईं के साथ युद्ध करने वाला नहीं, पर परीक्षा लेने वाला, अपने प्रियतम की परीक्षा लेने वाला। मैंने धारणा धारण की कि यदि वह जिसके पास मैं सिर को बेचने के लिये आया हूं अन्तर्यामी है, तो मेरे मन की बात को

जानकर मुझे बुलवा ले और यदि वह न जान सके और मुझे न बुलवाये तो मैं जान लूंगा कि अंतर्यामी नहीं है। यह सोचकर घर पर ही बैठ गया था।

सेवक–फिर इतने तड़पने, सूखने, शोकातुर हो जाने की ज़रूरत क्यों हुई थी?

नन्दलाल जी–बेटा! पर्याप्त काल से इस पवित्र हस्ती का आकर्षण मन में घर किये हुए था, मैं बड़े उत्साह और चाव से भरकर आया था। यहां आकर उत्साह को रोका और नया नियम धारण कर लिया। अत: उससे शरीर तो बैठ गया मगर गहन मर्मों में बसने वाला आकर्षण तो टूटकर उतर जाने वाली वस्तु नहीं था। वह आकर्षण, सोच विचार, वाणी का पाठ करके, तौल तौलकर शनै: शनै: अंतस में धँसा था। कोई नई लगाई हुई पौध नहीं थी, जो कि चुटकी से उखेड़ी जा सकती। सो अंदर द्विविधा हो गई, यदि मैं रोकता तो वह गहरा आकर्षण दर्शनों के लिए उठ भागता। मन की गृहकला शरीर के बल के शत्रु है। इस रोक से आकर्षण और अधिक बढ़ गया। जब उसे शारीरिक तौर पर रोक लिया गया तो वह चिंता बनकर मन को भी खाने लगी। अंतस ने फिर ध्यान बांधा। अदृष्ट का ध्यान क्या? उस ओर प्यार की लौ लगाई कि आप अंतर्यामी हैं, हाय मुझ बेसमझ की बांह पकड़िये, अपने पास आ जाने की आप आज्ञा भेजिए। इस तरह प्रेम की अग्नियाँ भड़कीं कि उसने मुझे खूब जलाया। यह कहते हुए भाई जी के नयन फिर भर आये, ऊपर को उठे और रंग में बंधे हुए बोले–

बेटा! कलमदान और कागज़ उठाकर ले आ। दास भाग कर गया और कलमदान और कागज़ पास लाकर रख दिये और साथ ही शमादान जलाकर रख दिया। भाई जी ने कलम पकड़ी और लगे लिखने और यह कुछ लिखा–

दिले मन दर फिराक़े यार बिसोख़त।
जाने मन बहिरेआं निगार बिसोख़त।
आं चुना सोख़तम अज़ाँ आतिश।
हरकिह बिशुनीद चूं चनार बिसोख़त।
मन न तनहा बिसोख़तम अज़ इश्क,
हमह आलम अज़ीं शरार बिसोख़त।
सोख़तम दर फिराके आतिशे यार।
हमचु कीमीया बकार बिसोख़त।
आफरीं बाद बर दिले गोया।
कि ब-उमीदे रूये यार बिसोख़त।[२]

१. यह दीवान गोया (भाई नन्दलाल जी) की १४वीं ग़ज़ल है।
२. उपरोक्त ग़ज़ल यह फारसी के (एक ग़ज़ल के तोल में) निकट रहकर अनुवाद की गयी है।

अर्थात्–

ग़ज़ल

यार के वियोग से, हाय दिल जल गया है,
उस सुन्दर के दर्शनों की तड़प में ज़िन्दगी को जला रहा है।
हाय! मुझे इस प्रकार उस आग ने जलाया है।
जिसने सुन लिया है वह चुनार की भांति जला है।
इश्क की आग मुझ अकेले को ही नहीं लगी है।
इस चिंगारी ने सारे संसार को जला दिया है।
प्रियतम के वियोग ने मुझे इस प्रकार जलाया है।

जिस प्रकार रसायनज्ञ ने रसायन को जलाया हो। हे दिल! तुझे शाबाश है, तूने प्यारे के मुखड़े के दर्शन की आशा में आपे को सुखा लिया है।

यह लिखकर आपने कलम और काग़ज़ को हाथ में से रख दिया। नयन, जिन में अश्रु भर रहे थे और फिर पश्चाताप के धुएं से गुबार वाले हो रहे थे, चमक उठे। दो-तीन ठण्डे श्वांस आये, तबियत हल्की हो आई, मल खिल उठा और मुस्कराये।

सेवक ने फिर साहस किया: आग़ा! क्या मेरे पूछने से आपको कोई कष्ट हुआ है? हाय! यदि मुझे पता होता तो मैं पूछता ही नहीं।

नन्दलाल जी–कष्ट नहीं, बेटा! दिल की पीड़ा और जलन की याद आ गई थी, मैंने कहा कि मन की उस आग को झेलने के चित्र को ही लिख दूं। अक्षर हाथ बाँधकर आ खड़े हुए थे, उस समय के भावों को लिख लिया है, ये कभी किसी को स्वाद देंगे।

सेवक–फिर क्या अब आप सुखी हैं? वहां पर क्या घटित हुआ? परमात्मा अवतार तो गुरू सिद्ध हुआ?

नन्दलाल–हां।

सेवक–आपको जो स्वामी मिला है क्या वह उसी तरह का है जिस तरह कि आप मेरे लिये सुखदाई हैं?

भाई जी–(हंसकर)–मैं कौन कीट हूं, मैं किस गनणा में हूं, वह तो कामिल (पूरा) गुरू है, वह तो आत्मीय रसूल है, वह तो अवतार है। यह कहते हुए आपके नयन फिर भर आये, शुक्र और उत्साह ने आंखों के कटोरे लबालब भर दिये, प्यार के अश्रु बहने लगे। फिर नयन बंद हो गये, कलम फिर पकड़ी और काग़ज़ के सीने पर अश्रु बहाने लगे। कुछ समय पश्चात् यह कुछ लिखा गया–

दोनो दुनिया दर कमंदे आं परी रूख़सारे मा।
हर दो आलम कीमते यक तारे मूए यारे मा।
मा नमे आरेम ताबे ग़मज़हए मसताने ऊ।
यक निगाहे जां फ़ज़ाइश बसबवद दरकारे मा।
गाहे सूफी गाहे ज़ाहिद गाहि कलंदर मेशवद्द।
रंगहाये मुखतलिफ़ दारद बुते अय्यारे मा।
कदरे लाअले ऊबजुज़ आशिक नदानद हेचकस,
कीमते याकूत दानद चश्मे गौहर बारे मा।
हर नफ़स गोया बयादे नरगसे मखमूरे उ,
बादहाय शौक में नोशद दिले हुशियारे मा।[1]

अर्थात्–

ग़ज़ल (अनुवाद)

दीन और दुनिया उस यार की कमंद में बंध रहे हैं।
जिसके एक केश के दीदार का मूल्य दो जहान हैं।
उसके मस्त नयन मटकों को हम सहन नहीं कर सकते,
हमें तो बस प्राण भरने वाली एक निगाह की ज़रूरत है।
कभी सूफी, कर्म कांडी, कभी कलंदरों वाला भेस है,
उस कौतुकी प्रियतम की सूरत बहुरंगी दीखती है।

मेरे लाल का मूल्य आशिकों के बिना कौन पा सकता है? मेरी आंखों में से मोती बरसते हैं, मुझे प्रियतम का पता है। मैं दमदम उन 'नरगिस जैसे नशीले' नयनों को याद करता हूं, अब मेरा होशियार दिल प्यार की मदिरा पीता है।[2]

कवि शिरोमणि जी अब अपने प्यार वलवले को कागज़ के हवाले कर चुके तब सेवक ने फिर दिलेरी की और पूछा। अब आपने अपनी मनोकामना पूरी कर ली है? शुक्र है।

नन्दलाल जी–हां भाई पाठशाला में उस्ताद कामिल ने सभी अवगुणों को मिटाकर दाखिल कर लिया है। झूठी विद्या तो समय लेती है, यह सच्ची विद्या भी समय की है, पर उन रहस्यों के द्वारा राज़ों को खोलने वाले कारीगर ने मेरे अन्तस्तल में वह कुछ दिखाया है और नई रेखाएं अंकित कर दी हैं और वह नीरोगता ला दी है कि मैं बुड्ढ़ा अपना नया जन्म हुआ समझ रहा हूं। माता के

१. भाई नन्दलाल जी की यह दूसरी ग़ज़ल है।
२. सतिगुर कै जनमे गवनु मिटाइआ।।

गृह में जन्म पर तो हैरानी, परेशानी वाली दशा हुई होगी, जिसका लक्षण रोना था, पर इस नये जन्म में उत्साह से भरा हुआ आश्चर्य है; चाव भरा वैराग्य है, शुक्र वाला, स्वाद वाला। दृष्टिमान की असारता और निर्दयता से कष्ट सहन करके उखड़ी हुई वृत्ति वाला घबराहट से भरा हुआ वैराग्य नहीं है, हां बेटा! पैसे के मुकाबिले में मोती और लाल मिल जाने वाला, पैसों से वैराग्य है और मोतियों से चाव है। पर इस चाव में जंगली उत्साह नहीं है। शुक्र, रस, प्रार्थना के रंग भरे पड़े हैं। 'वाइ बर इलमे मा'। हां सारी उम्र पढ़ता रहा, पढ़ते-पढ़ते आधी शताब्दी व्यतीत हो गई है। यह मन्दगति का ऊंचा प्रभाव, यह होशियारी की मस्ती, यह रोम-रोम में नाम के स्मरण का प्रवाह प्रवाहित हुआ, जो 'कादरे मुतालिक' 'समर्थ प्रभु' के प्रत्यक्ष खड़ा कर रहा है, जिसे पहले कभी नहीं देखा था। वाह वाह बावला! फिर नैन भर आये और गायन किया:

गोया ख़बर अज़ यादे ख़ुदा याफतहएम।
ईं जामे लबालब अज़ कुजा याफ़तह एम?
जुज़ ताबले हक्क नसीबे हर कस न बवद,
कीं दौलते नायाब कि मा याफतह एम।[१]

अर्थात्–

हे सखि! मुझे अब प्रभु की स्मृति की सूझ प्राप्त हो गई है। यह भरा हुआ प्याला कहां से मिला है और किस चोजी ने इसको दिया है? हे सखि!

यह सत्य की खोज के बिना किसी को नहीं मिलता। यह दौलत मिलनी दुर्लभ है, जो दाता जी ने दी है।

देख भाई! मुझे साईं ने जो धन दिया था, उसमें से तेरा भाग लिया हुआ था, अन्न जल का खर्च उसमें से निकलता है, मेरे लिये भी और तेरे लिये भी और मुझे सच्चा धन मिला है, इसमें भी तेरा हिस्सा होना चाहिये, चल, कल को तुझे भी मैं दाता जी के द्वार पर ले चलूं, इस ईश्वरीय स्मृति आबे-हयात अमृत का यदि एक घूंट तुझे भी मिल जाये तो हमारे भाग्य इकट्ठे रहें। सेवक-नयन भरकर-सच है आग़ा! सच है तू बड़ा दाता है, आका स्वामी है, नामदार है, तू युगों तक जिये। पर एक अर्ज़ है, यदि तूने दौलत की दुनियां में मेरा हिस्सा रखा है तो आप ही मेरा दाता बनकर यदि अब ईश्वरीय स्मृति में मेरा हिस्सा डालने लगा है तो यह धन भी मुझे अपने ही हाथों से अपने पास से दे वह धन अल्लाह ने मुझे अपने हाथों सीधा नहीं दिया था, इस धन को भी वह आपके हाथों से दिलवाये (आकाश की ओद देखकर) हे अल्लाह! मेरी प्रार्थना सुन!

---

१. यह भाई जी की रुबाई है जिसका रूपान्तर प्रस्तुत किया है।

भाई नन्दलाल जी आज आश्चर्यजनक रूप से द्रवित थे, भक्तिभाव का आनन्द ले रहे थे, अमृत रस का जाम जो लबालब भरा हुआ मिला था, उसे पी रहे थे, और तृप्त हो रहे थे। देखिए कि जब 'हुजूरी' आकर रंग जमाती है तो प्रत्येक वस्तु वही रहस्य बताती है। सेवक ने, जब अपनी प्रार्थना कर दी, तो भाई साहब के रोंगटे खड़े हो गये, उसके भक्ति भाव और प्रेम का कमाल एक आश्चर्यजनक झन्नाहट कर गया, विचार ने कहा देख! तू अपने शौक का नाज़ मत कर अपनी विद्या पर गर्व मत कर, देख अल्लाह अपने प्यार के ज्योति-कण जब बांटता है तो वह न मालिक देखता है और न नौकर, न विद्या देखता है और न निरक्षरता, न गरीबी को देखता है और न अमीरी को, देखो इस अनपढ़ को प्यार की कितनी देन प्राप्त हुई है, मूर्ख अनपढ़ है, पर कैसे नुक्से पर खड़ा है।

फिर बोले–भाई तेरे भरोसे वाले दिल को बलिहारी, पर यह मार्ग दूसरा है, चाबियों के स्वामी मुझे आज मिले दाता जी हैं। मुझे दौलत प्रदान की है। बांटने की अभी आज्ञा नहीं है, अत: तुझे वहां से ही भिक्षा लेकर दूंगा।

सेवक–शुक्र है कि आपको मिली है, आपके पास आई है, यह सच्ची माया आकर जा नहीं सकती, अब यह आपके पास ही रहेगी। मुझे कोई जल्दी नहीं जब मिलेगी तब सही। अभी मुझे आपके दर्शन, अब वाले सौंदर्य से भरे हुये दर्शन होते रहें और एक ईश्वरीय रंग वाले शरीर की सेवा ही मेरे लिये काफी धन है। मुझ मूर्ख को, कंगाल को, यदि दौलत मिल भी गई तो मैं उसे पचा नहीं सकूंगा, आप बुद्धिमान हैं, आप संभाल कर रखें और मैं आपकी सेवा में ही प्रभु की सेवा देखूं। जैसे आग से मिलकर लोहा गर्म हो जाता है, उसी तरह प्रभु के प्यारे उसकी ईश्वरीयता से मिलकर ईश्वर रूप हो जाते हैं, आपके दर्शन खुदा के साथ लगकर खुदा रूप होकर मुझे दीख पड़ें।....हां जी अब आराम कीजिये।

नन्दलाल जी–तू सो जा और मुझे अभी जागना है, मैं किसी स्वाद में हूं, सोने से कहीं ऐसा न हो कि बेसुधी आकर मुझे छल जाये।

: ६ :

जीवन का मनोरथ[१] पाकर, जीवन की इच्छा[२] से निवृत्त होकर जीवन पद[३] पर पहुंचकर नन्दलाल जी अपने रंगों में प्रसन्न हैं और आनन्दपुर में आनन्द ले रहे हैं। सतगुरू जी की प्रत्यक्षता प्राप्त है और दिल में प्रत्यक्षता का पाठ अब सदैव जारी रहता है, नयनों में प्रत्यक्षता दीखती है और वह ओझल नहीं होती। समय व्यतीत होता गया और आनन्द बढ़ता गया। अमृत वेला के और संध्या के समय के

१. नाम स्मरण की देन।
२. सांसारिक जीवन की इच्छा।
३. वास्तविक आध्यात्मिक जीवन।

सत्संग में सतगुरू जी के दर्शन और कीर्तन का रंग सुखों के पालने में झुलाता रहा। सतगुरू जी के चरणों का प्रेम बढ़ता गया और निकटवर्ती होने के कारण सतगुरू जी के हर हाल से वाक़िफ होते गये थे। ज्यों-ज्यों निकट होकर देखा, त्यों-त्यों सतगुरू के कमाल और उनकी आध्यात्मिकता का रहस्य खुलता गया। अंत में भाई जी ने, जो कुछ भीतर की आंखों से देखा था, उसे मानवीय अनुभव से भी देख लिया कि सतगुरू जी ईश्वरीय ज्योति हैं। सतगुरू जी के प्रेमी और ध्यानी भाई जी सतगुरू जी द्वारा भाई जी ही कहकर पुकारे जाते थे और प्रति दिन नई अनुकंपा होती रहती थी। अमृत वेला में जागना, भाई जी ने सतगुरू जी के एक प्रेम भरे स्वरूप के वर्णन में दिखाया है कि अनुकंपा हो जाने के दिन से आपने अमृत वेला में जागने का अपना स्वभाव ही बना लिया था–

ऐ ज़ुल्फे अंबरीने ते गोया नक़ाबे सुबह।
पिनहा चुँ ज़ेरे अबरे सियाह आफ़ताबे सुबह।
बेरूं बरामद आ महे मन ज़ि ख्वाबे नाज़।
सद ताअना में ज़नद बरुख़े आफ़ताबे सुबह।
बा दीदह ख्वाबनाक चूं बेरूं बर आमदी,
शरमिन्दह गशत अज़ रुखे तो आफ़ताबे सुबह।
अज़ मकदमे शरीफ जहां रा दिहद फिरोग।
चूं बर कशद्द नक़ाब जि रुख आफताबे सुबह।
बेदारी अस्त ज़िदगी ए साहबाने शौक,
गोया हराम करदम अज़ अइंदह ख्वाबे सुबह!

अर्थात्:–
आपके चेहरे पर जो काले केश छा रहे हैं,
मानो वह सुबह के मुंह पर घूंघट छाया है।
अथवा वह 'बाल सूर्य' जो कि सुबह में उदित हो रहा था।
उसे अब काले बादल छिपा रहे हैं।
लाड़ करने वाली उस नींद को पूरा करके,
मेरे चांद बाहर आकर मुस्करा रहे हैं।
सूर्य उनकी ओर देखकर उदित हो रहा है।
प्रभात सूर्य को सैकड़ों उलाहने दे रही है।
नींद की मस्ती से भरी हुई आंखों के साथ जो आये हैं,
उस मुख को देखकर सुबह वाला सूर्य लज्जित हो रहा है।
जब अमृत वेला में सूर्य चेहरे पर से घूंघट उठाता है,
वह जगत को चमकाता है कि सतगुरू जी आ रहे हैं।
जो शौक़ वाले हैं, वे तो जागने को अपने प्राण समझते हैं।

हे सखी। इसलिये गोयाजी' ऊंचा कहकर सुना रहे हैं–
आज से सुबह की नींद हराम कर दी है।
हे सखि सुबह वाली नींद को लुटा रहे हैं।

इस तरह गुरू जी के प्रेम में डुबे हुये समय व्यतीत होता रहा। भाई जी सतगुरू जी के ध्यान में मस्त होकर और प्रभु के नाम में मस्त होकर रंग में रंगे हुये सुख से दिन व्यतीत करते रहे और यदि कभी प्रेम में आकर तबियत 'गोया' होती, अर्थात कुछ कहने की ओर रुख करती तो कुछ लिखते। कविता का स्फुरण दर्शनों की अग्नि ने भड़का दिया लगता है। 'नयन दर्शन' में मस्त, भाई जी ने एक ग़ज़ल कही–

मे बुरद्द दीनो दिलम ईं चस्मे शोख,
मे कशद अज़ चाहे ग़म ईं चश्मे शोख़।
काकुले ओ फितनह जन ईं आलम अस्त,
रौनके बखशे जहां ईं चश्मे शोख।
ख़ाके पायश रोशनी दिह दिल बवद्द,
हादीए राहे खुदा ईं चश्मे शोख।
कै कुनद ओ सूए गुल नरगस निगाह।
हरचिह दीदर लज्ज़ते आं चश्मे शोख़।
हर क़िरा 'गोया' गुबारे दिल बिशुस्त,
आं कि दीदह यक निगाहे चश्मे शोख़।

अर्थात्–
यह चंचल आंख विनम्र दिल को ले गई है
यह चंचल आंख दुःख के कुएं से बाहर खींच रही है।
प्यारे की ज़ुल्फ़ ने जगत को मोहित कर लिया है,
यही चंचल आंख रौनक़ दे रही है।
चरणों की धूल ने दिल को चमका दिया है,
यह चंचल आंख 'राहे रब' (ईश्वरीय मार्ग) की अगुआ बन गई है।
जिसने इस चंचल आंख का स्वाद ले लिया है,
वह नर्गिसी फूलों को तुच्छ समझता है।
जिसने एक बार इस चंचल आंख को देख लिया,
उसने दिल की गर्द को मानो धो दिया है।

भाई साहब अब इतने प्रेम में थे कि सतगुरू के दीदार के सिवाय उन्हें हर ओर, हर रंग में और हर दशा में और कुछ दीखता ही नहीं था। शूरवीर सतगुरू

१. भाई साहब की सतारहवीं ग़ज़ल का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

जी को तो कुछ और ही अच्छा लग रहा था। वे निश्चिन्त पर सिखों का उद्धार करने वाले जिज्ञासु रूपी गोटों को जिताने वाले, चाहते थे कि भाई जी अब कुछ दूरी पर चले जायें। तेरे चोज़ों को तू ही जानता है। जगत तो इतने महान प्रेमी सेवक को पाकर एक क्षण के लिये भी न बिछुड़ने दे, सारा न्योछावर हो जाये, पर आपे से हर तरह बेपरवाह और बेखबर और आवश्यकता-शून्य दाता पल्लू से लगे हुओं का सुन्दर ढंग से उद्धार करने वाला, सिखों की भलाई करता है और उनकी भलाई के लिये ही चिन्ता करता है। एक दिन गुरू जी भाई जी से कहने लगे–"तुम्हारा गृहस्थ तथा उदास स्वीकार हुआ है, तुम त्यागी होकर घर से आये हो, फिर से तुम जगत में जाओ, काम करो, फिर से उलझनों में पड़ो और फिर सुरति सुलझी रहे, अब इस प्रकार के अभ्यास की आवश्यकता है।"

भाई जी–दाता! बिछुड़ना मृत्यु है, आप से दूर रहकर कैसे जीवित रहूंगा?

गुरू जी–जैसे गुरू बाबा ने बताया है, "ऊडै ऊडि आवै सै कोआ तिस पाछै बचरे छरिआ"।। स्मृति जीवित रखती है, स्मृति पालन करती है, नाम जीवन है, स्मृति जीवन है, स्मरण मेल है, स्मरण में रहने से वियोग नहीं होता।

मन से मन और सुरति को मिला चुके प्यार के पुतले आज्ञा में जीने वाले चल पड़े और चलते गये। स्वरित हो चुके तारों को थिरकाने वाला कोई और तार होता है, उस तार के थिरकने से थिरकते हुये आप आनन्दपुर से चले। अपने कदमों को देखते हैं कि किधर को ले जाते हैं। कदम आगरे को ले गये। भाग्य की डोरी जिस वाहिगुरू के हाथ में है, अब उसके साथ प्राण एकस्वर हो रहे हैं, वह कौतुकी ले गया और उसने आप ही काम बना दिया। शहंशाह के बेटे शाहज़ादा मुअज्ज़म के मीर मुंशी बन गये। कहां पर ग़ज़नी के मक्तब और निश्चिन्त जीवन, कहां पर सभी प्रेमियों का वियोग और एकाकीपन, कहां पर अपने देश में जो जन्म भूमि न होने के कारण परदेश से अपरिचित हैं, अकेले आकर टिकना। वाह, वाह एकाकीपन! फिर गृहस्थ, काम, शोभा, मान, सम्मान, बच्चे, परिवार सुख। फिर कहां पर, सबसे वैराग्य; फिर एकाकीपन। श्री दरबार साहब के अमृत सरोवर में डुबकी और आनन्दपुर में प्रियतम के देश और अपने आप डाल रखी बाधा की कै़द प्रेम और प्रेम की कसकें। हां, फिर दर्शन, दया, प्रेमरस के प्याले; 'लबालब कुनो दम बदम नोश कुन, ग़मे हर दो आलम फरामोश कुन"[१] वाली अवस्था। जीवित मुक्ति, जीवन मुक्ति का रस, प्रेम भरी मुक्ति का रस, पता नहीं दुनिया कहां पर है और ग़म कहां पर है। भाई जी हैं, प्रियतम जी हैं, और प्रेम के झूले और सुरति की हिलोरें हैं। आपे के अपने निखरे

---

१. इसका अर्थ है–लबा लबा भरकर दम बदम पीते रहो, इहलोक तथा परलोक के गम को भुला दो। तात्पर्य नामरस से है।

हुए रंग हैं और आपे के साईं के रंग में गोते और डुबकियां हैं। यहां देखिये कि किस तरह सूझ वाले ने अपने से अलग करके किसी और भलाई के लिये प्यारे को जगत की अग्नि में भेज दिया है और कामों में लगा दिया है। ठीक है, कुंभकार बर्तन बनाते समय उन्हें लकड़ी से कठोरता है, पर ठोकर तब सहन की जाती है जब कुंभकार बर्तन के अंदर अपने हाथ से मिट्टी को सहारा देता है। हां वह अंदर से दिया हुआ हाथ साबित रखने के लिये सहारा होता है। लगभग एक वर्ष तक आनन्द लेकर अब विरह में, प्यारे के संयोग का अंतस में आत्मा में रस लेने के लिये परदेश में आये हैं। यह समय कुछ लम्बा है। कई वर्ष इस तरह व्यतीत हो गये हैं। बीच-बीच में आज्ञा पाकर सतगुरू जी के दर्शन करने के लिये आनन्दपुर जाते रहे हैं, निहाल होते रहे हैं और इस रंग का आनन्द लेते रहे हैं। आज्ञा पाकर मुलतान में भी चक्कर लगाते रहे हैं और परिवार से भी मिलते रहे हैं। आप की अंतरीय अवस्था ऊंची हो रही है, उनकी अपनी ही रचना से इस आध्यात्मिक ऊंचाइयों का स्पष्ट रूप से पता चलता है।

एक-दो के अतिरिक्त आपके आगरे में निवास का विशेष विवरण नहीं मिलता है। बादशाह औरंगज़ेब को किसी अरबी रचना के अनुवाद से विद्वानों द्वारा किये गये अनुवाद से संतुष्टि न हुई। शाहज़ादा मुअज़्ज़म ने कहा—इसकी नकल मुझे दे दीजिये शायद कुछ समय के पश्चात् मैं इस पर कुछ प्रकाश डाल सकूं। शाहज़ादा को अपने मीर मुंशी की विद्वत्ता पर बहुत विश्वास था, अतः वह उस रचना को घर पर ले आया और उसे मीर मुंशी को दे दिया। मीर मुंशी ने प्रभु द्वारा मिली प्रतिभा द्वारा उसका समाधान कर लिया। जब शाहज़ादा ने उसका समाधान पिता को पेश किया तो उनकी तृष्टि हो गई कि यह ठीक और सही है। पर बादशाह को हैरानी हुई कि इतनी अच्छी व्याख्या शाहज़ादे की योग्यता से बहुत ऊंची बात है। उसने पूछा कि क्या इस पहेली को तुमने स्वयं सुलझाया है अथवा किसी से मदद ली है? शाहज़ादे ने बात नहीं छिपाई और सच सच कह दिया। औरंगज़ेब ने मीर मुंशी से मिलने की इच्छा प्रकट की।

दूसरे दिन बादशाह की कचहरी में भाई साहब हाजिर हुए। उस समय सबसे पहले उसी समस्या के समाधान के बारे में बात चली।[१] जिस समय आपने उसके सभी अंगों पर प्रकाश डाला, तब आपकी अरबी, फारसी की योग्यता, विषय को

१. शोक है कि 'यह समस्या क्या थी' का पता नहीं रखा गया। कई सज्जन लिखते हैं कि यह कुरान की एक आयत थी। यह कौन सी आयत थी और उसमें क्या समस्या थी, और भाई साहब ने उसका क्या समाधान बताया था, इसका कोई पता नहीं। कई लिखते हैं कि किसी अन्य साम्राज्य से आया हुआ कोई परवाना था और उसमें से कोई बात नहीं निकलती थी, पर उस रचना में क्या था, इसका भी पता नहीं चलता।

समझने की योग्यता और विषय की तह तक पहुंचने की योग्यता को देखकर औरंगज़ेब चकित रह गया। आपको पांच सौ रुपये का पुरस्कार[१] मिला और सम्मान सहित आपको विदा किया गया। परन्तु यह पुरस्कार विषैला सम्मान था। आपके दरबार में से चले आने के बाद औरंगज़ेब ने शाहज़ादा से कहा: देखो बेटा!

इह तो हिन्दू है मतिवंदा। है अनीति मुझ नहीं सुहंदा।
दीन बिखै इसको ले आवहु। ज्यों क्यूँ करि नीके समझावहु॥२६॥
अस नर दीन बिखै जबि होइ। चलहि शरह मैं सम ही कोइ।
हिन्दुनि महि मतिवंत न चहीअहि। करहि धरम दृढ़ तिन को लहीअहि॥२७॥
तुरक दीन मैं जबि अस आवै। नीके बिधि कर शरह बधावै।
इस शहज़ादे को समुझाइ: 'ज्यों क्यों दीन विखै इस लियाइ।'

[सूरज प्रकाश]

शाहज़ादा सिर झुकाकर अपने डेरे पर चला गया, भाई जी को बुलवाकर कहा, "ऐ रौशनीए तबअ तू बर मन बला शुदी"[२] वाली बात आपके साथ घटित हुई है, बादशाह आपको मुसलमान के रूप में देखने का इच्छुक है। यदि आप खुशी से मुसलमान हो जायेंगे तो प्रसन्नता की बात है, शाह भी प्रसन्न होगा, आपको भी कोई बड़ा पद मिलेगा और यदि आपकी इच्छा न हो तो अपने आप विचार कर लीजिये। मैं तो आपका प्रशंसक हूं, मैं कोई ज़बर्दस्ती नहीं करना चाहता, मैं तो यथाशक्ति आपकी सहायता ही करूंगा। पर मैं विवश हूं और मैं आपकी रक्षा भी नहीं कर पाऊंगा।

नन्दलाल जी—आप मुझे इस महान गुप्त मन्त्रणा देने की अपेक्षा यदि विदा होने की आज्ञा दे दें तो अपना प्रबन्ध स्वयं कर लूंगा। दीन को बदलने की मेरी कोई इच्छा नहीं है, क्योंकि दीन तो मुझे मिल चुका है, अब उसकी खोज की कोई आवश्यकता नहीं है। शाहज़ादा ने कहा कि जैसे आपकी इच्छा हो, कर लीजिये, आप प्रसन्न रहें, मैं तो आपकी सेवाओं को भूल नहीं सकता, जब अल्लाह ने आपको कोई अवसर दिया, तो आपको मुझसे ज़रूर मिलना होगा। अब मुझे कुछ मत बताइए और अपनी समस्या का समाधान स्वयं कर लीजिये और यदि कभी आवश्यकता पड़े तो मुझे गुप्त रूप से पता देना। यों शाहज़ादा से विदा होकर अपने सत्संगी मित्र मीर दारोगा ग्यासुद्दीन को जा मिले। यह सज्जन जाति का सय्यद था और आगरे के शाही अस्तबल का मीर दारोगा था। दारोगों का सरदार और सय्यद होने के कारण इसे मीर साहब कहकर पुकारते थे। यह सज्जन पुरुष सत्संगी और भक्त था। भाई नन्दलाल जी की संगति में वह

---

१. पुरस्कार की बात भाई मेघराज जी ने लिखी है।
२. अपनी अक्ल अपने आपके लिए कष्ट का कारण बनी।

बहुत लाभ प्राप्त कर चुका था, नाम की लग्न में लौ वाला हो चुका था। सूफी कवियों और फकीरों ने जिस इश्क के गीत गाये हैं, वह इश्क मजाज़ी नहीं बल्कि इश्क हक़ीक़ी है, उस इश्क में ईश्वर का वर्णन है, इस बात को मीर ने सुन रखा था, पर नाम वाले पुरुष भाई नन्दलाल जी की संगति में अब उसे सचमुख नाम प्राप्त हो गया। भाई साहब जी उसे दिखा चुके थे कि कैसे अल्लाह का नाम उसका इश्क है। नाम जपकर और नाम में परिपक्व होकर दारोगा सुखी हो चुका था। जब भाई नन्दलाल जी ने अपनी समस्या उसे बताई, तो दरोगा बहुत उदास हुआ और फिर जब आपने इसका समाधान बताया कि मैं यहां से चुपचाप जाने वाला हूं, तो वह बहुत दुःखी हुआ क्योंकि उनके वियोग को वह अपनी हानि समझता था। एक ओर भाई जी का कष्ट, दूसरी ओर अपना वियोग। इसलिए दरोगा अब दोहरी चिंता में था। जिस हृदय में नाम का निवास था अब उसमें विरह का झटका आया। भाई जी ने समझाया और बहुत समझाया, तब भी दरोगे ने विनय की कि मैं साथ चलूंगा। दारोग़ा भाई साहब को केवल दोस्त ही नहीं समझता था, बल्कि अपना मुरशिद (गुरू) भी मानता था। इसलिए उसका मन प्रेम की विह्वलता में जो कुछ करना चाहता था उसके लिये गुरू की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा था। भाई जी ने बहुत सोचकर कहा कि हमें तो जाने दो और तुम नौकरी का त्याग मत करो छुट्टी लेकर बाद में हमसे आकर मिलना। यों सलाह करके एक रात को नन्दलाल जी चुपके से अपने कृतज्ञ और प्यार से न्योछावर होने वाले ग़ज़नी वाले नौकर सहित आगरे से चल पड़े और पड़ाव करते हुये आनन्दपुर को चल दिये। भाई साहब का नौकर अब उनका सत्संगी मित्र भी था और यों सुरति का एक सुखदाई आधार भी था। वाहिगुरू जी का खेल है। इस यात्रा के मध्य वह प्यारा सेवक वाहिगुरू को प्यारा हो गया।[१]

नौकर का क्या मूल्य? उस समय जब कि रुपयों में दास बिका करते थे, पर आज़ादी के अवतार, स्वंतत्रता के साईं साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के प्रेमी नन्दलाल अपने सेवक को भी सिख धर्म का दान प्रदान करके गुरू का सिख बना चुके थे। वह सेवक जो कि पुत्रों से भी अधिक प्रेमी था। इस तरह अपने प्रेमी और गुरू के सिख के अचानक वियोग के कारण आपका मन द्रवित हो गया। एक वियोग आया है एक आश्रय जो शारीरिक बिन्दु से इस समय एक ही निकट का आश्रय था, वह भी टूट गया। हां, अब परीक्षा की घड़ी है। भाई जी का मन सोचता कि मान सम्मान वाली नौकरी गई, एक और शाह का कोप वायु मण्डल में उमड़ रहा है, दूसरी ओर पानी देने वाला भी साथ न रहा। पर

१. भाई मेघराज जी ने लिखा है कि आप आगरे से लाहौर पहुंचे और वहां पर दास का देहांत हो गया।

भाई जी क़ांपते नहीं है। वे जानते हैं कि साईं के साथ सौदागरी का नाम इश्क नहीं है, बल्कि "जो किछु करे सो भला करि मानीअै हिकमति हुकमु चुकाईअै" सच्चा प्रेम है।

व्यक्ति का प्रथम चरण पशुत्व से निकल कर व्यक्ति और फिर देवता बनने का यह है कि मन में से पशु वृत्ति के स्वभाव को बदले। हां, बदलें, पर कत्ल न करें और इसे देवी स्वभाव में परिवर्तित करें। यह है मन को सुशिक्षित करना। हठ धारण करने वालों का काम है मारना। मन को मारने से शरीर नहीं रहता। मन मरता तो है हठों से और हठ करने से तो मन बल्कि कई बार उलटा चलता है और हठ पर तो अपना ही बल खर्च होता है। अतः हठ करने पर और मन के अधिक विद्रोही होने पर, तथा और अधिक हठ करने पर शरीर दुखी होता है। यदि मन विद्रोही न हो, हठों के सामने झुक जाये, तो मन स्वस्थता में अनुकूल होकर नहीं चलता, बल्कि उदास-सा, दबा घुटा-सा होता जाता है। 'मन हठि तरफ न जि पई जे बहुता घाले'[१] फिर मन को कैसे जीता जाता है? गुरू जी का उच्चारण है–"तरफ जिणै सत भाउ दे जन नानक सबदु वीचारे"। हां मन के साथ झगड़े करते हैं, इसी के साथ झंझट डाले जाते हैं और इसी को उपदेश देते हैं[२] और इसी से विचार होते हैं। इसी को कीर्तन सुनाया जाता है, और गुरुवाणी को पढ़कर विचार किया जाता है। यों अंतस में उस समय सावधानी पैदा होती है[३] जब हठ और बल[४] का प्रयोग प्रशुत्व से न किया जाय, पर यदि इसे सोच विचारकर शक्ति सम्पन्न और पुरोगामी ढंग से प्रयोग में लायें तो सावधानी अंतस पर नियन्त्रण रखने वाली शक्ति बन जाती है। सावधानी से नाम जपा जाता है। यों जब नाम का अभ्यास किया जाता है, तो उससे मन और शरीर निरोग हो जाते हैं और मन सुशिक्षित हो जाता है, ऊंचा, आपे पर नियन्त्रण रखने वाला और फिर आनन्दमय हो जाता है। हां सिख इसीलिये सिख है कि वह गुरू की मति को सीखे[५]। सीखना क्या है, अपने आपको सुशिक्षित करके ऊंचा करना है और किसी कमाल पर पहुंचना है। फिर आने वाले दुख, सुख, वियोग और जुदाई, कुड़वे, कसैले तजुर्बे और प्रत्येक तरह के कष्ट 'सीखने की मंजिल' के अभ्यास हैं, जिनके साथ विचार के आश्रय मन सबसे ऊंचे उठने की बात सीखता है। पशु वृत्ति के अटूट और गुप्त संबंधों के बंधन टूटते हैं। नाम अभ्यास के विचार से 'काम, क्रोध, लोभ, मोह, बस में हो जाते हैं और फिर शुभ गुणों की

१. हठु करि मरै न लेखै पावें। (गऊड़ी मः २)
२. मन ही नालि झगड़ा मन ही नालि सथ।। (वा सिरी राग मः ३)
३. प्रभ की उसतति करहु संत मीत। सावधान एकागर चीत।
४. जोरु न सुरती गिआनि वीचारि।। [जपुजी]
५. गुरू की मति तू लेहि इआने। (गऊड़ी मः ५)

सहायक, हां ऊंचे उठने की सहायक शक्तियां बन जाती हैं। पांचों कायापलट जाती हैं, और गुण होकर सहायक होते हैं[१]। अत: मन को न मारे, मन में से बुरे स्वभाव को मारे। मारे कैसे? उन्हें 'देव स्वभाव' में बदल दे। इसी तरह दुख सुख अभ्यासी को गिराते नहीं, पर वियोग की पीड़ा और गृहस्थ के संदर्भ उन्नति की सीढ़ी के डंडे बनते हैं, उसके लिये जो इस रास्ते पर चलता है।

भाई साहब जी को एक कठिन परीक्षा आ पड़ी। इससे आपने वैराग्य का प्रभाव लिया। सोचा कि जगत असार है, यह सराय है, जहां से चलना होगा। पर घबराकर यह नहीं कहा कि हाय ईश्वर अथवा गुरू जी! मैं आपका सिख हूं, मेरा प्यारा दास इस मुसीबत और भगदड़ के समय क्यों छिन गया है। भाई साहब अब भक्त हैं, ज्ञानी हैं, ज्ञाता हैं, जानते हैं कि कमाल यही है कि अंतस ऊंचा उठे, दुख-सुख, हर्ष, शोक अपने आपको अपरिचित और निम्न दीखें और आपा आपे के आधार पर आपे में टिके। फिर आपा आपे से उच्च, सच्चे स्थिर 'परमात्मा' की ओर ध्यान करे, जिसके प्यार और आकर्षण में यह निर्मल 'आपा' लगा रहे, उसी तरह जिस तरह 'आपा' निम्न रुचियों की ओर लगा रहता था। जब निर्मल आपा ऊंचा उठकर, ऊंचे, सर्वज्ञ और सदैव स्थिर परम आपे की ओर–परमात्मा की ओर आकृष्ट होता रहे–तो समझ लो कि सिख ने शिक्षा प्राप्त कर ली और वह सिख बन गया[२]। इस हिसाब में सोचने से फिर दुख-सुख, हर्ष-शोक, विरह, वियोग सभी अभ्यास का काम देते हैं। अत: परीक्षा मुश्किलें और दुख, मन को लगे हुए मन को बलवान करते हैं ठीक उसी तरह जिस तरह बांहों को बलवान बनाने के लिए मुगदर अभ्यास का काम देते हैं। है कठिन सबके लिए कठिन है। सच यही है। साईं स्वयं अपने प्रेमियों से प्यार करता है और कठिनाइयों के समय और परीक्षाओं में उनकी सहायता करता है, पर सिख–जिसे ऊंचा मार्ग सीखना है, वह यदि यह शर्त लगाये कि उसके सारे काम आसानी से पूरे हों तब ही तो वह इस मार्ग पर चलेगा, तब उसका आपा सुशिक्षित नहीं होगा, आपा तो और अधिक कमज़ोरी की ओर जायेगा। आपा सुशिक्षित, मज़बूत और ऊंचा तब ही होगा जब परीक्षा में से गुज़रे और वाहिगुरू जी की इच्छा की ओर देखता हुआ अपनी दुर्बलताओं को उस पर टेक रखकर जीते। ज्यों-ज्यों वह संघर्ष करेगा, त्यों-त्यों बलवान होगा। आपे को पशु भावों से हटकर देव भावों में पहुंचाना है, शिक्षा प्राप्त करना है, सुशिक्षित होकर सिख बनना है। यह सब कुछ गुरुमति ही सिखलायेगी। गुरुमति कहती है कि नाम जपो, जिससे मैल उतरे। नाम जपो

१. पंजे बधे महाबली करि सचा ढोआ।।' अर्थात ये पांचों महाबलि सच के मार्ग की सौग़ात बन जाते हैं, अर्थात निम्न रुचियां ऊर्ध्वगामी होकर ऊंच मन वाली बना देती है।

२. गुरू सिखी दा सिक्खणा शब्द सुरति सतिसंगत सिखे। (भाई गुरुदास)

जिससे आपे का और अपने ईश्वर का रस मिले और पशुवृत्ति के रस फीके लगें और वे ऊंचे रसों में पलट जायें। हां विचार का प्रयोग करो, इससे पहचान करो कि कौन से काम पशुओं के से हैं? कौन-से स्वभाव हैं जो ये नीच काम करवाते हैं? उनको समझकर समझो कि इन्सान अपने ख्याल में कहां पर पहुंच चुका है। अपने स्वभाव को इंसानियत में लाना है, अर्थात् पहले न्याय और सदाचार को समझना है, फिर नेकी भलाई और सेवा को सीखना है।[१] फिर ऊंचे उठकर देवस्वभाव धारण करना है, आपे में टिक जाना है, फिर स्वयं साईं के साथ लगकर उस परम तत्व के योग में टिकना है। यों उस स्वभाव में आकर गुरुमुख बनना है। वही जो कि 'दाता-कर्म' करवाता है। कंगाल सुरति वाला नहीं बनना। अर्थात् स्वभाव में, मन में, 'याचना की रुचि' को नहीं रखना। किसी के रूप का, धन का, धाम का, माल का, किसी से शोभा का, बड़ाई का किसी से सेवा की जरूरत मांगने वाला स्वभाव हां अंदर से मांग की इच्छा रखने वाले स्वभाव को परिवर्तित करना है। इच्छा रहित हो जाने को-ग़नी और आध्यात्मिक रस से तृप्त हो चुके स्वभाव को और देन प्रदान करने वाले रंग सुरति के भर जाने को 'दाता पद' कहा जाता है। यहां पर पहुंचकर हमारा स्वभाव अपने और दूसरों के दुखों को दूर करने वाला बनता है। साथ ही निर्मल आपे से आगे 'परम आपे' परमात्मा की ओर चित की रुचियों और वृत्तियों की स्मरण शक्तियां लगी रहती हैं। यह लगाव उच्च स्तर क़ा निरंतर अंतस का लगाव सुरति को नीचे नहीं होने देता, न तो भाव में, न स्वभाव में और न ही व्यवहार में। इस रंग में रहने से ऊंचे स्थान पर निवास मिलता है, सुख मिलता है और अमर हो जाया जाता है। यह रंग फिर मरते जीते बदलता टूटता नहीं; इस सारी विद्या सारी शिक्षा का नाम है 'नाम'-नाम की विद्या। यही गुरमति है जो इस विद्या की दाती है।

अत: भाई जी का देवता मन दिखावे के रुदन में नहीं गया, निर्मल प्यार के विरह में गया[२]। सेवक का अंतिम संस्कार ठीक ढंग से किया, उसके कल्याण के लिये सतगुरू जी के आगे प्रार्थना की, कि यह आपने जो पहले से अधिक भारी मुगदर उठाने के लिए भेजा है, मुझे शक्ति दीजिये कि मैं उसे उठाकर घुमा सकूं। अब मेरी दुर्बल भुजाओं में स्वयं ही बल दीजिये, जिससे मेरी सुरति को प्राप्त हो चुकी उच्चता इस बोझ से झुक न जाये, नीची होकर टूटे नहीं, बल्कि इस बोझ का सामना करके और अधिक बलवान बन जाये। फिर देन प्रदान कीजिये कि मेरी

---

१. ओइ दाते दुख काटनहार। जाकै संगि तरै संसार।।

२. नानक रुना बाबा जाणीऐ जे रोवे लाइ पिआरो।। बोलवे कारणि बाबा रोईऐ रोवणु सगल बिकारो।। (वड: म: १)

सुरति में लचक भी कायम रहे; कठोर काठ न हो जाये। जिस प्रकार कोरे ज्ञानियों की वृत्ति शुष्क, कठोर और लचकहीन हो जाती है।

इस रंग में तीन चार दिन व्यतीत हो गये। आप अपने वैराग्य में और समीप होकर वाहिगुरू और गुरू की परिक्रमा करते रहे। विनती, प्रार्थना, वाणी का पाठ, गायन, नाम के अभ्यास और शुक्र के प्रयत्नों ने नया मुगदर उठाकर घुमाया और वाहिगुरू के उपासक जी वाह वाह में दमक उठे। 'धन्य साईं जी! मेरा आश्रय और आधार तू ही है, मुझे सदैव तेरे द्वार को ही देखना है, क्योंकि तू ऊंचा है तू सब से ऊंचा है मेरे मन का छोटा सा आधार यह सेवक था क्योंकि यह हमदर्द और भरोसे वाला मित्र था। हमदर्द और मित्र तो आप हैं और जितने हमदर्द मित्रों को आप मिलाना चाहें, मिला सकते हैं। मैंने तो सुरति को सभी टेकों से उठाकर निचले आश्रयों से निराधार करके ऊपर की ओर एक तेरे आश्रय की ओर उठना है। मेरा आश्रय तू ही है तू ही है। तू ही है मेरा आधार और आश्रय है। मैं तो तुझसे लिपटा हूं, मेरी तो यही इच्छा है कि तेरे साथ बंधकर मैं पनपूं, और जब पनपने की ज़रूरत हो, पर मैं कभी टूटकर न गिरूं।

इस तरह शुक्र और उच्च भावों में आप अपने आध्यात्मिक रस में झूम रहे थे कि दारोग़ा ग्यासुद्दीन जी आ मिले। भाई जी अब और अधिक शुक्र में आ गये। वाह साईं जी! आप जो मेरा उच्च आधार हैं, आपने दीखने वाला आधार भी भेज दिया है। मैं शुक्र करता हूं, पर मेरी टेक तो आप ही होवें। जो आप दें, मैं उसे शुक्र करके लूं, पर प्यार की डोरी आपसे ही बंधी रहे।

दोनों सज्जन यात्रा करते हुये अब आनन्दपुर साहब पहुंचे। भाई साहब कभी कभी फ़ारसी बैंतों में बंदगी भरे काव्य लिखा करते थे। रास्ते के रंग में आपने और कहकर एक पुस्तक, बना ली और उस पर उसका नाम 'बंदगी नामा' लिखा। जब आनन्दपुर पहुंचकर निवास लिया तब उस पोथी को लेकर गुरू साहब की सेवा में पहुंचे। मुद्दतों के पश्चात् प्रियतम जी मिले थे, पोथी को आगे रखकर सुन्दर चरणों पर सिर रखा प्रभु की स्मृति जब नन्दलाल जी के रोम-रोम में फैल चुकी थी। कहा जाता है कि आध्यात्मिक उच्चता वालों की पहचान आध्यात्मिक व्यक्ति ही कर सकते हैं। अब आपको नाम के रंग में कमाल हो जाने पर अपने प्रियतम की आध्यात्मिकता के ओज की उच्चता और अधिक ऊंची होकर लगी। जौहरी बन गये नन्दलाल जी ने अपने लाल का मूल्य पहले से भी अधिक अमूल्य पहचाना। शीतलता मिली, मन ने कहा कि जो कुछ साईं करता है वह भलाई ही होती है, मुझे कब शाहज़ादे की नौकरी का त्याग करना था और

१. मैं पेखिओ री ऊचा मोहन सभते ऊचा। (देव: म: ५)
२. एक ओट एको आधारु। नानकु मागै नामु प्रभ सारु।।

इस रस-सागर में फिर आकर गिरना था। हमारे साईं ने सभी कार्य सिद्ध किये हैं। अब सिर को मत उठा, बस यहां पर ही विशाल सागर में सदैव के लिए मिल जा।

गुरू जी ने बड़ा प्यार दिया, बड़ा सम्मान किया, स्वयं सिर को उठाया, निहाल निहाल का वरदान दिया ओर पोथी को उठाकर देखा, पन्ने उल्टे, शेअर पढ़े, पढ़कर प्रसन्न हुए, आज्ञा दी, पोथी पढ़। सारी सभा चकित रह गई। गुरुमति के विचारसूक्त, गुरुवाणी की तुकों के भाव कमाल के उसमें भरे पड़े थे। क़दरदान साईं, नैनों वाले साईं, दिल वाले साईं प्रसन्न हुये, पोथी हाथ में ली रचना में और उसकी जिल्द पर अपने हाथों से लिखा:

"आबे हैवां पुर शुदह चूं जामे ऊ।
ज़िन्दगी नामह शुदह ज़ां नामे ऊ॥

अर्थः-इसका जाम अमृत से भर गया है, इसीलिए इसका नाम अब जिंदगी नामा हो गया है।

सतगुरू जी ने बन्दगी नामा का नाम अब जिन्दगी नामा रखा। भाई साहब तो नम्रता में थे, इस पोथी में बन्दगी की स्तुति थी। इसमें सारे भाव गुरुमति वाली भक्ति के थे और जगह-जगह गुरुवाणी के आशय अंकित थे इन्हें पढ़कर नाम का चाव पैदा होता और प्राण भरते। सतगुरू जी ने अब इसका नाम 'जिन्दगी-नामा' रखा, कि इस पर अमल करने से आध्यात्मिक जीवन प्राप्त होगा। इसमें लगभग ५०० शेयर हैं। नमूना इस प्रकार है:-

"ऐ ज़िहे इन्सां कि हक़ रा याफ़ताह॥
रुज़ि यादे गै़र हक़ बर ताफ़तह॥३२५॥

अर्थात्-है मुबारक जन कि जिसने रब (ईश्वर) पा लिया।
'गै़र हक़' की याद से मुंह मोड़ लिया॥

दर लिबासे दुनियावी फ़ारग़ अज़ां।
हमचु जातश आशकारा ओ निहां॥३२६॥

जो लोग सांसारिक वेष तो रखते हैं पर, संसार से मुक्त रहते हैं, वे ईश्वर की भांति प्रकट हैं, पर छिपे हुए हैं।

ज़ाहर ओ दर क़ैदे मुश्ते ख़ाक हस्त।
बातने ओ बा खुदाये पाक हस्त॥३२७॥

वे बाहर से तो मुट्ठी भर ख़ाक में कैद हैं पर भीतर से वे पवित्र ईश्वर से लग रहे हैं।

ज़ाहर अन्दर मायले फ़रज़ंदो ज़न।
दर हक़ीक़त बा खुदाए ख़ेशतन॥३२८॥

वे बाहर से तो स्त्री पुत्र में लगे हुये हैं, पर भीतर से वे अपने प्रभु के साथ हैं।

ज़ाहर अन्दर मायले हिरसो हवा।
बातने ओ पाक अज़ यादे खुदा॥३२९॥

वे बाहर से तो लोभ लालच में फंसे हुए हैं, पर भीतर से ईश्वर की स्मृति में हैं और हृदय शुद्ध है।

रफ्तह रफ्तह बातनश ज़ाहर शुदर।
दर हक़ीक़त तबलहए अंबर शुदह[१]॥३३२॥

वह धीरे-धीरे अंतस को प्रकट करता है, और अमूल्य सुगन्धि का डिब्बा बन जाता है।

ज़ाहरो बातन शुदह यकसाने ओ।
हर दो आलम बंदह ए फ़ुरमाने ओ॥३३३॥

वे अन्दर बाहर से एक हो गये हैं और दोनों लोकों में उनके ही हुकुम चलते हैं।

हम ब-दिल यादे खुदा ओ बर ज़ुबां।
ईं ज़ुबानश दिल शुदह दिलशुदज़ुबां॥३३४॥

उनकी जिह्वा और हृदय पर प्रभु की स्मृति का निवास हो गया है और हृदय जिह्वा बन गया है और जिह्वा हृदय बन गई है।

वासलाने हक़ चुनी फ़ुरमूदह अन्द।
बन्दहहा दर बंदगी आसूदह अंद॥३३५॥

वाहिगुरू से मिले हुओं ने यों कहा: बन्दगी में प्रेमियों ने सुख प्राप्त कर लिया है।

साहिबी बाशद मुसल्लम शाह रा,
कुरनशे मन सालके ईं, राह रा[२]॥३३६॥

साहबी, शाहों को साहबी शोभा देती है, पथ प्रदर्शक को मेरा दण्डवत प्रणाम है।

आं ज़िहे सर को बराहश दर सजूद,
हमचुगो चौगान शौकश दर रबूद॥३४७॥

वह मुबारक शीश जो द्वार पर झुकता है, वह प्रेम के बल्ले से गेंद को ले जाता है।

---

१. गुरू गोबिन्द सिंह जी की ओर संकेत है।

२. सिर गेंद है, शौक बल्ला है मैदान शरीर है, जिसमें शारीरिक तृष्णा की फांसी लगी है, गुरू के चरण गेंद के दूसरी ओर पहुंचने पर सुरक्षा का स्थान है। अत: सिजदे वाले सिर को प्रेम के स्थान पर ले गयी है। तात्पर्य यह है।

आं ज़िहे दस्ते कि वसफे ओ नविश्त,
आं ज़िहे पाए कि दर कूइश गुजश्त॥३४८॥

धन्य वे हाथ हैं जो यश लिखते हैं, और धन्य वे चरण हैं जो प्रभु के पथ पर चलते हैं।

आं ज़ुबाने बिह कि ज़िकरे ओ कुनद,
खातिरे आं बिह कि फिकरे ओ कुनद॥

वह जिह्वा पवित्र है जिस पर नाम है, वे दिल मुबारक हैं जो ध्यान में लगे हैं।

जब भाई साहब गुरू जी की कृपा से मालामाल हो चुके थे, तब अंतर्यामी दाता ने दारोग़ा की ओर देखा, "मीर साहब! आप सकुशल हैं?" मीर साहब भेंट को आगे रखकर चरणों से लिपट गये। गुरू जी ने कृपा का हाथ, हां दया का हाथ, सिर पर रखा और बोले:–'मुर्शिद?' दारोग़ा ने सिर को उठाया, जो रस से भरपूर हो रहा था, बोल तो न सका, परन्तु हाथ से भाई साहब की ओर संकेत किया। आलम सिंह नर्त्तक पास ही बैठा था, उससे रहा न गया, कहने लगा, "गुरू सतगुरू भूल नहीं करता है,[१] वह प्रत्यक्ष सामने बैठा है। भाई नन्दलाल सिख है, पूर्ण सिख है, पर मीर साहब! आप गुरू की हुजूरी में क्या बता रहे हैं।" मीर साहब तो कुछ न बोले, पर हृदय की पीड़ा को जानने वाले, सारी शोभा से बेपरवाह प्रत्येक ज़रूरत से बेपरवाह, सुरति के पातशाह शाहंशाह बोले: 'आलम सिंह! तुझे पता नहीं है कि नन्दलाल ने मुझे पहचान लिया है। मुझे भीतर बसा लिया है और अंदर बाहर देख लिया है। तुझे पता नहीं है कि इस पर अनुकंपा हो चुकी है, यह अब बखशीश करने वाला है और गुरू ने इसे "आपि जपै अवरह नामु जपावै" वाला गुरू का सिख धर्म प्रदान किया है, यह सिख धन्य है जो अनेक लोगों को वाहिगुरू का नाम जपायेगा। भाई जी अब गुरुमुख बन गये हैं, इनकी रसना और इनका क़लम भवसागर, से पार करने के लिए चप्पू बनेंगे।[२]

यह सुनकर भाई जी कांपे और आपके नयन सजल हो गये, कुछ समय तक कण्ठ रुका रहा, पर फिर एक अत्यन्त वैराग्य भरे स्वर में अपने 'जिन्दगी नामा' में से गायन किया:

दीदह अम रा लज्ज़ते दीदार बख्श,
सीनहअम रा मख़जने इसरार बख्श।
ईं दिले बिरीआनिं मारा शौक़ दिह,
दर गलूयम बंदगी रा तौक दिह।

---

१. भुलण अंदरि सभु को अभुलु गुरू करतारु॥
२. सिख धर्म में भाई नन्दलाल जी की वाणी प्रामाणिक वाणी का स्थान रखती है।

हिजरे मा रा आरजूए वस्ल बख्श।
ईं ख़ज़ाने जिस्म मा रा फज़ल बख्श।
हर सरे मूयम जुबां कुन, अज़ करम,
ता बगोयम वसफे हक़ रा दम बदम॥४५८॥

अर्थ– मेरी आंखों को दर्शन का रस प्रदान कर, और मेरा हृदय रहस्य के भंडार का घर बन जाये। मेरे जले हुये हृदय को प्रेम लगा दे, और मेरे गले में बन्दगी की फांसी बांध दे। मेरे वियोग में संयोग का चाव भर दे, मेरे बुड्ढे शरीर पर अनुकंपा कर दे। कृपा करके मेरे प्रत्येक रोम को जिह्वा बना दे, फिर मैं श्वास श्वास प्रभु की स्तुति करता रहूं।

इस प्रकार की हृदय को कंपा देने वाली प्रार्थना पर कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जिसके नयन नहीं भर आये होंगे। इस प्रकार की प्रतिष्ठा और नम्रता, इस तरह से द्वार पर झुकने इससे प्रेम भाव और बन्दगी का नक़्शा मनों पर साकार हो गया। भाई साहब फिर धीरे–धीरे अपने आपसे कहने लगे, 'हे नन्दलाल! बन्दगी की मांग कर', और धीरे–धीरे अपने रचे हुए काव्य को पढ़ा:

गर दिहद तौफीक फ़जले जुल–जलाल,
बंदह रा अज़ बन्दगी बाशद कमाल।
ज़ीस्तन दर बन्दगी औला बवद्द,
गरचिह सर ता पा हमह मौला बवद्द,
बन्दगी बाशद कमाले बन्दगी,
बन्दगी बाशद निशाने बन्दगी।
गर निशाने जिन्दगी में बायदत,
बन्दगीए हक़ तुरा में शायदत।
ज़िन्दगीए बंदह रा ईं बन्दगीस्त,
बन्दगीए हक़ कि ऐने ज़िन्दगीस्त।
तां तवाना बंदह शौ साहब मुबाश,
बन्दह रा जुज़ बन्दगी न बद्वद तलाश।

अर्थात्

हे कृपालु ईश्वर! यदि तू सामर्थ्य प्रदान करे,
तो मनुष्य बन्दगी करके कमाल प्राप्त करता है।
चाहे तू सारा ईश्वरीय रूप क्यों न हो जाये,
मगर तू बन्दगी में जीवित होने से इससे भी
अधिक सुख पायेगा। बन्दगी की सफलता तो
बन्दगी ही है, बन्दगी को ही जिन्दगी का
लक्ष्य मान लो। यदि मुझे जिन्दगी की

ज़रूरत है, तो तू बन्दगी कर, क्योंकि
बन्दगी करना ही ठीक सही होता है।
मनुष्य का जीवन हीं बन्दगी है, बन्दगी ही तो ईश्वर
की दी हुई बन्दगी है, इसलिए जहां तक तेरा
बस चलता है। तू दास बन और साहब मत बन,
मनष्यु के लिये बन्दगी के बिना शेष सब कुछ अयोग्य है।

ब्रह्मज्ञानी सम्पूर्ण गुरू साहब, अपने अनन्य भक्त भाई नन्दलाल की सूक्ष्म मन को संबोधन करने वाली बात को सुनते रहे थे, अब हंसे और कहने लगे: 'नन्दलाल! तूने अहं से पार होने का और रंग से रंगे रहने का रहस्य प्राप्त कर लिया है, बन्दगी अहं से मुक्ति की अवस्था का नाम है। आपा निर्वाण करने वाले ठिकाने पर ही प्रभु का निवास होता है। द्वेष की काई बन्दगी से ही दूर होती है और साईं के सौंदर्य की बन्दगी ही खींचकर अपने से लाकर बसा देती है।"

फिर आपने ग्यासुद्दीन की ओर देखा, उस पर कृपा दृष्टि डाली। नाम और प्रेम भक्ति का दान प्रदान किया और वह भी निहाल हो गया।

कुछ समय दारोग़ा जी आनन्दपुर में रहे, फिर भाई जी की आज्ञा होने के कारण आगरे चले गये। भाई साहब जी आनन्दपुर में ठहर गये। आप साईं के रंग में रंगे हुये, गुरू के दर्शनों से निहाल और सदैव मस्त रहते, पर होश वाले रंग रस में मस्त। मुलतान वाले सम्बन्धियों को पता था कि भाई जी आनन्दपुर पहुंच गये हैं, उनके पत्र आने लगे और उन्होंने मुलतान आने का निमन्त्रण दिया। जब सतगुरू जी को पता चला, तब उन्होंने भाई जी को घर जाने की आज्ञा दे दी। अब इस तरह का व्यवहार हो गया कि कभी भाई जी मुलतान चले जाते और कबीले वालों का पता करते और फिर आकर्षण में बंधे आनन्दपुर आ जाते। उस जगह पर आपने डेरा बना लिया था, जहाँ पर उसका निवास था।

एक बार गुरू के दरबार में उन सिखों की चर्चा चली, जिन्होंने आनन्दपुर में डेरा डाल रखा था और जो अपना भोजन बनाते और आने जाने वाले सिख, साधु अभ्यागत को अन्न खिलाते थे। गुरू का लंगर अटूट चलता ही था, पर काफी समय तक टिककर रहने वाले सिख भी अपने डेरे पर भोजन तैयार करते थे और सिख मत के नियमों के अन्न के दान को परमदान समझकर आने जाने वाले सिखों की सेवा करते थे। जब सब की स्तुति सुनी, तब गुरू जी ने कहा, "जो भलाई करते हैं, वे अच्छा करते हैं।" कौतुकी गुरू जी एक दिन विहंगी रूप धारण करके लंगरों वालों के डेरों पर अन्न मांगने के लिये चले गये, अभी भोजन का समय नहीं था। आप जहां पर जाते, वहां पर कोई जो कहता कि अभी सुबह है, फिर आना, कोई कहता कि अभी भोजन तैयार नहीं है। कोई कहता

अमुक समय पर आना, कोई कहता थोड़ी देर के बाद आना, अरदास हो लेने दो। आप सबके द्वार पर से खाली लौटे। चोज़ी जी अब भाई नन्दलाल जी के डेरे पर गये, तब आपने कहा, दाल पक रही है, आटा गूंधा है, ये हाज़िर करता हूँ, 'यदि आप बैठें तो रोटी पकाकर हाज़िर करता हूँ। आपने कहा, 'हम ठहर नहीं सकते।' नन्दलाल जी ने लगभग तैयार हो चुकी दाल और गूंधा हुआ आटा, घी आदि आपके आगे लाकर रख दिया। बड़े प्यार भाव से लेकर और आशीवार्द देकर अपने ठिकाने पर आ गये। जब दरबार लगा, तब आपने कहा, डेरों के लंगरों में से नन्दलाल का लंगर सराहनीय है। फिर आपने दाल, आटा आदि संगत को दिखाकर समझाया कि 'ज़रूतमंद को मना नहीं करना चाहिये, जो कुछ बन पड़े, हाज़िर कर देना चाहिये, यदि कोई आकर मांगे तो दे देना चाहिये।' यह समझाया कि 'ज़रूरतमंद की ज़रूरत की भांति सहन न कर सकना आत्म द्रवित न होने का चिह्न है।' फिर आपने कहा:

नन्दलाल भा हमरो दाता।
भगति भाउ संतन मन राता।
छुधति न देख सकहि चिर भारो।
देग़ करत सोई हम प्यारो। [सू: प्र:]

भाई साहब की पुस्तक में होली के विषय में एक ग़ज़ल मिलती है, जिसमें आपने अपने चित्त के उत्साह को, उनके सुहावने रंग को ख़ाकी नैनों से देखकर वर्णन किया है:–

गुले होली बबागे़ दहिरईं बिशिगुफ्त
लबे चूं गुंचहहा फरखंदह ख़ करद।
गुलाबो, अंबरो मुश्को अबीरो,
चूं बारां बारशे अज़ सू बसू करद।
गुलाल अफशानीए दस्ते मुबारिक,
ज़मीनो आसमां रा सुरखरू करद।
ज़िहे पिचकारीए पुर ज़ाअफरानी,
कि हर बेरंग रा खुशरंग रू करद।
दुआलम गश्त रंगीं अज़, तुफैलश,
चु, शाहम जामह रंगीं दर गुलू करद।
कसे को दीद दीदारे मुकद्दस,
मुरादे उमर रा हासिल निको करद।
शव्वद कुरबान ख़ाके साध संगत,
दिले 'गोया' हमीं रा आरज़ू करद।

अर्थात्

'संसार में होली का फूल खिला है,
उसने कलियों की भांति होंठों को खोला।
अबीर, अंबर गुलाब और कस्तूरी आदि
हर ओर वर्षा की बूंदों की भांति बरस रहे हैं।
पवित्र हाथ ने जब गुलाल उड़ाया, तब
लाली चढ़ गई और पृथ्वी तथा आकाश फूल उठे।
केसर की पवित्र पिचकारी चलती है
और हर बदरंग को भली भांति रंग लगा दिया है।
उसकी कृपा से दोनों जहान रंगे गये हैं, कपड़े
रंग गये जब उस सुन्दर ने रंग लगाया।
जिसने ये मुबारिक दर्शन देख लिये,
उसके जीवन की आशायें पूरी हो गईं।
मैं सत्संगत की धूल पर न्योछावर हुआ हूं,
कि आज 'गोया', की फलियों की
इच्छा कर रहा हूँ।

इसी प्रकार अनेक समयों पर समय दशा के अनुसार अपनी हार्दिक भावनाओं और उच्च भावों के उभार के समय आपने कई ग़ज़लें लिखीं और जिनके संचय को 'दीवान-ए-गोया' कहा जाता है। 'गोया' उनका उपनाम है कि मैं तो गुरू के आशय को कहने वाला हूँ।

एक युद्ध में जब बचित्र सिंह ने हाथी को मारा है तब सतगुरू जी के उस जलाल भरे कमाल को आपने एक ग़ज़ल में बांधा है:-

**कीस्त इमरोज़ कि सौदाय निगारे दारद?
बादशाह हस्त दरीं दहिर कि यारे दारद।
दानम ऐ शोख़। कि खूने दो जहां ख़ाहद रेख्त,
चश्मे मस्ते तो कि इमरोज़ खुमारे दारद।
दामने चश्मे मरा खूने जिगर रंगीं करद,
दिले दीवानहये मा तुरफह बहारे दारद।
सामाए तूबाए फिरदौस न खाहद हरगिज़,
हरकि मनसूरे सिफत सायाए दारे दारद।
रुए गुलगूनि खुद ऐ शमाअ गरअफ्रोज़ दमे,
दिले परवानह ओ बुलबुल बतो कारे दारद।
बहिरे दीवानह अगर सिलसिलहा मे साजंद,
दिले 'गोया' बखमे जुल्फ करारे दारद।**

[ग़ज़ल का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है]

किस बावले ने आज सुन्दर के साथ प्यार किया है। उसने प्यारे के प्यार में, जगत का राज्य प्राप्त कर लिया है। हे प्यारे! तेरे मस्त नैनों में जो आज खुमार आया है, मेरे विचारानुसार तो वह दो जहानों का खून करके आया है। आज मेरे इस बावले दिल को तो अजीब बहार आई है, जिगर के खून ने नयनों को लाल करके दिखा दिया है। जिन्हें मनसूर की भांति सूली की छाया अच्छी लगती है, वे फिर स्वर्ग के पौधे की छाया को नहीं देखते। हे मेरी शमा। तू गुलाम की भांति मेरा चेहरा चमका दे। लगता है कि परवाना बुलबुल के साथ ही न्योछावर होने को आया है। जगत चाहे बावलों को बांधने के लिए जंजीर बनाता रहे, पर 'गोया' ने तो जुल्फ के घेरे में ही अपना दिल टिका दिया है।

भाव–मामूली प्यार वाले जो प्यारे के प्यार में आ जाते हैं, वे धन्य हैं; परन्तु वे बहुत कम हैं, जिन्होंने प्यार को बावलेपन की दशा में पहुंचा दिया है। 'कीमत' पद्य का संकेत दुनीचन्द की ओर है और 'पातशाह' का संकेत विचित्र सिंह उदय सिंघ आदि सच्चे प्रेमियों की ओर है। 'निगार' (प्यारे) से तात्पर्य श्री गुरू जी से हैं।

आज की गुरू जी की वीर रसी और शान्तिरसी सुन्दरता को देखकर दोनों जहान आपसे न्योछावर हो जाने वाले आशिक हो जायेंगे।

इसे देखकर गुरू जी के प्यारे सिख सूली की छाया को–जो गुरू जी की आज्ञा में है–प्यार करते हैं और अब वे कल्पतरु की छाया की इच्छा नहीं करते। प्यारे की आज्ञा में मौत को सुखों की अपेक्षा ऊँचा समझते हैं।

हे सतगुरू! तू अपने जीवन प्रदान करने वाले और सुन्दर चेहरे को और अधिक रोशन कर क्योंकि आशिक (प्रेमी) लोग ऐसे माशूक (प्रिय) की खोज कर रहे हैं कि जिस पर से वे न्योछावर हो जायें। संकेत है कि आपके सौंदर्य भरे चेहरे के सौंदर्य ने मृतकों को जीवित किया है, उनमें प्यार के प्राण भरे हैं, और वे अब प्रेम भरे आपे से न्योछावर होने की इच्छा कर रहे हैं।

राजाओं और तुर्कों ने वेतनों और जागीरों के लालच की जंजीरें बना-बना कर सेनाएँ भर्ती की हैं, पर तेरे प्रेमियों ने आपा न्योछावर करके तेरे आगे भेंट रखी है।

खालसा आनन्दपुर में सजाया गया। युद्ध, रंग, वीर रसी रंग अखाड़े भाई जी के नयनों के सामने से गुज़रते थे। यह कैसे हो सकता था कि आप देखते और उसी यज्ञवेदि में आहुति बनने के लिये तैयार न होते। यह वार्ता नीचे लिखे हुए प्रसंग से विदित होती है[१]–

---

१. यहां पर लेखक की कविता का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत है।

एक दिन कल्ग़ी वाले मेरे समर्थ साहब, सुतलुज नदी के किनारे पर रेती पर बैठे थे और चारों ओर निर्मल जल का प्रवाह था। गिने-चुने प्रेमी पास बैठे थे और ब्रह्म का विचार हो रहा था। साईं की बातें हो रही थीं, मानों फूलों की लड़ियाँ खुल रही थीं। दाता ने सबको उत्तर दिये और सब की संतुष्टि करवाई। उनकी तृष्णा रूपी अग्नि को दूर कर दिया और उनमें लौ की ज्योति जला दी। इस समय नन्दलाल किश्ती में बैठकर आये भंवर की भांति चरणों से लिपट गये और लिपटकर सुरति में समा गये। फिर उठे और गांठ को खोलकर गातरा बाहर निकाला और साथ ही कृपाण निकाली और उपहार के रूप में श्री गुरू जी के आगे रखी। हाथ जोड़कर यों कहा—'पातशाह! आपने अद्भुत युद्ध रचाया है, पंथ खालसा को सशस्त्र बनाकर बलि योद्धा बनाया है। धर्म प्रेम और दया, दान और वीर रस भर दिया है। इसका पैबंद लगाकर अपनी कला दिखा दी है। आज मेरे मन में भी चाव भर आया है कि मैं भी सिपाही बनूं; प्यारे के द्वार पर जाकर पहरा दूं और युद्ध भूमि में जाकर लड़ूं। तेग मारकर ज़ालिम को खत्म कर दूं, होली का खेल खिलाऊं और यदि शहीदी का शरबत मिल जाय तो आप भी शहीदी का खेल खेलूं आप अपने उद्धारकर्ता हाथों द्वारा मुझे गातरा पहनाइए और फिर अपने कर कमलों द्वारा इस कृपाण को गातरे में सुसज्जित कीजिये मैं भाग्यवान होकर सेवा करूं, जिस तरह आपको अच्छा लगे, आपके द्वार पर मेरा शरीर सफल हो और अहम को मार कर मिटा दूं। गुरू कल्ग़ी वाले हंस पड़े और आपने गातरा सजा लिया और कृपाण भी पहन ली, फिर कलमदान मंगवाया। उसमें से कलम निकालकर आगे रखी और मुंह से यह वचन कहा—नन्दलाल जी! यह तेग लो और इस हाथ में सजा लो, यह शूरवीर की तलवार की भांति चलेगी और इसे सदैव चलाओ। मैंने यह तलवार तुम्हारे हाथ में दी है, तुम इसी के शूरवीर हो, इसी द्वारा पंथ के काम करने और तुम्हारे सभी कार्य पूरे होंगे। तेग़ वालों को तेग़ चलानी है और तुम्हें कलम चलानी है। तुम्हें यही आज्ञा है और तुम्हें यही काम करना है। ऐसी कलम चले कि दिल को घाव लगा दे और उसमें उत्साह भर दे। कलम प्रेम पर न्योछावर होने की शिक्षा दे और तेरे हाथों में पकड़ा दे; जंग रचाये, घाव लगाये और विजय प्रदान करे। नेकी धर्मनाम का स्मरण और शुभ आचरण की शिक्षा दे। बदी को मार दे, बुराइयों को काटे, 'पाप की गर्दन' को काटे, समय की सीमा को काटकर दिखा दे और सदैव' प्रभाव डाले। मैंने सिखों को तेग़ के साथ 'कलम' की शमशीर भी प्रदान की है। यदि इसे चलाया गया तो पंथ के कामों को दुनिया उठकर देखेगी।

इस घटना से और भाई कन्हैया जी के प्रसंग से और भाई मनी सिंह जी के जीवन से पता चलता है कि श्री गुरू जी अपने विद्या में प्रवीण सिखों को और धर्म और प्रचार के विशेष गुणों वाले रसिकों को किस प्रकार युद्ध से अलग

रखते थे और इनके योग्य और ज़रूरत वालें कामों की सेवा पर सफल जीवन प्रदान करते थे।

भाई नन्दलाल जी काफी समय तक श्री गुरू जी के चरणों में टिके रहे और जीवन रस लेते रहे। जब श्री गुरू जी को अपने कौतुक करने थे। उससे पहले भाई जी को आज्ञा हुई कि वे अब मुलतान में जाकर रहें, सिख धर्म का प्रचार करें और नाम रस में अपने दिन सफल करें। वियोग कभी भी सुखदाई नहीं होता है, पर अब प्रत्येक रंग में और प्रत्येक स्थान पर हाज़िर साईं और सतगुरू जी के स्वरूप से एक-स्वर होने वाले भाई साहब आज्ञा के तार के साथ एक-स्वर हो रहे अंतस वाते, आज्ञा को सिर पर रखकर चल पड़े। जानते हैं कि आज्ञा है और आज्ञा में कल्याण और उच्चता है, हां भलाई इसी में है, पर फिर भी शरीरों से अलग होते समय मन वियोग का दुख मनाते हैं और जहां पर सच्ची प्रीति लगी है, वहां के विरह की दशा का तो कहना ही क्या है? भाई साहब अब न बिछुड़ने वाले मन में बिछुड़े, मुलतान में जा टिके और वहां गुरू के सिख धर्म के प्रचार का एक केन्द्र बने। सतगुरू ने, जो कौतुक आनन्दपुर के अंतिम युद्ध में और चमकौर में जाकर किये थे, वे भाई साहब तक पहुंचे। आप जानते थे कि समर्थ गुरू जी सृष्टि की रक्षा के लिए कौतुक कर रहे हैं और इन्हीं कारणों से हमें पहले भेज दिया था। पर खेद को सुनकर खेद कैसे न होता और भंवरे बन चुके प्रेमियों को पीड़ा के कारण झन्नाहट कैसे न होती। भाई साहब ने खेद को सुनकर विरह की अग्नि की तपिश को भी आज्ञा की फुहार के नीचे झेला, अंत में आपको गुरू जी की मुक्तसर के युद्ध में विजय और फिर आनन्द सहित दमदमा साहब में निवास के सुख भरे संदेश भी मिले।

गुरू साहब जब दमदमे से विदा होकर दक्षिण की ओर जा रहे थे, तब औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई। औरंगज़ेब के छोटे पुत्र आज़म ने, जोकि उस समय दक्षिण में था, पिता की वसीयत के उलट अपने आपको पिता का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। बादशाह के एक दूसरे छोटे पुत्र कामबख़्श ने आज़म को शहंशाह मान लिया। बड़ा पुत्र मुअज्ज़म उस समय काबुल में था। इसने काबुल में ही अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया और हिन्दुस्तान को चल पड़ा। आज़म के पास सेनाएं और दूसरा सामान बहुत था, पर मुअज्ज़म भी प्रयत्न कर रहा था। पंजाब में आकर इसने दूसरी तैयारियों में भाई नन्दलाल जी को भी बुलाया, और श्री गुरू साहब जी की अनुकंपा और सिखों की सहायता की इच्छा की। भाई साहब जी बादशाह के एक अन्य अहलकार 'हाकिम राय' सहित बघौर में जाकर गुरू साहब जी को मिले-

हाकमराय संग निज लीना।
नन्दलाल गमनयो जित चीना।

पार बघौर सिवर किय जहां।
पहुंचे तूरन करके तहां।[१] [सूरज प्रकाश]

अपने प्रियतम को, भाई साहब जी, जो सिर से पांव तक वाहिगुरू रंग में रंगे रहते हैं, अब दूत होकर मिले हैं। सतगुरू जी अत्यन्त प्यार से मिले। फिर बहादुर शाह को संदेश सुनकर कहा, कि "राज्य बहादुरशाह को लेकर देते हैं, उसे इक़रार करना होगा कि वह न्याय करेगा, धर्मी रहेगा, दीन की कट्टरता नहीं करेगा, अत्याचारी हाकिमों को दण्ड देगा, हमारे अपराधियों के अपराधों का निर्णय करके उन्हें हमारे हवाले करेगा।"

नन्दलाल जी ने जाकर बादशाह को बताया, उसने ख़ुशी से सब कुछ स्वीकार किया। आज़म और बहादुर शाह के युद्ध में गुरू जी से सहायता मिली। आज़म दो पुत्रों सहित, मारा गया। बहादुर शाह की बादशाही के ख़ुशी के बाजे आगरा में आकर बजे। गुरू जी भी आगरा पहुंचे और कुछ दिन आगरा ही रहे। श्री नन्दलाल जी भी वहां पर रहे, जैसा कि सूरज प्रकाश में 'नन्दलाल जुत अपर को कहयो सुनाइ हवाल' में उल्लेख है। यह समाचार सं: १७६३-६४ विक्रमी के आसपास के हैं। गुरू जी यहां से दक्षिण को गये और भाई जी, या तो मुलतान में आकर या आगरा में ही ७२ वर्ष की आयु व्यतीत करके प्रियतम जी के अगम्य देश को आप से पहले ही पधार गये, ताकि वहां से आपको स्वागत के लिये 'दैवी मण्डल' में शमिल होने के लिये पहुंच सकें।

: ९ :

भाई साहब जी बहुत नुकताचीन और नुक़तारसी बुद्धि वाले थे। उन्होंने केवल कहने-सुनने अथवा वैसे ही पते खोज किये बिना कभी किसी बात पर विश्वास नहीं किया था। आप अपनी पक्की आयु तक खोज, पड़ताल, परीक्षा आदि करते रहे। विद्या की गति प्रत्येक ओर कमाल की थी। आप हिन्दी और संस्कृत के ज्ञाता भी थे, फारसी, अर्बी के धुरंधर कवि तो आप थे ही। गणित आदि के भी अच्छे ज्ञाता बताये जाते हैं। इस दिमाग़ और खोज द्वारा आपने श्री गुरू जी की परीक्षा भी ली थी और पूरी संतुष्टि करके पूर्ण गुरू, गुरू अवतार और राम कृष्ण अवतार से शिरोमणि माना, जैसा कि उनकी रचना से प्रकट है-

आपने दस गुरूओं की स्तुति में एक अन्य छोटी-सी पुस्तक भी लिखी है उसमें से दशम गुरू की स्तुति के कुछ पद यहां दिये जाते हैं[१]-

---

१. सूरज प्रकाश में लिखा है कि बादशाह ने लिखकर दिया कि तुम जो एक प्रश्न कहोगे, मैं उसे पूरा करूंगा और यह कि गुरू जी ने युद्ध में सहायता दी।
देखिये 'जोति बिगास' फारसी के बैत अंक ११, १२, १३ और १४।

नासरो मनसूर गुरू गोबिन्द सिंह,
एजदी मनजूर गुरू गोबिन्द सिंह।१०५

अर्थात्– विजयी विजेता गुरू गोबिन्द सिंह।
ईश्वर के द्वार पर स्वीकृत गोबिन्द सिंह।

हक़ रा गंजूर गुरू गोबिन्द सिंह।
जुमला फैजै नूर गुरू गोबिन्द सिंह।१०६

अर्थात्– ईश्वर का भण्डार गुरू गोबिन्द सिंह
बख्शीश का दातार गुरू गोबिन्द सिंह।

हक़ हक़ आगाह गुरू गोबिन्द सिंह,
शाहि शाहंशाह गुरू गोबिन्द सिंह।१०७

अर्थात्– साईं जानने वाला गुरू गोबिन्द सिंह,
शाहंशाह सरदार गुरू गोबिन्द सिंह

बर दो आलमशाह गुरू गोबिन्द सिंह
खसम रा जां काह गुरू गोबिन्द सिंह।१०८

अर्थात्– दो जहान के शाह गुरू गोबिन्द सिंह
शत्रुओं के नाशक गुरू गोबिन्द सिंह

फ़ाइजुल अनवार गुरू गोबिन्द सिंह
काशिफुल असरार गुरू गोबिन्द सिंह १०९

अर्थात्–

नूरी फ़ैज देता गुरू गोबिन्द सिंह
रहस्य ईश्वरीय खोलता गुरू गोबिन्द सिंह।

आलमुल असरार गुरू गोबिन्द सिंह,
अबरे रहमतबार गुरू गोबिन्द सिंह ११०

अर्थात्–

गुप्त जानने वाला गुरू गोबिन्द सिंह,
रहमत बरसानेहार गुरू गोबिन्द सिंह।

मुक़वलो मकबूल गुरू गोबिन्द सिंह,
वासलो मौसूल गुरू गोबिन्द सिंह। १११

अर्थात्–

आप द्वारा स्वीकार गुरू गोबिन्द सिंह,
स्वीकार करवाता गुरू गोबिन्द सिंह।

आप पहुंचने वाला गुरू गोबिन्द सिंह,
औरों को पहुंचाता गुरू गोबिन्द सिंह।

जां फरोजे नहिर गुरू गोबिन्द सिंह
फैजे हक़ रा बहिर गुरू गोबिन्द सिंह। ११२

अर्थात्– प्राण भरने वाली नहर गुरू गोबिन्द सिंह,
"ईश्वरीय कृपा समुद्र" गुरू गोबिन्द सिंह।

हक़ रा महबूब गुरू गोबिन्द सिंह
तालाबो मतलूब गुरू गोबिन्द सिंह। ११३

अर्थात्– ईश्वर का प्यार गुरू गोबिन्द सिंह,
आप चेला और गुरू गोबिन्द सिंह।

तेग रा फताह गुरू गोबिन्द सिंह।
जानो दिल रा राह गुरू गोबिन्द सिंह। ११४

अर्थात्– तेग़ का है धनी गुरू गोबिन्द सिंह,
दिल की खुशी का कण गुरू गोबिन्द सिंह।

गुरू जी का पैगंबरों और बलीयों (फकीरो) में क्या स्थान है, इसके बारे में आप बताते हैं–

ख़ासिगां दर पाए गुरू गोबिन्द सिंह,
क़ुदसीया बा राय गुरू गोबिन्द सिंह। ११५

अर्थात्–

ईश्वर के जो बड़े निकटवर्ती हैं,
वे दास गुरू गोबिन्द सिंह हैं।
पवित्र लोग जो उसकी राय में जो चल रहे हैं
उसे राय देने वाला गुरू गोबिन्द हैं।

मुक़बलां मद्दाह गुरू गोबिन्द सिंह।
जानों दिल रा राह गुरू गोबिन्द सिंह। १२०

अर्थात्–

जो उस ईश्वर की दरगाह में स्वीकृत हैं वे गुरू गोबिन्द सिंह जी की कीर्ति और यश कर रहे हैं। उनके दिल और प्राणों को शान्ति और रस गुरू गोबिन्द सिंह दे रहे हैं।

लामकां पाबोस गुरू गोबिन्द सिंह।
बर दो आलम कोस गुरू गोबिन्द सिंह। १२२

अर्थात्–

बैकुंठ चूमता चरण गुरू गोबिन्द सिंह,
दो जहान हैं शरण गुरू गोबिन्द सिंह।

भाई साहब गुरू साहब जी के उच्च आचरण के बारे में कहते हैं:–

खालिसो बे कीना गुरू गोबिन्द सिंह,
हक़ हक़ आईना गुरू गोबिन्द सिंह। ३४

अर्थात्–

ईर्ष्या से साफ हृदय जिन्हों का,
है पवित्र मन गुरू गोबिन्द सिंह।
ईश्वरीय सौगंध खाकर मैं कहूं,
'प्रभु शीशा' है गुरू गोबिन्द सिंह।

हक़ हक़ अन्देश गुरू गोबिन्द सिंह,
बादशाह दरवेश गुरू गोबिन्द सिंह। ३५

अर्थात्–

प्रभु ध्यान आवेश गुरू गोबिन्द सिंह,
बादशाह दरवेश गुरू गोबिन्द सिंह।

गुरू जी का स्थान अध्यात्म में देवताओं और अवतारों से ऊंचा है, इस पर भाई नन्दलाल जी लिखते हैं।

सद हज़ारा न ईशर न ब्रह्मा व अर्शी,
व क़र्सी खवाहिंदाए पनाहश।

अर्थात्–

लाखों ईश्वर (शिव) और ब्रह्मा अदेश तथा धरती के निवासी गुरू गोबिन्द सिंह जी की शरण चाहते हैं।

व सद हज़ारां राम राजा व काहन व कृष्ण ख़ाक बोसे अक़दामश।

अर्थात्–

लाखों राम और राजा काहन तथा कृष्ण उसके चरणों की धूल को चूमने के इच्छुक हैं।

सद हज़ारा मुकबले ख़ास हमदीयत सताइगरश।

सैंकड़ों हज़ारों लोग उनकी भक्ति में तत्लीन हैं।

सद् हजारां इन्दर व मार हज़ार ज़बां तौसीफ गोइश।

अर्थात्–

लाखों ही इन्द्र और शेशनाग हज़ार जिह्वा से उसकी स्तुति करते हैं।

व सद हज़ारा उम्मीकदसी दरां खिदमतश।

अर्थात्–

उसकी सेवा करने वाली लाखों देवियां भी हैं।

भाई नन्दलाल जी ने सामने बैठकर ज्ञान चक्षु तथा चर्म चक्षु–दोनों से देख कर यह प्रार्थना की थी:–

"लाल सगे गुलाम गुरू गोबिन्द सिंह,
दाग़दारे नाम गुरू गोबिन्द सिंह।
कमतरीं ज़ि सगानि गुरू गोबिन्द सिंह,
रेज़ह चीने ख्वानि गुरू गोबिन्द सिंह।
बाद जानश फिदाए गुरू गोबिन्द सिंह
फरकि ओ बरपाए गुरू गोबिन्द सिंह।

अर्थात्–

नन्दलाल सदा गुलाम कूकर है।
द्वार तेरे, हे गुरू गोबिन्द सिंह।
तेरे नाम का छापा लगा है।
तन मेरे पर हे गुरू गोबिन्द सिंह।
कूकरों से कम हूं, पर हूं तेरा।
तेरी थाली में से टुकड़ा मिले,
हे गुरू गोबिन्द सिंह।
प्राण मेरे हों न्योछावर आप पर,
सिर टिके चरणों पर गुरू गोबिन्द सिंह।

सूचना– किस प्रकार देश में दुख तथा कष्ट था, किस प्रकार सिख सेवा तथा प्यार से काम करते थे, और कैसे अमृत ने नए प्राण भर दिए, इन विषयों से संबंधित कथाएं अगले अध्यायों में बानगी के रूप में प्रस्तुत हैं।

❑ ❑

२६ गुलाबे

: १ :

जब औरंगज़ेब की नीति तथा तलवार हिन्दुस्तान में अत्याचार कर रही थी, तब लोग भय अथवा लालच के कारण धड़ाधड़ मुसलमान बनते चले गये। मल्लाह, तेली, बुनकर तथा गूजर इत्यादि तो सामूहिक रूप से जा मिले। छीपी, नाई, कंबोह जाति के बहुत से लोग मुसलमान बन गये। इन जातियों के लोगों को किस प्रकार मुसलमान बनाया गया, इनसे संबंधित समाचारों को लिखने के लिए पुस्तक की अलग आवश्यकता है। यहां पर केवल यही बताना है कि इन ही दिनों में होशियारपुर निवासी एक दम्पत्ति थे इनके सारे सम्बन्धी तथा पति के भाईयों को दीन में लाकर इन्हें मालियों की बिरादरी में मिला लिया गया। केवल यही जोड़ी शेष रह गई थी, जो अपने आपको संसार में अकेला समझकर और चारों ओर अपने आपको दुखों से घिरा हुआ पाकर, दिल पर पत्थर रखकर मुंह से कलमा पढ़कर मुसलमान हो गई। मुसलमान बन जाने के बाद इनका सम्मान इस ढंग से किया गया कि इन्हें दिल्ली शहर में हकीम अबूत्राब बाहमणी के बाग़ों के माली का कार्य सौंपा गया।

हकीम अबूत्राब बाहमणी गोलकुंडा के बाहमणी वंश में से था। इतिहासवेत्ता जानते हैं कि गंगू नामक ब्राह्मण का एक मुसलमान नौकर दक्षिण में राजा बन गया था। उसने अपने स्वामी की स्मृति में अपने वंश का नाम बाहमणी वंश रखा। चाहे दक्षिण के ये राजा मुसलमान थे, पर इनका वंश बाहमणी वंश कहलाता था। दक्षिण में औरंगज़ेब काफी युद्धों में लगा रहा था और उसकी शक्ति का बहुत-सा भाग दक्षिण के युद्धों में ही व्यतीत होता रहा। दक्षिण के पांच प्रसिद्ध राज्य अलग-अलग थे। इन सबको समाप्त करने के लिए औरंगज़ेब ने कई षड़यंत्र रचे। एक षड़यंत्र यह था कि प्रत्येक वंश में से एक दो व्यक्ति निकलवा लिए और उनसे शत्रुओं के घरों के रहस्य का पता लगा लिया। प्रत्येक स्थान पर कुछ न कुछ ऐसे लोग होते ही हैं, जो अपने बुज़ुर्गों से रुष्ट होते हैं और शह मिलने पर विद्रोही बन जाते हैं। घर का भेद जानने वाले ऐसे ही लोगों में से हकीम अबूत्राब जी भी थे, जिन्होंने वंश तथा शासक के सारे रहस्य औरंगज़ेब को बता दिये थे। इसके बदले में औरंगज़ेब ने इसे दिल्ली में एक बहुत बड़ी

जागीर तथा अमीरी ठाठ आजीविका तथा सम्मान प्रदान किया था। ये हकीम जी अच्छे विद्वान, सहनशील तथा धैर्य वाले व्यक्ति थे। ये हमेशा धर्म की आड़ से स्वतन्त्र तथा सदैव आनन्द क्रीड़ा में मस्त रहने वाले थे और दिल्ली शहर के बाहर एक महल के साथ बाग़ लगवाकर अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। हमारे पंजाब के रहने वाले कंबोह-गुलाबा तथा गुलाबी मुसलमान बनकर इस व्यक्ति के बाग़ में बड़े माली के रूप में नियुक्त किए गए। इन्हें ठिकाना तो ठीक मिल गया था, परन्तु इच्छा के उलट मुसलमान बन जाने की पीड़ा इन्हें कांटे की भांति चुभती रहती थी। प्राणों की रक्षा की कमज़ोरी इन्हें इस संकट में से निकलने न देती थी। शासन ने जिस पतित अवस्था में इन्हें डाला था, वे उसमें नहीं रहना चाहते थे और केवल तलवार की आभा ही इन्हें इस अवस्था में से निकाल सकती थी। अतः वे कांपते थे। इस दशा में वे जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे माली के काम में निपुण थे। इनके परिश्रम के फलस्वरूप हकीम साहब के बाग़ लहलहा उठे। बाग़ों, पौधों के शौकीन हकीम साहब अपने नये माली तथा मालिन पर बहुत ही दयालु हो गये। हकीम साहब इनके बच्चों के साथ प्यार करते और इन्हें उपहार तथा पुरस्कार आदि देकर प्रसन्न रखते। ये बेचारे सोने के पिंजरे में कैद पंछी की भांति अपने इन सुखों को कारावास की सलाखों के तुल्य ही समझते थे। अभी भी वे तुर्कों के हाथ का पका भोजन न खाते, न ही मुसलमानों के भोजों में शामिल होते और न ही स्वयं किसी को घर पर आने का निमंत्रण देते। जब पति पत्नी दोनों अकेले बैठे होते तो यह सोचकर कि उनका धर्म भ्रष्ट हो गया है, निःश्वासें लेते।

कुछ समय के पश्चात् औरंगज़ेब को हकीम साहब की एक अन्य सेवा के लिए आवश्यकता हुई। यह वह समय था जब ईश्वरीय ज्योति गुरू फकीरी ठाठ में बैठा आनन्दपुर के पर्वतों में युद्ध का सामान तैयार कर रहा था। इसी समय संसार को त्राण प्रदान करने वाला गुरू मुक्ति का पुल बांधकर संसार से पार होने की दुनिया को चुनौती दे रहा था। हां, जिस समय भारत का उद्धारकर्ता, भारत में औरतों की भांति दुर्बल बन रहे भारत के सपूतों को मर्द और मर्दों से शेर-मर्द बना रहा था। यह वही समय था, जब सच्चा हितैषी विद्वानों को इकट्ठा करके ताले में बंद विद्या को हिंदी भाषा में लाकर प्रजा के अज्ञान को दूर कर रहा था। उस समय, जिस समय के संसार का सूर्य पर्वतों में से अपनी उदित-किरणें संसार में भेज रहा था। औरंगज़ेब के पास कट्टरपंथियों के माध्यम से ये समाचार पहुंच रहे थे कि एक शक्ति पैदा हो रही है, एक हकूमत का अंकुर फूट रहा है, जिसमें से मुक्ति तथा मुक्ति का सम्मिलित प्रकाश फैलेगा। एक ऐसी मिआन तैयार हो रही है जिसमें से 'संसार सिद्धी' तथा 'परमार्थ प्राप्ति' की दो-धारी तलवार

निकलेगी, जो उसके राज्य को नष्ट कर देगी। दूसरी ओर प्रजा को भी धर्म की शिक्षा देकर मुक्त कर देगी। ऐसी दशा में भला औरंगजेब आराम से कैसे बैठ सकता था? पहले पहल तो राजाओं को संकेत मिले। पर उसने सुना कि पर्वतीय तथा आस-पास के प्रांतों के दांत खट्टे हो चुके हैं। अब अपने सम्वाददाता द्वारा समाचार मिला कि ठाठ और भी बदल गया है। अत: औरंगज़ेब ने गुप्त दूत भेजने की योजना बनाई। यह काम हकीम अब्रूत्रास के सिर आ पड़ा। इन्हें विशेष रूप से निर्देश दिया गया कि भेस बदलकर तथा अपरिचित बनकर जाओ, कुछ दिन छिपकर वहां पर ठहरो और फिर आंखों देखे समाचार तथा अपनी राय लिखो। इसके बाद जो आदेश हमारी ओर से मिले, उसे देखते ही तुरंत भेस बदल कर तथा दूत बनकर जो संदेश हम समझाएं वह पहुंचाकर और उसका उचित उत्तर लेकर हमें भेजना अथवा अपनी ओर से पराया और अपरिचित व्यक्ति बनकर समझाना।

आज्ञा को पाकर हकीम साहब तैयार हो गये। चूंकि गुप्त ही रहना था, अत: एक रसोइया और एक सेवक भी साथ से लिया। माली तथा मालिन पर अब भरोसा अधिक बढ़ चुका था और दोनों उसी इलाके के थे, जहां पर कि उन्हें जाना था। अत: उनको भी भेजा कि चलें तो अलग-अलग होकर परन्तु रहें निकट निकट ही। अत: माली तथा मालिन को तो हिन्दू पहिरावे में पहले भेज दिया गया। बेचारे हिन्दू धर्म के खो जाने के कारण दुखी थे और चाहते थे कि किसी तरह वह फिर से प्राप्त हो। अब इन्होंने शुक्र किया। कि हिन्दू जन्म के स्थान पर हिन्दू पहिरावा तो फिर से मिल गया है। आनन्दपुर पहुंचकर इन्होंने अपने रहने के लिये एक मकान लिया। बनजारा बनकर वहीं पर आजीविका का प्रबंध किया और हकीम साहब के लिये एक दूसरा मकान ले लिया। दूसरी ओर हकीम जी भी सिंधी पहिरावा धारण करके चलने की तैयारी करने लगे।

जब गुलाबे आनन्दपुर जाकर रहने लगे, तब उनकी आंखों के आगे से मुसलमानी चमक दमक एकाएक दूर हो गई। हर रोज़ पांच बार की नमाज़ के समय मसिजदों में बांगें, शरह की समस्याओं के झगड़े, मारो, कत्ल करो, क़ाफिर है, नास्तिक है, तुर्की है, इत्यादि के आरोपों के बोल स्वप्न की भांति मिट गये। बाजारों में रथों, डोलों, बहेलियों, हाथियों, घोड़ों आदि की भागदौड़ के दृश्य लुप्त हो गये। बाज़ारों का शोर तथा बाग़ों में छिपकर होने वाले नृत्य तथा मदिरा के छिपे दौर बंद हो गये। अब इन्हें एक एकान्त तथा शांत स्थान पर ठिकाना मिला। यह वह स्थान था, जहां पर एक छोटे से शहर से थोड़ी दूरी पर निरंतर एकांत का राज्य फैल रहा है। जहां पर ठण्डी तथा सुहानी सतलुज नदी, एकान्त को और रूपवान करके शांत वेग में बह रही है। पहाड़ के दर्शन, हरियाली घाटियां चित्त की चंचलता को एकाग्रता की ओर लिये जा रही हैं। इस

प्रकार के सुखदायी एकान्त में पहुंचकर गुलाबियों का मन गुलाब की भांति खिल गया। अब दृष्टि धीरे-धीरे गुरू महाराज जी के सत्गुणी प्रताप की ओर पड़ने लगी। कहां उस झूठे बादशह की वेतन-भोगी सेनाएं और कहां प्रेम मय संगतों के जमघट। कहां दिल से दूर पर ऊपर से हुज़ूर-हुज़ूर कहने वाले मुसाहिब, और कहां तन मन से बलिदान दे चुके सिखों के सच्चे प्रेम तथा बलिदान। गुलाबा चाहे गुप्तचर का नौकर था और दिन रात जासूसी करने में ही बिताता था, फिर भी उसके मन पर गुरू जी के दर्शन कुछ और ही प्रभाव डालते थे। वह अपने स्वामी का कार्य भी कर रहा था और उसकी आज्ञा के बिना किसी दूसरी ओर को भी खिंचा जा रहा था। गुरुवाणी के पाठ तथा कीर्तन की घनघोर-दोनों पति-पत्नी को अनेक बार खींचकर दीवान के निकट ले जातीं। जब कभी शाम को रहरास वाणी के पाठ का दीवान सतलुज के किनारे पर लगाया जाता, तो दोनों व्यक्ति वृक्षों की ओट में बैठकर पाठ तथा कीर्तन सुनते। प्यारे गुरू कल्ग़ीधर जी का मनमोहक चेहरा, जिसे देखकर व्यक्ति अपने आप प्रेमी बन जाते थे, इन पर भी अपना प्रभाव डाल रहा था।

एक दिन एक सिख का विमान जा रहा था। इसके साथ अनेक सिख थे और फौजी सम्मान के साथ तीर बन्दूक और गुरू जी का विशेष नफीरीखाना मारू राम में दिल को आकृष्ट करने वाले स्वर में वैराग्य के शोक-सूचक स्वर बजा रहा था साथ ही रवाबी (कीर्तन करने वाले) गुरुवाणी का कीर्तन करते जा रहे थे। इतने में क्या देखते हैं कि सिखों के शिरोमणि गुरू कल्ग़ीधर जी सरपट घोड़ा दौड़ाते चले आ रहे हैं। आप विमान के पास घोड़े से उतरे और अपने पवित्र हाथ विमान को लगाकर कहने लगे। "जाओ बेटा! अकाल पुरुष के चरणों में तुम्हारा निवास हो। तुम्हारा जन्म धन्य है, तुम्हारा इस संसार में आना सफल हुआ है।" नदी के किनारे पर जाकर गुलाबे ने एक सिख से पूछा कि, "यह कौन व्यक्ति था, जिसे इतना सम्मान मिला।" सिख ने उत्तर दिया, यह एक कृत्य करने वाला सिख था जो थोड़ा समय काम करके अपना निर्वाह किया करता था और शेष समय गुरू महाराज जी की संगतों की सेवा में लगाया करता था। परदेस से आने वाली संगतों की आवश्यकताएं इसके द्वारा पूरी होतीं। यह ग़रीबों के भोजन, वस्त्र, आदि का भी प्रबंध करता और रोगियों को औषधि आदि भी पहुंचाता। अब कुछ समय ने इसके मन में नेत्रहीनों के लिये बहुत अधिक दया के भाव बढ़ गये थे। जहां कहीं भी किसी नेत्रहीन का इसे पता चलता, तो यह उसे गुरू महाराज जी के द्वार पर ले आता और गुरू जी के लंगर से उसकी भोजन वस्त्र आदि की आवश्यकता को पूरा करता। इसने किसी नेत्रहीन को राग विद्या दी और किसी को गुरुवाणी के अर्थों को बोध करवाकर ज्ञानी बना दिया। इस प्रकार के काम

तो पहले से ही गुरू के घर में होते रहते थे। प्राय: नेत्रहीन को सूरदास कहा जाता है। पर यहां आनन्दपुर में इसने एक पाठशाला का संचालन किया। इसने नेत्रहीनों को वस्त्रों की सिलाई का काम भी सिखाया। यहां तक कि नेत्रहीन सूई में धागा भी डाल लेते हैं। कई चाटइयां बनाते हैं और कई निवार भी बनने लगे हैं। चार दिन पहले यह प्यारा सिंह एक घायल नेत्रहीन को वन में से अपने कंधे पर उठाकर ला रहा था कि रास्ते में विलासपुर के राजा के नौकरों ने इसे पकड़ लिया और इस पर गुप्तचर होने का आरोप लगाकर इसे अपने इलाके में ले गये। इसके बाल कटवाकर ठाकुरों की पूजा करने को कहा गया। पर यह न माना। अंत में इसे विष की एक कटोरी दी गई। सतगुरू जी का ध्यान करके सिंह ने विष पी लिया और ईश्वर का शुक्र करते हुए प्राण त्याग दिये। राजा के नौकरों ने इसके मृतक शरीर को वन में फैंक दिया। इसका किसी सिख को पता चल गया और इसे उठाकर यहां ले आया। अत: इसे प्यारे के प्यार भरे जीवन अपने आपका त्याग करके गुरू के चरणों से प्रेम तथा अंत में धर्म पर से प्राणों का त्याग करने के कारण सिखों ने इसकी इतनी प्रतिष्ठा की है। गुरुदशमेश जी ने जो अपने सिखों से अपने पुत्रों से भी अधिक प्यार करते हैं सिख का जो सम्मान किया है, वह तुमने स्वयं देख ही लिया है। दूसरे बादशाह तो भय देकर बलपूर्वक-राज्य करते हैं, हमारे सतगुरू जी इसी कारण सच्चे पातशाह हैं, क्योंकि आप प्रेम तथा सत्य द्वारा दिलों पर राज्य करते हैं। सभी सिख सिर न्योछावर करने के लिये तैयार हैं, पर सतगुरू जी छोटे से छोटे सिख को बड़े पुत्र से भी अधिक प्यार करते हैं।" यह सारा समाचार गुलाबे दम्पत्ति के लिये कहर का एक चित्र बनकर सामने आया। सोचने लगे कि किस थोड़े थोड़े से जीवन के लिये मुलसमान बने हैं... जीवन कितना है। हम कितने दुष्ट हैं कि धर्म अवतार की नगरी में उसके साथ द्रोह करने के लिये आए हैं। धिक्कार है हमारे श्वाँसों पर, हमारे जीवन पर–हम पवन, पानी, अन्न–तीनों को भ्रष्ट कर रहे हैं। अच्छा होता, हम मर जाते और संसार में से इस उपकारी सिख की भांति निष्कलंक जाते।

इस तरह पश्चाताप करते हुये रात व्यतीत हो गई। दिन चढ़ा, पर उनके भाग्य! दूसरे दिन क्या देखते हैं कि फौजों वाले कल्गीधर जी एक खुली जगह पर नदी की ओर समतल भूमि पर खड़े हैं। पावों में पतला-सा जूता है, नीचे कच्छा पहन रखा है। गले में छोटी आंगिया और सिर पर छोटी दस्तार है। पास ही एक शरीर मुर्दे की भांति पड़ा है। कल्गीधर जी स्वयं उसके सिर पर हाथ फेर रहे हैं और मुंह से कुछ कह रहे हैं। पास एक सिख भी खड़ा है। एक दो मिनट के बाद वह मुर्दा-सा शरीर उठकर बैठ गया और गुरू जी के चरणों से लिपट गया। जब गुलाबा ने इसका पता लगाया तो उसे ज्ञात हुआ कि 'सतिगुर

जागता है देउ' श्री कल्ग़ीधर जी कई बार नींद ही नहीं करते। कभी-कभी तो रात को त्रिपहिरे से पहले ही निकल कर बाहर चले जाते हैं। पर समय पर दीवान में पहुंच जाते हैं। आज आप नदी के किनारे पर ऐसे निजानन्द में मगन होकर बैठे कि पौ फट गयी। आप क्या देखते हैं कि कोई चीज़ नदी में बहती चली आ रही है। किनारे पर दो पथिक जा रहे हैं। उनमें से एक पण्डित है और दूसरा मुसलमान। ब्राह्मण तो यह कहकर चल दिया कि यह कोई मलेच्छ न हो। मुसलमान ने देखकर कहा कि सूरत तो किसी काफिर की है, मरने दो, जितने मरें उतना ही अच्छा है। कल्ग़ीधर जी सुनकर हंस पड़े। आपने चारों ओर देखा और कहा कि मेरे प्यारे के हाथों की कला को निर्जीव जल बेसमझी में नाश करने लगा है। यह कहकर छलांग लगा दी और उसे बाहर निकाल लाये और प्रयत्न करे उसे होश में ले आये।[१]

इस प्रकार कल्ग़ीधर जी के दर्शन, उनकी संगतों के दीदार, उनके कौतुकों ने गुलाबियों के मन को, भरी न जाने वाली चाह से भर रहे हैं। वे समझते हैं कि हिंदू धर्म कच्चा धर्म है और वे दोबारा हिन्दू नहीं बन सकते। पर मन तो फिर भी विनती कर रहा है, ऐसी विनती जिसका चित्र गुरुवाणी के इस विरह में है:-

करमहीण धन करै बिनंती
कदि नानक आवै वारी॥
सभि सुहागणि माणहि रलीआ
इक देवहु राति मुरारी॥१॥

: २ :

हम नीच से उतम भए हरि की सरणाई॥
पाथरु डुबदा काढि लीआ साची वडिआई॥४॥
बिखु से अंम्रित भए गुरमति बुधि पाई॥
अकहु परमल भए अंतरि वासना वसाई॥५॥

[वडहंस मः ३ असः]

सारी विद्या के स्रोत, सभी गुणों की खान, सभी कलाओं के निर्माता श्री कल्ग़ीधर जी वनस्पति विद्या के भी ज्ञाता और प्रेमी थे। आनन्दपुर में बाग़ लगवा

---

१. यह व्यक्ति विलासपुर के राजा का एक अहलकार था और गुरू जी का बहुत बड़ा विरोधी था। उसकी पत्नी ने आज किसी बुरी बात के कारण, नशे में बेहोश को नदी में फेंकवा दिया था। जब गुरू जी उसे होश में ले आये थे। आज से उसकी शत्रुता प्रेम में परिवर्तित हो गई। उसका पाप से भरा जीवन पलटकर सिख आदर्शों में बदल गया। इसने 'गजराज सिंह' बनकर गुरू जी के अंतिम युद्ध में शहीदी प्राप्त की।

रखे थे। एक तो नदी का किनारा था। नदी के किनारों की कांट-छांट करके सुन्दर सीढ़ियां बनवा दी थीं और फूलों के पौधों तथा वाटिका बनवा दी थीं। देश विदेश के पौधे इस वाटिका में थे, अंगूर, बादाम, सेब, नाशपाती, बिनफशां के फूल तथा दूसरे सुगन्धित झाड़, हिमालय के जंगली गुलाब-सेवती, देसी गुलाब, मोटी इलायची आदि कई प्रकार की वनस्पतियों का मानो एक सुन्दर बाग बसा रखा था। यहां तक कि प्रति वर्ष काश्मीर से केशर की जड़ें मंगवाई जातीं, जिन्हें बड़ी योग्यता से पत्थर तथा मिट्टी के गोल गमलों में उगाया जाता और फलों के एक बार खिलने से गुरू महाराज जी के बाग में बहार आ जाती। मोंगरा, मोतिया, चंदा, सोनजूही, बेला, चमेली, कई प्रकार के गुलाब, मरुआ, रत्न गुलाब आदि सुगंधित फूलों की कोई गणना ही नहीं थीं। आश्चर्य की बात है कि रात दिन धर्म, राज्य तथा विद्या के इतने कार्य कि उनसे अवकाश भी न मिले, पर समय वाले सतगुरू श्री कल्ग़ीधर जी इस बाग के लिये भी समय निकालते और उनकी दया-दृष्टि के कारण ही इस बाग़ीचे पर बारह मास जोबन-सा आया रहता।

गुलाबियों का चित्त् अपनी ही सोचों के उतार-चढ़ाव में रहकर यह बात स्वीकार कर चुका था कि यह असंभव-सी बात दिखती है कि हमारा सिर भी कभी कल्ग़ीधर जी के चरणों का स्पर्श कर पायेगा, अथवा हाथ भी इस पवित्र शरीर की कोई सेवा कर सकेंगे। हम उखड़े हुए बाल, टूटे हुए दांत तथा कटे हुए नाखून की भांति दोबारा अपने स्थान पर नहीं जा सकते। अतः इस आशा से निराश होकर यह प्रयत्न किया कि दूर रहकर कोई ऐसी सेवा की जाये जिससे किसी तरह जगत दाता की दृष्टि पड़ जाय। यह विचार कर उस गुरू के बाग़ की मालिन के साथ गुलाबे ने जान-पहचान कर ली। धीरे-धीरे पति-पत्नी ने गुरू महाराज के उपवन में जाने की योजना बना ली। वहां जाकर विशेष प्रकार की सेवा में भी योगदान देना शुरू कर दिया। इन्होंने एक विशेष वाटिका में गुल दोपहर के पौधे इस प्रवीणता से लगाये कि जब दोपहर के समय फूल खिलें तो यह पढ़ा, "पतित पावनु बिरदु हरि सुआमी"। इस वाटिका से अलग फूलों के कुछ पौधे इस तरह गूंथकर लगाए कि फूलों का रुख तो एक ओर रख लिया और छड़ें गाड़कर फूलों की झुकी टहनियों को इस ढंग से ठिकाने पर लाकर बांध दिया कि मानो कोई स्त्री खड़ी है। इस प्रकार बाग़ में जगह-जगह पर कई कौतुक रच दिये। एक दिन श्री दशमेश जी अपने साहबज़ादों सहित सायंकाल को बाग़ में आये। आप इन नई कृतियों को देखकर मुसकुराये, पर कुछ पूछा या कहा नहीं। दूसरी ओर मालियों की लगन बढ़ती चली गई। सिख धर्म के केन्द्र में रहकर पश्चाताप वाले हृदयों के होते हुए सिख धर्म के नियमों को सीखने की आवश्यकता नहीं थी। अपने आप आदर्श का प्रभाव पड़ता गया और इन्होंने सिख मर्यादा धारण कर ली। माली सिख की संगति ने इन्हें वाणी का पाठ, सेवा,

विनम्रता, छल, कपट से दूर रहना आदि गुण सिखा दिए। जाड़े की शीत बढ़ती जा रही थी और बाग़ के फूल कुहारे तथा ठंड के कारण मुरझाते जा रहे थे। गुलाबियों ने एक दिन क्या देखा कि सिख माली एक छायादार जगह पर गुलाब तथा गेंदे के फूलों वाले गमले इकट्ठे कर रहा है। पूछने पर पता चला कि गुरू दशमेश जी का गुरुपर्व (वर्षगांठ) समीप आ रहा है। उस दिन एक भारी दीवान सजेगा और फूलों का मिलना मुश्किल हो जायेगा। अतः इन्हें छाया में सम्भालकर रख रहा हूं। जितने अधिक पौधे बच जायं उतना ही अच्छा है। बाग़ का बड़ा माली भाई केसरा सिंह केवल एक माली ही नहीं था, बल्कि सेवा का भी बड़ा इच्छुक था। बाग़ के प्रशंशक होने के कारण इसे अद्‌भुत व्यक्तियों से मिलने का अवसर मिलता था। अतः अमूल्य सेवा के समय भी यह दिखाई देता था।

काशी के पण्डित राधोवा को जब औरंगज़ेब ने इस अपराध के कारण क़त्ल करवा दिया कि इसने विश्वेश्वर नाथ के मन्दिर को मसजिद बनाने की योजना के समय आपत्ति उठाई थी। पण्डित की पत्नी त्रियंविका बाई अपने इकलौते पुत्र तिलक नाथ को साथ लेकर पुरुषों वाला वेष धारण करके काशी से भाग निकली थी, क्योंकि उसे अपने तथा बच्चे को मिलने वाले कष्टों का पता चल गया था। इतने बड़े भारत देश में उस असहाय स्त्री के लिए सिर छिपाने को कोई जगह नहीं थी, जहां पर कि वह औरंगज़ेब के अत्याचार की तपिश से दूर रह सकती। घबराई तथा बावली हुई को याद आ गया कि उसके पति के मित्र काशीनाथ को तंग किया गया था, तो वह काशी से भागकर गुरू दशमेश जी की शरण में आ गया था। मन में विचार आया कि यदि उसको भी वही आश्रय मिल जाय, तो इस कलियुग में दिन सुख से बीत जाय। अतः अनेक कष्टों को झेलती हुई वह बेचारी काफी समय के बाद आनन्दपुर पहुंची। अचानक इसकी भेंट केसरा सिंह की पत्नी करम कौर से हो गई। करम कौर इसे लम्बी यात्रा के कारण थकी-मांदी को अपनी कुटिया में ले गई और इसकी अच्छी तरह सेवा की। वास्तव में त्रियंबिका बाई और उसका पुत्र बीमार थे। करम कौर ने इस स्त्री की सेवा अपने सिर पर ले ली। साथ की कुटिया में विश्राम दिया। इलाज के लिए हकीम, सेवा के लिए स्वयं और दिलासे के लिए महाराज जी की वाणी तथा धैर्य के लिये कल्ग़ीधर जी का गुणगान तथा परलोक के सुखों की आशा के लिये सिख धर्म के सिद्धांतों का वर्णन आदि प्रयत्न हर समय करती रहती। अब यह पंडिताइन ठीक हो गई थी और सेवा में कुछ हाथ बटांती थी। स्वयं चंबेली के फूलों को तोड़ती और सुन्दर मालाएं पिरोकर करम कौर के हाथ श्री कल्ग़ीधर जी के लिये भेजती। करम कौर ने एक कुटिया श्री गुरू ग्रंथ साहब के लिए बना रखी थी। त्रियंबिका बाई पंजाबी पढ़ गई थी, यह भी उसी कुटी में पाठ करती।

शनैः शनैः गुलाबे को भी करम कौर की गुप्त सेवा का पता चल गया। साहस बटोर कर एक दिन गुलाबे ने पूछा–माता करम कौर! मैं तो पतित होने के कारण आप जैसों के निकट खड़े होने के योग्य नहीं हूं, पर यह महिला तो हिन्दू धर्म वाली है, इसे अमृत चखाकर महाराज जी के चरणों से क्यों नहीं लगातीं? करम कौर ने उत्तर दिया कि सब कुछ हो जायेगा। सिंह जी तथा मैं दासी गुरुपर्व के लिये महाराज जी को भेंट करने के लिये कई प्रकार के उपहार तैयार कर रहे हैं। यह पंडिताइन भी गुरू जी के लिये छंद लिख रही है। उस दिन इन सबको भेंट किया जायेगा। चलो मेरे साथ और यह कहकर उसे साथ लेकर चल दी।

एक अन्य कुटिया में जाकर क्या देखा कि दो छोटे–छोटे बालक पालने में झूल रहे हैं और दो पहाड़ी स्त्रियां उनकी देखभाल कर रही हैं। पूछने पर पता चला कि इन दो बच्चों को पहाड़ी राजकन्या ने जन्म दिया था अतः उसने अपनी मौत के भय के कारण, इन्हें एक छोटी–सी नाव में डालकर नदी में बहा दिया था। स्नान करते समय पति जी को ये बच्चे मिल गये। हमने लाकर इन्हें पालने में डाल दिया। धन तो गुरू कल्ग़ीधर जी का है, इन शिशुओं की सेवा की प्रेरणा गुरू जी ने प्रदान की है। सप्तमी वाले दिन इनको भी गुरू दीनबंधु जी की सेवा में प्रस्तुत किया जायेगा। फिर माई ने एक बस्ता खोलकर उसमें से चालीस–पचास गुरुवाणी के गुटके निकालकर दिखाए और बताया कि ये जपुजी नानक वाणी के गुटके हैं, जिन्हें हम दोनों रात के समय लिखते रहे हैं। ये भी सप्तमी वाले दिन श्री गुरू जी अपने हाथ से प्रेमियों को देंगे।

करम कौर का गुलाबियों के साथ सच्चा मोह हो गया। वह चाहती थी कि इस दम्पत्ति को भी सप्तमी के पर्व के उपहारों में ही गुरू महाराज जी की सेवा में उपस्थित किया जाय। अतः गुलाबे को साथ लेकर अपनी एक अन्य बहन के घर गई और उससे पूछा कि बहन जी! आपने सप्तमी की क्या भेंट तैयार की है? उस ने उत्तर दिया कि दीदी! हम कौन–सी भेंट देने योग्य हैं। गुरू दशमेश जी ने आप ही प्रेरणा द्वारा मुझ मुर्ख के हाथ सफल करवाए हैं। ये लोइयों के दो जोड़े तैयार किए हैं, इन्हें भेंट करूंगी, यदि ये स्वीकार किए गये। फिर करम कौर एक अन्य व्यक्ति के घर गई। वहां पर पूछने से उत्तर मिला कि एक गरीब राजपूत के घावों में कीड़े पड़ गये थे, वाहिगुरू जी की प्रेरणा से उसकी सेवा की है। अब वह स्वस्थ है। सिख धर्म को अपनाने का इच्छुक है, वाणी का पाठ करता है। भले पुरुष को सप्तमी की भेंट करके याचना करूंगी कि दीनबंधु जी! इसे अपने चरणों से लगा लीजिए। इसी प्रकार एक और महिला के घर गई। उसने बताया कि वह तो कुछ भी नहीं कर सकी; वह आठ–नौ महीने तो होशियारपुर में ही रही। महाराज जी की केवल इतनी प्रेरणा अवश्य ही हुई है कि उसको बहन तथा जीजा सदैव लड़ते–झगड़ते रहते थे, अब उनका झगड़ा समाप्त हो गया है। अब आपस में बहुत प्यार से रहते हैं। वे आज यहां आ गये हैं, सप्तमी को गुरू जी के चरणों की शरण लेंगे।

अत: गुलाबे ने प्यार के अनेक कार्य देखे। किसी ने सप्तमी के पर्व के लिए फुलकारियां तथा बाग की कढ़ाई की, किसी ने पुस्तकों की नकलें लिखी थीं। किसी ने कंघे तथा कृपाणें तैयार करवाई थीं। किसी एकाध ने अन्न इकट्ठा किया था। कइयों ने विधवाओं, रोगियों तथा अनाथों की सेवा की थी और उपदेश देकर उन्हें अमृत का अधिकारी बनाया था। कइयों ने नेत्रहीनों, बहरों, गूंगों तथा लूले-लंगड़ों का लालन-पालन किया था। कइयों ने ईश्वर के नाम पर सड़कों की मरम्मत की थी। किसी ने जल के लिए कुआं, बावड़ी लगवाए थे। तात्पर्य यह कि गुरुपर्व के प्रेमी सच्चे सिदक वाले सिख यथाशक्ति सेवा लेकर आनन्दपुर को उमड़े चले आ रहे थे। मन में चाव भरा था कि अपनी सेवा सच्चे शाहंशाह के दरबार में प्रस्तुत करके दैवी प्रसन्नता प्राप्त की जाय। इन सतोगुणी खुशियों की तैयारी को देख-देखकर गुलाबा तथा गुलाबो बहुत ही चकित होते। ईर्ष्या तथा द्वेष, लालच तथा हठ के कारण जल रही धरती में बैकुंठ का यह टुकड़ा उन्हें कौन-से पुण्य कार्यों के कारण देखने को मिला है। एक ओर सारी भारत भूमि तमोगुण से दग्ध हो रही है, दूसरी ओर यह सतोगुणी टुकड़ा, सारे देश में शान्ति के संदेश भेज रहा है। धर्म के मुखिया प्रेमी सारा वर्ष जगह-जगह पर धर्म-प्रचार करते रहे, वे अब अपनी-अपनी सेवा का लेखा लिए आ रहे हैं। गुलाबे इन्हें देखकर प्रसन्न होते हैं, खिलते हैं तथा प्रफुल्लित होते हैं। पर उनके मन में यह सोच पैदा होती है कि किसी तरह उनके तप्त हृदयों को भी अमृत का प्रसाद प्राप्त हो, तो उनकी निराशा का कोई ठिकाना न रहता। बेचारे समझते हैं कि वे कट चुके हैं।

इन ही सोचों में दिन व्यतीत कर रहे थे कि हकीम साहब आ पहुंचे। गुलाबियों ने उन्हें मकान में निवास करवाया, पर कलेजा हिल गया। सुरति, जोकि एक बहाव में जा रही थी, मानो ठोकर खाकर चौंक उठी। सोचने लगे कि वे यहां पर किस कुकर्म के लिए आए थे। क्या हम गुरू के द्रोही का नमक खायेंगे? क्या गुरु द्रोह में हम भी भाग लेंगे? क्या हम इस दाता के साथ दग़ा करेंगे? धिक्कार है ऐसा जीवन तथा ऐसे कर्मों पर। पर अब उनका यह दिल नहीं रहा जो मुसीबतों में पैदा हुआ था, अब तो शेरों की संगति ने वीरता का रंग लगा दिया है। वह दिल जो कायर था ज़ोर-ज़ोर से यही आवाज़ निकालता है कि शरीर का त्याग कर देंगे, पर अपने मन के भाव में गड्ढा नहीं पड़ने देंगे। मौत से पापी जीवन की अपेक्षा अधिक प्रेम करेंगे। पर हैं! नमक खा रखा है। अब तक नौकरी की है। 'स्वामी द्रोह' की हत्या से डर लगता है। चित्त ऐसी द्विविधा में फंसा स्थिर नहीं होता। हकीम साहब समाचार पूछते हैं और ये मामूली-सी बात कह देते हैं। अंत में एक दिन हकीम के पास जाकर गुलाबे ने तलवार निकालकर रख दी और कहा कि, "तुम मालिक हो, तुम्हारा नमक खाया है,

तुमसे द्रोह नहीं करना, सच्ची बात सुन लो और हमें खत्म कर दो।" यह कहकर अपनी निष्ठा का सारा समाचार कह दिया। हकीम जी सारा वृत्तान्त सुनकर बोले, "गुलाबे! मैं स्वयं ही शरई मुसलमान नहीं हूँ। हमारा पूर्वज एक हिन्दू था। मुसलमान बनने के बाद भी हिंदू की नौकरी करता रहा। पातशाह बनकर चाहे उसने कुछ किया हो, परन्तु मैंने तो जब शिक्षा प्राप्त की है, मैं इन काज़ियों के मज़हब को तुच्छ ही समझता हूँ, तुम किसी धर्म के अनुयायी बनो, मेरी ओर से पूरी छूट है। दिल्ली के काज़ियों की फिक्र तुम स्वयं ही कर लेना। शेष रहा कार्य, उसे तो अब करना ही हुआ। समाचार लेकर बादशाह को लिख दें।" गुलाबे ने कहा, "दयालु! जो तुम्हारी इच्छा हो वह करो, पर हमें अपनी नौकरी से हटा दीजिए। हम इस पाप कार्य में भाग नहीं लेंगे। हम तो बन्दगी करके ही अपने जीवन को सफल करेंगे और दुखियों की सेवा में दिन काटेंगे, अब आप चाहे मारें चाहे रक्षा करें। आपका नमक हमने खाया है अतः क्षमा कर दीजिए और यदि आप क्षमा नहीं करेंगे तो हम मेहनत मजदूरी करके आपकी कौड़ी-कौड़ी चुका देंगे और यदि आप हमें मारना चाहो, तो उसके लिये भी तैयार हैं।" हकीम सुनकर मुस्कराता रहा और गुलाबा आज्ञा लेकर विदा हो गया और हकीम जी ने उस पर कोई अत्याचार न किया। हकीम ने गुरू जी संबंधी जो समाचार सुने तथा जो बातें देखी थीं, उन्हें लिखकर दिल्ली भेज दिया।

दूसरे दिन हकीम को ज्वर हो गया, ज्वर भी ऐसा हुआ कि मानो मौत का संदेश बन गया। बावलों की भांति कपड़े फाड़ने तथा तड़फने और व्याकुल होने लगा। किसी समय ज्वर कुछ कम होता, फिर ज़ोर से हो जाता। लगता कि मियादी बुखार है। दोनों दास जो साथ आये थे, धीरे-धीरे खिसक गये। एक भतीजा भी जो साथ आया था, वह भी जायदाद की संभाल के लालच में भाग गया। उसने समझ लिया कि हकीम जी का अब जीवित रहना कठिन है। जब गुलाबियों ने यह दशा देखी तो सोचने लगे कि गुरू द्रोही है, हमें क्या, मर जाये तो अच्छा है। पर फिर करम कौर ने, जिसे ये सारे भेद बता चुके थे, समझाया कि, "यह तुम्हारा मालिक है, फिर यह ईश्वर की रचना है, भला है अथवा बुरा, इस का फल यह स्वयं भुगतेगा। तुम फल देने वाले नहीं हो, क्यों परमेश्वर के कार्य को अपने हाथ में लेते हो? तुम दुखी समझकर सेवा करो और गुरू की प्रसन्नता प्राप्त करो।" यह उपदेश कोई मामूली नहीं था, घाव कर गया। दोनों व्यक्ति सेवा में लग गये। बारी-बारी दिन रात चार-चार घड़ी पहरा देते, दवाई आदि लाकर देते और हर प्रकार की सेवा करते। इक्कीस दिनों के बाद ज्वर टूट गया। जीवित रहने की आशा कम थी पर, "जिस राखै तिस कोइ न मारै।" इधर यह अलौकिक सेवा, उधर भतीजे तथा निजी नौकरों का भाग जाना, हकीम के मन पर गहरा प्रभाव डाल गए। रोग क्या था, मानो हकीम जी को मौत के दर्शन हो गए थे। वे सुख कड़ुवे लगने लगे, जिनके लिए पाप किए थे। वह कीचड़

जिसमें मन फंसा हुआ था, नरम हो गया। शरीर की तंदरुस्ती लौट आई, पर मन में से उदासी न गई। गुलाबा तथा गुलाबी प्यारे लगते हैं और चित्त उपकार को स्वीकार करता है। साथ इस बात की भी समझ आ गई कि इन्होंने जो सेवा की है, जिसमें कि अब इनका मन रम गया है। फिर इन्होंने दशमेश जी को गुरू तथा मुझे उनके शत्रुओं का दूत समझकर शत्रुता करने के स्थान पर मुझसे प्रेम किया हैं वाह, धन्य है यह धर्म। धन्य यह हादी। धन्य इनकी शिक्षा और धन्य ये सिख हैं। यह धर्म जो इन उजाड़ों में प्रफुल्लित हो रहा है। मन इस प्रकार के विचारों तथा सोचों में दिन-रात डूबा रहता, पर खुलकर कुछ नहीं पूछता। अंत में उससे रहा न गया। एक दिन गुलाबे से सिख धर्म का समाचार पूछ बैठा। गुलाबे ने अपने धर्म का सारा समाचार कह सुनाया। भजन, बन्दगी तथा स्मरण के कारण, आत्मा की जागृति के सारे समाचार सुना दिए। परोपकार तथा ईश्वर को सर्वव्यापक जानकर तथा अहं से मुक्त होकर सेवा के जो नमूने देखे थे, वे सारे बता दिए। धर्म से विमुख तथा देशद्रोही अबूत्राब चक्कर खा गया। पर यह चक्कर उस कीट के चक्कर की भांति था, जो गुलाब की सुगन्धि के कारण चक्कर खाता है। एक ओर द्रोह तथा धक्काशाही वाला औरंगज़ेबी वायुमंडल और दूसरी ओर यह सत्य तथा उपकार का सुगन्धित बैकुंठ। धीरे-धीरे हकीम चलने-फिरने लगा और ज्योतिपुंज कलगीधर जी के तथा उनके प्यारे-प्यारे सिखों के कौतुक देखने लगा। उस बेचारे ने 'तलवार तथा भक्ति' का मिलाप कब सुना देखा था। यहां पर तो वह प्रत्यक्ष दीख रहा था। जितने गुण मनुष्य में होने चाहिए, वे सारे कलगीधर जी में दिखाई देते थे। जितने गुण किसी अवतार, पैग़ंबर में होने चाहिए, वे सारे पूर्ण रूप से गुरू जी में झलकते हुए दिखाई देते थे। जितने गुण अकाल पुरुष के सगुण स्वरूप में सृष्टि प्रेम तथा उपकार वाले होने चाहिए, वे सारे यहां पर विद्यमान थे। अब कुटिल तथा फेनी की भांति पेचदार हृदय भी बिल में घुसने वाले सांप की भांति सीधा होने लगा। पदार्थों का जादू, मनौतियों का टोना, आर्थिक सुखों का इन्द्रजाल आंखों के आगे से हट गया। चित्त् कुछ परोपकार, बलिदान, पराए के सुख के लिये दुख झेलने की क़दर करने लगा। औरंगज़ेब की स्वार्थता, पाप भरे षड़यंत्र, दग़ा करके राज्य प्राप्त करने का चित्र बुरा लगने लगा। गुरू जी का उपदेश और उनके द्वारा तलवार उठाने के उपकारी तथा ग़रीबों की रक्षा के उसूल की समझ आई। धीरे-धीरे उधर से हमदर्दी दूर हो गई और गुरू जी के चरणों के साथ दर्द हो गया।

एक दिन आनन्दपुर के नीचे की ओर हकीम साहब अपनी गहरी सोच में डूबे सैर करते हुए बन में जा निकले। क्या देखते हैं कि एक जवान ग्रांडील व्यक्ति लेटा हुआ है। इसकी एक टांग घाव के कारण गल रही है और उसमें कीड़े चल रहे हैं। अत: वह चलने-फिरने के योग्य नहीं है। भूख के कारण

अत्यंत दुर्बल और कमज़ोर हो रहा है। एक सिख आया, उसने उसके आगे कुछ भोजन रखा और पास होकर उसके घाव पर चीढ़ का तेल डाला और सारी टांग क़ो भली-भांति तेल से तर कर दिया। कुछ समय इसकी सेवा के पश्चात् जब सिंह जी फारिग़ होकर जाने लगे तो हकीम जी ने थोड़ी दूर जाकर पूछा कि यह कौन है? सिख ने उसका नाम तथा पता बताया। तब हकीम ने कहा, "यह तो एक प्रसिद्ध डाकू है। इस पापी को तो मार देना ही धर्म है। तुम इसकी सेवा कर रहे हो और इसे फिर से पाप करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हो।" सिंह जी ने उत्तर दिया, "महाराज! जो कुछ आपने कहा वह सब कुछ ठीक है, परन्तु दुखी को मारना और मरे हुए पर अत्याचार करना यह कोई वीरता नहीं है। यह स्वस्थ हो, शक्तिसम्पन्न हो, फिर इसे चुनौती देकर मारेंगे, तब तो हमारी वीरता होगी। अब दुखी को और दुख देकर अपनी वीरता को बट्टा क्यों लगाएं? न जाने मेरी सेवा के कारण इसका हृदय द्रवित होकर नेकी की ओर झुक जाए और इसका सुधार हो जाए। पापी को मारने की अपेक्षा उसको सुधारना श्रेष्ठ है, क्योंकि पाप को दूर करना हमारा धर्म है, मारना हमारा धर्म नहीं है। यह दुखी व्यक्ति चाहे पापी भी हो, फिर भी हमसे कुल्हाड़ा खाने का हक़दार नहीं है। इसके रोग को दूर करने में सहायता करना, गिरे हुए शत्रु पर दया करने तुल्य है। सिंह कायर नहीं हैं, शूरवीर हैं। शान्त रस में निमग्न रहते हैं पर व्यवहार में वीर रस का आश्रय रखते हैं। कभी भी हृदय को तमोगुणी तथा वैर का ठिकाना नहीं बनाते। स्त्री, बालक, रोगी, दीन, दुखी, निर्बल की रक्षा करते हैं, चाहे वह सज्जन हो या दुश्मन। सिंह ईश्वर को घट-घर में देखते हैं, उसकी रचना का आदर करते हैं, वे दुखी शत्रु की सेवा भी मित्रों की भांति करते हैं। हां, रणभूमि में जो वीरता से आगे आए और देश का घातक तथा प्रजा का द्रोही हो, उसे चुनौती देकर मारते हैं। मैं स्वयं अपने हाथों से दो शेरों को मार चुका हूँ, जो यात्रियों पर वार करते थे। सिंह इसी को वीरता कहते हैं। सिंह तुर्कों के साथ भी, उन्हें तुर्क समझकर वैर नहीं करते। उन्हें प्रजा के द्रोही तथा अन्यायी जानकर वीरता से उन्हें ठीक रास्ते पर लाना चाहते हैं। यदि वे हमारे कहने से जुल्म का त्याग कर दें और ठीक ढंग से व्यवहार करने लग जायं, तो हम समझेंगे कि हमारा मनोरथ पूरा हो गया।" हकीम जी ने कहा, "यह तो तुमने बहुत ही बढ़िया बात कही है। पर एक बात बताइये कि तुम घरबार का त्याग करके, प्यारे मित्रों से टूटकर क्यों गुरू जी की सेवा में दुख भोगने तथा व्यर्थ मौत के मुंह में पड़ने के लिए आ गये हो।"

सिंह जी बोले, "अपने जन्म को सफल करने के लिए। 'देह को नहीं रहना' हमें इस बात का निश्चय हो गया है। यही कारण है कि हमारा देह से प्यार ही नहीं रहा। जब देह के साथ प्यार न रहा तो अपने आप देह के भोगों का मोह भी कम

हो गया। इसी समझ में यह भी ज्ञान हुआ कि नश्वर वस्तु को परम उत्तम कार्य में लगाना चाहिए। अत: गुरू जी की आज्ञानुसार जरूरतमंद की सेवा करना सर्वश्रेष्ठ कार्य दीख पड़ा है, यह है देह की सफलता। हमारा परम प्रयोजन–जीवन का मनोरथ–उस दिन सिद्ध हो गया था, जिस दिन ईश्वर का 'नाम' अंतस से बस गया था। अर्थात् अपना आप अपने में ही एकाग्र होकर मानसिक स्वतंत्रता में आ गया।"

तनिक दीर्घ दृष्टि से देखें, सारा संसार दुखों से घिरा पड़ा है, प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए सुखों का इच्छुक है अज्ञानता के कारण प्रत्येक व्यक्ति स्वयं सुखी होने के लिए दूसरों को दुख देने से लाज नहीं करता। अत: एक तो इस खोटी इच्छा ने संसार में दुख का प्रसार कर रखा है, दूसरा देही भी रोगों की खान है। प्रत्येक व्यक्ति चिकित्सा करना नहीं जानता और यदि जान भी ले तो सारे नियमों का पालन नहीं कर सकता। जब कभी ज्ञात-अज्ञात भूल हो गई तो देह रोगग्रस्त हो गई। इस प्रकार संसार में अनेक कष्ट फैल रहे हैं। इन दुखों के साथ ही मौत भी किसी के बस में नहीं है, इसे कोई रोक नहीं सकता, इसका कोई निश्चित समय भी नहीं है। जब यह असमय आती है तो सम्बन्धियों तथा मित्रों को, जो इसके प्यार के आश्रय में होते हैं, कई प्रकार के दुखों में डाल जाती है। ये दुख महान कष्टों के कारण हुआ करते हैं। आयु एकरस नहीं रहती। जवानी ढल जाने पर बुढ़ापा आता है, उस समय रोग के बिना भी बल क्षीण हो जाता है। इस दशा में भी दुख आ लगता है। अब उपरोक्त विचार को ध्यान से सोचें, जबर्दस्त तथा पदार्थों वाले करोड़ों ग़रीबों को कई प्रकार के कष्टों में डालकर, मनुष्य सृष्टि के कितने बड़े भाग को दुखी कर रहे हैं? कितने दिन रात को ठण्डी श्वासें भरकर सोते हैं। सारे कारावास उन लोगों ने भरे हैं जो स्वयं दुख सहन करने के स्थान पर किसी न किसी तरह लोगों को दुखी करते हैं। इन लोगों ने सत्यवती स्त्रियों को सताया, प्रतिष्ठित लोगों को मिट्टी में मिलाया और हज़ारों प्रसन्न दिलों को दग्ध कर दिया। मैं बताऊं, रोगों ने ही संसार में अगणित बिस्तर बिछाकर हाहाकार करने वाले व्यक्ति पैदा कर दिए। मौत के कारण ही रोने वाले अनाथों की संख्या बढ़ी, मौत के कारण ही चीखने चिल्लाने वाली विधवाओं की गिनती न रही। मौत के करण ही माताओं के कलेजे में से हृदय बेधक बोल निकलते हैं। मौत के कारण ही भूखे लोग तड़प-तड़पकर मर गए, धर्म को पाप के पास बेच बैठे। सज्जन जी! मैं क्या कहूं? जिधर नज़र डालें उधर दुख ही दुख फैल रहा दिखाई देता है। अब विचार वाली बात यह है कि जब से मेरा देह अभिमान टूटा है, जब से सतगुरू जी ने मुझे यह ज्ञान प्रदान किया है कि वह नश्वर है और इसी का मोह फिर इस भंवर में फंसाता है, तब से मैंने इससे पल्लू छुड़ा लिया है पर पल्ला छुड़ा लेने से देही दूरी नहीं होती और न इसकी आवश्यकताएं कम होती हैं, परन्तु एक बात अवश्य है कि यह एक वस्त्र की भांति प्रतीत होने

लगती है। अपना आप एक प्रकार के आनन्द के सागर में मछली की भांति तैरना शुरू कर देता है। अतः उपरोक्त दुखों की निर्वृति की ओर देही का झुकाव हो जाता है। यदि हमारी नश्वर देह से थोड़े से कष्ट के कारण किसी दुखी का दुख दूर हो जाय, यदि कोई रोती हुई आंख चुप हो जाय, कोई तड़पता हृदय बच सके, तो यही हमारे लिए बड़ी बात है? यदि कोई तप्त छाती शीतल हो सकती है, तो सहर्ष हम से भलाई हो जाय। हमारे सिख भाई यह सोचते हैं कि यदि हमारी कथनी अथवा हमारी लेखनी से कुछ भाई ऐसे पैदा हो जायं जो स्वयं देहाभिमान से छूट जायं और संसार के दुख को दूर करने के लिए कुछ सेवा करें, तो हम इस नश्वर देह से यह सेवा क्यों न लें? इस विचार के आधीन हे सज्जन! हम गुरू परमेश्वर की सेवा में तन, मन, धन सब कुछ न्योछावर किए हुए हैं। हमारा तो है ही कुछ नहीं, हम स्वयं भी कुछ नहीं हैं जब 'मेरा मुझ महि किछु नहीं जो किछु है सो तेरा' तब 'तेरा तुझ कउ सउपते किआ लागे मेरा'! हमारा आपा परमेश्वर की शरण रूपी समुद्र में गर्क है, हमारा मन प्यारे के प्यार में खचित है। हमारी देह प्यारे द्वारा रचित जीवों के दुखों को दूर करने में स्वाभाविक ही भलाई कर रही है। यही कारण है कि सच्चे पातशाह, चाह से मुक्त, वासनाओं से स्वतन्त्रता; पूर्ण दयालु युद्ध का सामान कर रहे हैं–हिन्दुस्तान के 'राजदुख' को दूर करने के लिए। वैसे गुरू जी आप सारी सृष्टि के पाप के दुख को दूर करने के लिए दिन रात लग रहे हैं। आपको राज्य की आवश्यकता नहीं है, शासन की भी इच्छा नहीं है, आपमें तो केवल दुख दूर करने की प्रीति है। आप धर्म वालों का राज्य स्थापित करना चाहते हैं। आपके चरणों के सेवक हम भी आपकी आज्ञा में आपके चलाए हुए ही चल रहे हैं। हम लड़ते हैं, मरते हैं, युद्ध करते हैं, परन्तु सेवा तथा उपकार समझकर, संसार में दुखों का प्रसार करने के लिए नहीं हमारा धर्म तअस्सुब (पक्षपात) तथा द्वेष वाला नहीं है। हम में से प्रत्येक सिख राजर्षियों से भी श्रेष्ठ है। हम प्रभु के नाम के रसिक तथा चित्त की वृत्ति को प्रभु में लगाने वाले हैं। जीवनदान प्राप्त करके हम जीवित हो उठे हैं और प्रत्येक क्षण प्रभु स्मरण में लगे रहने के कारण जीवित हैं। अतः हे मित्र! तुम भी विचार करो, यदि वाहिगुरू सुमति प्रदान करे, तो कुछ दिन के जीवन, मनुष्य जीवन को सफल कर लो।

इस प्रकार बातचीत करके सिंह जी तो विदा हो गए। हकीम जी का कलेजा बिंध गया। विद्वान के हृदय में ये बातें समा गईं। बीत चुके जीवन पर पश्चाताप किया। अपने खानदान, अपने देश अपनी जाति के साथ जो द्रोह किए थे और जिनके बदले बादशाह की ओर से ऊपर से जो दुलार तथा वाह-वाह अथवा कुछ पदार्थ और बड़ाई मिली थी, वह सब कुछ आंखों के सामने आ गया। जो जो

कष्ट अपने देश सेवकों को दिए थे, जो जो विपत्तियाँ इसके विषयी जीवन ने अच्छे-अच्छे घरों में खड़ी की थीं, इसने निर्दोषों को जो-जो कष्ट दिए थे, सभी चित्र बनकर इसके सामने आ गए। इसके छल तथा कपट के कारण संसार को मिले दुख, इसके हठ, इसके धक्के तथा वैर से उत्पन्न क्लेश, सेना की भांति पंक्तियों में खड़े इसकी आंखों के आगे आ गए। खुदा रुसूल से विमुख कुलघातक, कौम घातक विषयी तथा कठोर हकीम जी के इर्द-गिर्द अपने किए हुए कामों के पुतले जमघट लगाकर आ खड़े हुए। ये मानो हकीम जी से कह रहे हैं कि तू हमारा जनक है, तूने हमें पैदा किया है, हम तेरे वंशज हैं। इस समय हकीम जी का दिल टूट गया, कलेजा फट गया, आंखों के भीतर के थर टूट गए और पश्चाताप का झोंका सिर को चढ़ा और आंखों से वर्षा की भांति अश्रुओं की झड़ी लग गई। अपने पैदा किए दुखों को देखता है और रोता है, "धिक्कार मेरे जीवन पर! मैं संसार में कैसा कांटों वाला वृक्ष पैदा हुआ हूं कि हज़ारों झीलों में मेरे कांटे झड़झड़कर तथा उड़ उड़कर फैल रहे हैं। मैं उस महान सुख के स्रोत के पास इसलिए आया हूं कि स्रोत के आगे पत्थर रखकर उस शान्ति तथा सुख के स्रोत को शुष्क कर दूं। मैं दुखों का पिता सुखों के जनक के साथ द्रोह करने के लिए आया हूं। इस दुराचार के कारण महलों तथा बाग़ों का आनन्द लूंगा! हे ख़ुदा! काश! मैं पैदा ही न हुआ होता, काश! मैं पैदा होते ही मर जाता; काश! मेरी माता मेरा गला दबा देती, काश! धाय का हाथ उलटा पड़ता और मैं पैदा होते ही मर जाता। मुझे चेचक निकली, मैं फिर भी नहीं मरा, मुझे खसरा निकला, मैं फिर भी बच गया। रणभूमि में भी गया, पर कोई गोली मेरे पापी हृदय के पास न आई। मुझे सांप ने डसा, मैं फिर भी न मरा। मदिरा ने भी कोई हानि न पहुंचाई और यह अंतिम मिआदी बुखार भी मुझे आपने साथ न ले गया। हा! हा! मुझ दुष्ट से तो मौत भी परहेज़ करती है। अब क्या इलाज है? अरी मौत! तेरे बिना अब मुझे समेटने वाला कोई नहीं। आ, इस धरती को मुझ जैसे अपवित्र पापी से मुक्त करके पवित्र कर दो।"

इस प्रकार की विह्वल दशा में हाथ तलवार के कब्जे पर गया। अभी तलवार खिची ही थी कि किसी बलवान ने हाथ की कलाई को पकड़ लिया और कहा, "कुलघातक! आत्मघाती मत बन। परमेश्वर की दशा के द्वार तेरे लिए भी बंद नहीं हैं।" जल की बाढ़ में डूबी आंखें उधर को उठीं, पर पाप के अंधेरे में पलीं चेहरे की दमक को झेल न सकीं और झुक गईं। सिर चरणों पर झुक गया, तलवार हाथ में से गिर पड़ी और रुके गले में से दुहाई के इस पकार के वाक्य निकले-"हे खुदा के नूर!" मैं इस लायक नहीं कि तू मुझे छुए। अपने पवित्र हाथों को मुझ अपवित्र से परे रख, मैं जीवित शैतान हूं (पर गुरू जी ने उसके हाथ को पकड़े रखा और सिर पर प्यार करते रहे)। मैं और यह कृपा, मैं और

वह दया, मैं और यह प्यार, मैं तू आदमी नहीं है, तू खुदा का नूर है ये गुण, ये शक्तियां, ये अनुकंपाएं। हा, हा, हा! मुझ जैसे पर? त्राहि! त्राहि! यह कहते कहते बेसुध हो गया।

प्यारे पाठक! वह कल्गीधर, जिसकी शरण में अनेक ही शीश लिए हाजिर हैं, जिसके कदमों के आगे हज़ारों लोग आपा न्योछावर करने के लिए तैयार हैं, जिसकी आज्ञा में गुप्त शक्तियां खड़ी हैं, जो गुरू है, अवतार है, पैगंबर है, सत्य का पातशाह है, कवि है, पण्डित है, योद्धा है, सैनापति है, अगुआ है, स्लच्छ नीति का अमुआ है, कर्भ धुरंधर है, पतित पावन है; सारे संसार के ब्रह्म लोकों से भी निरिच्छ है। वह मानवता की पीड़ा के हरन के लिए कितना कोमल है, कितना नम्र है, कितना सावधान है। कहां यह पापी गुप्तचर जो एक थप्पड़ लगते ही मर जाए, और कहां महाराज जी का गम्भीर हृदय कि उसके मन के दुख को दूर करने के लिए भी आप ऐन समय पर आए हैं। उस द्रोही के दुख को भी अपना दुख समझते। गुरू जी के शब्द 'जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि।।' प्रत्यक्ष हो रहे हैं। धन्य गुरू, जो पापियों तथा द्रोहियों से भी प्यार करता है। अत: उसको पतित पावन कहा जाता है। भाई गुरुदास जी ने ठीक कहा है–

गुण कीए गुण सभ कोऊ करै
क्रिया निधान अवगुण कीए गुण
तोहि बन आइओ है।

गुरू जी की अनुकंपा द्वारा होश आया। अब पहले वाली आंधी गुजर चुकी थी, शीतलता मिल रही थी। शीश चरणों को छू-छूकर शीतल हो रहा था। जो हृदय एक घण्टा पहले पापों से लदा हुआ था, अब वह हलका हो रहा है। एक नई चेतना आई, संसार ही कुछ और प्रतीत होने लगा। वही वन है पर इसका रूप कुछ और ही है, शरीर भी वही है, पर रंग कुछ और ही है। वही मन है, पर वासनाएं वे नहीं रही। बार-बार चरणों पर शीश रखता है, नेत्रों में जल भरता है; सिर को उठाता है, फिर चरणों पर रखता है। दयालु जी थपकी देकर कहते हैं, "हे विष के वृक्ष! अब अमृत का कुंड बन जा। रोम-रोम में से सुखों का स्रोत बहा दे, ताकि तेरी दुखदाई देह सुखों की दात्री बन जाए"।

हम नीच से उत्तम भए हरि की सरणाई।।
पाथरु डुबदा काढ़ि लीआ साची बड़िआई।।४।।
बिखु से अंमित भए गुरमति बुद्धि पाई।।
अकहु परमल भए अंतरि वासना वसाई।।५।।

[वड: महला ३ अष्टपदी]

: ३ :

सप्तमी

तित ग्रिहि सोहिलड़े कोड अनंदा॥
मनि तनि रवि रहिआ प्रभ परमानंदा॥
हरि कंत अनंत दइआर स्त्रीधर गोबिंद पतित उधारणो॥
प्रभि क्रिपा धारी हरि मुरारी भै सिंधु सागर तारणो॥
जो सरणि आवै तिसु कंठि लावै इह बिरदु सुआमी संदा॥
बिनवंति नानक हरि कंतु मिलिआ सदा केल करंदा॥४॥१॥

[विहा: महला ५]

गुरू गोबिन्द सिंह जी के अवतार धारण करने का दिन निकट आ रहा था, संगतें इकट्ठी हो रही थीं, भाई केसरा सिंह की याचना थी कि अबके गुरुपर्व का दीवान गुरू के बड़े बाग़ में लगे। सिखों के साथ सदैव प्यार करने वाले सच्चे पातशाह ने सत्य वचन कह दिया। अत: बाग़ में सजावट हो रही थी। दिन-रात पति-पत्नी गुलाबियों सहित लगे रहते। चाहे काफी सर्दी थी, फिर भी प्रेमियों ने अनेक प्रकार के फूल बचाकर रख लिए थे, जिन्हें अब समय पर जगह-जगह लगा दिया था।

उपरोक्त लिखित समाचार वाले दिन सायं को सारे माली तथा मालिनें अपने काम में निमग्न हो रहे थे और त्रियंबिका बाई बैठी छंद गा रही थीं, कि हकीम जी बाग़ में आ पहुंचे। अपने नौकर गुलाबे के आगे सिर झुकाकर बोले–

मैं तुम्हारा ऋणी हूं, मेरी गर्दन तुम्हारे अहसान में दबी है। यह तुम्हारी ही कृपा है कि उन पवित्र हाथों ने मुझे पवित्रता प्रदान की है। मैं आपके उपकार का बदला नहीं चुका सकता। गुलाबियों ने नम्रता दिखाई पर दिल की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। दोनों की सुरति वैराग्य में खिची चली गई। रोम-रोम में से कृपा का भाव फूटने लगा। कृपा की सुगन्धि इस तरह फैली कि मतवाले होकर बीच में ही लीन हो गए। प्यारे का मनमोहक चेहरा ध्यान में आ उपस्थित हुआ। आंखें इसी आनन्द में बंद हैं, पर अंतस के भाव के वेग के कारण किसी समय पलकों में से कोई बूंद टप करके टपक जाती है। इनकी इस प्रकार की स्थिरता को देखकर हकीम जी तथा सिंह जी और सिंहनी जी चुपके से खिसक गए। ये दोनों ध्यान तथा कृपा के संपूर्ण भाव से मग्न होकर टिके रहे।

अब संध्या का स्वर्ण पक्षी किरणों के पंखों को समेटकर धरती से ओझल हो चुका था और शान्ति का चांद रहरास नामक वाणी का जामा पहनकर महाराज जी के दीवान में अपनी सतोगुणी किरणों का प्रकाश फैला रहा था। भाई गौहर सिंह जी ने इतनी एकाग्रता से पाठ किया कि सारा दीवान मंत्र मुग्ध हो गया। जब

समाप्ति के बाद अरदास की जा चुकी तब सच्चे पातशाह ने ब्रिजराज सिंह जी से कहा, "लंगर बांटो, हमें एक कार्य के लिये जाना है। प्रेमी की सुरति के दांत मानों हमारी सुरति के दांतों में फंस रहे हैं, हमें जाकर एक चक्कर देना है।" यह कहकर आप नदी की ओर चल दिए और बाग़ में जा पहुंचे, जहां पर प्रेम समाधि लग रही थी। कुछ समय खड़े रहे, देखते रहे, फिर रुककर आप बाग़ की ओर चल दिये। इतने में संध्या गहरी हो गई। चन्द्रमा की पतली, चांदी के थाल के किनारे जैसे आधे चक्र, की सी सूरत मन्द प्रकाश दे रही थी और दूरी पर निकल रहे तारों का प्रकाश इस मन्द प्रकाश की सहायता कर रहा था। बाग़ का चक्कर लगाकर और चारों माली-मालिनों की तैयारी तथा मेहनत को देखकर प्रसन्न होते हुए महाराज जी फिर वहीं पर आ गए। क्या देखते हैं कि दोनों पति-पत्नी वहां हैं ही नहीं और थोड़ी-सी दूरी पर कुछ हा हा की आवाज़ आ रही है। अंतर्यामी गुरू जी क्या देखते हैं कि दोनों व्यक्ति एक बालक क़ी सेवा कर रहे हैं। बात यह थी कि एक पहाड़ की रहने वाली स्त्री नदी में से जल लेने लगी थी, कि उसकी बाहों से बालक उछलकर नदी में जा पड़ा था भाग्य की मारी ने दुहाई मचा दी, "आओ रे कोई कल्ग़ी वाले की खातिर आओ"। गुलाबे चाहे आनन्द मग्न बैठे थे, पर ये शब्द कानों को फाड़कर टिकी हुई वृत्ति को बींध गए। कल्ग़ीधर के नाम का वास्ता सुनकर कौन रुके? पहुंचते ही गुलाबे ने छलांग लगा दी और बालक को बाहर निकाल लिया। अब उसे पोंछ बांधकर कपड़े में लपेट कर उसकी मां को दे रहे थे कि इतने में सतगुरू जी ने आकर दर्शन दिए। आशीर्वाद देती हुई वह स्त्री घर को चली गई और इन्हें सतगुरू जी के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। दर्शन ही नहीं, सच्चे पातशाह जी के मुंह से यह आशीर्वाद भी कानों में पड़ा, "धन्य है वे प्यारे जो अपने प्यारे को सर्वत्र देखते हैं।" दोनों दौड़कर चरणों से लग गए। पर सवा गज की दूरी पर ही दंडवत करने लगे। प्रेम रसों के रसिक गुरू जी इसे कब सहन कर सकते थे। आगे बढ़कर वीरासन हो गए और दोनों के सिर पर हाथ रखकर बोले-"पवित्र हो गए, पावन हो गए, हृदय में नाम बस गया, घर में दीप जला, जागृत ज्योति जमी, वाहिगुरू के अंक में समावेश हुआ, नीयत शुद्ध हो गई, तब कहीं जाकर आश्रय किया।" सिर पर प्यार देकर, बांहों से पकड़कर उठाया और फिर कहा, "कच्चा धागा टूट चुका है, अब पक्की सांकल पड़ गयी है। प्यार की कड़ियां टूट नहीं सकतीं।" आप चल दिए, पीछे-पीछे दोनों सुई के चुंबक द्वारा खिचे जाने की भांति चलते गए। भाई केसरा सिंह जी शब्द उच्चारण कर रहे थे-

"हउ खड़ी निहाली पंधु मतु मूं सजणु आवए॥
को आणि मिलावै अजु मैं पिरु मेलि मिलवए॥

हउ जीउ करी तिस विटउ चडखंनीऐ जो मैं पिरी दिखावए॥"

आगे से स्वाभाविक ही गुलाबे के मुंह से निकला।

'नानक हरि होए दइआल ता गुर पूरा मेलावए'॥५॥

यह पंक्ति सुनकर सिंह जी चौंककर देखने लगे। सचमुच प्रेम के आकाश मण्डल में कल्ग़ीधर रूपी चन्द्रमा चम-चम कर रहा है। दौड़कर चरणों पर झुका आवाज़ सुनकर करम कौर भीतर से आटा गूंधती हुई भागी आई और चरणों पर गिर पड़ी। सिखों के प्यारे बिहंसक बोले: "उपहार तो दिखाओ।" लज्जा तथा सत्कार से माई ने सिर झुकाया और कहा:

"मैं नाही कछु हउ नहीं किछु आहि न मोरा।"

फिर गुरू जी स्वयं आगे हो लिए और पीछे सारे व्यक्ति चल पड़े। त्रियंबिका बाई की कुटिया के पास आकर चुपचाप खड़े हो गए। क्या देखते हैं कि वह प्रेम की पुतली मग्न बैठी गा रही है। इस तरह वैराग में गा रही है कि नेत्रों में से जल बह रहा है और शरीर की सुध नहीं है। उसके संगीत का भाव इस प्रकार का था।

विष्णु पद

कबहूं हमरी हूं सुध लेहु।
दीनानाथ कहाए दीन गन देख़त दर्शन देहु॥
हमरे अवगुण अखिल अखिल प्रभु निगुननि ओर निहार।
गुनवानन गुन करत सभै को तू निगुननि दातार॥
बालक को इक अहै रुदन बल अरु जप तप बल नाहि।
जौ न सुनो तौ कौन सुनैगो, को पकरैगो बांहि॥
लाज जहाज चहित अब डूबयो तांहि लगावहु पार।
लोक और परलोक दुहूंके, हो तुमही रखवार॥
भले बुरे कामी अर क्रोधी लोभी मोह लवार।
है तुमरै ई ज़ी कल्ग़ीधर, शरणागति प्रतिपार॥१॥

ध्रंपद अथवा दंडक[1]

दिवस शुभ नक्षत्र शुभ, शुभ मुहूरत निरख,
पुनर भव भयो भव भवहि हारी।
पोह सुदी सप्तमी राति इकजाम राहि,
राम नरदेहि पुन्न आन धारी॥

१. शुद्ध राग का एक भेद।

बाल लीला ललित, मात लालित लालिक ललच लोचन रहे लोक प्यारे।
ध्वैस पाखंड, कर खंड अज्ञान को,
मंड कर नेह ब्रह्मंड भारे।
फेर कलि माहि क्रित सुजुग थापन करै,
पाप खापन करै जीय जानी।
देव व्रह्मादि उसतति सजत जोर कर
होहु प्रसंन श्री धनुख पानी।
देह कर अभै है अभै निज सेवकन,
नाम नानक निरंकार साचा।
जागती जोत सभ जोति महि जोति तव जोति त्रिगुणातम की भवन राचा॥१॥
भए पटनेश जगतेश बर बेस शुभ मनुज लीला करन महा बाहो।
मान मलेच्छानि के छान हित हानबे त्रानबे सिख गुण दास चाहो।
धनुष रुभूमि बर ब्योम आनन्द भर, दहन दुख दीन दल दुजन नासी।
धर्म धृत धारणा धर्म धुर धीर उदय, ध्येय निज भगत के सद अनासी।
चकत सुर थकत मुख बकत तम दान नुति धकत आनन्द सुखकंद बंदे।
सदा तू, नित्य तू, बित्त तू, चित्त तू, मित्त तू बित बर देह सुछंदे।
भूप भव काए भटकाए बहु भाए जग आए तव पाए बरपाए पाए।
पाल बर शरण के, शरण पर विनय मुर, चरण की शरण बर देहु छाए।
कल्ग़ीधर चक्र घर दान कर मान देहहु, पान देवहू, सीस बर ईश मेरे।
जन्म और मरण दुख मीत नित्य मीत दे होए निर्मीत जो तनिक हेरे।
होवहु कृपाल, कृपाल कर पाल मुहै दयाल तव विरद मुख शब्द चंदो।
नित्य जय, सदा जय, विजय गुरू बाहिगुरू अजै बर देवहु सजै आनन्द स्कंदो॥२॥
नाम दो, दान दो, अमृत को पान दो, केश दो, श्वास दो, भक्ति भावा।
बरस दो, परस दो, पैर को हर्ष दो, बरस दो, मोहि जो कृपा छावा।
दान दो, मान दो, ज्ञान दो, भय हरो, सिद्ध दो, प्रेम दो, नियम सिखी।
जुगति दो, भुगति दो, भाव दो, भय दो, रजा की रीति तीखो।

टेक–गुरू तव दर्शन अगम्य अपारो

बिकल कलिकाल बिकराल सु बिहाल नर महा तम पुंज तव दरस टारो।
आनन्द घन रूप अविच्छन्न अविकाश बिन अकल अनबच्य अनभेद भासे।
धारि हरि रूप नर रूप भवकूप ते काढ़ निज दास सुख सुख रास भासे।
अकलधर कला कल्याण हित जगत के कालकलि कलुष दह जप अकाला।
दुघट कटु विकट संघट सुसंकट किए दूर दे नाम माला।

दमन दुख शमन कलु जन्म, बिन मीत कर, रसन दिए नाम सत्नाम साचा।
काम हरि, क्रोध हरि, मोह हरि, लोभ दहन, नष्ट अहंकार सभकार काचा।
गुरू गोबिन्द हरि तेज़ बर दिवाकर बख्श मुहि कृपा कर दरस ज्योति।
कल्ग़ीधर, चक्रधर, जिगाधर, धर्मधर भ्रम हर, शीत हर, शान्त नोती।
त्राहि मा त्राहि हे पाहि गुरवर प्रभो। शरण तब शरण सुख करन भूला!
रक्षक मां, रक्षक है, रक्षक तीन लोक कृत सद प्रत्यक्ष सिख जगत भूला।
गोप अति गोप पर गोप सो अगोप तू अपनी ओप प्रभु आप ओपा।
धार हरि बुद्धि अनुरुधि सु बेसुध मन शुद्ध तव रूप असुद्ध रोपा।
पटल भ्रम तिमर अज्ञान मद मोह के दूर का सतिगुर दरस दीजै।
दीन हौं दूबरी दरिद्री दुखित दिल दयानिधि दर्द करकै पसीजै।

इसकी वात्सत्य तथा शान्त रस की प्रार्थना इतनी प्रभावशाली थी कि सुनने वाले चुपचाप सुनते रहे। कल्ग़ीधर जी आप अपने प्यार के रस में कभी भी न बिछुड़ने वाले, उस निराकार के प्रेम की लय में जल पूरित हो गए। पर अब दीनबंधु, बेसहारों के सहारा जी ने कुटी में चरण रखकर पण्डिताइन के शीश पर हाथ रखकर कहा, "हे विनयशील गऊ! उठ, शेरनी बन जा और शेरों की सेवा कर।" सतगुरू जी के इन वचनों को सुनकर तथा सतगुरू जी का हाथ देखकर भंवर की भांति चरण कमलों से लिपट गई।

सतगुरू जी ने कहा, "पुत्री! देखो खेल कट गया है, दुखों का बीज अहं की धरती में उगता है, इस धरती को अमृत के छींटों से समाप्त कर दे और आपको अमर कर दे। तैयार हो, तेरे लिए अमृत तैयार है। तू मरने से पहले ही मर गई। अब अमर जीवन ले ले, अमर होकर शेष जीवन बिता, तू प्रभु चरणों में समा गई है।"

इसके बाद कौतुकी सतगुरू जी ने न जाने क्या किया। प्रेम में विह्वल कई प्रेमियों के ठिकाने पर पहुंचे। हरेक के साथ स्नेह बांटा, प्रत्येक की कुशलता पूछी। देश परदेश से अनेक प्रेमी आए हुए थे, पर न जाने क्या चमत्कार हुआ कि सुबह हर एक प्रेमी यही कहता था: "रात को सतगुरू जी ने मुझ तुच्छ के डेरे पर स्वयं दर्शन दिये, कुशलता पूछी, दर्द बंटाया, धैर्य दिया।"

दिन चढ़ा कौन-सा? पौष सुदि सप्तमी का वह दिन जिस दिन आप बालक का रूप धारण कर पटना में प्रकट हुए थे। जिस दिन धरती का दिल खिल गया था, यह जानकर कि पाप का नाशक आ गया है। हां सचमुच बदी का स्वरूप समझकर बदी के त्याग का ढंग सिखाकर स्वस्वरूप में स्थित करके वाहिगुरू की प्राप्ति कराकर उपकार करने वाला सच्चा गुरू पहुंच गया था। आज पौ का फटना और ही प्रसन्नता देने वाला है। ओस की बूंदें सुगंधि वाली हैं। पवन आनन्द के हिलोर दे रही है। सूर्य तेजी से आ रहा है कि शीघ्रता से जाकर सप्तमी

का आनन्द देखूं। कैसे प्रसन्न, खिले चेहरे, हंसता-हंसता मंगलभाव से चमकता हुआ उदित हुआ है। पंछी कैसे राग गायन करते हैं। नदी का जल कितना निर्मल है। इस पतझड़ की ऋतु में गुरू के बाग़ की जवानी कैसी उत्तम है? दूर-दूर से लाकर लगाए फूल पौधे किसी प्रकार बसंत की बहार को मात करने वाली बहार दे रहे हैं। अभी सूरज ने आंख खोली ही थी कि चारों किलों से प्रेमी सिखों ने तोपों के पलीतों को आग लगा दी। नफीरीखानों में मंगल तथा मोद के राग बजने शुरू हो गये। आनन्दपुर के इर्द गिर्द के क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। कुल सेना साश्स्त्र होकर अपने-अपने जत्थेदारों के अधीन, मैदान में, गुरू जी द्वारा रचित नियमों के अनुसार पंक्तियों में खड़ी होने लगी। गुरू जी के साहबजादे तथा पांच प्यारे किस तरह सज रहे हैं। नगर से बाग़ तक सड़क के दोनों और पैदल तथा सवारी की पंक्तियां कैसे सजी खड़ी हैं। भाई दया सिंह घोड़े पर सवार होकर किस तरह प्रबंध करने में लगे हैं। साहब अजीत सिंह जी सारी सजावट को देखकर किस तरह प्रसन्न होकर घोड़े की लगाम कस रहे हैं। उनका घोड़ा कबूतर की भांति नृत्य करता हुआ अठखेलियां करता हुआ, लाड़ तथा नखरे के साथ कदम-कदम पर ऊपर नीचे को होता चक्कर खाता हुआ जा रहा है। देखिए बाग़ में मालियों की कला ने कितना आनन्द भर दिया है। हरी-हरी घास के मखमली फर्श पर हिरमिची मखमल का फर्श जो सिंह के प्रेमी लाए थे कैसे सज रहा है। इसके ऊपर जड़ित तख्त, अतलस, कमखान से ढका, जिसे काबुल की संगत लाई थी, कैसे अनुपम झलक रहा है। सिंह के हाथ में सुनहरा छत्र कैसी शोभा दे रहा है। जगह-जगह पर चोबदार खड़े हैं। प्रेमियों द्वारा की गई इस समय की सजावट रजोगुणी होते हुए भी भक्ति भाव के कारण सतोगुणी रंग की झलक दे रही है। सूरज ऊंचा हो आया। काश्मीरी तूतियों वाला बाजा बजना शुरू हो गया बाजा सुनते ही संगतें आने लगीं। माझा, मालवा, धनी, पोठोहार, काबुल, बुखारा, काश्मीर, सिंध, लहंदा, मुलतान, मैनदुआब, कंढ़ी, हेठाड़, पूर्व, मध्य, आसाम, उज्जैन तथा दूसरे देशों की संगतें स्वच्छ वस्त्रों में सजी हुई, शब्द गायन करती हुई बारी-बारी से पहुंचकर सुशोभित हो गई। सभी इलाकों की कीर्तन मण्डलियां अपने अपने वाद्ययन्त्र खोलकर साथ-साथ बैठ गईं। मंजियों वाले तथा अनुगृहीत तथा मसंद सभी सजकर बैठ गए। कल्ग़ीधर सतगुरू गोबिन्द सिंह जी घोड़े पर सवार होकर अपने महलों में से प्रकट हुए। आपका कैसे बांका नीला घोड़ा है। किस तरह आप उस पर सुशोभित हो रहे हैं। कितना सुन्दर मुखड़ा है। सीधी दस्तार तथा उसके ऊपर सजी कल्ग़ी कैसी चमक रही है। पतला तथा चुस्त शरीर, शस्त्रबद्ध, घोड़े पर सज रहा है जिसकी चमक को झेला नहीं जा सकता। आपकी सवारी के निकलते ही फिर तोपें दगीं। इसके बाद सारी सेना ने बंदूकों की गूंज से फतह बुलाई। अब फौजी बाजे ने 'हम घरि

साजन आए' की टेक अथवा स्थाई का आलाप शुरू किया। शनैः शनैः महाराज जी बाग़ में पहुंचे। सारी संगत सिर झुकाकर और करबद्ध खड़ी हो गई। महाराज जी एकदम घोड़े से उतरे। इस समय संगत ने यह शब्द गायन किया—

जनम मरन दुहहु महि नाही
जन परउपकारी आए।।
जीअ दानु दे भगती लाइनि
हरि सिउ लैनि मिलाए।। [सूही मः ५]

महाराज जी सिंहासन पर विराज गए और संगत ने शीश झुकाकर सहगान के रूप में वाणी का गायन किया। फिर सभी इलाकों के कीर्तनियों ने मिलकर अत्यंत सुन्दर ढंग से संकीर्तन किया। इसके पश्चात् प्रत्येक सिख ने सप्तमी के उपहार भेंट किए, जिनका कुछ वर्णन पहले किया जा चुका है। हां, इस समयः

(१) पहले वेदी, त्रेहण, भल्ले तथा सोढियों के बुज़ुर्ग आए। इनके बाद दसों ही सत्गुरूओं के समय से अनुगृहीत गुरू के सिख धर्म का प्रचार करने वाले पेश हुए।

(२) बहुत से ऐसे प्राणी भी पेश हुए, जिन्हें उत्साह-भरे सिंहों ने जगह-जगह पर अनेक दुखों तथा पापों से बचाकर, सच्चे अधिकारी बनाकर अमृत छकने के योग्य बनाया था।

(३) गर्म, ठण्डे, रेशमी, अतलसी, अनेक प्रकार के वस्त्र भी भेंट किए गए जिन्हें प्रेमियों ने स्वयं इस दिन के लिए अपने धन्य भाग्य समझकर तैयार किया ता, ताकि गुरू महाराज स्वयं अपने ही हाथों से इन्हें ज़रूतमंदों को दे सकें।

(४) जपुजी आदि वाणियों के अनेक गुटके, 'पंज ग्रंथी' नामक पोथियां और श्री गुरू ग्रंथ साहब जी की प्रतियां, प्रेमी इस प्रेम में अपने हाथों से इसलिए लिखकर लाए थे कि सत्गुरू जी उचित स्थानों पर इन्हें भिजवाकर जीवों का कल्याण करेंगे।

(५) फिर वह सूची पेश की गई जिसमें देश विदेश तथा गांव में हुए धर्म के कार्यों का वर्णन था। इसमें लंगड़ों, लूलों, नेत्रहीनों, रोगियों, अंगहीनों में सिख धर्म के प्रचार तथा उनके लिए सिख संगतों द्वारा किए गए प्रयत्नों का वर्णन था।

(६) फिर महाराज जी की सेना के लिए विभिन्न स्थानों से लाए गए घोड़े भेंट हुए।

(७) तलवार, बंदूक तथा दूसरे शस्त्र, जो विभिन्न स्थानों के कारीगरों ने तैयार किए थे, भेंट किए गए।

(८) फिर प्रेमियों ने अपनी कमाई का दसवां भाग धन के रूप में भेंट किया।

(९) फिर वे अनाथ बालक प्रस्तुत हुए, जिनका लालन-पालन सिखों ने अपने घरों में किया था, और अब जिन्हें गुरू जी की सेवा के लिए हाज़िर किया गया।

(१०) अनेक प्रेमियों ने गुरू जी की सेना में भर्ती होने के लिए अपने पुत्र पेश किए।

(११) फिर धर्म प्रचारकों ने अपने काम का व्योरा दिया।

(१२) इसके पश्चात् कवियों ने अन्य भक्ति रस में गुंथी अपनी रचनाएं बारी-बारी पढ़कर सुनाईं। इस समय माई त्रियंबिका बाई की रचना भी पेश हुई।[1] इसे सुनकर सारे उपस्थित लोगों को पुलकावली हुई और 'धन्य बाई' की ध्वनि गूंजी। इन सभी अनोखे उपहारों को सम्भाला गया। पर सबसे पहले गुरू जी की आज्ञा पाकर भाई मोहकम सिंह जी ने सभा में सुना दिया "हम एक परिवार की भांति हैं, अपने प्रत्यक्ष बैठे पिता के पुत्र हैं। इसी प्यार के कारण हम एक हुए हैं। हम में से इस समय किसी को भी ऐसा नहीं होना जोकि दूसरों से किसी तरह भी भिन्न हो। यदि कोई भाई अपने भाई से किसी कारण नाराज अथवा रुष्ट हो तो वह उसके पास आकर खड़ा हो जाए और प्यार का दान मांगे। दिल ईश्वर का मन्दिर है; इसमें क्रोध रूपी चांडाल तथा ईर्ष्या रूपी डायन को घुसने नहीं देना। यदि किसी भाई से ऐसी कोई चूक हो भी रही है, तो वह कृपा करके सब कुछ सच-सच बता दे, जिससे सच्चे पातशाह के सामने आपस में क्षमा तथा प्यार हो जाए।' भाई साहब की इस घोषणा को सुनकर कौन उठता? क्योंकि सारे ही सच्चे भ्राता थे। जिसमें कोई मनमुटाव था भी वे घर से ही सुलह करके चले थे, क्योंकि सिखों में तब से यही विश्वास चला आ रहा था कि हृदय के वैर विरोध को लेकर गुरू के दर्शन अथवा गुरुद्वारे के दर्शन करने के लिए जाने से लाभ नहीं बल्कि हानि होती है। पर बीज तो किसी भी वस्तु का नाश नहीं होता। धामोवाल का एक सिंह उठा, गले में पल्ला डालकर विनती करने लगा, हे दीन बंधु! मेरा किसी से कोई वैर नहीं है, पर अब आज्ञा सुनकर ध्यान आ गया है कि कुंए से खेत को पानी देने के कारण मैं अपने भाई से झगड़ पड़ा था।" वह सिंह भी उपस्थित था। दोनों को एक-दूसरे के गले से मिलाकर एक कर दिया गया। इस प्रकार दो अन्य सिंह भी निकले। जब क्षमा माफी हो चुकी, तो प्यारे के स्रोत फिर से फूट आए। महाराज जी ने अरने मुखारविंद से कहा, "धन्य सिख हैं सिख धन्य हैं; सिख धन्य हैं।"

फिर उपरोक्त क्रमानुसार सम्भाल शुरू हुई:-

(१) अमृत छकाने वाले जत्थों को आज्ञा हुई कि वे अमृत तैयार करें। ये

१. यह रचना अभी प्राप्त नहीं हुई है। जिन छंदों का ऊपर उल्लेख किया गया है, वे डॉ० चरण सिंह जी द्वारा बृजभाषा में रचे गए हैं।

इतने अधिक जत्थे थे कि इन्होंने बहुत बड़ी संख्या को अढ़ाई घण्टों में दैवी अमृत छका दिया और अमृत छककर सारे सच्चे तथा आदर्श सिंह बन गए।

(२) एक ओर तो यह कार्य होता रहा, दूसरी ओर महाराज जी ने अनुगृहीत तथा ज़रूरतमंदों और दूसरे अधिकारी सिंहों को यथाधिकार सिरोपाव प्रदान किए। इन वस्त्रों में बड़ी माता गुजरी तथा माता सुन्दरी जी के अपने हाथों से तैयार किए हुए वस्त्र भी थे।

(३) फिर ज़रूरतमंदों में तथा गुरुद्वारों के लिए गुरुवाणी के गुटके बांटे गए। इनमें से प्रतिदिन के नियमानुसार पाठ करने के लिए एक गुटका गुरू जी के गात्रे वाला भी था और श्री गुरू ग्रंथ साहब जी के उचित स्थानों पर स्थापित करने की आज्ञा भी दी गई।

(४) सेना में योग्य सिंहों में तथा जत्थेदारों में घोड़े बांटे गए।

(५) इस प्रकार शस्त्र भी बंटे और शेष शस्त्रशाला में रखे गए।

(६) श्री गुरू जी ने उसी समय सारा धन भी बांट दिया। सेनाओं के लिए विशेष राशि, भवनों, कुओं, तालाबों, बावड़ियों बागों, गुरुद्वारों के लिए विशेष राशि और ज़रूरतमंदों के लिए विशेष धन सुरक्षित रखा। इस प्रकार लेखाकार द्वारा सारी बांट करवाकर कोष में यह धन जमा करवा दिया।

(७) जवानों को अमृत छक लेने के पश्चात् उनकी याचना के अनुसार सेना में भर्ती कर लिया गया। जो शिक्षा प्राप्ति के इच्छुक थे, उन्हें ज्ञानी जत्थे के सुपुर्द कर दिया गया।

(८) इन सिदक वालों को भी उनकी याचना के अनुसार सेवा के अधिकार प्रदान किए।

(९) यथा अधिकार गुरू जी ने सबको आशीर्वाद, वरदान तथा अधिकार प्रदान किए। इसके पश्चात् इन सबको तथा देश-विदेश की संगतों को तथा अगुओं को तथा अधिकारियों को अपने हाथों सिरोपाव प्रदान किए।

जब ये सारे कार्य सम्पूर्ण हो चुके तब महिलाओं के आनन्दमय कीर्तन गायन किए।

इसके पश्चात् श्री कल्ग़ीधर जी ने अपने सिंहासन पर स्वयं श्री गुरू ग्रंथ साहब का प्रकाश करके पाठ की समाप्ति की। श्री गुरू ग्रंथ साहब का पाठ माता गुजरी जी ने अपने पुत्र के जन्म दिन की खुशी में स्वयं पूरा किया था। समाप्ति के बाद, जपुजी नामक वाणी का पाठ किया गया, आरती तथा आनन्द वाणी के पाठ के बाद कड़ाह प्रसाद बांटा गया। प्रसाद बंटते समय संगत सहगान के रूप में शब्द गायन करती रही।

इसके पश्चात् दीवान का विसर्जन हुआ। संगतों ने भोजन करके विश्राम किया और दोपहर के बाद एक मैदान में इकट्ठी हुईं। पहले गेंद-बल्ला,

गेंद-पट्टी, चौगान का खेल, गतकेबाज़ी, नेज़ाबाज़ी, तीरंदाज़ी, कुश्तीबाजी, कबड्डी आदि खेल हुए। इसके बाद सेना को दो टुकड़ियों में बांटकर बनावटी युद्ध करवाया गया। इन उत्साह भरे कार्यों में सायंकाल हो गया। संगतें फिर अपने-अपने ठिकानों पर आईं। रहरास वाणी के पाठ के पश्चात् संगतों ने भोजन किया और बाद में दीपमाला हुई तथा आतिशबाज़ी चली। फिर संगतों ने अपने-अपने डेरे पर सारी रात अखंड कीर्तन किया। दूसरे दिन बड़े दीवानघर में अखंड पाठ जी की समाप्ति हुई।

जिन प्रेमियों के समाचार पीछे कहे हैं, वे सारे अमृत छककर पारगामी हुए। हकीम साहब का नाम 'दुष्टदमन सिंह' रख गया। इसने गुरू जी के घोड़ों के अस्तबल के प्रबंध की सेवा सम्भाली और वापिस जाने का विचार त्याग दिया। नौकरी छोड़ दी, शेष दिन भजन, स्मरण, उपकार तथा प्रेम सहित घोड़ों की सेवा में बिताते। यह सिंह गुरू के चरणों का इतना अनन्य प्रेमी बन गया था कि महाराज जी के सवारी के घोड़ों पर से न्योछावर हो जाता। जब कोई घोड़ा गुरू जी की सवारी के बाद अस्तबल में वापिस लौटता, तो उसे देखकर रोमांचित हो जाता। नेत्रों में जल भर आता और कहता कि हे जीव! तू धन्य है जो महाराज जी को सवारी देकर कृतार्थ होता है। शुक्र है, मेरे जैसे पतित को सतगुरू जी ने अपने आंचल से लगाकर इतनी ऊंची सेवा प्रदान की है। गुलाबे अमृत छककर हीरा सिंह तथा हरबंत कौर बने और भाई केसरा सिंह जी के साथ रहकर बाग की बागवानी ही करते रहे। त्रियंबिका बाई को अपने पुत्र सहित अनाथ बालकों की सेवा में लगाया गया। इसका नाम सेवती कौर रखा गया। इनका पुत्र काशी जीत सिंह तगड़ा सिंह बना और जनसंहार (घल्लूघारा) में शहीद हो गया। इस प्रकार 'जो सरिण आवै तिसु कंठि लावै इहु बिरदु सुआमी संदा', वाला विरद अपने कार्य करता रहा।

जैसे रेखा खींचकर चित्र बनाने वाले एक बालिश्त जगह में दो-दो हज़ार मील लम्बी नदियों के चित्र बनाकर दिखा देते हैं; चित्र की रेखा में न तो जल ही होता और न ही जल की धारा, पर देखने वाले टेढ़ी रेखा से ही जल, जल का प्रवाह तथा जल के गुणों का अनुभव कर लेते हैं; वैसे ही आशा है कि नैनों वाले उपरोक्त पंक्तियों से सतगुरू जी के मुक्ति दाता कौतुकों, शान्तिमय समागमों तथा प्रेमी सिंहों के प्यार भावनाओं वाले गुरुपर्वों का अनुमान लगा लेंगे।

नोट-इस अवसर के कुछ अन्य समाचार भी हैं-

❑ ❑

२७ दीप कौर

माझा की संगत ने प्रार्थना की, "हे कल्गी वाले सतगुरू। माई दीप कौर ने आपका अमृत छका है। जब हम तलबन के कुएं पर पानी पी रहे थे तो यह थोड़ी दूर आगे निकल गई। इसे अकेला देखकर चार तुर्कों ने घेर लिया, इसने अपना सोने का कंगण उतारकर फेंका। जब एक तुर्क कंगण को उठाने लगा, तो इसने तलवार खींच ली और उस पर वार किया। वह घायल होकर गिर पड़ा। शेष तुर्क घबराकर शस्त्र संभालने लगे तो इसने निर्भय होकर ऐसी तलवार मारी कि एक-एक करके दो को गिरा दिया। चौथे को घायल करके उसके ऊपर चढ़कर बैठ गई और तलवार उसकी छाती में मार ही रही थी कि इतने में हम लोग पहुंच गए। चारों पापी मर चुके थे। हम शीघ्रता से वहां से दीप कौर को साथ लेकर रास्ता बदल यहां आ पहुंचे हैं। अब हमारे कई साथी यह वहम करते हैं कि दीप कौर ने हत्या की है और यह तुर्क से छूकर भ्रष्ट हो गई है।"

सतगुरू जी ने हंसकर कहा, "इसने तो अपने धर्म तथा अपने प्राणों की रक्षा की है। यह शूरवीर सिंहनी पंथ की पुत्री है। यह भ्रष्ट नहीं हुई। अछूत लोग इसके चरणों को छूकर पवित्र होंगे। इसका नाम वीरों की श्रेणी में रहेगा और यह पवित्र-पावन कहलाएगी। तुम सब अमृत छको, ताकि तुम्हारे भ्रम-भय दूर हों और शेर पुत्र बन जाओ।" उसी दिन सारी संगत ने अमृत पान किया।

❑ ❑

२८ हाय न तोड़

होशियारपुर में देऊ नामक एक सिख रहता था। वह एक धनिक के बाग़ में बड़े माली के रूप में काम करता था। उसके अधीन छोटे माली, कंबो, जाट तथा अन्य जातियों के अनेक नौकर काम करते थे, जिन्हें यह बड़े प्रेम से माली का काम सिखाया करता था। प्रेमी का स्वत्व वाहिगुरू के प्रकाश में "चितहि चितु समाइ न हौवे रंगु घना" के अनुसार आनन्द को प्राप्त होता था। हाथ तो पौधे लगाते थे, दिल वाहिगुरू का स्मरण करता था, आंखें कल्ग़ीधर जी को देखती थीं और शरीर इस उल्लास से भरा रहता कि ख़ाक में मिल जाने से पहले स्वाभाविक ही जितनी भलाई हो सके कर ली जाय। इस प्रेमी की जो पत्नी थी, वह भी पति की भांति दूसरा ही शरीर था। वाहिगुरू की स्मृति, कल्ग़ीधर का प्रेम, पति का प्यार, साधु संगत में श्रद्धा, उच्च सेवा का उल्लास उसके निर्मल हृदय में इस प्रकार चमकते रहते, जिस तरह आकाश मण्डल में सूरज, चांद, तारे तथा नक्षत्र प्रकाश देते हैं। जब वह वाणी का पाठ करती, तो रस का प्रवाह प्रवाहित होता। जब भोजन तैयार करती तो कई ज़रूरतमंद उसमें से तृप्त होते। इस नाम रसिक दम्पत्ति के घर में एक कन्या भी थी, जिसकी आयु इस समय ग्यारह वर्ष थी। ऐसे माता-पिता की यह पुत्री उसके पद चिन्हों पर ही चल रही थी और पवित्र जीवन तथा सच का वर्णन सीख रही थी। उसे झूठ बोलना नहीं आता था। उस बेचारी को इस बात की समझ ही न थी कि हो तो कुछ और लोग उसे कुछ कहें। तड़के माता-पिता जी के साथ ही उठ खड़ी होती, वाणी का पाठ करती, मां के साथ मिलकर सारे काम करवाती। दोपहर को जब माता भोजन लेकर बाग़ में जाती, तो यह भी उसके साथ जाती और अपने से भी अधिक भोले भाले फूलों के साथ खेलती रहती। छोटे-छोटे डोंगे पानी से भरकर फूलों में डालती रहती, उनकी नलाई करती। उसमें खाद डालती, उन पर हाथ फिराती, सुंगधि लेती, पर कभी भी अपने हाथों से फूलों को न तोड़ती। बालकपन, निष्कपट सीधा स्वभाव, कुसंगति से बचाव, माता-पिता की ही एक पारस संगति, हर समय का मेल-जोल पौधों के साथ, सभी खुशी देते हैं और प्रसन्न रखते हैं। सारा दिन बाग़ में दौड़ना गुरुवाणी की कोई न कोई पंक्ति गुनगुनाते रहना और किसी न किसी पौधे के साथ लाड़ प्यार करते रहना। इसके लाडले पौधों में से चकोतरे का एक कलमी पौधा भी था। बसंत ऋतु में इसे इतने

फल लगे मानो हरा शरीर श्वेत तारों से जड़ गया था। वह भोली भाली कन्या यह देखकर अत्यंत प्रसन्न होती कि इस पौधे को बहुत अधिक फल लगेंगे। इसी तरह की चाह को देखकर पिता ने पौधे की सेवा का कार्य इसे सौंप दिया। इस पौधे पर एक अन्य लम्बे वृत्त की छाया पड़ती थी। पिता ने उसे छांग दिया। इस वृक्ष को पानी देने, इसके इर्द-गिर्द नलाई करके खाद डालने तथा दूसरी सारी सेवा में कन्या का काफी समय निकल गया। इस बेचारी को अपने चाव में ही इस बात का पता न चला कि नींबू जाति के पौधों को, जब वे फूलों पर आ जायें, कुछ दिन पानी नहीं दिया जाता और मुकुलित होने तक इन्हें पानी से बचाकर रखना होता है। यह बेचारी उसे खुला पानी दे बैठी। वैसे भी नींबू जाति के पौधों, वृक्षों के फूल, जिन्हें करना भी कहा जाता है, गिरने शुरू हो जाते हैं। इसके फूल भी गिरने शुरू हो गए। फूल थोड़े से रह गए। परन्तु अब भी यदि सारे फल लग जाते, तो कन्या की आशा पूरी हो जाती, दूसरी बात यह हो गई कि वैषाख के चढ़ते ही आंधियां चलनी शुरू हो गईं, जिन्होंने काम और भी बिगाड़ दिया। पौधे पर एक भी फूल शेष न रहा। यह देखकर जब बालिका निराश होने लगी तो पिता ने उसे समझाया कि पौधे को जितने फूल लगते हैं, वे सारे फलों का रूप धारण नहीं करते। दूसरा यह कि नलाई करना, ताज़ा खाद डालना और फूलों पर आए पौधे को पानी देना भी भूल है। आंधियां भी फूलों और फलों को तोड़ देती हैं, पर तू निराश मत हो और सेवा करती चली जा, न जाने तेरी मेहनत को फल लग गए। जब गर्मी के बढ़ने के साथ साथ फलदार पौधों में हरे फलों ने श्वेत फूलों का स्थान ले लिया। बाग़ के जिस भाग में ये फलदार पौधे लगे हुए थे, उसमें सारे वृक्ष नींबू जाति के फलों वाले थे इसके पिता ने कुछ पौधों को विभिन्न प्रकार के पैवंद लगा रखे थे। इनमें काग़ज़ी, गलगल, नींबू कौलां, सन्तरा, मीठा, नींबू, खट्टा, नारंगी, किम्ब, चकोतरा, मीठे नींबू के आकार का खट्टा, आसामी सन्तरा, मोटे छिलके वाले मीठे नींबू आदि कई प्रकार के फल एक ही पौधे को लग रहे थे। इस भाग के कुछ अन्य पौधे सारे के सारे फलों पर आए हुए थे, पर यह चकोतरे का पौधा, जो इस भोली भाली कन्या को मिला था, बिना फल के ही खड़ा था। पिता की आज्ञानुसार यह बेचारी चकोतरे के पेड़ की सेवा तो करती, परन्तु इसे फूल का कहीं भी कोई निशान न मिलता। जब जेष्ठ के मास की गरम लू तथा तेज़ धूप अपना कहर ढा रही थीं। अत्यंत गर्मी के कुछ उदासी का सा रंग फेर दिया और आंधियों ने धूल की पतली तह पत्तों पर चढ़ा दी। अभी आषाढ़ नहीं चढ़ा था कि आकाश की गहरी नीलिमा में भी फीकापन आने लगा, बादलों की चाल शुरू हो गई।

कभी-कभी घने बादल छा जाते और बिजली चमकती। कभी बादल गरजते। अंततः एक दिन फुहार पड़ी और फिर वर्षा होने लगी। प्रतीक्षा में खिंचे दिल देख रहे थे कि कहीं बादल उड़ न जायं। इतने में मूसलाधार वर्षा होने लगी। जल ही जल हो गया। दो घन्टे एक रस जमकर वर्षा हुई, फिर बादलों की चाल शुरू हो गई और वर्षा थम गई। वृक्ष धुल गए सारी बनस्पति ऐसी दिखाई देने लगी जैसे कि अभी-अभी स्नान किया हो बाग़ों का जोबन निखर आया। बरसात का पहला छींटा समय से पहले ही पड़ गया। इस पहले छींटे के बाद फिर अच्छी वर्षा शुरू होने लगी।

"मींहु पइआ परमेसरि पाइआ॥
जीअ जंत सभि सुखी वसाइआ।"

लोगों ने मक्का, ज्वार, बाजरा, तिल, धान, बासमती आदि फसलें बो दीं। बरसाती फूल भी कियारियों में खिल उठे। फलदार वृक्षों के फल भी मोटे हो गए। इतना ही बस नहीं। प्रकृति का जोर तथा मेहनत का फल देखिए–कन्या के फल ही न चकोतरे को भी एक छोटी सी कौंपल लग गई[१] कौंपल खिलकर फूल बन गई और एक नहीं बल्कि आठ दस फूल उसे और लग गए। यह पौधा श्रावणेरी[२] फूल गया।

पौधे को बिना मौसम के फला फूला देखकर कन्या का दिल किसी उच्चावस्था में चला गया। गले में दुपट्टा डाल लिया और हाथ जोड़े और आंखें बंद हो गईं, मन प्रार्थना रूपी पंख लगाकर और वहां से उड़कर आनन्दपुर पहुंच गया और प्रार्थना करने लगा, "हे कल्ग़ीधर! हे गुरू! मेरे इस फूल को फल बना दीजिए और इसे जल्दी परिपक्व कर दीजिए, ताकि इसे लेकर मैं स्वयं आपके चरणों में उपस्थित हो जाऊं।"

जिस हृदय ने कभी झूठ की पहचान नहीं की थी। जिस हृदय में कभी भी संशय तथा गुरू ने चक्कर नहीं लगाया था, उस हृदय की सच्चाई को समझना सच्चे हृदयों का ही काम है। इस भोलेपन की अवस्था में विनती में लोलीनता बहुत ही गहरी होती है। कन्या खड़ी है, दिल कल्ग़ीधर जी के चरणों पर वह रहा है, आंखों में से आंसू ढलक रहे हैं, जो एक-एक नए फूल कोमल कली से छू-छूकर नीचे गिर रहे हैं। मां ने बिटिया को प्रार्थना करते देखा। उसने भी

---

१. भाई देऊ को जब बाग़ में से किसी फूल अथवा फल की आवश्यकता होती, तो मालिक को उनके बदले पैसे दे दिया करता था और मुक्त में कोई भी वस्तु न लेता। इस पौधे के फलों को भी मोल लेने का विचार उसके मन में था।

२. श्रावण के महीने कभी-कभी मस्ती से भरे पौधे दूसरी बार फूलों पर आ जाते हैं, इन्हें श्रावणेरी कहते हैं।

दूर से प्रार्थना की, "हे दाता! बच्ची मग्न होकर प्रार्थना कर रही है, कृपा करना ताकि यह बच्ची आप से आप की अनुकंपा का ही दान मांगे ऐसी कोई वस्तु न मांगे जो आपकी आज्ञा के विरुद्ध हो।"

बच्ची विनती के सरोवर में से स्नान करके निकली; वह ठण्डी शीत, हल्की-फुल्की तथा सुंगधित हो गई। अब मां ने बच्ची को गोदी में ले लिया, माथ चूमा और कसकर गले से लगा लिया, आशीर्वाद देकर कहने लगी, "मेरी आत्मा, मेरी जान। तुझे कभी भी वाणी न भूले! तेरी कोई भी सोच, संकल्प, वचन, काम वाणी की आज्ञा से उल्ट न हो।" मां के इस प्यार में रंगी बिटिया बोली, मां जी! मैंने आज एक दान मांगा है, तुम देखो तो सही, कहीं वाणी से उलट तो नहीं है! मुझे वाणी का पूरा ज्ञान नहीं है। मैंने कल्ग़ीधर जी से मांग की है कि यह नया फूल चकोतरा बने और मैं इसे आपकी सेवा में भेंट करूं।" इस प्यार भरी लालसा को सुनकर मां सोच में डूब गई। उधर से भाई देऊ जी आ गए। मां ने उन्हें बिटिया की विनती का विवरण दे दिया। पिता ने पुत्री को गले से लगा लिया और कहा, "कुल का उद्धार करने वाली पुत्री! तेरा प्रेम हमारा उद्धार करेगा, तेरा प्रेम कई प्रेमियों का उद्धार करेगा, तेरा फूल सचमुच ही चकोतरा बनेगा, चाहे श्रावण के महीने में लगे फल बहुत कम ही, फल बनकर पकते हैं, पर तेरी प्रार्थना ईश्वर सुनेगा।" यह कहते ही भाई जी का अपना मन भरकर उछलने लगा। "मैं नीरु वहै वहि चलै जीओ।" कुछ समय के पश्चात् भाई देऊ की धर्म पत्नी बड़े मधुर स्वर से आनन्द वाणी का पाठ करने लगी। पाठ करते हुए शाम हो गई, रहरास नामक वाणी के पाठ का समय हो चुका था पाठ करके प्रार्थना की और गहरी शाम यह सिदक वाला परन्तु ग़रीब परिवार अपने घर पहुंचा।

: २ :

श्रावण का महीना बीतने लगा, वह फूल अब फल बनने लगा था; दूसरे फूल तो अंधेरी के कारण झड़ गए, पर यह जेठा फूल फल बन गया और कुछ दिनों में ही फल बनकर पक गया। मार्गशीर्ष गुज़र गया, चकोतरे के फल का रंग बदल गया। तोते नींबू जाति के फलों को बहुत कम ही काटते हैं, पर एक दिन बाग़ में तोतों के झुंड को देखकर कन्या डर गई कि कहीं ऐसा न हो कि तोते उसका चकोतरा खा जाएं। उसने खद्दर का एक टुकड़ा लेकर एक थैली बनाई और चकोतरे पर चढ़ा दी।

एक दिन बाग़ का मालिक राय जसवंत राव बाग़ में टहलता-टहलता फलदार टुकड़ी की ओर चला गया, उसके साथ एक कर्मचारी भी था। यह व्यक्ति बड़ा धनवान और कुलीन तथा विद्धान भी था। पर धन तथा विद्या ने इस

पर नम्रता और सेवा के स्थान पर अहं तथा अकड़ कुछ बढ़ा दी थी। यह धनवान सिख भी था। आप ही सिख नहीं, बल्कि इसका बाप भी सिख ही था। इसका पिता गुरू तेग बहादुर जी के चरणों का श्रद्धालु था। यह व्यक्ति भी कुछ श्रद्धालु था, पर बाणी के साथ बहुत कम प्यार करता था और अपनी अकल से इतना प्रेम करता था कि वह प्रेम अहं के रूप धारण कर लेता था। यहां तक कि इसे सारे देश में अपने बराबर दूसरा और कोई बुद्धिमान दिखाई ही नहीं देता था। इसकी बुद्धि का गर्व इतना बढ़ गया कि एक दिन श्री गुरू तेग़ बहादुर जी के शीश देने वाली घटना पर भी तर्क करने लगा और यह सोचने लगा कि गुरू जी को सत्य के लिए अपना शीश नहीं देना चाहिए था। पातशाह का कहा मानकर बाहर से मुसलमानों वाला रूप धारण करके ऐसा हाथ खेलते, कि औरंगज़ेब को तब पता चलता जब आप मुग़लों की कैद में से निकल जाते। अब इस अकल के धनी को दशमेश जी की सैनिक शक्ति पैदा करने वाली बात भी पसंद न आई। यह तो केवल छल-कपट को ही बुद्धि मानता था। सच वाली बुद्धिमत्ता तथा वीरता को सीधापन समझता था। जब सतगुरू जी ने अमृत छकाकर खालसा का सृजन किया और सबसे पहले पांच प्यारे ही विशुद्ध हुये थे और इसके बाद बीस हज़ार विशुद्ध हुये थे और एक बार अमृत छककर सिंह सज गए थे। उस दिन सिखों का एक भाग गुरू जी के संबंध में ये शब्द कहकर चल दिया था कि, "यह गुरू अभी अनजान है, अपने बुज़ुर्गों की नीति से उलट चल रहा है, हमें इसका कहा नहीं मानना, हमें तो पुरानी रीति के अनुसार ही चलना है।" यह जसवंत राव भी उन्हीं में से था, तब से यह कभी भी गुरू के दर्शन करने के लिए नहीं गया था और न ही इसने कोई सेवा की थी। इस तरह विमुख हो जाने के कारण अनजाने ही इसका स्वभाव कुछ कठोर सा हो गया था और इसमें गुस्सा भी कुछ अधिक ही हो गया था। इसके पिता के समय आनन्दपुर को जाने वाली संगतों को इनके ठिकाने पर विश्राम मिलता था, गरीबों, अनाथों का लालन-पालन होता था। यह सब कुछ अब लगभग बंद हो चुका था। इनकी रुचि दैवी गुणों की ओर से हट गई और इन पर आसुरी बातें अपना प्रभाव डाल रही थीं।

ऐसे मालिक की नौकरी देऊ कर रहा था। विमुख की नौकरी करना एक बोझ सा था, पर कल्ग़ीधर जी की ओर से नौकरी का त्याग करने की आज्ञा नहीं मिली थी। जसवंत राव जानता था कि भाई देऊ गुरू जी का प्रेमी है और वह भाई देऊ जी के आगे थोड़ी-थोड़ी रुकावट भी डालता था। वह चाहता था कि भाई देऊ भी किसी न किसी तरह उसके स्वभाव के अनुकूल बन जाए, पर सच के लगे स्नेह को कौन तोड़ सकता है? पर भाई जी जसवंत राव का भी कल्याण करना चाहते थे। भाई देऊ अमृत छकने का बहुत ही इच्छुक था, पर उधर से मालिक की ओर से उलटे सीधे ढंगों से विघ्न पड़ते रहते थे। कुछ प्रकृति की

ओर से भी रास्ता नहीं निकल रहा था। अतः सवेरे अपने पूजा पाठ के नित्य नियम के बाद परिवार प्रार्थना किया करता–"हे वाहिगुरू! हमें अमृत प्रदान करे अपने भाईयों से मिला दो और हमें ऊंचा उठा दो।" भाई देऊ अब संगतों की सेवा भी पहले की अपेक्षा अधिक करता था। सच पूछें तो यह सेवा का कार्य जो पहले मालिक के परिवार द्वारा किया जाता था, अब उसे नौकर पूरा कर रहा था। जब कभी भाई देऊ को किसी ओर से संगत के आने का पता चल जाता तो वह आगे से भोजन लेकर जा मिलता। फिर संगत के विश्राम का प्रबंध करता। विश्राम के लिए अपने घर के पास ही एक छप्पर डाल रखा था। जल तथा ईंधन भाई देऊ पहुंचा देता और जब कुछ पास होता तो अन्न भी पहुंचा देता और जब सामर्थ्य न हो, तब दातुन, नमक, बरतन आदि तो जरूर ही पहुंचा देता और मालिक का ठीक काम करने के बाद यदि कुछ समय बच जाता तो उसे संगतों की सेवा में लगाता। भाई देऊ ज़रूरतमंद अतिथि की ज़रूरत को भी यथाशक्ति पूरा करता इसकी यह सेवा, वृत्ति की अडोलता, सुरति का टिकावा नाम की लगन तथा गुरू के चरणों से प्रेम, ये सभी बातें संगतों में प्रसिद्ध हो रही थीं। कौन-सी ऐसी संगत थी जो आनन्दपुर जाकर भाई देऊ का यश नहीं गायन करती थी। श्री कल्गीधर जी महाराज संगत के प्यारे, संगत की सेवा के समाचार सुनकर अपने प्यारे सिख को अपने पवित्र हृदय में बसाकर बैठे थे। नाम रसिकों की संगत को गुरू जी अपने से अधिक प्यार करते थे। जो सिख नाम द्वारा मुक्त हो चुकी संगत से प्यार करता है वह गुरू को सबसे अधिक प्यारा क्यों न लगे, गुरू जी देख रहे थे कि उनका सिख चंदन बन गया है, वह सारे वृक्षों को सुगंधि प्रदान कर रहा है। वह चंदन हो चुका सिख अपने को काटने वाले कुल्हाड़े को भी सुगंधि प्रदान करता है। सिख चंदन है, जो हर प्रकार के पौधों, वृक्षों को नेक बनाता है और दुर्गंध रूपी साकटों से भी निराश नहीं होता।

एक दिन जसवंत राव बाग़ की सैर कर रहा था। जब वह नींबू जाति फलों वाले वृक्षों की टुकड़ी में आया। तब तरबूज के से आकार के फल का श्वेत रंग देखकर आगे बढ़ा। पास जाकर उसे पता चला कि भली-भांति एक चुके चकोतरे के ऊपर कपड़े की थैली चढ़ा रखी है। कर्मचारी को कहकर थैली उस पर से उतरवा दी। चकोतरे की सुन्दर शक्ल देखकर और हाथ से दबाकर देखने से उसके पक जाने का पता चला। मालिक ने कहा, "इसे तोड़ लो और मेरे महल में पहुंचाओ।"

इस समय एक चकोतरे का पालन करने वाली कन्या दूर से ही देखकर बेतहाशा दौड़ी आई और कर्मचारी को दोनों हाथों से पकड़कर अत्यंत दर्दनाक स्वर में बोली, "हाय न तोड़।" ये पांच अक्षर न जाने कितना बिजली का-सा असर लेकर उस सच्चे हृदय में से निकले कि कर्मचारी तथा मालिक दोनों चौंक

गए। नज़र उठाकर देखने पर मालिक की आंख तो अहंकार तथा आज्ञा के मद से भर गई, और कर्मचारी की आंख, कन्या के सामने होते ही ठिठक गई। इस समय मिनन्त करके कन्या ने फिर कहा, "न तोड़ भैया रे।"

जिस सरल बच्ची की कई महीनों की मेहनत बर्बाद होने लगी है, उसके हृदय की पीड़ा अत्यन्त तीखी है। हां, उसके दिल की वह आशा, जो काफ़ी समय से बनी रही है, वह लालसा जिसकी पूर्ति में केवल कुछ दिन ही रह गए हैं, बेदर्द हाथों द्वारा एक ही क्षण में समाप्त होने लगी है। उसके लिए वह खुशी की घड़ी आने से पहले ही विदा होने लगी है। वह घड़ी जिसे देखने की आशा ने उसकी आत्मा में निवास कर लिया था। सबसे अधिक इच्छित वस्तु का वियोग सबसे अधिक गहरा घाव लगाता है। बड़े चाव से जिस चकोतरे का पालन किया था, उस चाव से भरे दिल पर गहरा घाव पड़ गया। उसकी आंखों के आगे अंधेरा आ गया, उसके मन में निराशा छा गई। निराशा से आच्छादित उसकी आत्मा में सारा बल लगाकर एक बार ज़ोर से चिल्लाकर फिर कहा, "हाय! न तोड़, भैया रे।" कर्मचारी पर इसका प्रभाव पड़ा। उसके हाथ चकोतरे से इस तरह हट गए, मानो उसके हाथ को किसी विचार ने किसी का गला काटने से परे हटा दिया है। अहंकार के पुतले जसवंत राव पर भी लड़की की दुहाई ने चोट मारी, पर मालिक होकर नौकर की लड़की के कहने से अपने आदेश को वापिस ले लेना उसे अपने सम्मान में फर्क डालने वाली बात लगी। उसका मन चाहे उस छोटे, पर सच्चे दिल की विनती को मान गया था, पर उस नेक संकल्प को घमंड ने आ दबाया। हा, जगत्! तुझे अपने रोब के कम होने के संकल्प ने कितनी बार पाप में प्रवृत्त किया है। आज यदि जसवंत राव का सिख धर्म में सिदक होता, तो वह अवश्य ही दया तथा प्यार में होता और उसका जी कहता–क्या एक दो चार आने की वस्तु के बदले में अपने नमकहलाल नौकर की कन्या का हृदय दुखाना है। ये लोग इसे चोरी करके तो ले नहीं जाएंगे। बच्चे की लालसा है कोई बात नहीं। पर कठोर दिल ने अपने हृदय को दबाकर कड़ककर कहा, "लड़की! तू परे हट, तोड़ दे रे इसे।" "परे हट लड़की" न जाने ये शब्द कोई बिजली थी, "तोड़ दे रे इसे" न जाने ये यह कोई इन्द्र का कोई वज्र था। उधर चकोतरा टूटा और इधर लड़की धड़ाम से गिर पड़ी और पत्थर हो गई। जसवंत राव को यह आशा नहीं थी कि लड़की इतना सख्त दु:ख मानेगी, पर अब भी विनम्रता करने से रौब नहीं रहता था, यह सोचकर उसने ध्यान ही न दिया और आगे को चल दिया। कर्मचारी पीछे-पीछे है, पर उसका एक कदम भारी हो रहा है। वह समझता है कि उससे घोर भूल हुई और इस भूल में वह भी भागीदार है। वह जानता है कि उसने मालिक की आज्ञा का पालन किया है, पर साथ ही उससे अपने उस्ताद भाई देऊ, जिसने उसे रोटी कमाने के योग्य बनाया है की भी

अवज्ञा हुई है। उसकी आंखें भर रही हैं, चकोतरा हाथ में है और आँखों में से जल की बूंदें उसके ऊपर पड़कर नीचे ढलक रही हैं। आंखों के आगे अंधेरे के चक्कर से उठते हैं और प्रत्येक चक्कर में कन्या की वह दयनीय मूर्ति तथा, "हाय न तोड़" के हृदयवेधी शब्द निकलते प्रतीत होते हैं। इस विचार ने बालिका की ज़िद समझी थी, पर उसके दिल को तोड़ गया। इस अचानक घटना से उसे अपने-आप से ही दुखी कर दिया। बाग के फाटक को पार करने के बाद एक अन्य कर्मचारी दिखाई दिया, उसे एक ओर ले जाकर शीघ्र चुपके-चुपके सारा समाचार बता दिया और आप मालिक के पीछे भागा। घर जाकर चकोतरा मालिक के आगे रखा, "मैं अपने वेतन को छोड़ता हूं, मुझे छुट्टी दे दीजिए। मुझे अब नौकरी नहीं करनी।"

जसवंत राव (कठोरता से)—क्या हुआ? कर्मचारी मन ही मन कह रहा था—धिक्कार है मुझ पर, मैंने उस समय नौकरी क्यों न छोड़ दी, जिस समय मेरी पापी अंगुलियां फल को तोड़ते समय संसार रूपी पौधे से एक जीवन को तोड़ गईं। शोक! उस बुरे क्षण पर जब मैंने एक प्राणघातक चोट मारी। हा, शोक मेरी कायरता पर। मैंने अपने उस्ताद के साथ द्रोह किया। अब मैं उस गुरुमुख को क्या मुंह दिखाऊंगा! मेरी आत्मा में लज्जा समा गई है, मैं कलमुंहां उसके सामने नहीं हो सकता जिसने मुझे रोटी-रोज़ी कमाने के योग्य बनाया है।

जसवंत राव फिर बोला—जाओ जाकर अपना काम करो। कर्मचारी—मैं पापी हूं, मैं पापी हूं। यह कहकर और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना, बावलों की भांति 'हाय न तोड़, हाय न तोड़' कहता हुआ उस घर से निकलकर होशियारपुर के जंगलों में से होता हुआ भाग गया। मालिक का सारा कमरा 'हाय न तोड़, हाय न तोड़' की आवाज से गूंज उठा। कर्मचारी कहीं का कहीं पहुंच गया है, पर 'हाय न तोड़' की गूंज मालिक के कानों में गूंज रही है।

उधर जिस समय भाई देऊ को खबर मिली, उस समय वह भोजन करके कुल्ला कर रहा था, सुनते ही दोनों के मुंह से यह वाक्य निकला, "तेरा कीआ मीठा लागै।" यह कहते हुए बड़े धैर्य तथा साहस के साथ शुक्र शुक्र करते हुए फलदार वृक्षों के क्षेत्र में उस भाग्यशाली चकोतरे के पास पहुंचे। वहां पर क्या देखते हैं कि चकोतरा है ही नहीं। वृक्ष को बड़े प्रेम सहित पानी देने वाली तथा कल्ग़ीधर के लिए दो-चार आने के मूल्य वाले फल की प्रेम सहित सेवा करने वाली होनहार पुत्री औंधी पड़ी है। उसे कोई होश नहीं। श्वांस बहुत ही धीमा चल रहा है, आंखें बंद हैं, शरीर ठण्डा शीत है, नाड़ी भी बहुत मन्द है। पिता ने "पराई अमाण किउ रखीऐ दिती ही सुख होइ" कहकर अपनी लाडली बिटिया को उठा लिया और अपनी कुटिया की ओर ले गया। भाई देऊ की कन्या का यह हाल हो और फिर वह छिपा रह जाए? यह समाचार तो निकल गया था

कि और एक वैद्यराज जी, जिन्हें भाई जी के सत्संग के द्वारा धर्म का रंग चढ़ा था, झट आ पहुंचे। इन्होंने कुछ चिकित्सा की, जिसके कारण शरीर में गर्मी आ गई। नाड़ी भी ठीक चलने लगी, पर आंखें बंद रहीं और नींद में बड़बड़ाने की भांति उसके मुंह से यह आवाज़ निकली, "हाय! न तोड़", "न तोड़ना, भैया रे।" यह आवाज़ क्या थी मानो एक अरूप छुरी थी। जो लोग अब सारी घटना को सुनकर इकट्ठे ही गए थे, स्वाभाविक ही उन सबके नेत्र सजल हो गए। सबके मनों पर इन अक्षरों ने उस गहरे प्रेम का चित्र खींच दिया जो इस होनहार कन्या के मन में गुरू जी के चरणों के प्रति था। यह छोटा-सा पवित्र जल का मानो एक स्त्रोत था जो अपने छोटे सामर्थ का सारा कुछ नदी रूपी गुरू को अर्पित कर रहा था। यह छोटा-सा दिल कोमल मक्खन की भांति था, जिसने संसार उद्धार के हवन कुंड रूपी गुरू प्रेम में अपने दिल की आहुति दे दी थी। उस छोटे-से प्रेमी हृदय का वर्णन करने के लिए विस्तार की आवश्यकता है, पर यदि सच्चे प्रेम तथा वैराग्य का प्रभाव एक क्षण के लिए अपने हृदय में से गुजर जाए तब उस प्रेम की समझ इस तरह आ जाए, जिस तरह छोटे से दूरबीन के शीशे में से अदृष्ट तारे भी दिखाई देने लगते हैं।

रात भर लड़की अर्ध बेसुधी में पड़ी रही। ज्वर सा आ गया और घड़ी दो घड़ी के बाद यही आवाज़ बड़े दर्दनाक ढंग से निकलती, "हाय न तोड़"। माता पिता बहुत ही भरोसे वाले थे। उन्होंने अपने मन को शुक्र से हिलने ही नहीं दिया और न ही बच्ची की सेवा में कोई कसर शेष छोड़ी, पर जब ये दर्दनाक अक्षर मुंह से निकलते, उनके हृदय में कसक सी उठती।

: ३ :

जब कर्मचारी भाग गया था, उस समय जसंवत राव अपने दालान में अकेला था। वह वहीं पर ही बैठ गया था। सामने घड़ौची के ऊपर चकोतरा पड़ा था। मन में उस लड़की के धड़ाम से गिर जाने का चित्र बन रहा था। और बार-बार आंखों के सामने उस कर्मचारी के पश्चाताप में नीली पीली हो रही उसकी शक्ल आती। सोच में पड़ा था और अपने आप को सच्चा सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि पापी तथा नास्तिक के दिल को कभी भी शीतलता नहीं मिलती। पापी की यह धुकधुकी पूरी तरह खत्म नहीं हुई कि जो पाप उसने किया है उसे करना ठीक था और न ही कभी नास्तिक का यह सूक्ष्म संशय ही दूर हुआ है कि न जाने ईश्वर ही हो, मैं वैसे ही कह रहा हूं।" अत: तर्कों ने इसके मन में से बेचैनी को न निकाला। नौकर ने भोजन करने को कहा, पत्नी ने खाना खाने को कहा, बार-बार कहा, पर अंतस् की बेचैनी के कारण उसने नहीं कर दी और अंत इन्हीं सोचों में डूबा लेट गया। उसकी पत्नी

बेचारी को क्या पता था कि क्या घटना घटित हुई है? सिख की लड़की थी और माता-पिता ने इसका विवाह भी सिख के घर में ही किया था, पर किसी को क्या पता था कि जसवंत राव परीक्षा के समय विमुख बनकर कठोर हो जाएगा और श्रृष्टि का उद्धार करने वाले को पीठ दिखा देगा। पर इस सिदक वाली का सिदक भंग नहीं हुआ और सदैव पति को समझाने में लगी रही। यह बेचारी अपने पूजा-पाठ के नित्य के नियम को पूरा करने वाली थी और एक पहर रात रहते उठती और प्रेम सहित पूजा-पाठ के नित्य के नियम को निभाती। प्रार्थना के समय विनती करती "हे दीन दयालु! मेरे पति को गुरू के सम्मुख करो।"

कौन जानता है कि विनती क्या वस्तु है? दिल की गहरी परतों में जीवित आत्मा मूकता की आवाज़ द्वारा सृजनहार से मांगती है, वह कैसे और किन रूपों में कब पूरा होता है। लोग मन को निराशा तथा संशय में गलाते हैं। पर सिदक द्वारा विनती की कुठाली में डालकर वैराग की आग से मन को नहीं पिघलाते। स्थूल आवश्यकताओं के लिए स्थूल शिक्षा के नीचे मन को स्थूल बना देती हैं। स्थूल हो चुके मन में स्थूल आवश्यकताओं का ढोल पीटता रहता है, कभी भी द्रवित नहीं होता अत: सिदक की सारंगी का सूक्ष्म स्वर सुनाई नहीं देता। पर जो स्थूल सामान दिखाई देता है वह भ्रांति वाला होता है, यह शाश्वत नहीं होता, क्षण-क्षणकर चलता रहता है। इसके सुख भी क्षण भंगुर हैं, जो कुछ अदृष्ट है, वही वास्तविकता है, उसके सुख भी पक्के हैं और वह नाश भी नहीं होता। जसवंत की पत्नी अदृष्ट सृजनहार के चरण कमलों से दिल की सच्ची लालसा से यही कुछ मांगा करती थी कि हे पतित पावन! मेरे पति को सम्मुख करो।" उसकी इस विनती का आज तक प्रत्यक्ष रूप में कोई प्रभाव दिखाई न दिया। पर उसका इसके कारण मन डोला नहीं, वह पूरे सिदक से लगी रही। आज रात को जब पति सो गया और इसने सेविका से कुंजियां लीं, उस समय सेविका ने बाग़ वाली घटना का वृतान्त कह सुनाया। इस दुख को सुनकर वह सिदक वाली कब तक सहन कर सकती थी? फूट-फूटकर रोई, धैर्य की किश्ती टेक के लंगर से टूट गई और आत्मा के भीतर से यह दुहाई निकली, "हे वाहिगुरू मुझे शान्ति प्रदान कर, कृपा कर ताकि, 'तेरा कीआ मीठा लागै", अपने चरणों का आश्रय तथा अपने नाम के साथ प्यार प्रदान कर। हे करुणामय! पति जी को अपने चरणों की ओर प्रेरित कर तेरे द्वार की अनुकंपा असीम है, उसकी कोई सीमा नहीं है, पति जी को भी अपनी शरण में ले लो और उनके चित्त में सतगुरू जी के चरणों की प्रीति प्रदान करो ताकि उनका अत्यंत कोमल हृदय कुसंगति की चादर की मैल को धो डाले। वह आत्मा जो विशुद्ध आपकी ही देन है, परम स्वच्छ है, तेरे नाम को भुलाकर तथा वाणी का त्याग करने के कारण आर्थिक भार के नीचे दब गई है, कृपा कर ताकि वह तेरी अनुकंपा से फिर हल्की फूल होकर तेरे चरणों

में आने की इच्छुक हो जाए। तू विरद पालक है, मैं नगण्य, तुच्छ हीन-दीन कृतघ्न तेरे से भूल भटककर डोलने लगती हूं। तेरी आज्ञा 'हुकमि रजाई चलणा' पढ़ती तो हूं समझती भी हूं, पर हे कृपालु! फिर डोल जाती हूं। तू दया कर ताकि तेरा यह हुकम मेरे शरीर में समा जाए। हे दया सागर! चाहे मैं कितनी ही बुरी हूं, पर फिर भी तेरी हूं। तू मुझे अपनी समझकर मेरा दुख दूर कर। मैं जानती हूं कि मैं विनती करने के योग्य नहीं, मैं इस योग्य भी नहीं कि तेरे द्वार पर मेरी फरियाद सुनी जाए, हे पिता! तेरी होने के नाते मैं पुकार करती हूं, एक तेरी ही बनकर रहने से मेरे सुखों का आश्रय, मेरी कठिनाइयों का समाधान तथा मेरे दुखों की निवृत्ति है। तेरे द्वार पर तेरी ही दुहाई देती हूं, रक्षा करो, पति जी पर कृपा करो, अपने चरणों की ओर आकर्षित करो और जिस कीचड़ में वे फंस गए हैं, उसमें से उन्हें निकाल लीजिए। सच्चे पातशाह ने हम जैसे कर्महीनों के दुखों को देखकर ही विनती की थी, "जगत जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि।" हे पिता! उस अपने प्यारे की इस प्रार्थना की ओर दृष्टि डालो, उसी सतगुरू जी के लिए, जलने वालों में से मेरी और मेरे पति जी रक्षा कर लीजिए।

इस प्रकार प्रार्थना करते-करते चित्त आपे में टिक गया और इस एकाग्रता में अनजाने धैर्य बंध गया ऐसे लगा कि अनुकंपा का द्वार खुल गया है। अब नींद सी आ गई और प्रार्थना करने वाली प्रार्थना की लीनता के आनन्द में मग्न हो गई।

आधी रात के बाद कमरे में से 'हाय, हाय' की आवाज़ आने लगी, इस महिला की नींद खुली, दिया मंद हो रहा था और भय का सा चित्र बंध रहा था। बीच-बीच में एक-एक क्षण के पश्चात 'हाय' की लम्बी तथा धीमी आवाज़ ठहर ठहरकर आ रही थी। रज़ाई में से उठकर देखा, तो पति की आवाज़ लगी। उससे रहा न गया, उठकर पास चली गई और चरण पकड़कर बोली क्यों कुशल तो है?

पति—मैं बाल-बाल दुखी हूं।

पत्नी—क्या दुख है? शरीर तो स्वस्थ्य है न?

पति—क्या बताऊं? मुझे लज्जा आती है।

पत्नी—मुझसे क्या लज्जा? बताने से तो आधा दुख बंट जाता है।

पति—क्या तूने—स्वयं भी कुछ सुना है?

पत्नी—किससे?

पति—बाग़ की कोई बात?

पत्नी—हां, सुनी है।

पति—वह लड़की मर गई है अथवा जीवित है?

पत्नी—जीवित तो है, पर उसे सुध नहीं है, बड़बड़ाती है और कहती है "हाय! न तोड़।"

पति—इस 'हाय न तोड़' ने मुझे मरोड़ डाला है।

पत्नी—हुआ क्या?

पति—(रुक रुककर) मन पर कुछ ऐसा सहम बैठ गया है कि नींद ही नहीं आती, यदि आती भी है तो तड़पकर उठ बैठता हूं।

पत्नी—क्या होता है?

पति—आंख लगते ही आवाज़ आती है 'हाय न तोड़' फिर चौंककर खुल जाती है।

पत्नी—क्या सचमुच आपने चकोतरा जबर्दस्ती तुड़वाया था और लड़की मिन्नतें करती रही थी।

पति—हां।

पत्नी—क्या था, निगौड़ा चार छ: पैसे का चकोतरा, जिसके बदले इतना दुख पाया।

पति—चकोतरा तो कुछ भी नहीं था, मैंने तोड़ने का आदेश दिया और वह कौन होती है 'न तोड़' का आदेश देने वाली।

पत्नी—ठीक है पर, वह तो बच्ची थी, उसकी बात का गुस्सा क्यों करना था अनजान क्या जाने, सिर पर प्यार देना ही ठीक होता है।

पति—फिर सारे कर्मचारी अपने बच्चों को यही शिक्षा दे दें और मैं हर रोज़ यही कह दूं 'अच्छा बेटा'। तो मेरा रोब ही क्या रहे?

पत्नी—पति जी! यदि सच पूछो तो मैं कहूंगी कि अगर सारे कर्मचारी ऐसे बच्चे पैदा कर लें, मैं तो कहूंगी कि यदि बच्चे मांगे तो उन्हें सारा बाग़ दे दीजिए वाहिगुरू आप प्रसन्न होगा, ठीक उसी तरह जिस तरह आप उसके बच्चों पर प्रसन्न होंगे।

पति—(चौंककर) 'हाय न तोड़' शोक! फिर आवाज़ आई है।

पत्नी—(बात के तंतु को फिर जोड़कर) क्या सारे बच्चे 'न तोड़' कहें तो आपका दिल इसी तरह हिल जाए?

पति—यही तो मेरी समझ में नहीं आता।

पत्नी—यही तो समझने वाली बात है कि कन्या अत्यंत सरल तथा शुद्ध हृदय वाली है, वाणी से उसका प्रेम है, सिदक तथा भरोसे वाली है। उसकी लालसा की पूर्ति के लिए श्रावण में यह फल लगा था, उसने इसका पालन अत्यंत प्यार से किया था, वह नहीं चाहती थी कि यह फल आज ही टूटे।

पति—यह तो बच्चे की जिद्द हुई न।

पत्नी—बच्चों की ज़िद के कारण हृदय हिल रहे हैं।

पति—फिर क्यों इतना प्रभाव पड़ा, क्या लड़की कोई डायन है।

पत्नी—कन्या देवी है। हां पति जी, जिस दाता जी से आप विमुख हुए हैं, उसका उसी से प्रेम है, चकोतरा उसने उनके लिए पकाया था।

पति--यह उम्र और इतनी लगन।

पत्नी--कुछ तो देवता स्वरूप माता-पिता की संगति, कुछ विशुद्ध बालपने का दिल और कुछ अपने कर्मों के कारण लगन लगी और वह प्रेम बन गया। आपने बेदर्दी से खींचा और वह बन गया फणधर-विरह भुयंगम, जिसके एक झटके ने दो पछाड़ दिए--एक मालिक तथा दूसरा कर्मचारी।

पत्नी बातें करती जा रही थी और पति की आंख लगती जा रही थी। जब वह खुर्राटे भरने लगा तो पत्नी भी चुप हो गई, पर वह उसके पास ही बैठी रही। कुछ समय के बाद करवट बदली, फिर आवाज़ आई 'हाय न तोड़'। जसवंत की आंखें खुलीं, पत्नी की ओर देखकर कहने लगा-जाग रही है, हैं, बैठी है? मैंने एक सपना देखा है।

पत्नी-वह सपना क्या है?

जसवंत-तेरी बात को सुनते-सुनते मेरी आंख लग गई थी। क्या देखता हूं कि मेरी दृष्टि के मैदान में सारा हिन्दुस्तान हाथ पर बना पड़ा है। काश्मीर, पंजाब, पर्वत, पूर्व बंगाल, राजपूताना, सिंध, दक्षिण, सारा ही एक बार दीखने लगा है और यों लगता है, जैसे कोई बाग हो और उसके अलग-अलग भाग हों। सभी जातियों के स्त्री-पुरुष, बच्चे यों लगते--जैसे पौधे हों और पौधे वृक्षों की भांति खड़े हों। फिर क्या देखता हूं कि अंधेरा हो गया है और बहुत बड़ी गूंज उठी है। प्रत्येक पौधे में से सहम भरी आवाज़ निकलती है "हाय न तोड़"। एक क्षण के बाद फिर प्रकाश हो गया। क्या देखता हूं कि प्रत्येक पौधे के पास एक-एक मुग़ल पठान खड़ा है। कोई तो कुल्हाड़े से किसी पौधे को काटता है और आरी के साथ चीरता है, कोई झटका देकर उखाड़ फैंकता है, कोई पत्ता-पत्ता तोड़कर वृक्ष को रुंड-मुंड-कर रहा है, कोई शाखाओं को तोड़ता जा रहा है। जब भी कोई पौधा टूटता है, उसमें से हृदयवेधी आवाज़ निकलती है, "हाय! न तोड़"। प्रत्येक पौधे में से रक्त धारा बहती है। रखवाले, कर्मचारी, माली, बाग़वान, सैलानी मालिक सभी तोड़ने मे लगे हुए हैं और बड़ी बेदर्दी से सभी तोड़ते जा रहे हैं। प्रत्येक शाखा और पत्ते में से यही आवाज़ उठ रही है, 'हाय! न तोड़'। तोड़ने वाले 'न तोड़' की दुहाई सुनते तो हैं, परन्तु फिर भी तोड़ते चले जा रहे हैं। फिर अंधेरा छा गया। पूर्व की ओर से, नदी के पार प्रकाश की एक किरण फूटी। प्रकाश की किरणों में से यही आवाज़ आती, 'खबरदार! न तोड़ न तोड़'। फिर क्या देखता हूं कि तोड़ने का काम बंद हो गया है। तोड़ने वालों में से तो कईयों को ठीक करके रखवाले बनाया गया, कई आराम से स्वयं पौधे बन गए कई भाग गए कई मर गए। फिर आवाज़ आई मैंने रक्षा कर ली हाय! 'न तोड़' की आवाज़ दूर होती-होती इतनी दूर निकल गई कि सुनाई देनी भी बंद

हो गई। फिर सुना तो आवाज़ आई 'सदैव रक्षा की भई रक्षा की'। अब प्रकाश और तेज होकर चकमा और चौंककर मेरी नींद खुल गई भला बता तो, यह क्या हुआ?

पत्नी–प्राय: सपनों में दिन में घटित समाचार चित्र बनकर सामने आते हैं। पर कभी सपने वास्तविकता का रहस्य खोलते हैं और कभी भविष्य का संकेत भी करते हैं। सारे सपने विशुद्ध झूठे और छलावा नहीं होते। जो बात प्रत्यक्ष है; उसे सपने अथवा वास्तविकता में बांटा नहीं जा सकता। तुम्हारा सपना तो प्रत्यक्ष है। देखो देश में जुल्म हो रहा है, यह भी सच है कि कल्ग़ीधर जी धर्म तथा प्रजा की रक्षा के लिए धर्म के युद्ध कर रहे हैं। वे ज़ालिमों को स्पष्ट मना कर रहे हैं कि ज़ुल्म मत करो। हम कुसंगति में पड़कर ये तर्क सीख गए हैं कि उन्होंने शस्त्र क्यों उठाए हैं? पर पति जी क्षमा करना सच तो यह है कि यदि वे शस्त्र न उठाएं तो शेष बचे ही क्या? शस्त्र न उठाने वाले अनेक फ़कीर बैठे हैं, जो कुछ भी तो नहीं संवार रहे। वे इसलिए तो शस्त्रों का त्याग नहीं कर बैठे कि यह कोई पुण्य कार्य है पर उन्हें तो शस्त्र पकड़कर और फिर धर्म की रक्षा करने का ज्ञान नहीं है। आप यह तो जानते ही हो कि गुरू जी अपने लिए कुछ नहीं कर रहे, केवल दुख़ी जनता के लिए दुखों की पोटली सिर पर उठा रहे हैं। वे तो उनकी खातिर युद्ध कर रहे हैं जो चकोतरी की भांति ज़ुल्मों के निदर्यी हाथों से तोड़े जा रहे हैं। जो मनुष्य होते हुए भेड़ों की भांति बिकते हैं, जो मर्द होते हुए भी अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं। गुरू जी ऐसे दुखियों के लिए वीर रस में खेल रहे हैं, अन्यथा उस शान्त सरोवर में किस चीज़ की कमी है अथवा उसे किस वस्तु की आवश्यकता है? पति जी। यदि आप क्षमा करें तो मैं एक विनती करूं। मेरे सिरताज जी। हमारा यह धर्म होना चाहिए था कि हम उनके सेवकों के साथ मिलते, अपना सब कुछ अर्पण करते और रखवालों की सेना में नाम कमाते। पर मैं बड़ी पापाचारिणी हूं न जाने यह मेरे ही कर्मों क़े कारण, पति जी। आपने सतगुरू जी की ओर से उदासी का रंग पकड़ा है। हाय पति जी! हम और आप न तो तोड़ने वाले बने और न ही बनाकर रखने वाले, बल्कि हम तो रखने वालों के पीछे लग गए। हमारी यह कितनी भूल है कि हम इस समय सतगुरू जी के उल्ट चल रहे हैं। इसके लिए हम इस लोक तथा परलोक में उत्तरदायी होंगे। पति जी। ऐसी कोई दया कीजिए, जिससे हम बच निकलें।

पति–मैंने उलट तो कुछ नहीं किया। चुप होकर बैठा हूं हैं। ठीक है न।

पत्नी–मेरी समझ में, पति जी आपका अपना मन ठीक है। विमुखों की संगति बुरी होती है। एक दो आने का चकोतरा क्या कोई बड़ी वस्तु तो नहीं होती। इस मामूली से फल के बदले आज एक बालिका की यह दशा हो गई है। यदि आपको दोष दूं, तो जिह्वा जले, पर पति जी। इतने छोटे विचारों में पड़ना तो संगति का ही फल है न। यदि हम सिख धर्म के सिदक में पक्के रहते, तो

ऐसे धर्मों तथा नमकहलाल नौकर के इकलौते बच्चे की खातिर एक-दो आने की वस्तु का हमें बोझ महसूस न होता और यह भी ख्याल न आता कि हमारा रोब नहीं रहता। अभी तो कुछ नहीं बिगड़ा, बात अब भी सुधर सकती है।

पति-कैसे?

पत्नी-मूल के साथ यदि संवर जाए तो शाखाओं के साथ अपने-आप संवर जाएगी।

पति-मुझे तो तेरे से भी बात करते हुए लज्जा सी आती है, वहां कौन जायेगा?

पत्नी-लज्जा का तो आपका स्वभाव बचपन से ही है, आपकी मां बताया करती थी। लज्जा किसी सीमा तक तो ठीक होती है, पर यदि संगति ठीक न हो तो यह अपने लिए दुखों का कारण बन जाती है। देखिए संगति ने अब बुरा रूप धारण कर लिया है कि नहीं।

पति-नहीं, बात यह है कि मुझे गुरू जी के सामने जाते हुए लज्जा आती है। मैं समय पर पूरा न उतरा, तब तो यश भी होता है, अब दोषी बनकर कैसे जाऊं?

पत्नी-यह देखिए कुसंगति ने हमारी 'संगति' को दूरी बना दिया है। मुझ से लज्जा जो कि आपकी पत्नी हूं, गुरू जी से लज्जा जिसके पास जाकर सारे पाप पुण्य का ब्योरा बताना अपनी मूर्खता भरी बातें उनके सामने रखना और अनजान बनकर उससे शिक्षा लेना था। फिर उसी गुरू से, जिसे हमारी चिंता है। "तिस सिउ किउ मन रुमीऐ जिसहि हमारी चिंद।।"

पति-क्या गुरू हमसे घृणा नहीं करता?

पत्नी-जो कोई भी उस समय चूक गया अथवा रुष्ट हो गया, वह जब भी गुरू जी की शरण में गया, गुरू जी ने उसे गले लगा लिया। गुरू कोई दंडक धर्मराज (यमराज) तो नहीं है। वह तो कृपालु है, क्षमा करने वाला है, सर्वज्ञ है, मनुष्यों के दिलों का ज्ञाता है। इस प्रकार दिन चढ़ने तक बातें होती रहीं।

: ४ :

उधर उस लड़की की रात तो बेचैनी में गुजरी थी, पर अमृत वेला में उठकर वाणी का पाठ करने का स्वभाव बन चुका था, इस मूच्छित दशा में भी वह कायम रहा। "हाय न तोड़" के स्थान पर कोई पांच घड़ी के तड़के यह पंक्ति मुंह से निकली, 'प्रभ कै सिमरण गरभि न बसै।" फिर कुछ समय के बाद आवाज़ आई, "जो जो जपै तिसकी गति होइ।।" फिर आवाज़ "अनिक भोग बिखिया के करै।। नह त्रिपतावै खपि खपि मरै।।" फिर आवाज़ आई, "मिरतक कऊ जीवालनहार।। भूखे कउ देवत आधार।।" फिर आवाज़ आई, "अपुने जन का परदा ढाकै।।" फिर "जह अछल अछेद अभेद समाइआ।। ऊहा किसहि

बिआपत माइआ।।" फिर, "आप मुकतु मुकतु करै संसारु।। नानक तिसु जन कउ सदा नमसकारु।।" फिर, "दूख रोग बिनसै भै भरम।।" इन पंक्तियों को एक क्रम में सुनकर भाई देऊ जी बोले: "पुत्री! तेरा जीवन मरण दोनों सफल।" अब आपने बादाम रोग़न लेकर शरीर पर उसकी मालिश करवाई, धीरे-धीरे होश आता गया और पौ फटने तक आंखें खुल गई। लड़की अपने आपको मां की गोदी में पाकर उसके गले से लिपट गई, पर अभी उसमें शक्ति कुछ कम थी; फिर हंसकर बोली, अम्मां जी! मुझे बहुत नींद आई, मैं कहां थी? अम्मां जी बहुत गहरी नींद है मैं निस्तेज क्यों हो रही हूं? मां ने प्यांर दिया, छाती से लगाया और कहा कि बिटिया तू तगड़ी है। फिर पिता ने प्यार किया। एकाएक लड़की को चकोतरे के टूटने का ध्यान आ गया, उसका रंग बदल गया और कहने लगी: बापू जी! 'हाय न तोड़।' यह कहकर उसने एक अंगड़ाई ली। पिता बुद्धिमान था, उसने उसे समझाया। यह बड़ा नाज़ुक समय था, पर पिता के कहने पर उसे कोई संशय नहीं होता था। अत: उसके समझाने से, जो इस समय उसने प्यार तथा धैर्य से समझाया था, लड़की के मन में से चकोतरे का मोह टूट गया और वह बहाव में बहने से बच गई। थोड़े समय के बाद जसवंत राव अपनी पत्नी सहित अपने नौकर के घर आ गया और आकर भूमि पर ही बैठ गया। उसकी पत्नी ने लड़की के सिर पर प्यार दिया और कहा–"बिटिया। सावधान हो बाग़ तेरा है चकोतरा तेरा है, मैं तेरी हूं, मेरे पति जी तेरे पिता समान हैं; तू तगड़ी हो।"

जसवंत ने कहा–बिटिया गुरू क्षमा करने वाले हैं, सिख भी क्षमा करने वाले हैं।

लड़की के पिता ने कहा, "वाहिगुरू! महाराज जी! यह आपकी बच्ची है आप बड़े हैं, इसके सिर पर हाथ रखो।" तब जसवंत राव की पत्नी ने लड़की को गोदी में ले लिया और आंसुओं से सिंचित चकोतरा आगे रखकर कहा, "ले पुत्री! यह तेरी प्यारी वस्तु।" पर धैर्यवान लड़की ने हाथ जोड़कर कहा, "माता जी! मैं बहुत भूल में पड़ी हूं, इसी कारण आज अमृत वेला में मेरी नींद नहीं खुली और इसके कारण मेरा शरीर दुखी है। यह चकोतरा हमारे मालिक का है, हम तो नौकर हैं। मैंने पराई वस्तु को अपना बना लिया था और फिर गुरू जी को अर्पण करने का संकल्प किया था। गुरू जी को ऐसी वस्तु नहीं लेनी थी, अत: मालिक जी कल इसे स्वयं तुड़वाकर ले गये थे। यदि मुझे यह पता होता, तो इसे अपना समझकर इसका पालन लालन करती, फिर सतगुरू जी कभी भी तोड़ने न देते। पर अब भी अच्छा ही हुआ जो मैं पराई वस्तु को गुरू जी के दरबार में लेकर नहीं गई, अन्यथा वहां पर भरी सभा में मुझे लज्जित होना पड़ता। सतगुरू जी ने तो यह महान अनुकंपा की है। पिता जी बताते हैं कि सिखों को

तो सदैव दान करना ही चाहिए, दान लेना नहीं चाहिए और बिना अधिकार के तो पराई वस्तु की चाह से परे रहना चाहिए।

यही विचार था जो पिता ने पुत्री को बहाव में से बचाने के लिए बताया था और साथ अपनी पराई का भेद भी बता दिया था। कन्या ने वही शब्द, जो उसकी समझ में आए थे, कह दिए। इसके भोले-भाले पर सच्चे वचनों ने जसवंत को बींध दिया। "सिख को दान देना चाहिए, लेना नहीं चाहिए।" सिख धर्म का यह उसूल जसवंत के मन को प्रभावित कर गया और साथ ही उसे इस बात की समझ आ गई कि सब विपत्ति को कैसे मीठा करके सहन करते हैं और किस तरह शुक्र के मण्डल में रहने का यत्न करते हैं। जसवंत राव ने भाई देऊ से कहा, "मैं सतगुरू जी से रुष्ट हुआ रहा हूं, पर भूल मेरी थी, लज्जा मेरे सामने परदा बनकर खड़ी रही...सच्ची बात कहने में क्या लाज? इस कन्या के झंझोड़ने तथा अपनी पत्नी के उपदेश से मुझे होश आया है। अब तुम मुझे दोबारा साधु संगत में मिला लो।"

भाई देऊ जी ने सत्कार सहित कहा, "महाराज! मैं कीट आपके द्वार का भिखारी हूं, मैं "हउ अपराधी गुनहगार हउ वेमुख मंदा" हूं, सदैव दयालु हैं। आप सिखों की ओर नहीं देखते, अपनी अनुकंपा की ओर देखते हैं। आपका हृदय उत्तम है। आप इस नाचीज़ कन्या की खातिर कृपा करके मेरे घर में आए हैं, मैं आपके कोमल हृदय को सत्संग के प्यार से किस तरह रिक्त समझूं। वाहिगुरू हम सब पर कृपा करें। गुरू की ओर मन लगाने से सम्मुख हो जाता है। धन्य है गुरू जिसने आपको मेरी ओर आकृष्ट किया है।

सतगुरू जी को कोई ताला नही लगा हुआ, वह द्वार के भीतर बंद भी नहीं है उसके द्वार पर कोई पहरेदार भी रोकने वाला नहीं है। "कबीर जिह दर आवत जातिअहु हटके नाही कोइ।। सो दर कैसे छोड़ीऐ जो दरु ऐसा होइ।।" फिर कन्या को प्यार करके दोनों चल दिए।

दो पहाड़ियों के बीच बह रही नदी के आगे यदि कोई टीला गिर पड़े तो पानी का प्रवाह रुक जाता है और आगे का नदी का भाग सूख जाता है, पर एक दिन ऐसा भी आता है जब यह इकट्ठा होकर टीले को बहाकर ले जाता है और फिर नदी बाढ़ बनकर और किनारे तोड़ कर बहती है। जसवंत की भी वही दशा हुई दिल के आगे से पत्थर बह गया तो प्यार का प्रवाह तेज़ी से बहने लगा और पदार्थों की ओर से वेराग का वेग चढ़ आया। उस धर्म पुंज के चरणों में पहुंचकर तथा क्षमा मांगने और आगे ईश्वर आज्ञा में चलने की इच्छा प्रबल हो गई। यह इच्छा इतनी प्रबल हुई कि जगत से चित्त क्षुब्ध हो गया और आपा न्योछावर करने को तैयार हो गया।

: ५ :

आनन्दपुर में आज आनन्द है, दीवान हो रहा है, सतगुरू जी सृष्टि का उद्धार कर रहे हैं। गुरदासपुर की संगत तनिक देर से पहुंची है, पर समाप्ति से पहले पहुंच गई थी।[१]

अब दीवान में पहले तो आगे-आगे वह कन्या थी और पीछे जसवंत राव अपनी पत्नी सहित चल रहा था। उनके पीछे सारी संगत थी और सबसे पीछे भाई देऊ था उसकी धर्म पत्नी थी। जब ये सारे श्री गुरू जी के आगे सिर झुका चुके, तब कन्या ने बड़े चाव से पाला हुआ चकोतरा चरणों में रखा। ग़रीब निवाज़ सतगुरू जी ने भोली बालिका को गोदी में लेकर कहा, "मेरी बच्ची!" कन्या ने सिर झुका दिया और जसवंत राव ने जरीं बादले का चोग़ा उतारकर गुरू जी के चरणों में रख दिया। उसने नीचे खद्दर के कपड़े पहन रखे थे। उसकी पत्नी ने तो पहले से ही खद्दर पहन रखा था। जसवंत ने कुछ मुहरें आगे रखीं और चरणों से लिपट गया। सारे लोग उपस्थित देख रहे थे कि दंपत्ति के सुरीले कण्ठ में से एक वैराग्य भरा स्वर निकला। स्वर क्या था कि उसने सारे वायु मण्डल में वैराग की थर्राहट पैदा कर दी-

जिउ जानउ तिउ राखु हरि प्रभ तेरिआ॥
केते गनउ असंख अवगण मेरिआ॥
असंख अवगण खते फेरे नित प्रति सद भूलीऐ॥
मोह मगन बिकराल माइआ तउ प्रसादी घूलीए॥
लूक करत बिकार बिखड़े प्रभ नेर हू ते नेरिआ॥
बिनवंत नानक दइआ धारहु काढि भवजल फेरिआ॥ [जैः छः मः ५]

ऐश्वर्य में आना, सर्वस्व अर्पण करके चरणों में रखकर वैराग करना, बड़ा ही दर्दनाक दृश्य था। श्रावण की वर्षा की भांति बलिदान की भावना सारे नेत्रों में से झड़ी लगवा रही थी। सतगुरू जी ने उस समय कहा-

सगल मनोरथ प्रभ ते पाए कंठि लाए गुर राखे॥
संसार सागर महि जलनि न दीने किनै न दुतरु भाखे॥
जिनि कै मनि साचा बिस्वास॥
पेखि पेखि सुआमी की सोभा॥
आनंदु सदा उलासु॥ रहाउ॥
चरन सरनि पूरन परमेसुर अंतरजामी साखिओ॥
जानि बुझि अपना कीओ नानक
भगतन का अंकुरु राखिओ॥२॥२॥२६॥ [धनासरी महला ५]

१. यह वह सप्तमी थी, जिस दिन गुलाबियों का उद्धार हुआ था।

गुरू जी के ये वाक्य कीर्तन करने वाले सिंहों ने कीर्तन के रूप में गाने शुरू कर दिये।

अब जसवंत की पत्नी ने गायन किया–

"सतिगुरु बचन तुमारे॥
निरगुन निसतारे॥"

सारी संगत ने भी सहगान के रूप में यही गाना शुरू कर दिया–

सतिगुरु बचन तुमारे॥ निरगुन निसतारे॥१॥रहाउ॥
महा बिखादी दुसटु अपवादी ते पुनीत संगारे॥१॥
जनम भवंते नरिक पडंते तिनके कुल उधारे॥२॥
कोए न जानै कोए न मानै से परगटु हरि दुआरे॥३॥
कवन उपमा देउ कवन वडाई॥
नानक खिनु खिनु वारे॥४॥१॥१४१॥ [आसा म: ५]

कैसा प्यार का बलिदान है, आपा न्योछावर करने का समय है। एक राजसी अमीर आदमी ग़रीबी के भेस में होकर सर्वस्व आगे रखकर बैठा है, पीछे की चिंता समाप्त कर आया है। उस दिन का अनुमान लगाइए, जो इस तरह संसार से टूट गया है और अब या तो गुरू जी हैं, या यह शरीर है अथवा आज्ञा की प्रतीक्षा है। जिसने पीढ़ियों का एकत्रित धन प्यारे दाता जी के आगे भेंट कर दिया है, जिसने साथ अपना शरीर भी अर्पण कर दिया है। हां जिसने–"तन धन सउपिआ गुर कउ सिर बी दीआ नालि।" यह संन्यास है, इसे त्याग कहते हैं, जो कुछ था, वह गुरू को अर्पण कर दिया। इसलिए नहीं कि काम नहीं होता, पर इसलिए कि अब अपने पराए की दूरी नहीं रही। अब परायापन नहीं रहा अब तो सब कुछ गुरू का ही दिखाई देता है। वृक्ष की शाखा को वृक्ष का शेष भाग अपने आप से अलग नहीं दीखता। यह है ब्रह्मज्ञान। अहं की सारी परत टूट गयी है। अब धन को कैसे छिपाकर रखे? किससे अलग रखे? किसको न दे? 'गुरु समुंद नदी सभि सिखी' के महावाक्य के अनुसार अहं के पर्वतों पर से गिरता हुआ, अहं के मैदानों में से गुज़रकर पारदर्शक माया के रेतस्थल को लांघकर गुरू रूपी समुद्र उठ सब कुछ को क्या-क्या बना देता है? संसार की भलाई में इसे व्यय कर देता है। वह तो मानो परोपकार का समुद्र ही है।[१] हां, उसका स्वरुप ही दान है। नदियां उस समुद्र में मिल रही है, वह उसके जल को बादल का रूप देकर आकाश पर चढ़ा रहा है, ताकि वे अनुकंपा बनकर बरसें और जगत सुखी हो।

❑ ❑

१. आज सबने अमृतपान किया। जसवंत, कुलवंत सिंह बन गया। उसकी पत्नी कुलवंत कौर बनी, देऊ जी, देवा सिंह बनकर चमकौर के रास्ते रात के समय शहीद हुए। उनकी पत्नी सिंहनी बनी, जिसका सिंह वंश चला।

२९ भाई फेरू–सच दाढ़ी

सातवें गुरू जी ने देहावसान के पश्चात् आठवें सतगुरू जी के गुरू की गद्दी पर विराजमान होने के कुछ समय बाद दिल्ली चले गए और वे भी थोड़े समय के बादी परलोक गमन कर गए। नवें सतगुरू जी काफी समय असम आदि इलाकों में घूमते रहे। दशम सतगुरू जी गद्दी पर विराजमान होते ही भारी कामों में व्यस्त हो गए। इधर संगतों में जो मसंद थे, वे कहीं-कहीं अपने कर्त्तव्यों को भूल गए। वास्तव में मसंद उस सिख को कहते थे जो उच्च जीवन वाला तथा भजन बंदगी वाला होता था। ऐसे सिख को परोपकार के कारण संगत में 'मसनद' पर बिठाया जाता था। ऐसा सिख अपना जीवन गुरू को अर्पण करता था। यदि यह अकेला होता तो अपनी जायदाद नहीं बनाता था और यदि परिवार वाला होता तो मान-मर्यादा से अपनी आजीविका चला लिया करता। कर्मों के सच्चे, आदर्श जीवन वाले, नाम के रसिक तथा नाम के दाता गुरुमुख के पद पर पहुंच चुके मसंद हुआ करते थे। संगतों की ओर से दान में दिया गया आय का दसवां भाग इन मसंदों के पास इकट्ठा होता था और ये लोग उस धन को गुरू जी के पास पहुंचाया करते थे। पर दशम गुरू जी के समय तक बहुत से पुराने मसंद मर चुके थे। कुछ गुहस्थी मसंद धनवान तथा लोभी हो गए और कइयों ने गुरू से विमुख होकर अपने-आपको गुरू स्थापित करके संगतों को दुःख देने शुरू कर दिए। इसीलिए कल्गीधर जी ने मसंद संप्रदाय बंद कर दिया। सिखों की आय के दसवें भाग को मसंदों ने 'दण्ड तथा कर' का रूप दे दिया था, सतगुरू जी ने 'दण्ड' का उसका स्वरूप तोड़ दिया और उसे प्रेम में बदल दिया। उस समय भी मसंदों में कुछ अच्छे सिदक वाले प्रेमी लोग थे। सतगुरू जी ने जब कभी भी कुछ मसंदों को बुलाया, वे न आए, फिर आज्ञा की कि उन्हें पकड़कर लाया जाए। इनमें से जो कुछ सच्चे थे उन्हें वरदान प्राप्त हुए। इनमें से एक की कथा इस प्रकार है:–

भाई फेरू इस समय नक्के देश का मसंद था। पहली बार बुलाने पर यह नहीं आया, क्योंकि संदेश इस तक पहुंचा ही नहीं था। दूसरी बार संदेश सुनते ही जिस दशा में था, उसी दशा में चल पड़ा। ले जाने वाले सिख तो इसका सत्कार करते पर फेरू कहता कि उसके हाथ बांधकर और दाढ़ी को पकड़कर

ले जाया जाए। सिखों का तो ऐसा करने का साहस न हुआ परन्तु फेरू जी स्वयं इसी तरह अपनी दाढ़ी को पकड़कर सारा रास्ता चले। जब श्री कल्ग़ीधर जी के दरबार में उपस्थित हुए, तो उसी तरह खड़े रहे। आप पर भी यह आरोप था कि आपने भी कई वर्षों से संगत के दसबंध (दसवें भाग) को दबा रखा है। सतगुरू जी ने फेरू की ओर प्रेम दृष्टि डाली, उसे देखा, फिर देखा, फिर नेत्र मुंद गए, एक क्षण के बाद जब नेत्र खोले तो उठकर फेरू को गले से लगा लिया और कहा, तू तो सब कुछ भेजता रहा है और मुझे सब कुछ मिलता रहा है, तुझे कौन पकड़कर लाया है? तू फेरू नहीं, तू तो 'भाई फेरू सच दाढ़ी है।'

किसी ने धीमे स्वर में कहा, "पातशाह! इनकी ओर से तो कुछ भी नहीं आया।" सतगुरू जी ने कहा, "इनकी ओर से धन सीधा मेरे पास आता रहा है।"

फिर सतगुरू जी ने संगत को बताया कि "यह व्यक्ति सारा धन भले कामों में लगाता रहा है और स्वयं केवल लंगर से भोजन ही करता रहा है। मैंने एक दिन इसे कहा था कि साधु संगत का मुंह भी गुरू की गोलक है। यह सच्चा पुत्र इसी बात पर अमल करता रहा है।"

भाई फेरू जी बड़े भजनीक, महान त्यागी तथा सतगुरू जी के प्रेमी हुए हैं। ये साधु संगत में गुरू को देखते थे। आप कवि भी थे, पर शोक है कि इनकी कोई भी रचना अब नहीं मिलती। कुछ एक छंत हमें मिले हैं, जो नीचे दिए जाते हैं। अनुमान है कि ये छंत भाई फेरू सच दाढ़ी जी की ही रचना है। कल्ग़ीधर जी ने स्वयं इनके सिर पर पगड़ी बांधकर इन्हें 'सच्ची दाढ़ी' का वरदान दिया। वरदान प्राप्त करके आप दक्षिण देश में अपने ठिकाने पर ही रहे। इनके मन में नाम की ज्योति जलती रही और हज़ारों जीव सिख धर्म रूपी जहाज़ पर चढ़कर पार हो गए। सतगुरू जी की सेवा तथा प्यार इन्होंने अंत तक निभाया।

आप की रचना–राग शाम कल्याण

साडे सजणां जी सानू तेरी मणी।
निमाणियां दा माण तू सुणीवें साडी भी तांघ तणी।
तैं जेहा सानू होर न कोई असी
ढ़डी वणी वणी (वन वन में)।
फेरू जान सजन तो वारी,
वारी तां भली बणी।

राग कानड़ा—

माए नी मेरा कउण कत्ते हुण (अब) पूणीआ।
सुध बिसरी मेरी मत बउरानी प्रीतम प्रेम झंझूणीआं।
नेहुं लगा लग टुटदा नाहीं, शहु बाझों गला ऊणीआं (रिक्त)
फेरू जीउंदिआं नेहुं विसरे नाही मुइआ दूण चउणीआं (चौगुणी)।

राग सूही ललित—

शहु दीआ रजाईं (आज्ञा) मन वे अड़िआ।
दर्दवंदा दे दर ते धुएं धुखण संझ (सायं) सबाहीं (सवेरे) वे अड़िआ।
डरदा रहीं तू जब लग जीवें ओह भाणे दा साईं वे अड़िआ।
याद करीं इक पल न विसारीं कदे ना कंड (पीठ) वलाई (मोड़ना) वे अड़िआ।
फेरू हासल (प्राप्त) थीआ लोड़ें (चाहें) तां मूल न कढें आहीं वे अड़िआ।

राग सूही—

सजण सद बूलाइआं वे अड़िआ।
चल फेरू सदे (बुलावा) नी आए इशक ने बंन कलाईयां वे अड़िआ।
की जाणा की नाल मैं होसी (होगा) जो होसी सुख साईआं वे अड़िआ।
मेहरां ते तकीए (आश्रय) जिन्हां ने लाए कर्मां दीआं काणांचुकाइयां वे अड़िआ।
शहु दे अंगणे (आंगन) हस हस जाइए सूली ते पैर टिकाइयां वे अड़िआ।[१]

❑ ❑

---

१. कवि भाई फेरू की पंजाबी रचना को उसी रूप में देवनागरी लिपि में प्रस्तुत किया गया है।

३० बजरूड़ का उद्धार

सतलुज से पार बजरूड़ नामक एक गांव था। इस गांव के अन्दर एक छोटी-सी गढ़ी थी। गूजर तथा रंघड़ जाति के लोग इस गांव में रहते थे और लूटमार किया करते थे। यह गढ़ी इन्हें इस काम के लिए काफी सहायता देती थी। जब कभी कोई एकाध गांव मिलकर इनसे कोई बदला लेने के लिए चढ़कर आ जाता, तब ये गढ़ी में बागी होकर युद्ध मचाया करते और गढ़ी के ऊपर से दूर-दूर तक तोपों की मार किया करते। इन्होंने एक बार सिखों की एक संगत को भी लूटा। लूट जाने के बाद जब सिख आनन्दपुर पहुंचे और वहां पर गुरू जी को पता चला तो आपने दो-तीन दिन तक कुछ नहीं कहा। फिर अचानक चढ़ाई कर दी और अब के पैदल खालसा साथ ले लिया। नोह गांव पर तो घुड़सवार सेना चढ़कर गई, पर बजरूड़ पर पैदल। मानों यहां पर पैदल खालसा की शूरवीरता की परीक्षा थी। जब नदी पार जाकर डेरा डाला तो पंक्ति बनाकर बजरूड़ की ओर झुके। लुटेरों ने देखा कि खालसा आ गया है और उन्हें दण्ड देने के लिए आया है। शीघ्रता से तोपें लेकर घरों के ऊपर चढ़ गए और ऊपर से ही लगे मार करने। इनका उद्देश्य यह था कि सिंह गांव के नजदीक न आ सकें। कुछ जवान गढ़ी पर जा चढ़े और उसकी ऊंचाई से गोलियां चलाने लगे। इनकी गोली दूर-दूर तक पहुंचती थी। इसी तरह कुछ मनचले रंघड़ आगे से रुकावट डालने के लिए गांव के द्वार के बाहर आ खड़े हुए और तोपें दागने लगे। रंघड़ों का युद्ध का यह ढंग बड़ी चतुराई वाला था, पर खालसा भी कोई कम नहीं था, गढ़ी की ओर से आ रही गोली का, जहां तक संभव होता, बचाव करते और यदि गोली लग भी जाती तो डरने के स्थान पर गुस्से में आकर और गोलियां चलाते, जिनके निशाने आगे से रोकने वाले रंघड़ों पर ठीक बैठते, पर वे भी तो डटे खड़े थे। इस बराबर के युद्ध में अपने सेनापति का संकेत पाकर खालसा ने अचानक धावा बोल दिया और गढ़ी की ओर से आ रही गोली की तनिक भी परवाह न की। जिसे गोली लगी वह गिर गया, शेष आगे बढ़ते चले गए और इस तरह शत्रु के सिर पर पहुंचकर हाथों हाथ घमासान युद्ध मचा दिया। इसे सहन न करते हुए रंघड़ गूजरों के घरों में जा घुसे और कुछ गढ़ी में जा घुसे। अब सिंहों ने उनके निशाने बांधे और इस तरह गढ़ी के पास पहुंच गए। इस तरह चार घड़ी घमासान युद्ध हुआ। जब सिंह गढ़ी के द्वार पर जा पहुंचे और लगे

दरवाज़े को उड़ाने, तो गढ़ी के भीतर शत्रु ने समझ लिया कि सिख गढ़ी के भीतर घुस आयेंगे और सबको कत्ल कर देंगे। तब उन्होंने ऊपर से ही सन्धि का झण्डा फहरा दिया और गोली चलाना बंद कर दिया। खालसे ने भी अब गोलाबारी बंद कर दी। फिर गढ़ी में से सबको निकालकर गुरू जी के आगे प्रस्तुत किया। आपने आज्ञा की कि सारे शस्त्र एक जगह इकट्ठे कर दो और अपने हाथों से गढ़ी को गिरा दो और लूटमार का माल वापिस कर दो और आगे के लिए कानों को हाथ लगाओ। यदि फिर कभी ऐसा काम किया तो इससे भी अधिक दण्ड दिया जाएगा। रंघड़ों ने सब कुछ मान लिया। अतः इस प्रकार ज़ालिम लुटेरों के गांव पर विजय प्राप्त करके खालसा का पैदल दल आनन्दपुर वापिस आ गया।

इस तरह की खालसा की विजयों से उसका रोब सब ओर छा गया। संगतें अब बिना किसी कष्ट के आने-जाने लगी थीं। आसपास की कमजोर प्रजा भी सुख से रहने लगी थी। इस तरह के जो युद्ध थे, वे कर्म के लिए थे। खालसा प्रजा के लिए न्याय तथा सुख के लिए कार्य कर रहा था।

❑ ❑

३१ कल्ग़ी वाले का आदेश

एक दिन एक प्रेमी कल्ग़ी वाले के पास अतलस का एक सुन्दर जोड़ा लाया। गुरू जी उसे पहनकर केशगढ़ को जा रहे थे। रास्ते में नन्द सिंह नामक उनका एक प्यारा सिख गारे से दीवारें लीप रहा था। गारे की एक छींट उनके अतलस के कपड़ों पर पड़ी। मानो वह गुरू जी को स्पर्श करने की इच्छुक थी। आपने साथियों की ओर देखा स्वाभाविक ही कहा, 'इसे एक चापत मारो'। सुनकर आज्ञा का पालन किया गया। सभी ने सिख को एक-एक चापत मारी। उसने गुरू जी का शुक्र किया और कहा, "मुझे याद किया है, यदि गुरू झिड़कता भी है तो वह भी मीठा ही लगता है और यदि वह क्षमा कर देता है तो भी हमारा उसी पर मान है। दोनों बातों में गुरू जी के हृदय में मेरा ध्यान आया है। यदि गुरू को हम पापियों तथा अवगुणों से भरे हुओं की याद आ जाए। यदि गुरू जी हमारे हृदय में एक बार आकर चक्कर लगाएं, तो हमारा इस जगत में आना सफल हो और हमारे सारे अवगुण मिट जाएंगे और हृदय में प्रभु के स्मरण का ठिकाना बन जाएगा।" वह प्यारा सिख गुरू की आज्ञा में प्रसन्न था; अतः प्रसन्न हुआ। तब गुरू जी ने जो कुछ पीछे हुआ उसे देखा। आप कहने लगेः 'हम ने एक चपत की आज्ञा की थी, पर उसे एक से अधिक चपत लगी हैं, यह क्या हुआ है? तब सिखों ने कहा; गुरू जी! आपकी आज्ञा हुई और जिस जिसने सुनी उसने उसे पूरा किया। हम तो आपकी आज्ञा को मानने वाले हैं, जो आज्ञा होती है, उसी का पालन करते हैं। सतगुरू जी! हमें, यही वरदान दीजिए कि हम आपकी आज्ञा से मुंह न मोड़ें।"

तब गुरू जी ने कहा, "मेरी आज्ञा है कि इसे कोई अपनी बेटी दे दे। यदि गुरू की आज्ञा को मानोगे, तो तुम्हारी परीक्षा पूरी होगी।" यह सुनकर सारे चुप हो गए मुंह पीले पड़ गए, लाज के मारे सोच में पड़ गए। ये सारे नए सिख थे, इनकी नई परीक्षा थी और ये सारे दूर से आए थे। इन्होंने कानों से 'हुक्म-हुक्म' तो सुना था पर उसे पूरा करना नहीं सीखा था। इन्हें यह पता नहीं था कि आज्ञा का पालन कितना कड़वा और कितना मीठा है। सारे सोच में पड़े थे और सबके मुंह नीचे ही रहे थे। इतने में एक प्यारा कंधारी सिख अजब सिंह आ गया। जो कौतुक वहां पर हुआ था और जो आज्ञा सतगुरू जी ने की थी, उसने उसे सुना

और गुरू जी के चरणों पर झुक गया गुरू का पल्ला पकड़ लिया और कहा, "हे चोज़ी! कौतुकी, पावन करने वाले! मैं तेरा हूं, मेरा सर्वस्व तेरा है; तेरे सिख प्यारे हैं। यदि कुछ अपना हो, तो उसे हम अपना कहें, पर जो कुछ है, वह तेरा ही है, हमारी तो 'मैं' भी अपनी नहीं है, 'मैं' भी तेरी है और सब कुछ तेरा है। सतगुरू स्वामी जी! आप विवाह कार्य शुरू करवाइए अपने लिखे लेख आप पढ़िए। आपने ही जो लेख लिखे हैं, उन्हें अब साकार कीजिए। हे प्यारे! जैसे आपकी इच्छा हो, हमसे उसका पालन करवाओ। "हमारी "मैं" आपकी बन जाए; फिर बीच में "मैं" अपना आप न दिखाए।" सिख की प्यारी वाणी तथा सिदक भरे बोल सुनकर, सतगुरू जी के नैन भर आए और आंसू रूपी मोती लुढ़क पड़े, जो कि हीरों से भी मंहगे थे। गुरू जी ने उसे गले से लगाया और कहा, "सिख धन्य हैं, प्यारे सिख! हे परमेश्वर के संवारे हुए! तेरा प्रभु के स्वरूप में निवास हुआ है। तेरी बेटी हमारी बेटी है, ईश्वर ने यह वर स्वयं इसके लिए भेजा है। अब हम इसका विवाह करेंगे और सारे लोग इसे देखेंगे।" गुरू जी उन ही कदमों पर अपने डेरे पर लौट आए। उसी समय दीवान लगाने की आज्ञा हुई अजब सिंह की पुत्री को गुरू जी ने अपनी गोद में ले लिया और माता जी ने भी उसको बेटी कहा और दीवान में ले आईं। सतगुरू जी ने विवाह कार्य का आयोजन किया और स्वयं बेटी का विवाह किया। विवाह हो गया, खुशी हो गई और एक बड़ी बधाई की बात यह हुई कि इसको गुरू की खुशी की महान देन प्राप्त हुई नन्द सिंह का विवाह हो गया, घर-घर में बधाई हुई। गुरू जी की कीर्ति चारों ओर फैली। गुरू गोसाईं बड़े ही चोज़ी हैं। अजब सिंह पूर्ण पद पर पहुंच गया वह जीवित मुक्त हो गया।

❑ ❑

३२ लाहौरा सिंह की शुद्धि

एक ओर वीर रसी युद्ध हो रहे थे, दूसरी ओर धर्म प्रचार हो रहा था। दोनों रंगों की नींव इखलाक तथा सदाचार पर रखी हुई थी। झूठ, असत्य, फरेब, कुसंग, ज्यादती, आचरण हीनता वाली सारी बात से ऊंचा रखते हुए स्वच्छ सदाचार में खालसे की नींव रखी जा रही थी। इसकी एक बानगी इस प्रकार है–

भादों का महीना था। रात को ठण्डी हवा चल पड़ी। साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी छत पर विराज रहे थे कि साथ वाले मकान की छत से झगड़े की कुछ आवाज़ आई। यह एक सिंह का घर था, जिसका नाम लाहौरा सिंह था। यह गुरू साहब के साहबज़ादों की देखभाल करता था। उसके पास ही माला सिंह का घर था। माला सिंह व्यापारी था और साहूकारे का काम करता था। ज़रूरत पड़ने पर लाहौरा सिंह ने माला सिंह से ऋण ले लिया। माला सिंह सहनशील तथा नेक स्वभाव वाला व्यक्ति था। उसने सख्ती नहीं की। कुछ समय के बाद माला सिंह को व्यापार में कुछ टोटा आ गया। धीरे-धीरे खाने-पीने की भी तंगी हो गई। तब उसने लाहौरा सिंह से अपने रुपये मांगे, पर उसने मज़ाक में टाल दिया। आज रात माला सिंह उसके घर गया और अपने रुपये मांगे। पर लाहौरा सिंह ने न देने के लिए मुँह चिढ़ाकर कहा, 'सिख सिख का खाइ कर चिंता करीअहि दूर। फिर ठहरकर बोला, "खाणा पीणा हसणा गुरु दीआ भुगताए।" जब माला सिंह ने अपनी ग़रीब दशा बताई, तो लाहौरा सिंह कहने लगा, "जैसा जिसका लेख है तैसी बिधि बनि आए।" माला सिंह ने कहा, 'भाई', दरगहि होन सजाइआ झूठे अमल जिनाह। जम मारा गहि मारीऐ रोए रोए पछुताइ।" यह सुनकर लाहौरा सिंह बोला, "लेखा कोई न पुछई जा गुरु बखसंदा।"[1]

गुरू जी सब कुछ सुन रहे थ। जब अपनी बदइख़लाकी तथा पाप कर्म की प्रौढ़ता के लिए लाहौरा सिंह ने गुरुवाणी की पंक्ति पढ़ी तो सदाचार के सरदार जी ने ऊंचे स्वर में यह पंक्ति पढ़ी–

---

१. पहली पंक्तियां सौ साखी में से ली गई हैं, पर यह पंक्ति गुरुवाणी की हैं। शुद्ध पाठ इस प्रकार है–लेखा कोइ न पुछई जा हरि बखसंदा।। [मारु वार म: ५]

हक पराइआ नानका उसु सुअर उसु गाइ।
गुरू पीरू हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ॥

पहली पंक्ति जो लाहौरा सिंह ने कही थी सिख सिख दा खाइ कर चिंता करीऐ दूर–उसे रद्द करने के लिए गुरू जी दूसरी पंक्ति ऊंचे स्वर में कही,

"खावै खुआइ न द्रोह करि रहीऐ बंद हजूर"।

फिर जो उसने दूसरी पंक्ति कही थी–

"खाणा पीणा हंसणा गुरु दीआ भुगताए" इस पर गुरू जी ने झिड़की भरे स्वर में यह पंक्ति कही; "जैसा करम करता करे तैसा गुर भुगताए।" गुरू जी के वाक्यों को सुनकर लाहौरा सिंह कांप गया और नम्रता धारण करके माला सिंह से कहने लगा–सिंह जी! क्षमा करना, मैं कल आपका धन लौटा दूंगा, मैं तो आपसे मज़ाक कर रहा था। सुबह होते ही लाहौरा सिंह रुपये लेकर माला सिंह के घर चला गया और हाथ जोड़कर कर्ज़ा उतार दिया। फिर तैयार होकर गुरु के दरबार में गया। श्री गुरू जी के आगे माथा टेककर यह कविता पढ़ी–

गुर ते विछुड़िआ सिख लोभी काम कहु॥
बखशै गुर बखशिंद मेल छाउ रोह।
औगुनहारे नीतु चलैं नहीं साच मग।
लंपट भए कुटंब, न मिथिआ लख्यो जग।

तब गुरू जी बोले–

काम क्रोध मद लोह ते करो नहीं अपराध।
रिदा सरल बिन कपट ते, पंथ चलहि इहि साध।

फिर गुरू जी ने संगत की ओर देखकर सर्व खालसे को उपदेश दिया। कवि संतोख सिंह जी उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं–

सिख होए किस करज न लेवै।
जेकर लेय भाव कर देवै।
सुनै न झूठ न मुख ते कहै।
संग झूठ के प्रीत न गहै।
सतिसंगी हुए साच कमावै।
संग साच के प्रीति वधावै।
सच उर धरे म्रिजादा साची।
छल बिन होवै साच उबाची।

इस प्रकार उपदेश दृढ़ करवाकर गुरू जी ने सर्व खालसे को उच्च जीवन का उपदेश दिया। जब संगतों को पता चला कि माला सिंह का धन लाहौरा सिंह

ने दबा रखा था और फिर अपने पाप कर्म के लिए गुरवाणी की पंक्ति का प्रयोग किया था और जब सतगुरू जी ने लाहौरा सिंह में सदाचार की यह कमजोरी तथा भूल करके गुरुवाणी के वाक्य बोलने का साहस किया तो उस समय छत पर से ही आप बोले। सब ने गुरू जी के गरीबों को सम्मानित करने के गुण तथा सदाचार के प्यार को देखकर प्रसन्नता दिखाई। सभी कहने लगे कि गुरू जी धन्य हैं जो इतने भारी कामों में व्यस्त होते हुए भी अपने सिखों के निजी मामलों में आ रही इखलाकी कमजोरियों को दूर करने की चिंता भी करते हैं।

❑ ❑

३३ भाई हरवंत सिंह

प्रसन्न कौर (बंदी गृह में पड़ी गायन कर रही है)

कल्ग़ी वाले की आस तकाई,
डोरी सतगुर नाल लगाई।
मेरी सतगुर! आस पुजाई,
दासी सनमुख सदा रहाईं।
हाय! पीय बी बंदी पए हैं,
मिलकें बैठन दे देहुं गए हैं।
पर न थाऊं निरास्यां होवन दी।
नहीं विलपन, कुढ़न ते रोवन दी।
दिल मिले, जो मिले मिल रहे है।
विथ ओथे न कोई पर है।
देही 'मेल' 'वियोग' जु हुंदा,
'देश काल' खेल है संदा।
देही देश ते विथां पसारे,
कौतुकहार दे हन चमकारे।
ठदा देश अनंदी सदांदा,
जिथे मेला ही मेला रहांदा।

नाहरू--(छिपकर सुनता है और फिर सामने आकर कहता है)

घिउ डुला बोशमँ दा आखे 'रूखी खाउं'।
माण करे 'मैं खुशी हां' अजब खुशी दा थाउं।
अजे वकत ए, सुहणीए! मंन, मना निज कंत।
सिर ते धुंमर पा रिहा काल, करे जो अंत।
प्रसन्न कौर-जेठा! रब सवारिया कर जो तैनू भाए।
धी (बेटी) पराई मार लै, वीर न सका घाए।

नाहरू–

भाभी! कहर ते लक क्यों बंन्या ई।
आपणे आप दी बैरने! हठ छड़ीं।
दे मत तू आपणे कंत ताईं,
उसदे मगज़ विचों कीड़ा नाल कढीं।
सिखी नवीं जो तुसां ने सिख लीती,
हृदय आपणे डूंगड़ी बहुत गडी।
छड दियो तां एस नू बहुत अच्छा,
नहीं जाणनी आपणी धौण (गला) वढी।

इस प्रकार कहते हुए नाहरू कुछ दूरी पर जाकर खड़ा हो गया। जिस कोठी में भाई को बंदी बनाकर रखा था वहां जाकर बोला,

तरस करीं कुझ मै ते भाई।
मेरे हथ न लहू भराई।

भाई–प्यारे भ्रात! आपने जो कुछ समझा है, वह ठीक नहीं है। मैं मौत के डर के कारण सिख मण्डल से नहीं निकल सकता, क्योंकि सिख धर्म ने वह पर्दा दूर कर दिया है जिसके कारण जीने मरने का भय चला जाता है। सिख धर्म ने ऐसा प्रकाश भेजा है, जिसने मौत को आत्म जन्म करके दिखा दिया है। मौत कुछ नहीं। धरती पर फिरते एक शूक कीड़े को पंख लग जाते हैं और वह फूलों का आनन्द लेने लगता है। शरीर की मौत से पहले हम एक और मौत का स्वाद चख चुके हैं, अब हम मौत से परिचत हो चुके हैं, नहीं, नहीं, बल्कि उसी की गोदी में खेलते हैं। जिस मौत को तुमने अपने बस में समझ रखा है, वह तुम्हारे पापों की गठड़ी को और अधिक भारी करने का सामर्थ्य रखती है, वह मौत हमारा तो बाल भी बांका नही कर सकती। मैं यह नहीं कहता कि मेरे पर और मेरी पत्नी पर कृपा कर, मैं कहता हूं कि अपनी आत्मा पर आप कृपा कर।

नाहरू–एक ही माता पिता से उत्पन्न हम दोनों सगे भाई हैं और यह अत्याचार है कि मैं तो मोमिनों की संगति करूं और तू सिख धर्म में जा घुसे।

हरवंत सिंह–मोमिनताई!!! हैं, देख मोमिनताई ही तुझे भाइयों का खून करने के कार्य तक ले गई है। तनिक मन में झांककर देखें। (एक क्षण ठहरकर) जी! कर्म में जबर्दस्ती धक्का करना मोमिनताई नहीं है। जो धर्म तुझे अच्छा लगे तू उसे धारण कर, जो मुझे अच्छा लगेगा, मैं उसे धारण करूंगा।

नाहरू–बहस को छोड़िए, हां या न बताइए।

हरवंत सिंह–हां तो यह है कि मेरा सिख धर्म अंत तक पूरा निभ जाए, हां ज़रूर ही निभ जाए और न है नियम से छूटने की। मुझे नियम से मौत भी न हटा सके।

नाहरू–वाह, वाह!

वाह, वाह कहता हुआ और होठों को काटना हुआ नीचे उतर गया। अपने मन से कहता है कि क्या करूं। भाई तो लोहे का बन गया है भाभी वज्र बन गई है अब यदि इन्हें मारता हूं तो सारे जगत में बदनामी होगी; और यदि छोड़ दूं तो बात खत्म हो जाती है, फिर भी बदनामी होगी, क्या करूं?

यह क़ैदखाना कोई कारावास नहीं था, अपने घर की हवेली की ऊपर वाली अटारी थी। हरवंत सिंह तथा नाहरू दोनों एक बड़े मालदार ज़िमींदार के पुत्र थे, जो पक्का सरवर का चेला था। उसके सरवर जीवन का असर नाहरू पर बाप से भी अधिक पड़ा। पर छोटा पुत्र सिख धर्म का अनुयायी बन गया और वह सिंह सज गया। सारे परिवार को यह बात बुरी लगती थी, पर नाहरू को इतना अधिक गुस्सा था कि वह मारने को तैयार हो गया। इसने छल द्वारा अपने भाई तथा भाभी को अलग-अलग कोठरियों में क़ैद कर दिया और उन्हें कष्ट देने शुरू कर दिए। पर इन कष्टों के कारण हरवंत सिंह तथा प्रसन्न कौर घबराए नहीं और अपने निश्चय में पक्के रहे।

ममता की मारी मां के लिए बहुत मुश्किल थी। मन में तो सरवर का प्रवाह चलता था और बड़े पुत्र का साथ देता था, पर ममता के आकर्षण के कारण अपने दूसरे जिगर के टुकड़े के दुख तथा कष्ट को भी सहन नहीं कर सकती थी। यदि वह बड़े पुत्र की सहायता करती तो छोटे पुत्र पर ज़ुल्म होता था और यदि छोटे पुत्र की सहायता करती, तो बड़ा पुत्र नाराज़ होता था, मां दोनों ओर से द्विविधा में थी।

वाहिगुरू के प्यारे, आशा में निराशा रहने वाले उत्साही बने रहे हैं। आज रात होते ही नाहरू शराब पीकर बेसुध हो गया। एक सेविका ने सिंह जी को जा बताया और सिंह ने अब खड़खड़ाहट से निश्चिंत होकर अपने बलवान हाथों से दरवाजा तोड़ डाला। बाहर निकलकर सिंहनी के द्वार आए। एक ईंट मारकर ताला तोड़ दिया। साथिन को साथ लेकर नीचे उतरे। आगे चबूतरे पर बैठी मां रो रही थी। पुत्र को स्वतन्त्र देखकर बोली:–

शुक्र है! हैं शुक्र! मैं बलिहारी, कैसे बाहर निकले?

पुत्र–मां जी, दरवाज़ा तोड़कर।

मां–इसीलिए खड़खड़ाहट हो रही थी। अब क्या सलाह है?

पुत्र–ईश्वर की धरती विशाल है और बंदी के पैर खुले हैं।

मां–हाय कैसे बिछड़ूं? पर जाओ। प्राण बच जाएं, जैसे भी बचें। लाल जी! आओ मैं पिछला दरवाज़ा खोल दूं। नाहरू लाल इस समय बेसुध पड़ा है। कुछ मोहरें और शस्त्र ले जाओ, खाली हाथ न जाओ।

पुत्र—सब तुम्हारी कृपा है, मेरे अपने शस्त्र मुझे दे दीजिए। मोहरें मेरे कल्ग़ी वाले के पास बहुत हैं।

प्रसन्न कौर—प्रिय जी! यदि आज्ञा हो तो मैं वह भेंट प्रसाद ले लूं।

सिंह जी—ठीक है, ले लो।

यों कहते झटपट कुछ शस्त्र, दो लोइयां, भेंट तथा माता जी की ज़बर्दस्ती दी हुई मोहरें ले लीं। नीचे घुड़साल में से घोड़े ले लिए। रकाबों में पैर रखा और माता को शीश झुकाकर हवा हो गए।

पूर्णिमा की रात है, पूर्णिमा भी वह जिसे नौ चन्द्रमाओं और हज़ारों सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान चन्द्रमा गुरू नानक देव ने सौभाग्यवान किया था। हां श्री गुरू नानक देव जी के अवतार वाली पूर्णिमा की यह रात थी। कार्तिक का महीना था, ऋतु गुलाबी, सुहावनी बहार, मीठी-मीठी ठण्ड, प्यारा प्यारा पवन, ओस से भीगी वनस्पति, एक रस पड़ रही चांदनी, इस चांदनी में दम्पत्ति सरपट घोड़े दौड़ाते चले जा रहे हैं। इस तरह की चाल चलते घोड़ों को आधी रात से भी अधिक समय गुज़र गया था। अब तक गांव आ गया—जहां पर एक धर्म स्थान है और बहुत से घर सिखों के भी हैं। परिचित पाहुने घोड़ों से उतरकर वहां पहुंचे, धर्मस्थान में गए। वास्तव में तीसरा पहर हो आया था। संगत आ रही थी, कुछ लोग नहा रहे थे, कुछ नहा चुके थे। इनके पहुंचने से बड़ी खुशी हुई, सिंह इन्हें पहचानते थे, देखकर निहाल हो गए, घोड़े पकड़ लिए। आपके कष्टों की खबर सुन चुके थे, अचानक भाई को सही सलामत अपने में देखकर जामे में न समाए आलिंगन करके गले मिले। सभी ने सिंहनी के हाथ जोड़कर फतेह बुलाई। दोनों को दूसरी ओर ले जाकर आराम करवाया, गर्म दूध पिलाया और थोड़ी सी गर्मी देकर उन्हें सो जाने को कहा। पर थकान को न मानने वाले; प्रेम में रंगे रहने वाले, हमेशा उत्साह में खेलने वाले सिंह जी दीवान में जा विराजे। भाई साहब बचपन में अमृत राय कवि से शिक्षा प्राप्त करते थे, बाद में सिंह सज गये थे और शिक्षा के मूल का पता चल गया था और समझ आ गई थी। अतः आप थोड़े ही दिनों में पंथ में प्यारे तथा परम सत्कार योग्य हो गए थे। यहां की संगत आपके विचारों को सुनने के लिए बड़ी इच्छुक थी। संगत ने दो चार दिन के सत्संग में आपके विद्या के बल से लाभ उठाना चाहा। भाई जी भी सिख थे, सिख का धर्म है स्वयं नाम रस में अडोल रहते हुए स्वाभाविक ही दानी बने शुभ संकल्प, शुभ वाक्य तथा नाम दान प्रदान करे। भाई साहब दो चार दिन वहां ठहर गए। वहां पर रहकर बड़ी अमूल्य शिक्षा प्रदान करते रहे।

एक दिन सिख ने संगत में से प्रश्न किया कि, "परस्पर एका किस तरहा बना रहे और एका कैसा हो, जो कभी भी न टूटे?" भाई जी ने कहा, एक कायम रहना कठिन बात है। एके का उपदेश देने वाले, उपदेश लेने वाले एके की

श्लाघा करने वाले एका न होने के दुखों को भोगकर एके की खातिर चिल्लाने वाले, फिर फूट का शिकार हो जाते हैं और दुख सहन करते हैं। एका दो प्रकार का होता है, एक टूटने वाला तथा दूसरा अटूट। दोनों के दो कारण होते हैं। निम्न कोटि के लोग किसी स्वार्थ की खातिर इकट्ठे होते हैं और एका करते हैं। किसी बात को पूरा करने के लिए यत्न करते हैं। उस बात के पूरा करने से आप अपने स्वार्थ के लिए आपस में लड़ने लगते हैं। जिस तरह चोर मिलकर चोरी करते हैं। चोरी के समय तो इकट्ठे रहते हैं, पर बांटते समय आपस से लड़ पड़ते हैं। इस एके का कारण खुदग़र्जी होता है। दूसरे वे लोग हैं जो नेक काम के लिए स्वार्थ का त्याग करके इकट्ठे होते हैं। इनमें मैत्री भाव होता है और अपना स्वार्थ नहीं होता। साझे कार्य के लिए साझा बल लगाकर काम को सिरे चढ़ाते हैं, उनका निजी प्रयोजन कुछ नहीं होता। इस एके के लिए शुभ आचरण तथा धर्म की भावना की बहुत आवश्यकता होती है, क्योंकि धर्म के भाव तथा शुद्ध आचरण के बिना स्वार्थ दूर नहीं होता। ऐसे आदमी को जो काम करना होता है, उसकी कामयाबी के लिए मिलकर मेहनत करते हैं, जब कार्य पूरा हो जाता है, तो साझी खुशी मनाते हैं। देखिए! कुछ सज्जन इकट्ठे हुए और उनमें धर्म स्थान बनाने का विचार आया। किसी ने भूमि दी, किसी ने लोहा, किसी ने लकड़ी, कोई चूना ले आया, कोई ईंट, किसी ने दिहाड़ी लगा दी, किसी ने दिहाड़ी के पैसे दे दिए। साझी मेहनत से साझा काम पूरा हो गया। अब ये यदि सारे शुभ गुणों वाले हो जायं, तो सारे खुश होंगे और धर्मस्थान में शब्द कीर्तन, पंजाबी की पढ़ाई, लंगर जारी करने आदि कई प्रकार की सेवा करेंगे और अपने धन्य भाग्य समझेंगे। पर यदि भले आचरण के न हुए तो लकड़ी वाला तो यह डींग मारेगा कि यदि मैं न सहायता करता तो यह स्थान कैसे बनता? दूसरा कहेगा; ईंटें मेरी थीं लोहा तो आटे में नमक समान है। तीसरा कहेगा लोहे तथा लकड़ी को घर ले जाओ, यदि हमारी कारीगरी न होती तो मकान कैसे बनता, ईंटों के भट्टे तथा लकड़ियों के जंगल थोड़े पड़े हैं। पहले तो इस तरह का अहंकार करेगा, फिर चौधरीपन पर झगड़ा होगा। एक कहेगा धर्मस्थान का प्रबंधक मैं बनूं, दूसरा कहेगा मैं बनूं, तीसरा कहेगा मैं बनूं। फिर ये सारे अपने चौधरीपन के लिए यत्न करेंगे, इसका फल फूट ही होगा। फिर एक और मुसीबत खड़ी हो जाएगी। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहेगा कि उसकी ग़रज पूरी हो। खाती चाहेगा कि उसी फालतू लकड़ी यहां पड़ी रहा करेगी, साझा स्थान है, क्या हुआ जो मैंने यहां पर लकड़ी का ढेर लगा लिया तो? जाट कहेगा, घर में जगह थोड़ी है, रात को 'अगर मैंने पशु यहां बांध लिए तो साझे स्थान का क्या बिगड़ेगा'। बनिया कहेगा, मेरे पास भूमि नहीं है, आसामियों की ओर से जब भूसा तथा अनाज आएगा, तो

मैं उसे धर्मस्थान में ही रखवाऊंगा। कलाल कहेगा कि शराब के फालतू मटके धर्मस्थान की डयोढ़ी में पड़े रहेंगे। चौपड़, शतरंज़बाज़ कहेगा, कि यह जगह साझी है, हवादार जगह है, यहां पर आकर दोपहर को बाज़ी लगाया करेंगे। इसी तरह गर्ज कि फूट एके को तोड़ेगी। धीरे-धीरे धर्मस्थान वीरान हो जाएगा। पर यदि सारे धर्म भाव वाले तथा शुद्ध आचरण वाले होते, तो प्रत्येक की सेवा का चाव होता, चौधरी बनने की धुन अथवा गरज की पूर्ति की चाह किसी को न होती। जिसे चौधरी बनाते, वह सेवक बनता और सेवा जानकर इस जिम्मेदारी को निभाता। धर्मस्थान जिस मंतव्य के लिए बना था, वह खत्म न होता। इस एके की प्रेरक शक्ति 'दूसरे की भलाई' का विचार होता है और नेकी का भाव होता है।

"अपनी ओर देखें। हम जो सिख हैं, एके की खोज नहीं करते; बल्कि एका अपने आप हममें निवास करता है। गुरू कल्गीधर जी ने हमारी नीयत साफ कर दी है, हमें सेवा सौंपी हैं; और "अपना बिगारि बिराना सांठै" का मन्त्र सिखाया है। हम एक निशाने की ओर देखने वाले हैं, 'गुरू' केन्द्र पर हम सब दृष्टि जमाए हुए हैं।

हमारा लक्ष्य एक है, हमारी विद्या एक है, प्रेम हमारा धर्म है, आचरण हमारी पवित्रता है। अत: हममें अपने आप परस्पर हमदर्दी तथा प्यार निवास करता है। जाति का अभिमान हममें नहीं है, देश भेद का अंह हम में नहीं, स्वार्थ तो गुरू ने निकाल ही दिया है, चौधरीपन की जलन सतगुरू जी ने ठण्डी कर दी है, अब सारा पंथ अपने आप एक हो गया है।"

इस प्रकार उपदेश करते हुए कुछ दिन रहकर भाई जी विदा हुए। अब भाई जी एक अन्य गांव में पहुंचे, जहां पर आपकी प्रेरणा से एक गुरुद्वारा बना और सत्संग जारी हुआ। इस गुरुद्वारे में एक ज्ञानी तथा एक कीर्तन करने वाला सिंह रहते थे। इन्होंने हरवंत सिंह जी की सहायता से दस पंद्रह नेत्रहीनों को सूरमा सिंह बनाकर वहां पर रखा हुआ था, जिन्हें सारंगी तथा तबला बजाना और कथा करना तथा भजन स्मरण के साथ सिखाया जाता था।

पहले नेत्रहीन बड़े दुखी होते थे। ये मांगकर पेट भरते, द्वार-द्वार पर भटकते और ठोकरें खाते थे। जब गुरू रूपी सूरज चढ़ा तो इन्हें भी उजाला मिल गया। धर्मोंपदेश द्वारा नेत्रहीनों को भी सिख मण्डल में प्रवेश मिला। सिख धर्म में आने से शरीर का लालन पालन भी इज्ज़त वाला बन गया। इन्हें राग विद्या तथा गुरुवाणी के ज्ञानी बनाया गया, जिससे द्वार-द्वार पर भटकने वाले अंगहीन दुखियों को भी सम्मान वाले स्थानों पर बैठने तथा आदर के लायक बनाया गया।

इस गांव की बहुत सारी संगत आनन्दपुर जाने के लिए तैयार थी, केवल भाई जी की प्रतीक्षा हो रही थी। उनके साथ इस स्थान पर तैयार हुए ज्ञानी तथा सूरमां[१] सिंहों को भी जाना था।

चार दिन बीते कि गांव में एक धनाड्य, गांव का शाह मर गया। इस महाजन की आयु पचास वर्ष की थी। इसने तीन विवाह कर रखे थे। इसकी तीसरी पत्नी अभी मुश्किल से १६-१७ वर्ष की थी। इसका देवर चाहता था कि वह मर जाए तो सारा माल उसे मिल जाए। सायं को भाई की मृत्यु हुई और रात को पण्डित को बुला भेजा कि भाभी को सती का उपदेश दे। आजकल की महिलाओं को उस समय के विचारों का पता नहीं। सती होने का बुरा रिवाज धर्म का अंग समझा जाता था। यह निश्चय यहां तक मज़बूत होता था कि स्त्रियां मृतक पति के शव को लेकर चिता में बैठ जाती थीं और डोलती नहीं थीं। मरदानगी, वीरता और हठ हमेशा ही श्लाघायोग्य होता है, पर यह तो एक अज्ञानपूर्ण आत्महत्या थी। कई बार स्त्रियां विधवापन के दुख से डरकर सती होती थीं। अनेक ऐसी घटनाएं हुईं जब आग लगते ही स्त्रियां उठकर भागीं। ऐसी दशा में रिश्ते नाते वाले धर्म के ख्याल में बंधे हुए सती को ज़बर्दस्ती आग में डालते तथा जलाते थे। इससे अधिक भयंकर एक और भी बात होती रही है। रिश्ते नाते वालों ने बहुओं की इच्छा के बिना उन्हें रोते चिल्लाते बांधकर चिता में डाला है। इस भंयकर कुरीति को दूर करने का प्रयत्न सिखों से आरम्भ हुआ। तीसरे सतगुरू जी ने आज्ञा दी कि सिखों में कोई सती न हो और जहां तक बस चले हिन्दू स्त्रियों को भी सती होने से बचाया जाए। सतगुरू जी ने फरमाया–

सतीआं इह न आखीअनि जो मड़िआ लगि जलंनि॥
नानक सतीआ जाणीअनि जि विरहे चोट मरंनि॥१॥ ॥ महला ३॥
भी सो सतीआ जाणीअनि सील संतोखि रहंनि॥
सेवनि साई आपणा नित उठि संमालंनि॥

सिख धर्म के इस ख्याल का फैसला यहां पर ही समाप्त नहीं हुआ। बल्कि अकबर तीसरे सतगुरू जी के दर्शन करने के लिए आया था। उस समय अकाल

---

१. सिख अंधे को अंधा कहकर उसका दिल दुखी नहीं करते थे। सूरदास एक महान कवि तथा भक्त हुए हैं, पर वे नेत्रहीन थे। अतः नेत्रहीन को सिख सूरदास कहते थे। सूरदासों पर कृपा पहले सतगुरू जी के समय से थी अमृत छकने के बाद इन्हें सूरमा सिंह कहा जाने लगा। आजकल चीफ खालसा दीवान अमृतसर ने अपने अनाथालय में 'सूरमा सिंह आश्रम' खोला है, जिसमें नेत्रहीन कथा, कीर्तन के साथ काम भी सीखते हैं और लिखना पढ़ना भी सीखते हैं।

पीड़ित प्रजा की सतगुरू जी ने सिफारिश की और साथ सती का जिक्र भी किया। ख्याल है कि अकबर ने यह कानून बना दिया कि किसी को ज़बर्दस्ती सती न किया जाय। अकबर ने फिर इस रीति को बिल्कुल ही बंद कर दिया, पर हिन्दू ख्याल की कठोरता के कारण इस रीति को पूरी तरह रोकने का काम पूरी तरह सिरे नहीं चढ़ा, पर उसने अपनी ओर से बहुत ज़ोर लगाया[१]। इधर गुरू के सिख इसे रोकने के लिए नितरते रहे। तात्पर्य यह कि उपरोक्त शाह की पत्नी पण्डित जी की प्रेरणा से सती होने के लिए तैयार हो गई। सबेरे जब श्मशान को गई, भाई हरवंत सिंह को भी खबर लग गई, आप बेतहाशा भागकर श्मशान में पहुंचे पीछे संगत भी पहुंच गई। आपने बड़े प्रेम से उस महिला को कहा: 'माता तेरा साहस धन्य है और तेरा पतिव्रत धर्म क़ा ख्याल भी धन्य है, अपने विचार में तू अब सीधी स्वर्ग में पहुंचने की आशा में चलने लगी है, जाते समय हमारे कुछ वचन भी सुनती जा।" सारे नगर के लोग भाई जी को महात्मा मानते थे, मुसलमान भी उनका अदब करते थे। इनका प्यार तथा वाणी मात्र की सेवा, भजन, बंदगी वाला जीवन सबको मोहित कर चुका था। सभी ने कहा, "बिटिया संतों से कुछ वरदान ले ले। पण्डित जी दो चार स्थानों पर सिखों के संदेश का असर देख चुके थे और वे अब कुछ कुढ़ने से लगे, पर लोगों ने ध्यान न दिया। भाई जी ने कहा, "माता! तू किस लिए सती होने लगी है? देख! इस देह को तूने नहीं बनाया इसे ईश्वर ने बनाया है और अब तू इसे तोड़ने लगी है। अब तू आप ही सोच, यदि नौकर मालिक की वस्तु को तोड़े, तो बता वह कभी मालिक को प्यारा लग सकता है! तू कर तो मालिक की बराबरी रही है और चाहती है स्वर्ग का निवास। यदि मालिक को तेरे शरीर को भी तोड़ना होता तो तेरे को भी मार देता। फिर यह भी बात है कि तू किसी परोपकार के लिए अथवा दूसरे के बस में होकर शहीद भी नहीं होने लगी, केवल पति के साथ रहने के बहम और स्वर्ग के लालच के कारण आत्मघात कर रही है? तू सोच! मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकती है। भक्ति तूने नहीं की, उपकार तूने नहीं किया, ज्ञान तेरे को नहीं हुआ, नाम तूने जपा नहीं, शरीर को जलाने से मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है?" इस तरह के उपदेश ने प्रीतम का दिल फेर दिया। जब लोगों ने देखा कि सती मुकर गई है तो सारे दुखित हो गए, पण्डित जी चिल्लाने लगे। भाई जी को कह न सके, पर अब क़रते भी क्या? ये जानते हैं कि यदि अब जबर्दस्ती करते हैं, तो सारे सिख खड़े हैं, जबर्दस्ती नहीं करने देंगे। फिर सरकार में भी चाहे अब अकबर का हुक्म ढीला पड़ रहा है, पर उसकी आड़ में सिख ही जीतेंगे। सिंह जी ने फिर निधड़क होकर सबको उपदेश दिया। इसके प्रभाव से सबको निश्चय

१. अंग्रेजी शासनकाल में सती प्रथा को पूरी तरह बंद कर दिया गया।

हो गया कि आत्मघात कायरता है, जो लोगों को जगत के दुखों से परेशान करके मौत में गिराती है। पर अब भारी मुश्किल यह थी कि लोगों को दूसरे वहमों के साथ एक भारी वहम यह भी था कि यदि स्त्री हाथ में सिंधोरा लेकर सती होना स्वीकार करते और फिर उससे इन्कार कर दे, तो उसके घर में क़हर आता है, उसके साथ कोई क्या लेन-देन रखे? विमुख हुई सती का कोई ठिकाना नहीं है। इस वहम पर गुरू के शेर भाई जी ने कहा इसका ठिकाना गुरू की शरण है। साधु संगत इसके साथ लेन देन रखेगी, और इसे अमृत देकर जीवित करेगी। मृतक का दाह किया गया और परिवार की ओर से धकेल दी गई महिला संगत के साथ चल दी। रिश्तेनाते वालों में से एक वृद्ध भाई ने इसका साथ दिया। संगत उस सती तथा उस भाई को लेकर गुरुद्वारे में आ गई। दोनों को उपदेश देकर गुरू के सिख धर्म पर चला दिया।

फिर भाई हरवंत सिंह तथा संगत आनन्दपुर को चल दिए। रास्ते में पता चला कि दिल्ली से कुछ चालाकी तथा कुछ ज़ोर से इस्लाम में शमिल करने का कोई गुप्त सन्देश आया है। इसी बहाने से कुछ आदमी, जिनके साथ हाकिमों का कुछ झगड़ा था अथवा निजी शत्रुता के कुछ दूसरे कारण थे, पकड़कर राजधानी को लिए जा रहे हैं। इस खबर को सुनकर भाई जी ने गुप्तचर्चा करके उन सिपाहियों तथा कैदियों की संख्या का पता लगाया। पता चला कि दस सिपाही तथा छः-सात कैदी हैं। भाई जी ने अब सारी संगत की बांट की। अच्छे-अच्छे तगड़े शस्त्रधारी सिख घुड़सवार अपने साथ रख लिए और शेष संगत को आगे भेज दिया। संगत तो चलकर दो चार दिनों में ही पहाड़ियों के पास जा पहुंची और इन्होंने लुक छिपकर दो दिन गुप्तचर्चा में गुजारे और उन कैदियों के जत्थे के पीछे-पीछे थोड़ी दूरी पर रहे। तीसरे दिन अचानक जंगल बियाबान में कोई आधा पहर दिन रहते उन्हें जा घेरा। चकित सिपाहियों को हाथों हाथ बांध लिया और कैदी छुड़ा लिए। एक-एक कैदी को एक-एक सिख ने घोड़े की पीठ पर अपने पीछे बिठा लिया और एकदम कूच बोल दिया। देखिए कुदरत! भाई हरवंत सिंह जी के पीछे कौन बैठा है? वही उनका भाई नाहरू लाल।

तात्पर्य यह कि ये सारे सरपट भागते चले गए। तीसरे दिन ये नदी के किनारे पर जा पहुंचे और नदी पार करके पहले भेजे गए जत्थे से जा मिले।

अब जब नाहरू ने भाभी को देखा, तो शर्म के मारे आंखें नीची कर लीं। पर धर्म की प्यारी ने बड़े सत्कार सहित बुलाकर कहा, "भैया जी! शुक्र है वाहिगुरू ने फिर मिला दिया और ऐसी दशा में मिलाया, जिसमें भाई को भाई कहकर बुलाया जाता है।"

नाहरू-भाभी जी! धरती मुझे जगह नहीं देती कि मैं ग़र्क हो जाऊं; मैंने तुम्हारे साथ बड़ा पाप किया है, पर तुम धन्य हो जिन्होंने बुराई के बदले नेकी

की है। यदि मैं तुम्हारी जगह पर होता तो तुम्हें ऐसी जगह पर मारता, जहां पर पानी भी न मिलता। तुम धन्य हो जो मुझ जैसे शत्रु को 'भैया कहकर पुकारती हो।'

भाभी–भैया जी! हम धन्य नहीं है, धन्य हैं कल्ग़ीधर जी प्यार के स्रोत धन्य उस स्रोत से जारी हुई सिख धर्म की नदी, जो प्रेम ही प्रेम फैलाती हुई चली जा रही है। तुम अपने पिछले कामों को भूल जाओ, हमने तो वे भुला दिए हैं। हम बदला किस से लें? भैया जी! यदि जीभ दांतों के नीचे आ जाए, तो क्या दांतों को तोड़ दिया जाता है? अथवा बांह टूट जाए तो क्या उसे गले से नहीं लगाया जाता। तुम तो रिश्ते नाते वाले हो, हमारे लिए तो सारे ब्रह्माडं में कोई पराया नहीं है। सभी हमारे हैं और हम सबके हैं। अमृत छककर अमर हुए जीव सारे ब्रह्मांड में यही ढंढोरा देते हैं: बस करो, शत्रुता समाप्त कर दो, झगड़े तथा दूरी खत्म कर दो, कट्टरता दूर करो। और कहो, "एक पिता एकस के हम बारिक तू मेरा गुरहाई"। आओ अब तुम भी प्रेम के प्याऊ से पक्षपात की प्यास दूर करो। और जीवित हो जाओ।

नाहरू–भाभी जी! तुमने मुझे मौत के मुंह से निकाला है। मेरे साथ तो गहरे मित्र, एक ही थाली में इकट्ठे खाने वाले काज़ी बहाबुद्दीन ने भी द्रोह किया। झूठे आरोप लगाए गए, घर बार ज़ब्त किए गए और हमें बांधकर चलाया गया।

भाभी–तुम और सास जी तो सरवर के अनुयायी थे, आधे मुसलमान तो बन ही चुके थे, इसी कारण हम से भी झगड़ते थे, तुम मुसलमान बनने से क्यों डरे?

नाहरू–भाभी जी! सब उसी वहाबू की उकसाहट तथा शराब की कृपा थी। मैं तो चाहे मुसलमान बन भी जाता, काज़ी के दगा के कारण दिल टूट गया और माता जी ने सख्त हठ किया।

इस सारे वृतान्त को सुनकर हरवंत सिंह जी ने और पांच सात सिख तैयार किए तो वहां से कूच करके सीधे होशियारपुर की जगह में जा पहुंचे। यहां पर एक व्यक्ति भेस बदलकर पता लगाने के लिए गया। पता चला कि आपकी माता तथा परिवार ने इस शर्त पर मुसलमान बनना स्वीकार कर लिया है कि उनके प्यारे नाहरू लाल को दोबारा जीवित वापिस बुला दिया जाए। अत: आदमी उधर भेजे हैं जो नाहरू लाल को ले आएंगे। आपका परिवार शेखों के प्यार में रहता है, वहां पर रुकावट तो कोई नहीं, पर नज़र के नीचे रखने के लिए एक अहदी का पहरा रहता है। यह सुनकर भेदिए को साथ लेकर दूसरे दिन एक पहर रात रहते आप जा पहुंचे। सभी ने घोड़े बेचने वाले पठानों का भेस धारण कर लिया। भेदिए ने आगे जाकर उस अहदी को पशतो में बातें करके उसका ध्यान इधर लगा लिया और बातें करते-करते उसे मसजिद की ओर ले गया। भाई जी ने अंदर

जाकर माता जी को भाई छुड़ा लेने की खुशी भरी खबर दी भाभी तथा बच्चों समेत उन्हें बाहर लाकर और आंख झपकने की देरी में घोड़ों पर बिठाकर उड़ान लगाई। उधर भेदिए ने अहदी को एक रुपया देकर कुछ खाने-पीने के लिए लाने को भेजा और कहा कि इतनी सुबह तुझे कोई दूकानदार दूकान खोल देगा। आप मसजिद में बैठ गया। पर अहदी के आंखों से ओझल होते ही भेदिया दूध में पानी के छींटे की भांति गुरू हो गया। निश्चित स्थान पर सारे व्यक्ति तीसरे दिन जा पहुंचे। संगत सफर भी काट रही थी और सिख धर्म का प्रचार भी साथ-साथ हो रहा था। सिंह जी के भाई, माता आदि सिख धर्म में आ गए। साईं की कृपा द्वारा आनन्दपुर आ गया। आनन्दपुर पहुंचकर आनंद प्राप्त किया, सच्चे सतगुरू जी की शरण प्राप्त की।

जब सभी समाचार सतगुरू जी को बताए गए तो स्वसत्कार, स्वरक्षा, स्वतन्त्रता को आपा न्योछावर करने वाली जागृति सिखों में आ गई देखकर आप अत्यंत प्रसन्न हुए। सती होने से बचाई महिला तथा तुर्कों की कैद में से निकाले गए, माता भ्राता को देख-देखकर प्रसन्न हुए। संगत में गुरू के सिख धर्म की चढ़ती कला तथा प्राण भरने वाले उपकार सुनकर उत्साह बढ़ा। फिर ये सारे भाई-भाई अमृत छककर सिख धर्म के जहाज़ पर सवार हुए।

सूचना

इस समय गुरू के सिख मंडल में नाम रस में रंगे, उच्च आध्यात्मिक ओज वाले विद्वान तथा करनी वाहे सिंह, वीतरागी होकर किस तरह जीवन व्यतीत करते तथा उनके द्वारा जलते हुए जगत में किस तरह ठण्डक पड़ती है और वाहिगुरू के मिलाप के मार्ग खुलते थे, आगामी वार्ता में से इसके कुछ दर्शन हो जाएंगे।

❑ ❑

३४ प्रियतम जी

परमलिया तथा राजा जी का सिपाही

: १ :

जिस तरह वन में खिला हुआ बसन्त, बसन्त के रसिक नैनों के न होने के कारण–वैसे ही व्यतीत हुआ समझा जाता है, इसी तरह जाड़े की लम्बी रातों की ओस से भीगी हुई, एकटक बंधी हुई और तारों से छिटककर निर्मल आकाश से पड़ती हुई शरद चांदनी, चांदनी के रसिकों के न होने के कारण मानो वैसे ही चली जाती है। रात को इतनी ठण्ड होती है कि बाहर खाट डालकर नहीं सोया जा सकता और भीतर सोने से छत का ढक्कन चांद के सौन्दर्य से भरे हुए आकाश का दर्शन नहीं करने देता। पर यह शौक की सारी रात की निर्मल चांदनी पूरी तरह पड़ती है और आकाश से पृथ्वी तक पारे की झलक की भांति झलक दे रही चांदनी का आनन्द लिया जाय, प्राय: प्राकृतिक दर्शन के प्रेमियों को बाहर खींचता है और खींच-खींचकर लाता रहता है।

इस जैसी एक सौभाग्यवान चांदनी–शरद चांदनी वाली रात है। जल का एक स्रोत अत्यन्त धीरे-धीरे चल रहा है। ऊपर नीला आकाश, उस पर सफेद तारे दमक रहे हैं और चांद की भांति चांद चमक रहा है। नीचे निर्मल नीर, जिसमें सारा गगन तारों और चांद सहित झलक रहा है, बीच में जल से लेकर आकाश तक छिटकी हुई जो चांदनी भर रही है, इसके तो कहने ही क्या? मानो सफेदी के प्रकाश का एक लोह प्रकट हो गया लगता है। मीठी-मीठी प्यारी-प्यारी हवा इसके अडोल स्रोत पर छोटी-छोटी लहरें पैदा कर रही हैं। इन लहरों के ऊपर एक छोटी-सी नौका धीरे-धीरे चल रही है। एक सुन्दर, सुडोल युवती दो चप्पू हाथ में लेकर इसमें बैठी है। किसी-किसी समय चप्पू तनिक-सा हिला लेती है, अन्यथा हवा के कोमल वेग के सहारे नौका को छोड़ देती है। उधर सुनिए किश्ती में से एक अत्यन्त उदासी और वैराग्य भरा स्वर सुनाई दे रहा है–

हे प्यारे वतन! मैं रोती हुई जा रही हूं, विदा हो रही हूं। ये मेरे प्यारे महल, मैं इन घरों से रोती हुई विदा हो रही हूं। मैं कहां जा रही हूं, इसका मुझे पता

नहीं है, न तो कोई मेरा साथी ही है और न ही कोई मल्लाह है। मेरा ठिकाना तो लहरों के बीच में है, और मैं वैराग्य की चक्की चला रही हूं। जो प्यारे सज्जन और सम्बन्धी थे वे बिछुड़ गए हैं, मैं वैरागिन बनकर नैनों से नीर बहाती हुई अकेली जा रही हूं।

फिर चुप हो गई। चप्पू हिले, नौका तीव्र होकर सरकी और उस चांद की चांदनी का रूप हो रही नारी ने जल के किनारे पर खड़े हुए महल की ओर लालसा भरी दृष्टि से देखा, आंखों में से जल की दो-चार बूंदें बहाईं और अपनी सभी प्यारी स्मृतियों को प्रणाम करके एक और गीत छेड़ा—

जिस संसार को एक दिन छूट जाना है उसका त्याग स्वयं ही कर दिया जाए तो अच्छा है। जब यह सारा दृष्टिमान नाशवन्त है तो फिर इसे त्यागकर कलपने की क्या ज़रूरत है।

नौका चली और चलती ही गई। नदी चाहे उतरी हुई थी, जल मानो खड़ा हुआ था, पर तब भी उसमें मन्द-सा वेग था, जिससे नौका चली जा रही थी। चप्पू चलाने वाली युवती ने किसी ओर के किनारे का लक्ष्य नहीं किया। मंझधार में नौका छोड़ दी और उसे ऐसे छोड़ा कि केवल अपने चप्पुओं का ही सहारा रख लिया, जिससे सीधी धारा अपने साथ लिए चले। अत्यन्त ठण्ड है, पर उसे कोई चिन्ता नहीं। न जाने कि उसके किसी समय ज़ोर से चप्पू चलाने से बांहों का जो बल लगता है, उसके साथ शरीर की ऊष्मा नहीं हारती।

इसी तरह से चलते-चलते रात व्यतीत हो गई। दिन चढ़ आया, सूरज ने किरणें फैंकीं। जब इस युवती ने एक स्थान पर नौका को किनारे पर लगाया, अपने आपको सचेत किया, एक पिटारी को खोलकर उसमें से कुछ खाया और फिर नौका में ही सो गई। जब तीसरा पहर हुआ, तब इसने फिर अनजाने सफर की तैयारी की और नौका को नदी में छोड़ दिया। बेज़बान नौका अत्यन्त शीतल जल की छाती पर चली जा रही है और उसे चलाने वाली भी शारीरिक बल से उसे तेज़ी से ले जाने में कोई कमी नहीं रख रही। जब रात हो गई, चांदनी फिर से खिल आई, तब उसने फिर नौका को उस प्रवाह की चाल पर छोड़ दिया और ज़रा-ज़रा हाथों को हिलाती रही, इसलिए कि नौका कहीं रुककर फंस न जाय और अपने शरीर में गर्मी भी कायम रहे।

रात फिर व्यतीत हो गई। दिन चढ़ आया, अब युवती ने फिर नौका को एक किनारे पर लगा दिया, वन के घास पात इकट्ठा करके आग जलाई और अपने थोड़े से समान में से आटा, दाल और बर्तन निकालकर भोजन बनाया, भोजन किया और फिर नौका में ही सो गई। तीसरे पहर फिर नौका को चला दिया। एक दिन सांझ को नौका एक किनारे पर जा लगी। यह एक ऐसा रमणीक किनारा था

जो उसके जी को अच्छा लगा। नौका भी अपने आप किनारे पर जा लगी। इसने भी अब और आगे यात्रा के विचार का त्याग कर दिया। नौका को रस्सा डालकर एक वृक्ष के साथ बांध दिया और अपने रात के आराम की चिन्ता में घास-फूस इकट्ठा करके आग जलाई, कुछ पकाया, खाया और फिर अपने कम्बलों को ओढ़कर सो गई।

: २ :

उस महल में, जिसके नीचे से युवती नौका में बैठकर चली थी, देखिए क्या हो रहा है। घर का स्वामी एक बड़ा पण्डित और विद्वान है, बड़ा जागीरदार, भूमिपति और जायदाद वाला है, पर इस समय अपनी चौकी के ऊपर बैठा हुआ दुखी हो रहा है। उसके पास उसकी पत्नी बैठी हुई है, जो निःश्वास भर-भरकर रो रही है और कह रही है-"पण्डित जी! तुम्हारी इस पण्डिताई ने तो हमें किसी काम के योग्य न रखा। आह! मेरी युवा इकलौती बिटिया, यह आयु और यह समझ-बूझ! ईश्वर न जाने इस समय संकट में आकर तड़प रही है अथवा पत्थर बनकर नदी के नीचे सो रही है अथवा उसका मक्खन मलाइयों से पला हुआ शरीर मगरमच्छों के पेट के भीतर निचोड़ा जा रहा है। हाय बिटिया! ये अभागे दिन क्यों आये। जब तुझे पढ़ने के लिए भेजा था। आश्चर्य की बात है, कभी किसी ने लड़की को भी पढ़ाया है? सूरज चढ़ने से पहले ही उठकर कह देना, उठ बिटिया विवाहकरण[1] (व्याकरण) पढ़, ऐसा व्याकरण पढ़ाया कि इक्कीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, और लड़की ने विवाह की ओर ध्यान नहीं किया। मैं तो बहुत कहती थी कि न पढ़ाओ, भला संसार के पण्डित क्या मर जायेंगे और हमारी लड़की विवाह करवाया करेगी? प्रतिदिन कहना कि बिटिया विवाहकरण (व्याकरण) पढ़, वह व्याकरण पढ़ गई, प्रत्येक व्यक्ति के साथ चर्चा करना पढ़ गई। अपने आप ही बखेड़े सिखाए और वही हमारे आगे आये। अब वह तुम से भी एक कदम आगे है, तुमने उसे पढ़ाया, अब वह तुम्हारे और तुम्हारे पण्डितों के कान काटती थी। फिर मैंने कितनी बार कहा, पण्डित जी! बिटिया अपने बराबर की हो गई है, इसके साथ चर्चा मत किया करो, इसे चार चक्कर देकर किसी के घर भेज दो, इसके बाल-बच्चे हो जायं, घर का चक्कर पड़ जाय, अपने आप पढ़ा-लिखा भूल जायेगी पर कहां से? तुम तो यही कहते गये कि इसे लीलावती और मण्द्रालसा से भी आगे ले जाना है और गार्गी बनाना है। लो अब गार्गी बनकर संसार में चक्कर लगाने के लिए गई है, न जाने गार्गी की भांति कपड़े के साथ लड़कर दिग्विजय करेगी, कि नदी में मच्छों तथा कच्छों का भोजन बनेगी। (ठण्डा श्वास भरकर) हाय मेरी लाड़ली!

१. अनपढ़ मां व्याकरण को विवाहकरण कह रही है।

पण्डित जी—सावित्री! तुम मुझसे क्यों रुष्ट होती हो? मैंने तो विद्या दी थी, तेरी बिटिया को विष तो नहीं दिया था। उसका चला जाना और उदास हो जाना तो मेरी विद्या का असर नहीं है, यह तो सन्तों-साधुओं के मेल के कारण वह बात जो उसके कानों में पड़ गई—जो एक सीधा-सा साधु डाल गया था—वह उसे खराब कर गई है। मेरी विद्या तो सच्चे मोती हैं।

सावित्री—पर पण्डित जी! यह साधुओं के साथ चर्चा करना और सदैव खोज में ही रहना, यह किसने आदत डाली थी? तुम ही तो कहते थे कि चर्चा करने से विद्या बढ़ती है अतः लड़की को आदत पड़ गई। मछुवा प्रतिदिन जाल डालकर मछलियां पकड़ता है, कभी मगरमच्छ का कोई बच्चा भी जाल में आ जाता है, तब मछुए को स्वयं अपने कष्ट का पता लगता है। तुम्हारे साधुओं में कोई एक साधु आ गया, जो तुम बाप-बेटी दोनों की विद्या के खलियान में एक चिंगारी रखकर चलता बना। बेटी की विद्या को और अपने को रोती रही और बावली हो गई; और मैं रो बैठी हूं बेटी को, दोनों खलियान जल गये। अब बताइए मैं किधर जाऊं। मेरा कलेजा स्थिर नहीं है, उड़ता ही चला जा रहा है। आज तीसरा दिन हो गया है, न अन्न और न जल।

पण्डित—बता अब क्या करें? दूर-दूर लोगों को दौड़ाया, गुप्तचर भेजे, पीछे नौकायें दौड़ाईं, जाल डलवाये, पचास-पचास कोस तक किनारे-किनारे पूछ पड़ताल की, कोई पता चले तो बात बने, हमारे बस में क्या है? भावी प्रबल है। राम और कृष्ण के साथ भी होकर रही, हम किस गणना में हैं?

पण्डिताइन—यह तो सच है, पर मां के कलेजे को बातों से तो ठण्ड नहीं मिलती।

पण्डित—और बाप क्या करें, जिसके कलेजे के साथ-साथ आशाएं और उम्मीदें भी बह गईं? केवल पाल-पोस कर बड़ी की गई बेटिया ही नहीं गई, बल्कि अपने से भी अधिक चतुर बेटी भी चली गई।

इस तरह के विलाप कर ही रहे थे कि सन्तो नामक दासी भागी हुई आई और आकर कहने लगी कि घाट पर जो पीपल का वृक्ष है, उसकी टहनी के साथ धागे के साथ एक डिबिया बंधी हुई लटक रही थी, उसे खोलने पर उसमें से एक क़ाग़ज निकला है। न जाने क्या है, पर अक्षर मेरी 'दीदी जी' के ही लगते हैं।

पण्डित जी ने शीघ्रता से कागज को ले लिया और उसे पढ़ा। उन कठोर नेत्रों में से जो कभी भी नहीं रोए थे, आज अश्रु गिर रहे हैं। न जाने किस वियोग भरे मन से प्यार की रस्सी को तोड़कर बन का रास्ता लेने वाले योगी हाथों ने लिखे हैं, कि पण्डित जी रोते हुए वैराग में उसे गाने लगे—

सखे धन्याः केचित् त्रुटितटभवन्धबव्यतिकरा
वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः।
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनां भोगसुभगां।
नयन्ते ये रात्रि सुकृतचयचित्तेकशरणाः।।५७।।
पूण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनी प्रीतिं कुरुष्वाधुना
भूशय्या नववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठ यामो वनम्।
क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा
वित्तव्याध्यविवेकविह्वलगिरां नामापि न श्रुयते।।५९।।

पण्डिताइन–क्या यह लड़की कुछ लिखकर रख गई है?

पण्डित–जी हां।

पण्डिताइन–फिर मुझ अभागिन को भी तो कुछ बताओ कि कहां गई है और क्या लिखकर गई है?

पण्डित–लो सुन पहले श्लोक का यह अर्थ है–

हे मित्र! वे पुरुष धन्य हैं, जो शरद के चन्द्रमा की चांदनी ने सफेद हुए आकाश-मण्डल से सुन्दर और मनोहर रात को वन में बिताते हैं, जिन्होंने संसार बन्धन को काट दिया है, जिनके अन्तःकरण से भयानक सर्प-रूपी विष निकाले गये हैं और सुकर्मों को ही अपना रक्षक समझते हैं।"

पण्डिताइन–हाय! ज्ञान ने उजाड़ दिया। कुछ और भी लिखा है कि यही कुछ है।

पण्डित–जो कुछ और लिखा है उसका अर्थ यह है–

"हे प्यारी बुद्धि! अब तू पवित्र फल-फूलों से अपनी गुजर कर, बनी बनाई भूमि शय्या और वृक्षों की छाल के वस्त्रों से अपना निर्वाह कर। उठ, हम तोवन को जाते हैं। वहां उन मूर्ख और तंगदिल अमीरों का नाम भी नहीं सुनाई देता, जिनकी जुबान धन की बीमारी के कारण, उनके वश में नहीं है।।५८।।

पण्डिताइन–बस बिटिया बरबाद हो गई। व्याकरण पढ़ाओ, कैसा ब्याह करवाकर गई है? पति जी आप तो सारी उम्र शास्त्र ही घोटते रहे, आप से बड़े-बडे साधु और तपस्वी लोग विद्या प्राप्त कर गये हैं, पर आपके घर में दौलत बढ़ती ही गई और सुखों के समूह इकट्ठे होते ही गये, वन, कंदरा और भोजपत्र तो सपने में भी न आये। बिटिया को यह क्या पढ़ाया था कि रुई के गोलों में ही आग जल उठी।

पण्डित–प्रिय! यह आग मेरी विद्या में तो नहीं थी, इसे तो वह साधु लगाकर गया है।

ये बातें हो ही रही थीं कि बाहर से एक राग मालकौंस का वैराग्य भरा और हृदय वेधी स्वर आने लगा। इसका असर कुछ इस प्रकार का था कि सबका ध्यान

उधर लग गया और सारे मूर्तियों की भांति चुप हो गये। जब ध्यान लगाया तो आवाज़ इस तरह की थी–

हरि बिसरतु सदा खुआरी॥
ताकउ धोखा कहा बिआपै जाकउ ओट तुम्हारी॥ रहाउ॥
बिनु सिमरन जो जीवनु बलना सरप जैसे अरजारी॥
नव खंडन को राजु कमावै अंति चलैगो हारी॥१॥
गुण निधान गुण तिनही गाए जाकउ किरपा धारी॥
सो सुखीआ धनु उसु जनमा नानक तिसु बलिहारी॥२॥२॥

[टोडी महला ५]

जब यह वैराग्य और प्यार भरी आवाज़ बन्द हुई तब पण्डित जी बाघ की भांति अकड़कर झपट उठे, "मिश्रायन! यह तो वही बावला है जो हमारे घर को वायु के झोंके की भांति उड़ाकर ले गया है।" "जा रे गणुआं, मोती और जीवन! सभी जाओ और उसे बांधकर ले आओ।"

यह सुनकर सभी लोग उठ भागे। कुछ समय के बाद एक लम्बे, सुडोल और तीखी आकृति और गोरे से रंग के आदमी को भीतर ले आये। इस सज्जन पुरुष की दाढ़ी अभी छोटी-छोटी थी, जिससे इसकी आयु पच्चीस वर्ष की लगती थी इसका माथा चौड़ा और चमकदार था, आंखें विशाल और तेज वाली थीं, पर इस समय मस्तानी दशा में कुछ भारी हो रही थीं। इस व्यक्ति के भीतर आते ही पण्डित जी का क्रोध कंपन सा खा गया, झपट कर पड़ने के स्थान पर, नयन कुछ दबाव सा खा गये। वह मोहिनी मूरत वाला, जिसकी प्यारी सूरत खद्दर के कुर्ते और सीधी-सी खद्दर की पगड़ी में दमक रही थी, अभी अपने गाने के रंग में ही थी ओर 'जाउ किरपा धारी' की पंक्ति अभी तक टेक के साथ मिल-मिलकर अपने आप ही गायन किये जा रही थी, निर्भय होकर खड़ा हो गया कि अभी तक समझा ही नहीं कि कहां पर था और कहां पर आ गया है। "ताकउ धोखा कहा बिआपै जाकउ ओट तुम्हारी" का रंग सुरति को चढ़ रहा था और उसी के आनन्द में गलतान होकर खड़ा था।

कुछ समय चुपचाप निकल गया। पण्डिताइन के अब अश्रु निकल आये और रोकर कहने लगी, "हे बेपरवाह दाता लोग मेरी लाड़ली कहां पर है?" पर दाता लोग तो अभी तक 'जाकऊ ओट तुम्हारी' के प्रवाह में रंगे हुये हैं। पण्डिताइन ने फिर चरणों को पकड़कर वही बात कही, तो वे चौंककर कहने लगे: "हे शीलवती! तेरी बिटिया का मुझे कुछ पता ही नहीं है? तेरे घर होगी अथवा तेरे हृदय में होगी।" यह सुनकर पण्डित जी ने कुछ साहस बटोरा और कहने लगे: "बाबा! पण्डितों से तो मैं सदैव डरता हूं पर दूसरों को तो पशु के समान समझता हूं। सीधी तरह से बता दे, अन्यथा भय मान कि तू मेरे बस में है और मैं तेरे शरीर को यमपुर भेज सकता हूं।"

दाता लोग–पण्डित जी! मैं पण्डित नहीं हूं पर मैंने न तो कभी किसी को भय दिया है और न ही कभी किसी का भय माना है, जो कुछ सच है, उसे निर्भय होकर कह रहा हूं कि तुम्हारी बिटिया का मुझे कुछ पता नहीं है।

पण्डित–तू आग लगाना तो जानता है और उसे बुझाने का तुझे पता नहीं है? तूने क्यों उस पण्डित कन्या को आग लगाने वाली बात कही थी कि वह आपे में ही न रही?

दाता लोग–मैं तो आग लगाना नहीं जानता न लगी हुई को लगाने वाला और लगे हुओं को सफल बनाने वाला वही सर्वाधार मालिक है। मुझसे तो तुमने अथवा उन्होंने जो कुछ पूछा है मैंने सच-सच बता दिया है। सच यदि आग ही है तो अच्छा, सच तो पापों के ढेरों को जलायेगा और जब पाप खत्म हो जायेंगे तो लगी हुई स्वयं बुझ जायेगी।

पण्डित–यों नहीं! ये भूत होते हैं, ओझाई और मन्त्रों से नहीं निकलते, इनका इलाज लष्टका मन्त्र (लाठियां मारना) में रखा है। मोती! फिर हो जाये लष्टका प्रहार की फुहार।

यह सुनते ही आदमी लाठियां लेकर आ गये। दाता लोक ने देखा, देखकर मुस्कराये और कहा, "मैं कोई जुलाहा फकीर नहीं हूं कि तुम लाठियां लेकर आ गये हो, मैं तो शेर का बच्चा हूं। मैं कोई फकीर नहीं कि लेटकर मर जाऊं, मैं तो अपने दाता के काम में लगा हुआ हूँ और मेरे मरने का समय अभी दूर है। जुल्म फैल गया है, जिसे दूर करना है। सच्चे साधुओं और अनाथों, गरीबों को न्याय के नुक्ते पर ले जाकर बचना है। पण्डित जी! ये तुम्हारे दास, लाठियों से मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं? मैं तैयार हूं कि मैं शरीर दे दूं, पर अभी समय नहीं आया। विचार कर लीजिये, भूल में मत रहना, मैं हार मानकर गुजारा करने वाले फकीरों में से हूं, पर मैं न्याय के बिन्दु पर खड़ा हूं। यह शरीर जो मालिक की नौकरी पर खड़ा है, इसकी रक्षा करूंगा। जब मालिक की आज्ञा होगी कि लेट जा, तब ही तुम मुझे मार सकोगे।" यह कहकर उसने खद्दर की चद्दर में हाथ डाला और फुंकारती हुई नागिन की भांति गुप्त तलवार जो बिजली की तरह उन शूरवीर हाथों में चमक उठी यह चमक थी अथवा मौत के दर्शन थे। एक बार तो सभी चौंक कर दस-दस कदम परे को हट गये। दाता लोग ने मुस्कराकर कहा, "डरो मत! मेरे हाथ में वार करने वाली तलवार नहीं है, यह तो वार को रोकने वाली ढाल है जो सच्चे पातशाह के सिपाही के पास रक्षा के लिये है ताकि शाहंशाह के काम में कोई बाधा न डाले।"

पण्डित जी चकरा गये, सोचने लगे मगर चकित थे कि यह बावला फकीर है अथवा पण्डित? वीर है अथवा बुद्धिमान?

दाता लोग—अब बहुत हो चुकी, अब मैं चलता हूं।

दाता लोग निर्भय शेर की भांति चले गये, किसी को भी साहस न हुआ था कि बांह पकड़ लेता।

एक दिन तीसरे पहर दाता लोग नदी के किनारे पर आंखें मूंदकर बैठे थे कि पण्डित जी के संकेत से मोती ने उनकी कमर में जोर से लाठी मार दी। दाता लोग की आंख खुल गई, पर अब गुप्त तलवार नहीं निकाली और उसी तरह बैठे रहे। पांच-चार व्यक्तियों ने उन्हें पीटा और मुशकें बांध लीं और उठाकर घर में ले आये। अब बंधे हुए कैदी से पण्डित जी ने कहा, "अब भाई राजा के सिपाही! तेरी रक्षा करने वाले कहां हैं?"

दाता लोग—मेरे राजा की आज्ञा हो गई कि मैं मार खाऊं, मैं काटा जाऊं और मेरे खून से प्यार की फुलवारी खिलेगी। अत: मालिक की सेवा में मेरा काम अब मारा जाना ही है, मेरे जाने में मेरे राज, की लड़ाई, ऐश्वर्य और प्रताप प्रकाशमान होगा और उसका स्वर्गिक राज्य नारकीय हृदयों पर सिक्का जमायेगा।

पण्डित और पण्डिताइन के छाती में से भय की एक कंपकंपी-सी गुजरी, पर नौकर अब दाता लोग को बुरी तरह पीट रहे थे। थोड़े ही समय में साईं लोग पिटाई से बेसुध हो गया।

पण्डित अब फिर मानो सोया हुआ जागा कि न जाने यह शख्स कहीं लाहौर की सरकार का गुप्तचर न हो और फकीरों के भेस में फिरता हो, जिस निर्भयता से बोलता था, वह तो सरकारी अकड़ के बिना हो ही नहीं सकती और यदि यह सत्य है तो लेने के देने पड़ जायेंगे।

अब छोटे से षड्यन्त्र के पश्चात् यह फैसला हुआ कि यह तो मर चुका है, इसे एक छोटी-सी नौका में फूस डालकर दो-चार कम्बलों में लपेटकर डाल दिया जाय और नौका को मंझधार में ले जाकर छोड़ दिया जाय। रात-रात में ही शव पचास-साठ कोस दूर चला जायेगा, अथवा कहीं रास्ते में डूब जायेगा या मिट्ठनकोट तक इसका कोई पता ही नहीं चलेगा। पाप का अंधेरा और राजसी दण्ड का भय और किये हुये खून का बचाव अकल पर परदा डाल देता है। इस बात की तेजी, कि किसी तरह यह शव घर में से जल्दी से निकले, अर्थात् घर में से दूर हो, पण्डित को उसी ओर ले गई और सांझ होते ही दाता लोग का विमान एक छोटी-सी पुरानी नौका बना और नदी में उसे बहा दिया गया।

प्रकृति के रंग! पहाड़ों में दो दिन काफी वर्षा हुई। आज नदी में बेमौसम का चढ़ाव था और सांझ से हवा भी दक्षिण की ओर तेजी से बह रही थी। मल्लाह विहीन नौका को पानी के चढ़ाव और तेज हवा ने तेज चाल में डाल दिया और वह पानी के बहाव में हवा की भांति तेज बहती चली गई।

आह, प्यारे राजा जी के सिपाही! तुम्हारे मारे जाने से तेरे मालिक का प्रताप चमकेगा, तेरे मारे जाने से तेरे शाहंशाह की बड़ाई होगी। तूने कितनी दूर पर बैठकर इस हुकुम को सुन लिया है, किस विश्वास के साथ उसे मान लिया है और साहस के साथ स्वीकार कर लिया है। हे पंच! हे श्रेष्ठ! तेरी गुप्त तलवार और तेरे हाथ, तेरा मन और तेरी बुद्धि श्रेष्ठ है, जिन्होंने प्यारे के प्यार का इस तरह से पालन किया। आह! राजा जी के सिपाही! तेरी पवित्र देह, घावों से घायल, इस सर्दी और क़हर की हवा में घास-फूस पर पड़ी हुई समुद्र की ओर जा रही है, जहां पर न जाने जब तक पानी लकड़ी को खा नहीं जायेगा तब तक तेरी यह पावन अर्थी समुद्र की छाती पर तैरती रहेगी।

३

वही चिनाब नदी है जिसके पानी में प्यार की सुगन्धि है; हां, उसी चिनाब के चौड़े सीने पर राजा के सिपाही का शव बहता चला जा रहा है। यहां से काफी दूरी पर नीचे को पूर्वी किनारे पर मीलों लम्बा रमणीक जंगल है और झंग नगर है। जिस जंगल में किसी समय रांझे की बांसुरी बजा करती थी और सुनने वालों को मोहित किया करती थी। यदि यहां से पार होकर पश्चिमी किनारे पर चले जायें तो थोड़ी-सी दूरी पर एक रमणीक स्थान पर 'चुंड' नामक सुहाना गांव है। इस गांव में दिन चढ़ चुका है। सूरज की धूप में लोग दो-दो चार-चार की मंडलियां बनाकर बैठे हैं। एक मंडली के लोग कह रहे हैं कि चिनाब नदी में से वरुण देवता की पुत्री प्रकट हुई है, जो इस तरह वैराग से विरह करती है कि उसे सुनने के लिए चिनाब का पानी खड़ा हो जाता है। दूसरी मंडली में यह चर्चा हो रही है कि हीर कब्र में से निकलकर फिर जंगल में नाच-कूद रही है, उसके अतिरिक्त इतना सुन्दर और विरह से विह्वल होने वाला और कौन हो सकता है? एक मुसलमान फकीर कह रहा है यह जन्नत से आई हुई कोई हूर (परी) है, इसके प्यारे को अल्लाह ने इस संसार में भेज दिया है, यह उसकी खोज कर रही है, पर देखना कहीं कोई इसका अनादर न कर बैठे, इन लोगों में बहुत शक्ति होती है।

इस तरह की चर्चा आसपास होती रही है। पर सब के दिल में उसका भय, सत्कार और उसके विरह को सुनने की लगन लग रही है। बहुत से लोगों के मन में उसके साथ बातचीत करने का चाव भी है पर वह तो किसी से बात ही नहीं करती। लोग उसको जहां पर देखते हैं, वहीं पर अच्छे-अच्छे फल, मिठाई पुलाव और भोजन रखकर आते हैं, पर कभी भी किसी ने उसे खाते हुए नहीं देखा, फिर भी लोगों का यह चाव कम नहीं होता। प्राय: महिलाएं उसके पीछे फिरती हैं। जब कहीं पर बैठकर ऊंचे स्वर से गाने लगती है, तब लोगों के झुण्ड आकर बैठ जाते हैं।

इस समय वह वैरागिन कन्या किनारे पर बैठी है, छोटी-सी वीणा हाथ में है, जिसमें कल्याण राग का एक बिना समय का तराना बज रहा है; और बजाने वाली उस रंग में मग्न है। अब कंठ भी खुला, सारा वन थरथरा उठा। सचमुच यों लगता है कि लहरों पर भी कुछ असर हो रहा हो। आवाज़ निकली:

दौलत, उम्र जवानी झूठी, झूठे सभी भरोसे। झूठे रंग तमाशे सारे, झूठे रोने हंसी। झूठे ही ताज सिरों पर शोभायमान हैं और हाथों में पकड़े हुए प्याले भी झूठे हैं। जितने भी दाव लगाए हैं वे सभी झूठे हैं और झूठे ही दाव पेच लगाए हैं।

सभी दावे झूठे हैं, सारा मान और आशाएं भी झूठी हैं। जिन कच्ची वस्तुओं को सच्चा जानकर खरीदा था वे अन्त में झूठी सिद्ध हुई हैं।

वीणा गिर पड़ी, आंखें मुंद गई, टपटप जल निकल रहा है, जैसे ठंडी ओस वाली रात के बाद पत्तों पर से बूंदें गिरती हैं। चारों और भीड़ चुपचाप बैठी है सभी सोच रहे हैं कि अभी किसी और गीत की आवाज़ आयेगी, पर चार घड़ी तक मौन छाया रहा फिर आंखें नहीं खुलीं, पर यह आवाज़ निकली:–

मैं जवानी के मान में ठगी गई हूं
भरी जवानी के कारण ठगी गई हूं।
माता-पिता के प्रभाव में ठगी गई हूं,
माल धन के घमंड में ठगी गई हूं,
बहुत विद्या पढ़ने के कारण ठगी गई हूं,
बुद्धि के कारण बावली हुई ठगी गई हूं
मैं तो लूटी ठगी गई हूं, बार-बार भूल रही हूं।

फिर चुप हो गई, लोग काफी समय तक बैठ-बैठकर चले गये।

सूरज ढलने लगा। इसकी आंख खुली दो जून से कुछ खाया-पिया नहीं था। इस समय आंखों के सामने कुछ मिठाई, कुछ चावल, रोटियां और दूध पड़ा था। खाने को जी तो नहीं चाहता, पर भूख बुरी बला है, हाथ आगे बढ़े, उठाकर कुछ मुंह तक ले आये, मुंह में डालकर तेज़ी से चबाया और पेट के सुपुर्द किया। जब कुछ सहारा हो गया, तब वीणा को संभालकर उठ गई। जो पदार्थ जहां पर पड़े थे, वहीं पर धरे रह गये। इसने अब नदी की ओर रुख किया और मन में कहने लगी: "हे मन! वनों की खातिर घर का त्याग किया था, वन तो मिल गये, मगर वह स्वाद, वह शान्ति मिली नहीं, जिसकी आशा में घर का त्याग किया था।

"मैं बावली हो गई, मैंने क्यों सब-कुछ पढ़ सुनकर व्यर्थ खो दिया? मैं तो स्वयं शुद्ध चेतन हूं, साक्षात ब्रह्म हूं, मैं किस बहाव में बह गई। पर ओह! ये खुश करने वाले ख्याल-ही-ख्याल हैं। मृगतृष्णा की तरंग है। यदि मैं आप हूं तो फिर मेरे अन्दर यह भूल क्यों है। समझ तो है पर समझ का कोई रस अथवा स्वाद नहीं है। घर के झंझटों में तो भ्रम उलझता था, अब तो कोई उलझन नहीं है, पर

फिर भी शान्ति नहीं है।···हाय! मीठा बोल कहां गया? उसके बोल में रस था, उसके पास खड़े होने में शान्ति थी। वह उस दिन क्या कहा गया था "यदि ज्ञान में प्रेम नहीं है तो ज्ञान मृतक है।" ज्ञान तो हममें था, फिर भी हम मृतक थे। सचमुच मृतक थे, क्योंकि जिस प्रकार रस में वह रहता था, हम उस प्रकार के रस में नहीं थे। बहुत बार पूछा कि इस रस का दान दे जा; समझाता हुआ और यह कहता हुआ चल दिया, मेरे राजा जी के पास जाओ। हां? मीठा बोलने वाले सज्जन! तेरे राजा जी कहां है? मुझे क्या पता था कि मीठा बोलने वाले सिपाही के पीठ फेरते ही मेरे अन्दर वैराग की आग जल उठेगी। मुझे 'मुर्दा' कहा गया है? हाय! मुझे शाह शरीफ जैसे सूफी दार्शनिक की उपाधि देकर गये हैं, यह बांका सिपाही मुझे कहता है कि, 'शाह शरीफ तुझे गाली देकर गया है' कोरा 'फलसफा' (दर्शन) मन के मण्डल की खोज है। जीवन के बिना केवल दर्शन को जानना है। हाय जीवन कहां पर है, आंख मिचोली का खेल खेलने वाले प्रियतम! वे जीवन प्रदान करने वाली हिलोर कहां पर है, जिनका संकेत करके तू लुप्त हो गया उसने एक गीत ही गाया है। फिर गाया, जिसका भाव इस प्रकार है।—

"हे प्यारे तू आ, तूने कैसी लालसा लगा दी है कि मैं लालसा के कारण आधी रह गई हूं। तूने न तो मुझे पार ही किया और न ही किनारे पर लगाया। न मैं मर गई और न ही जीवित हुई, तेरे ही एक वचन से बंधी हुई हूं। तूने कैसा संकेत मेरी गोद में डाला है कि मुझे ज़बर्दस्त आग मिली है।"

यों गाती हुई और सिसकी भरती हुई तथा रोती हुई फिर मन ही मन विचार करने लगी···'मैं सर्वंखल विद ब्रह्म' जानती हूं मैं यह भी जानती हूं कि यदि चित् की वृत्तियां रुक जायें तो, 'तद्र दृष्टस्वरूपे अवस्थानम्' हो जायेगा। फिर मैं साधन क्यों नही करती। ज्ञान, योग की मैं ज्ञाता हूं, यदि मैं चाहूं तो वैराग्य और विवेक द्वारा इसमें टिक जाऊं, पर क्या हो गया? मैंने सांख्य का अध्ययन भी किया है।

"यह शरीर इन्द्रियां बुद्धि सब प्रकृति है, पुरुष अतीत है, सन्धिमात्र के कारण मेल है। यह प्रकृति ही कर्त्ता है जो पुरुष की सन्धि के कारण क्रियाशील हो जाती है, पर स्वयं जड़ है। पाप अथवा पुण्य का लेश कर्त्ता को नहीं है, अतीत पुरुष को कोई लेश नहीं है, अत: मैं इस ज्ञान में सुख प्राप्त करूं। प्रकृति पुरुष के साथ प्रतिबिंबित होकर विलय हो रही है। मैं उसे समझूं और उसमें लय हो जाऊं मैं स्वतन्त्र और अभय हूं।

"पर एक डुबकी आई, कसक उठी। यह डुबकी और कसक ही थी जिसे विद्या में नहीं पढ़ा था।

यह कसक किसी महात्मा, पण्डित गुणी, ज्ञानी, साधु के चर्चावाद में नहीं

थी। क्या यही जीवन था जिसे मीठा बोलने वाला साईं 'जीवन' कहा करता था? पर न जाने! जबः–

यह झलक दिखाकर मार गया। सूरत देखकर स्वभाव का पता न चला, देखते ही मन हार गया। बोलने की क्षमता न रही, हृदय बिंध गया। उस पार से आवाज़ सुनते ही तैर पड़ी, पर हाथ से दोनों छोर निकल गये। होश चला गया, हृदय में लालसा बंध गई, हृदय में जैसे कटार चुभ गई।

"हां, हां! हे नदी! तू पता ठिकाना बता, दाता जी कहां पर हैं? यदि इतना ही पता बता जाते कि किस राजा के वे सिपाही हैं तो खोज करती। अब कहां खोज करूं? लालसाओं ने घेर लिया है, बींध दिया है, सोच-विचार ने मार लिया है, न ही शास्त्र कोई रास्ता बताता है और न ही मेरी बुद्धि ही कुछ बताती है मुझे क्या हो गया है?

"हाय! अकेली हूं, सारी दुनिया उजाड़ है।
मेरा कोई नहीं है, मैं कर्मों से रहित, हार गई हूं।"

यों विलाप करती हुई किनारे पर पहुंची। क्या देखती है कि जिस वृक्ष के साथ अपनी नौका बांध रखी थी, वहां पर ऊपर की ओर से आकर एक और बजरा-सा इस नौका के साथ आकर रुक गया है और आगे को नहीं चलता। दृष्टि पड़ी, देखा बजरे में न तो कोई चप्पू था और न ही कोई व्यक्ति। हैरान होकर उसे अपनी ओर खींचा, अपनी नौका में से होकर हाथ में चप्पू लेकर उस बजरे में जा सवार हुई। चप्पू इसलिए पकड़ लिए थे कि कहीं यह चल पड़े तो इसे संभाल सके। उसमें फूस का ढेर और कुछ कम्बल पड़े हुए दिखाई दिये। तेजी से जब कम्बलों को हिलाया तो वे भारी लगे। जब भलीभांति उन्हें उल्टा-पुलटा तो क्या देखती है कि मीठा बोलने वाले दाता जी का शव है। मानो सारा शरीर मसला हुआ है, कई स्थान से खून भी बहा है। आंखों ने पहचान की और पहचान करते ही मन से आह निकली।

"वाह भाग्य! वाह दैव गति! मिलाप करवाया, अन्त को मिलाप करवाया, पर क्या मिलाप करवाया? इससे तो न मिलता तो अच्छा था। अब हे मेरे शरीर! तू भी इसी नींद में सो जा, और इसी बजरे में सो जा, फिर सोए हुए ही प्यारे के रंग में रंगे हुए पूछेंगे कि दाता लोग! क्या वह जीवन था, जिसका आप पता बताते थे। वाह भाग्य! दूर हो। अब संसार में जीवित रहना निष्फल है। मृत्यु तेरी गोद में मेरा स्थान हो। दाता जी (हाथ हिलाकर) हे मीठा बोलने वाले दाता जी! बोलो तो सही। एक बात तो कर जाओ। यों जाना था तो पहले मुझे यों ही भेजना था (कुछ समय सोच-सोचकर) मुझे आज जीवनपद प्राप्त हो गया है, क्योंकि मेरी जीवन की इच्छा मिट गई है। मृत्यु जीवन से अधिक प्यारी लगती है। (कड़वी-सी हंसी हंसकर) हां, पांचवें क्लेश 'अभिनिवेश को यों ही जीता-जाता

है।...राजा जी के सिपाही! जीवित काल में तो न ले गये, मगर अब तो अपनी इस लम्बी यात्रा में मुझे ले चलिये, मैं भी तेरे राजा जी का दर्शन करूं, जीवित काल में तो नहीं दर्शन प्राप्त किया, मरकर ही प्राप्त कर लूं।

"मैंने विद्या क्यों पढ़ी, यदि पढ़ी तो क्यों बह गई, यदि बह गई तो मर क्यों न गई? मृत्यु! हे सुन्दर मृत्यु! आ जा और मुझे समेट ले, मुझसे अब प्यारे दाता जी का यह दर्शन देखा नहीं जाता। हे मेरे! नेत्रो बन्द हो जाओ और कभी मत खुलो! जिस सूरत को जिस रंग में देखा था, उसको किसी अन्य रंग में देखने से पहले ही बन्द हो जाते यदि बन्द नहीं हुये तो अब कभी भी मत खुलो।"

यों रोती हुई, विलाप करती हुई, विद्या का एक भण्डार पण्डिता सिसकियों के कारण बावली होती जा रही है। कई बार छलांग लगाकर मर जाने के लिए जोश आता है, पर वह दर्शन कुछ ऐसा प्यारा है कि अब भी दृष्टि को खींचता है और परे नहीं होने देता। इस रंग में बावली हो रही उसने बजरे को अपनी नौका के साथ बांध लिया।

अपनी नौका में घास-फूस से तकिये बनाकर बिछौना बनाया और प्यारे दाता जी को उठाकर उस पर लिटा दिया। जो कुछ वस्त्र पास थे, वे ऊपर ओढ़ा दिये और मुँह नंगा रख लिया। पानी को गर्म करके मुंह-हाथ-पांव साफ़ किये। वन में से फूल लाकर सजाये। रात आ गई, नौका में आग जलाकर तपिश की और वीणा को लेकर भर्तृ हरि के वैराग्य के श्लोक गायन करने लगी।

नदी आज बहुत चढ़ी हुई थी, दूसरी ओर से नौकाओं का एक टोला आ रहा था। रास्ते में कठिनाई के कारण नौकाएं काफी रात व्यतीत हो जाने पर किनारे पर लगीं। चुंड के निवासी तो घर चले गये, पर दूर जाने वालों ने वहीं पर डेरा डाला। सबसे अधिक आग की आवश्यकता थी। इस समय काफिले में से एक आदमी इस नौका में आग जलती देखकर आग लेने के लिए आया। जब उसने जाकर देखा तो हक्का-बक्का रह गया कि एक शव को श्रृंगार संवार कर रखा है और एक जवान सुन्दरी वीणा बजाकर गा रही है। शरद और खिली हुई चांदनी रात, ऊपर नीला तारों से जड़ित आकाश नीचे, जल। इस अचल और शीतल समय में यह क्या दृश्य दीख रहा है? वह डरा और समझा कि जल की कोई परी है और इस एकान्त के समय बाहर आकर आनन्द ले रही है। आग के लिए कभी तो दो कदम आगे बढ़ता कभी दो कदम पीछे हटता। अन्त में साहस बटोरकर गया और आग मांग ही ली। पर वहां पर कौन सुनता? बेखबर जानकर इसने आगे बढ़कर स्वयं आग ले ली। डेरे पर जाकर इसने अपने स्वामी को सारी व्यथा जाकर सुना दी। चकित होकर स्वामी का मन भी उसे देखने को चाहा।

जब वहां पर पहुंचा और उसे देखा तो समझ गया कि यहां पर तो कोई दुखद घटना घटी है। शव की ओर देखकर चकित हुआ। वीणा और पोथी को

देखकर समझा कि यह कोई विद्ववान है। अन्त में आगे बढ़कर नौका में चला गया और शव की नाक के आगे पहले उलटा हाथ रखा और फिर रूई रख दी, फिर नाखूनों के रंग को देखा, आंखों के कोए देखे, शरीर पर हाथ फेरा। कन्या अब होश में आकर चकित हो रही थी। यह सज्जन अब स्वयं उससे कहने लगा, "हे सुन्दरी! तु विदुषी पड़ती है, मैं वैद्य हूं। तेरे इस दुख पर मुझे दया आई है, यदि तू चाहे तो मैं इसे स्वस्थ कर दूं?"

कन्या—क्या मृतक भी जीवित हो सकते हैं?

वैद्य—यह मरा नहीं, जीवित है।

कन्या—मरकर भी जीता है क्या?

वैद्य—मरा नहीं, जीवित है।

कन्या—सच?

वैद्य—हां, सच।

कन्या—क्या आप इसकी मेरे साथ बातें करवा सकते हैं?

वैद्य—हां।

'हां' का शब्द सुनते ही कन्या पांवों पर गिर पड़ी।

हे जीवन दाता! क्या तू राजा है?

वैद्य—मैं न तो राजा हूं और न ही वजीर हूं। एक वैद्य हूं और इसकी चिकित्सा कर सकता हूं।

कन्या—मैं दुखी हूं, निर्धन हूं। यदि आप इसे स्वस्थ कर दें तो मैं शुकराने भरे हृदय से आपके घर की सेवा कर सकूंगी, और मेरे पास कुछ भी नहीं है।

वैद्य—तेरा विदुषी होना ही मेरे लिए प्रर्याप्त है। यदि दुख विद्वान को हो और विद्वान उसकी सेवा न करे तो उसे धिक्कार है।

कन्या—आप धन्य हैं, आपका जन्म धन्य है।

वैद्य—बिटिया! यह तेरा क्या लगता है?

कन्या—मेरे राजा जी का सिपाही है।

वैद्य—कौन से राजा जी का?

कन्या—मुझे पता नहीं।

वैद्य—किस देश के राजा जी?

कन्या—मुझे पता नहीं।

वैद्य—फिर तेरे राजा जी किस तरह हुए?

कन्या—इसका भी मुझे पता नहीं है।

वैद्य—इसका नाम क्या है?

कन्या—'मेरे राजा जी का सिपाही, यह नाम तो इन्होंने स्वयं बताया था और

हमारे नगर के लोग इन्हें 'मीठा बोलने वाला साईं' कहकर पुकारते थे और मेरी अम्मा इन्हें दाता लोग पुकारा करती थीं।

वैद्य–तुम्हारा क्या रिश्ता है?

कन्या–मेरा?

वैद्य–हां, बिटिया तेरा।

कन्या–ये मेरे जीवन दाता हैं, पर अभी मुझे जीवन नहीं दिया। कोई 'प्रियतम जी' हैं, पर मेरे लिए वे अदृष्ट प्रियतम जी हैं, उनके पास 'जीवन' देन है।

वैद्य ने सोचा कि ग़म के कारण इसका होश ठिकाने नहीं, जब यह स्वस्थ हो जायेगा तब अपने आप पता चल जायेगा। इस रोगी का माथा भी विशाल और योगी जैसा है, आशा है कि यह भी एक हीरा ही निकलेगा। सेवा कर दें, सेवा करने पर ही मेवा मिलता है।

वैद्य जी अपना झोला उठा लाये और उनमें से एक दवाई निकालकर कहने लगे, बिटिया! इस दवाई को इसकी कनपटियों पर मलो। दूसरी दवाई इसकी बगलों में थोड़ी-थोड़ी देर के बाद लगाने के लिए दी और साथ ही चार छोटी-छोटी पुड़िया दीं और कहा इन्हें रात को चार बार इसका मुंह खोलकर जिह्वा की नोक पर लगा देना।

वैद्य तो अपने डेरे पर चला गया, निराश कन्या के मन में आशा और साहस भर गया। 'यह जीवित हो जायेगा'? यह छोटा-सा प्रश्न था जो विदुषी कन्या के मस्तिष्क में बार-बार उठता था। अपनी बुद्धि तो उत्तर देती थी 'नहीं' पर वैद्य जी की सूरत सामने आकर खड़ी हो जाती थी और कहती थी: 'जरूर'। रात भर कन्या सोइ नहीं, वैद्य जी की आज्ञानुसार दवाएं लगाती रही और सारी रात आग को जलाए रखा।

सवेरे वैद्य जी स्वयं आ गए। सारे शरीर को भली-भांति देखकर कहने लगे–

बिटिया! मेरी दवाई असर कर गई है और बीमारी ठीक होने लगी है। यदि तूने ध्यान से दवा की तो अवश्य ही लाभ होगा, पर एक समस्या है, मुझे आज जाना है और तू इसे लेकर मेरे साथ चल नहीं सकती।

कन्या–हे कविराज जी! आपने मेरी आशा को जीवित करके पुनः मार दिया है, जिसके कारण मेरी पीड़ा बढ़ गई है, परन्तु मेरे लिए दैवगति ही अब ऐसी है, अतः अच्छा हे चन्द्रभागा? प्यारी चन्द्रभागा नदी! अब मैं तुझमें प्रवेश करूंगी क्योंकि यदि मुझे दाता जी के दर्शन प्राप्त न होते तो इसी आशा में लगी रहकर जीवित रहती, अब जब दर्शन हो गए और पता चल गया है कि परलोक को चल बसे हैं, तब मैं परलोक में जाकर उनकी खोज करूंगी।

वैद्य जी ने जब इस तरह का विलाप सुना और देखा कि इसका संकल्प अभी दृढ़ है और यदि मैं सेवा करूं तो प्राणों की रक्षा हो सकती है और यदि चला गया दोनों का अन्त हो जायेगा, तब कहने लगे–"हे कन्या! मैं चुंड में जाकर किसी स्थान पर डेरा डालता हूं और दो दिन तेरे पास ठहरता हूं, इतने तक मुझे आशा है कि खतरा टल जायेगा।"

कन्या–कविराज जी! आप धन्य हैं जो एक दुखी कन्या की आशीश ले रहे हैं।

अब वैद्य जी ने दवा दी और स्वयं चुँड में जाकर गुरुद्वारे में डेरा डाला। इन दिनों में भाई जीवना नामक एक भला पुरुष इस धर्मस्थान की सेवा किया करता था वैद्यराज जी ने जब उसे अपने ठहरने का कारण बताया, जब भाई जीवना के नेत्रों में से जल प्रवाहित हुआ और उसने वैराग्य में ही आंखें मूंद लीं। क्या देखते हैं कि एक गुरुमुख जी खड़े कह रहे हैं: प्रेमियों के दुख प्यार करने वालों की छाती पर पड़ते हैं।"

भाई जीवना ने जान लिया कि उसे उसके कर्त्तव्य के लिए जगाया गया है। यह जीवन, हो न हो तो मेरे प्यारे गुरू नानक के प्यारे हैं। सृष्टि मात्र के दुख को दूर करना मनुष्य का कर्त्तव्य है और यहां तो कुछ प्यार की लपट भी आती है। तात्पर्य यह कि भाई जीवना वैद्य जी के साथ वहां पर पहुंचा। जाकर कन्या से विनती की कि इस ठण्ड में इस तरह के खुले स्थान पर पड़े रहने से दवा कम असर करेगी, तुम मेरे साथ चलो, वहां पर जगह भी है, खाट बिस्तर भी है, मैं स्वयं भी सेवा करूंगा।

कन्या–महाराज आप धन्य हैं! पर मैं बनवासिनी हूं, घरों, मंदिरों से मुंह मोड़ चुकी हूं अब दोबारा उन्हीं मन्दिरों में जाना मेरे लिए उपालम्भ की बात है। यहां पर ही जो ईश्वर की आज्ञा है, बीतती रहेगी।

जीवना (रोगी की ओर देखकर) बिटिया! यह सज्जन तो बनवासी नहीं है, तुम बनवासी कैसी हो?

कन्या–यह तो वीतराग बौद्ध स्वत: है, यह तो योगी है, यह तो संन्यासी है।

जीवना–यह हो नहीं सकता। यह तो वीतरागियों, संन्यासियों और योगियों से ऊंचा है, पर यह बनवासी नहीं है।

कन्या (चकित होकर) क्या यह गृहस्थी है?

जीवना–पक्की बात का तुम्हें पता होगा, पर यह जल में बसने वाली और जल से निर्लेप रहने वाली मुरग़ाबी है।

कन्या–मैं समझ नहीं सकी।

जीवना–बिटिया! घर गृहस्थी वाला हो और चाहे अतीत हो! इस समय तो यह बीमार है, इसे जल्दी स्वस्थ करने के लिए इस जगह की अपेक्षा धर्मस्थान में जल्दी आराम आएगा, अत: इसे भी एक दवा ही समझो।

कन्या–मैं तो घर से बनचर्या के लिए चली थी, अब घर में कैसे जाऊं? पर मीठा बोलने वाले दाता जी की खातिर मुझे क्या नहीं करना होगा।

जीवना–बिटिया! मैं तुझे घर नहीं ले जा रहा, धर्मस्थान में ले जा रहा हूं, जहां साधु लोगों का और तपस्वियों का निवास है। धर्मस्थान तो घर नहीं है।

'सत्य वचन' कहकर कन्या तैयार हो गई, दाता जी को एक खाट पर लिटा कर ले चले। नौका का सामान भी उठवा लिया और भाई जीवना जी ने बजरे और डोंगे को मल्लाहों के सुपुर्द किया ताकि उनकी सम्भाल हो सके।

धर्मस्थान में 'दाता' जी का उपचार प्रारम्भ हुआ। भाई जीवना जी को जब कन्या की शिक्षा का पता चला, तब वे चकित रह गए। शिक्षा का पता चलते ही प्यार और सत्कार और अधिक बढ़ गया। दाता जी की सूरत ही उनके आकर्षण के लिए काफी थी, पर अब तो शिक्षा ने और आकर्षित किया, अभी इस बात का पता भी नहीं था कि इस मोहिनी सूरत की यह दुख भरी दशा कैसे हुई है।

वैद्य जी तीन दिन वहां पर ठहरे। तीन दिनों में दाता जी के शरीर में पहले की भांति कुछ गर्मी आई और श्वांस जो कि पहले बहुत मन्द चल रही थी और पहले तो उसके चलने का पता भी नहीं चलता था, अब वह साफ चलते दीख रही है। फिर होश आया, तीसरे दिन आंखें खुलीं तब सामने कन्या को बैठे हुए देखा। कमजोरी बहुत थी बोल न सके, पर पता चल गया कि कोई उनकी सेवा कर रहा है।

इसलिए हैरान नहीं हुए। कमजोरी बहुत थी, आंखें मुंद गईं। इसी तरह चौथे दिन फिर आंखें खुलीं, देख-देखकर फिर मूंद लीं, अब कुछ शक्ति भी लौट आई थी। जब एक-दो बार मुंह में से 'प्रियतम जी' का शब्द निकला और नेत्रों में से दो बूंदें गिरीं तब इस समय जीवना और वैद्य जी पास बैठे थे, उधर प्रियतम की आंखों में अश्रु भर आए और थोड़ी देर तक आंखें मुंदी रहीं। इस कौतुक को देखकर वैद्य जी चकित हो गए। कुछ समय के पश्चात दोनों जने और कन्या जब लंगर में बैठे थे, तब वैद्य से रहा न गया, कहने लगा, "बिटिया! यह प्रियतम जी कौन से जादू-भरे शब्द थे कि दाता जी भी रो पड़े, तू रो पड़ी और हम भी थर्रा गए?"

कन्या–कविराज जी! मैंने आपको अपनी व्यथा सरसरी तौर पर सुनाई थी, पर यह 'प्रियतम जी' (कहते ही रोने लगी) हो कोई जादू का खेल है, जिसका मुझे स्वयं भी पता नहीं है। ये जो बीमार पड़े हैं, इस रहस्य को जानते हैं। मुझे शिक्षा के पश्चात् चर्चा का बहुत चाव था। अच्छे-अच्छे साधु और पण्डित आकर मेरे साथ विवाद करते थे और अन्त में मुझे शाबासी देकर जाया करते थे। एक दिन पिता जी इनको (दाता जी) साथ ले आए। ये थोड़े दिनों से कभी-कभी नदी के किनारे पर विचरते थे। मेरे पिता जी कहने लगे, यह साधु वीतरागी है।

लगता है कि विद्या प्राप्त करके ज्ञातज्ञय हो गया है और वीतरागी होकर शिक्षा के लिए जगत् में विचर रहा है। इसके साथ किया गया विचार लाभदायक सिद्ध होगा। अत: पिता जी इन्हें कभी-कभी घर में ले आते थे और अम्मां इन्हें ससत्कार भोजन करवाया करती थीं। मैंने कई बांर चर्चा के लिए छेड़-छाड़ की पर ये अडोल रहे। जब एक दिन मैंनें कहा कि कोई सुमति दीजिए तब कहने लगे: 'सुमति तो बहुत है, और यदि मति मारी जाये तो अच्छा है।' मैं हक्की-बक्की हो गई। इनके शरीर की कांति ऐसी थी कि हम पर भय और प्यार की छाया पड़ जाया करती थी। मैं उस समय उत्तर तो न दे सकी, पर इन्होंने हंसकर कहा: "चतुराइयों से मन चतुर हो जाता है, किसी और प्रकार की चंचलता में पड़ जाता है, पर इकट्ठा होकर टिकता नहीं है।"[१]

मुझे आज कुछ पता चला। आज विद्या के नशे में, जो कि एक जहर की भांति चढ़ रहा था, पहली चुभन हुई और मैं सोच में डूब गई कि यह क्या बात है? एक दिन फिर आए तो मैंने फिर कहा कि आपके साथ कोई चर्चा करनी है जी? कहने लगे, 'चर्चा का क्या अर्थ है?' जब मैंने बताया 'विचार करना, बहस करना' तब कहने लगे: "हां-हां धातु अर्थ ठीक है 'चर्च' है='पढ़ना, पूछना, झाड़ना, बहस करना', पर ठीक चर्चा तो तब ही हो सकती है जब चाह को चर ले 'चर+चाह', हां वही चर्चा कर सकता है जो हार और जीत से चाह रहित हो जाय।" यह कहकर हंस पड़े और मैं विचार में पड़ गई। फिर एक दिन मैंने कुछ कहा, तब कहने लगे 'तू कौन है?'

मैं—जो सामने बैठी हूं।

दाता—सामने तो मिट्टी का पिण्ड बैठा है।

मैं—मैं मिट्टी का पिण्ड तो नहीं हूं।

दाता—फिर तू कौन है?

मैं—मैं आत्मा हूं, परमात्मा, ब्रह्म हूं।

दाता जी हंसकर कहने लगे—"क्या तू स्वयं को पहचान कर कह रही है?"

मैं—हां जी।

दाता—पहचानकर? आओ तो पड़ताल करें—

क्या और विद्या प्राप्त करने के लिये तुम्हारा जी चाहता है? किसी और पदार्थ की प्राप्ति के लिये चित्त चाहता है? और शोभा के लिये मन ललचाता है?

मैं—जी हां, यों तो करता है।

दाता—तू तो चाह में है।

---

१. सहस सिआणप करि रहे मनि कोरै रंगु न होइ।। [सिरी रागु म॰ ४]

मैं—हूं तो सही।

दाता—तेरे अहं के आगे यदि कोई बाधा डाले तो गुस्सा लगता है, क्लेश होता है?

मैंने रुककर कहा—हां ज़ी, होता तो ऐसा ही है।

दाता—तू तो क्लेश कर्म में है। अच्छा ब्रह्म का लक्षण कर।

मैं—चाह रहित, निर्विकार, शुद्ध, क्लेश कर्म से परे, त्रिकाल अबाध सत्यचित्, आनन्द।

दाता—फिर तुझमें ब्रह्म के लक्षण नहीं मिलते।

मैंने घबराकर कहा—हैं! है तो ठीक।

दाता—फिर पहचानकर नहीं कहा, अच्छी तरह तौलकर और पहचानकर कह, तू कौन है?

मैं—क्या कहती मैं कौन हूं, हूं तो ब्रह्म, 'सर्वं खल विद् ब्रह्म' और मैं सर्व में उससे भिन्न हो सकती हूं क्या?

दाता—हो सकती या होना चाहिए, कुछ नहीं, 'सकता' और 'चाहिए' निश्चयपूर्वक वाक्य नहीं है। निश्चित बात को पहचानकर बता कि तू कौन है?

मैं—मैं, शरीर, मन, बुद्धि, अहं की उपाधियों से भरा हुआ सबल ब्रह्म माया हूं। पर यह सब माया मात्र है, और मैं शुद्ध हूं, और यह माया भी कुछ नहीं है भ्रम मात्र है अतः मैं शुद्धि ही हूं।

दाता जी ने मेरी पीठ पर एक थप्पड़ दे मारा।

मैं—हाय राम, पीड़ा! साईं लोक जी! क्या यह चर्चा का रास्ता है?

दाता—क्या हुआ?

मैं—मुझे पीड़ा हुई है।

दाता—शुद्ध ब्रह्म को अथवा बुद्धि को, मन को अथवा शरीर को?

मैं—(घबराकर) मुझे?

दाता—यह 'मुझे' कौन है?

मैं—शुद्ध।

दाता—शुद्ध को पीड़ा हुई है क्या?

मैं—(घबराकर) शुद्ध तो पीड़ा से परे है।

दाता—फिर पीड़ा किसको हुई है?

मैं—पीड़ा में मेरा अध्यास[१] है। वास्तव में पीड़ा वस्तु नहीं है। मेरा जन्म-जन्म का अध्यास हो गया है, इसलिए पीड़ा प्रतीत होती है।

दाता—जब तू शुद्ध है, तो यह अध्यास किसको है?

मैं—शुद्ध को।

---

१. और में और वस्तु की धारणा, मिथ्या ज्ञान।

दाता–शुद्ध को?...शुद्ध तो असंग है, उसमें अध्यास का निश्चय कैसे है?

मैं–(घबराकर) है तो ठीक, पर मैं क्या कहूं?

दाता–पहचानकर कह कि तू कौन है?

मैं–मैं हूं तो शुद्ध, पर मेरे अन्दर अभी संशय शेष है।

दाता–संशय शुद्ध नहीं है, मैल है?[१]

मैं–ठीक।

दाता–जहां पर मैल है, वहां पर प्रकाश नहीं है, जहां पर प्रकाश नहीं है वहां पर निश्चित रूप से पहचान नहीं है।

मैं–है तो ठीक।

दाता–तब तू आपे को पहचानती नहीं, सुन-सुनाकर कह रही है: "मैं शुद्ध हूं।"

मैं–सुन-सुनाकर तो नहीं, पर विद्या प्राप्त करके बुद्धि में निश्चित होकर।

दाता–पर अनुभव नहीं करती कि जो कुछ तू 'है' उसमें संशय है अथवा जो कुछ तूने पढ़ा है, उसे अभी अनुभव नहीं करती। अत: वास्तव में तू स्वयंत्व को नहीं पहचानती।

मैं–हां, यो ठीक है।

दाता–तब तू अन्धी है।

मैं–(घबराकर) मैं तो नेत्रों वाली हूं।

दाता–हां शरीर से, पर वह अन्धकार और है।

मैं–वह क्या?

दाता–वह अन्धा है जो आपे को नहीं पहचानता[२], जो आपे को नहीं पहचानता वह ब्रह्म को (ईश्वर को) क्या पहचानेगा?

मैं–(चौंककर) जो आपे को नहीं पहचानता वह अन्धा? है तो ठीक पर मैं तो पहचानती हूं। सच पर, हां ठीक अभी अध्यास है, अध्यास के कारण शुद्ध की शुद्धता के निश्चय में संशय है, अत: मैं निश्चित रूप से नहीं पहचानती जिसे दाता अनुभव कहता है, उसके अनुसार तो मैं ठीक ही अन्धी हूं। मैं यह सब कुछ सोच ही रही थी कि दाता ने नैन मूंदकर कहा: "प्रियतम जी!" उनके नेत्रों में से नीर बहा और चेहरे पर आश्चर्यजनक प्यार और वैराग्य का रंग आ

---

१. संसा सद हिरदै बसैं कऊन हिरे अभिमानु।। [गऊ: रवि:]
पुन:–सहसै जीऊ मलीण है। [राम आनन्द]

२. अंधे आपु न पछाणनी। [मारू वार म: ३]
अर्थात् वे अन्धे हैं जो आपे को नहीं पहचानते।

गया। उनके कहने में कुछ ऐसी थरथराहट थी कि मेरे शरीर में झन्नाहट पैदा हो गई, नैन मूंद गये, अश्रु भरे और एक कसक-सी हुई।

थोड़े समय के पश्चात् दाता जी चल दिए। मैंने कहा–"स्वामी जी! ठहरिए ब्रह्म ज्ञान पर थोड़ा विचार और कर लें।" कहने लगे–"तू अन्धी है, अन्धे के साथ रंग अथवा रूप का विचार क्या करना"? कहते-कहते चलते गये।

"तू अन्धी है।" आज पहला दिन था, जब कि मैंने अपने बारे में ऐसे शब्द सुने। यदि मैं पिता जी से कहती कि मुझे फकीर ने गाली दी है, तो पिता जी उसे उठवाकर नदी में डलवा देते, पर मुझ में साहस कहां था कि उस भले पुरुष के बारे में कुछ कहती। इसके बाद मैं जिधर को गई जो काम मैंने पकड़ा, मेरे कानों में यही आवाज़ आती, "तू अन्धी है" और इसके साथ ही कंपन पैदा हो जाता। सचमुच मैं अन्धी हूं? साईं लोक ने मुझे किस तरह इस बात पर निश्चय करवाया है। ठीक मैं आपे को जानती हूं, पर मैं पहचानती नहीं हूं।

दाता जी कई दिनों तक हमारे घर पर न आए। एक दिन सांझ का समय था, मैं और पिता जी बजरे में बैठकर सैर कर रहे थे, सांख्य मत पर विचार हो रहा था। वे कह रहे थे कि ईश्वर सिद्ध नहीं होता और मैं कह रही थी कि सिद्ध है। वे कह रहे थे कि नहीं, वह कर्ता और गुरू नहीं है और मैं कह रही थी कि नहीं सांख्य दर्शन में लिखा है; 'सह सर्व वित् सर्व कर्ता[१]' वही सब-कुछ करता है और सब कुछ जानता है ऐसा सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वर सिद्ध है। तब वे कहने लगे कि कर्तापन तो सन्धिमात्र के कारण है, पुरुष असंग है। प्रकृति सन्धि पाकर कर्ता है। पर जो तूने तीसरे अध्याय का सूत्र कहा है, यह तो उस पुरुष के लिए है जो (सह=) पुरुष प्रकृति लयमानता से उठता है, वह इतना शक्तिमान हो जाता है। तब मैंने कहा, बस फिर ईश्वर सिद्ध हो गया। वे बोले, इस ईश्वर को सांख्य ने माना है, 'इदृशेखरसिद्धं सिद्धः' (३.५७) अर्थात् यह ईश्वर तो सिद्ध है, पर 'पुरुष' का यह ईश्वरत्व वह नहीं जो कि उस ईश्वर का है जिसे दूसरे मत वालों ने निर्माता और संहारक कहा है और जो एक ही है। मैंने कहा, यह तो ठीक है पर देखिए योगदर्शन ने ईश्वर को कैसे सिद्ध कर लिया है; योग ने तो बात यहां से ही पकड़ी है। उसने कहा है कि क्लेश, कर्म का फल और वासना से (जिसे) स्पर्श नहीं किया गया (एक) पुरुष विशेष (है, वह) ईश्वर (है)[२]।

यदि सांख्य ने पुरुष को माना है तो पुरुष में हमें सर्वज्ञता का बीज दिखाई पड़ता है। अब यह सर्वज्ञता पुरुषों में कम ही दिखाई पड़ती है, अतः यदि इसकी बढ़ोतरी की ओर चलें तो अन्त में जाकर कहीं यह पूर्ण दिखाई पड़ेगी। वह पुरुष

१. सांख्य दर्शन ३, ५६।

२. क्लेश कर्म विपाका श्यैर परामिश्रः पुरुष विशेष ईश्वर। [१, २४ यों: द:]

जिसमें यह सर्वज्ञता निरतिशय अर्थात् पूर्ण होगी वह ईश्वर होगा[१] साधारण पुरुष तो जन्म धारण करके और अभ्यास वैराग्य करके सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, जहां पर सर्वज्ञता निरतिशय (सबसे अधिक) होगी, वहां पर इस बात की आवश्यकता नहीं होगी कि जन्म ले, अभ्यास करे तो जाकर कहीं ज्ञानारूढ़ हो। वह काल के साथ अविच्छेद नहीं है (१, २७ यो० द०) अतः देख लीजिये सांख्य से ही ईश्वर सदैव स्थिर (नित्य) ईश्वर सर्वज्ञ और क्लेश कर्म फल आशय से परे सिद्ध किया जा सकता है अथवा नहीं? पिता जी हंसने लगे और कहने लगेः तू चतुर हो गई है, पर योग ने भी ईश्वर को तो कर्ता नहीं माना। मैंने कहा प्रकृति जड़ है, जड़ में कर्तापन हो नहीं सकता है। संधिमात्र करके अथवा प्रतिबिम्बित करके, हिसाब, सिलसिला और प्रबंध वाली रचना का स्वयं रचे जाना तमाशा है। पिता जी मुस्कराने लगे और न जाने वे क्या कहना चाहते थे और मैं आज उन्हें सांख्य से योग और योग में से वेदांत में ले जाने का विचार कर रही थी कि नदी के किनारे से कानड़ा राग की एक मन को आकर्षित करने वाली ध्वनि उठी, जो हम दोनों बाप-बेटी को इस तरह से अपनी ओर खींच ले गई कि ध्यान उस ओर जुड़ गया और मौन छा गया। हमने जो कुछ समझा वह यह था।

बिसरि गई सभ ताति पराई॥
जब ते साथ संगति मोहि पाई॥१॥ रहाउ॥
ना को बैरी नहीं बिगाना सगल संगि हम कउ बनिआई॥१॥

मल्लाह के हाथ भी खिंच गये और बजरा उसी किनारे पर जा लगा। आगे दाता जी नदी के किनारे पर चेहरे से एक अद्वितीय रंग बिखराते हुए गदगद बैठे थे। पिता जी कहने लगे; वही वीतरागी साधु है। हम उतरे, शीश झुकाया और कहाः दाता जी! आज हमारे यहां चलिए, तब कहने लगे—चलो भाई चलें और फिर यों बोलते गएः—

"प्रश्न यह नहीं है कि कर्तार के बिना संसार की रचना की समझ आ सकती है, इसलिए कर्तार की क्या ज़रूरत है, पर यह कि इस रचना का रचयिता है अथवा नहीं है। यदि उसके समझे बिना रचना समझ में आ जाये तो किस तरह सिद्ध हो गया कि कर्तार है ही नहीं?" यह कहकर आप हंस पड़े।

प्रकृति जड़ है, प्रकृति में तीन गुण हैं, उलटफेर सारी प्रकृति में है। प्रत्येक पुरुष चेतन है, गुणातीत है अमर है तो सभी पुरुष एक बराबर हो गए, आपस में कोई अन्तर नहीं तो फिर पुरुष अनेक क्यों हैं एक ही क्यों नहीं हैं? 'अन्तर' के बिना अनेकता हो ही नहीं सकती।

---

१. निरतत्र तिशयं सर्वश्वौजनम्। [१, २५ योः दः]

"प्रकृति जड़ और प्रकृति से पुरुष स्वतन्त्र दोनों आपस में मिल-जुलकर बैठे दोनों में इस प्रकार के मिलाप की योग्यता है कि एक-दूसरे के साथ मिलकर ऐसी सुन्दर रचना हो जाये, यह बात किसने सोची और घड़ी है। एक आदमी तगड़ा और अंधा है, एक लंगडा है, पर उसे दीखता है, दोनों एक-दूसरे के साथ मिलकर बैठ गए। अंधा तो घोड़ी बना, लंगड़ा उसके ऊपर सवार हुआ और बाग में पहुंचकर आंखों वाले ने फल तोड़े और दोनों ने खाए। यदि एक अंधा हो पर उसके दूसरे अंग ठीक हों और एक लंगड़ा हो और उसे दीखता हो तो दोनों योग्यतापूर्वक और साझी ग़र्ज के लिए मिल जायें तो आश्चर्यजनक बात नहीं है। हां, साझी ग़र्ज! पर यह अपने-आप कैसे हो गया जब कि पुरुष स्वाभाविक रूप से बेग़र्ज़ और प्रधान जड़ होने के कारण बेग़र्ज़ है" (हंसने लगे)।

"देखो जी! प्रकृति (प्रधान) भ्रम मात्र नहीं है। पर सचमुच है और पुरुष भी सचमुच है, तो दोनों का संयोग भी सचमुच है अब दु:ख और पीड़ा सचमुच के संयोग में है। इस दुख की दवा इस बात का ज्ञान है कि पुरुष अतीत है, प्रकृति जड़ है। जब प्रकृति भ्रम मात्र नहीं है, सचमुच है, तो उसका बंधना ज्ञान द्वारा कैसे कटे? ज्ञान का काम है अज्ञान (माया अथवा भुलावे) को दूर करना। जब संयोग सचमुच का संयोग है तो ज्ञान उसे कैसे काट सकता है? सचमुच के संयोग का ज्ञान जब प्राप्त होगा तो संयोग की यथार्थ अवस्था का साफ-साफ पता चल जायेगा, वह टूटेगी नहीं। ज्ञान संयोग को समझायेगा, तोड़ेगा, नहीं नुक्ता यह है कि या तो संयोग सचमुच है, या सचमुच नहीं है, भ्रम मात्र है और अगर सचमुच है तो ज्ञान उसे दूर नहीं कर सकता, ज्ञान अज्ञान को काट सकता है, सचमुच के मेल को नहीं काट सकता। भला यदि पुरुष और प्रकृति (प्रधान) का संयोग भ्रम मात्र है तो प्रकृति को 'माया' मानना पड़ेगा, जो पुरुष को किसी तरह लगी और ज्ञान ने उसे दूर कर दिया। यदि पुरुष और प्रकृति दो नहीं है, एक ही आत्मा है तो वेदांत हो गया, सांख्य खत्म, और यदि एक प्रकृति है तो चारवाक हो गया, सांख्य समाप्त। हां यदि पुरुष कोई अशिक्षित वस्तु है और प्रकृति में प्रयोग के लिए आता है और प्रयोग करके सुशिक्षित हो जाता है तो कुछ बात बन जाती है।

"गुण ग्राहक बनो जी! सांख्य ने वितरेक बुद्धि से अनुभव की जांच पड़ताल की रेखाएं खींचकर विज्ञान का रास्ता खोला और पुरुष अर्थात् आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन कर दिया।"

"मन जी! चढ़ती कला में खेलो! ये सभी सयाने रचना में उदासी और पतन के रंगों को देखकर उदास होते हैं। दुख कहां पर है, पीड़ा कहां पर है? मां के

साथ (कारण के साथ) जब सदैव संयोग प्राप्त हो गया; "फिर बुरा नहीं, सब भला है, हार नहीं है, सब जीत है।"[१]

यों अपने आप से बातें करते, हंसते और खेलते हुए हमारे साथ चलते गये। सांख्य पर तो ये विचार ठीक थे। घर आ गया और हमने दाता जी को आज अत्यन्त प्यार सहित भोजन करवाया।

जब विदा होने लगे तब मैंने कहा: दाता जी। क्या मैं अंधी हूं?

दाता–वह अंधा है जो आपे को नहीं पहचानता।

मैं–कैसे पहचानूं?

दाता–'तू तो ब्रह्म है' इस अटारी से नीचे उतर।

मैं–कैसे उतरूं?

दाता–पहले अपने आपकी पहचान कर यदि तू आपे को पहचानेगी तो दीखने लगेगा, इस तरह जब ब्रह्म की खोज करने की योग्यता पैदा होगी, तब तू इसके मूल्य को पहचान करने वाली बनकर ब्रह्म को पहचानेगी। इस पहचान के हो जाने पर तू अवस्था सर्वावस्था से निकलकर यथार्थ को पहुंचेगी, तू 'सत्य' को पहचानेगी, सत्य में खेलेगी, सत्य में रस लेगी और वह चढ़ती कला, जो सत्य और अमूल्य है, तू उसे प्राप्त करेगी।

मैं–कैसे पहचानूँ?

मेरा यह कहना ही था कि आपके नेत्र मुंद गए, मुंह से 'प्रियतम जी' निकला नैनों से नीर बहा, साथ ही मेरे शरीर में से एक झन्नाहट निकली, मेरे नैनों में जल भर आया और मैं काफी समय तक मूर्च्छित सी दशा में खड़ी रही, जब आंख खुली, तब दाता जी जा चुके थे।

दूसरे दिन दाता जी स्वयं आ गये। हंसते-हंसते, प्रसन्न और आभामय चेहरे वाले कहने लगे: "जीवनदान, जीवनदान।"

मैं–दाता जी! मैं अंधी हूं, पर रात को मैंने सोचा है कि मैं योग करूं, तब जाकर कहीं ब्रह्म होऊंगी।

दाता–योग का कौन-सा अंग करेगी?

मैं–प्राणायाम करूंगी?

दाता–और यम तथा नियम?

मैं–उनका क्या है?

दाता–तब किंगरी बजेगी, पण्डितों के घर में भाटी टपकेगी और गोरख गोरख का उच्चारण होगा।

मैं–क्यों?

---

१. बुरा नहीं सभु भला ही है रे हार नहीं सभ जेतै।। [का: म: ५]

दाता—यम नियम का मतलब यह है कि प्रत्येक पहलू से सदाचार ठीक हो अर्थात् आचरण पवित्र हो, जो कि कोरी पण्डिताई के पल्ले नहीं है। शास्त्र को पढ़कर आवश्यकता भी कुछ कम हो जाती है?

मैं—दाता! है तो सच!

दाता—फिर क्या बनेगा?

मैं—चित्त की वृत्तियों को रोककर क्लेश का नाश।

दाता—फिर क्या?

मैं—फिर दृष्टा का स्वरूप में स्थित होना।

दाता—नींव कच्ची, उस पर निर्माण! बिना विरुद्ध यम और नियम क्या, मुर्दा निरुद्ध।

मैं—(घबराकर) मुर्दा निरुद्ध?

दाता—यम और नियम के बिना निरुद्ध जीवन पद पर नहीं ले जा सकता। मल और विक्षेप दोनों को दूर करना है।

मैं—फिर पहले यह करूं, फिर कैवल्य।

दाता—तनिक और आगे मिला। फिर हंसकर गाने लगे—

मिलिऐ मिलिआ ना मिलै मिलै मिलिआ जे होइ॥
अन्तर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीऐ सोइ॥३॥

पास बैठे, निकट आ गए तो मिले नहीं होते (परम) आत्मा में आत्मा मिले तो मिले। (परम) आत्मा जीवित जागृत ज्योति और जीवात्मा भी जागृत वस्तु, दोनों में संयोग का साधन हो तो कहीं जाकर मेल हो।

मैंने कहा: जीव तत्व को पुरुष विशेष के साथ मिलने की क्या ज़रूरत है?

दाता—(नेत्र मुंद गए) 'प्रियतम जी' कहा, जल निकल आया, चेहरा बदल गया। मेरे नैन भी भर आये, झन्नाहट छिड़ी और रोंगटे खड़े हो गये।[१] जब आंखें खुलीं तब दाता जी जा चुके थे और मेरे सामने दीवार पर लिखा था 'तू नास्तिक है।'

अब मैं घबराई 'मैं नास्तिक हूं?' पिता जी के साथ कल चारवाकों का खण्डन करके मैंने विजय प्राप्त की है। पहले मैं अंधी थी, अब मैं नास्तिक हो गई। हे भगवान! यह दाता लोग मेरे साथ क्या कर रहे हैं मुझे तपस्वी और पण्डित सिर झुकाकर जाते हैं, यह गाली देता है, पर फिर भी प्यारा लगता है, जो कुछ कहता है अन्दर चला जाता है और घाव-सा कर देता है।

दूसरे दिन दाता जी फिर पिता जी के साथ हमारे घर में आ गये। जब भोजन कर चुके तो अपने आप ही कहने लगे—

---

१. दाता जी ने वास्तविक उत्तर दिया है कि वह वस्तु 'प्रेम' है।

"साधन! यत्न मात्र! इनका फल क्या है? विभूति और सभी यहां पर फंस गये। सिद्धियों में फंसे हुए सिद्ध और योगी, भट्टी चुई, दारू निकला, पिया और मस्त हो गये। कैसा योग है? कैवल्य कहां पर गया?

"पुरुष को प्रकृति से पृथक कर लिया कैवल्य तो हो गया। भला यदि कैवल्य भी प्राप्त हो गया तो क्या हुआ? वही तो अनीश्वरवादी सांख्य कह रहा है। अतः साधन करके पुरुष प्रकृति से अतीत हो गया और योग ने सांख्य की अपेक्षा जो कदम आगे बढ़ाया था और बताया था कि कोई विशेष पुरुष है जो ईश्वर है, यह ईश्वर तो फिर एक ओर ही रखा रह गया। यदि उस ईश्वर को माना था तो योग साधना द्वारा पहले विभूति और फिर कैवल्य (पुरुष को प्रकृति से पृथक करने) में पहुंचने का यही काम करके ही क्या लेना था? संधि मात्र प्रकृति के साथ संयोग था, बात को समझ लिया और परे हट गये। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्हार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि साधन किये पर पहुंचे वहीं पर ही। लिखा हुआ था; उसी दर्शन में 'ईश्वर प्रणिधान'[१] उसका ख्याल न किया।

मैं–पर साथ ही लिखा है 'वा' कि यह भी एक मार्ग है।

दाता–पर इस मार्ग को निर्बाध भी लिखा है, क्यों?

मैं–हां, पता नहीं क्यों?

दाता–किसी टीकाकार ने कारण बताया है कि ईश्वर प्रणिधान के साथ ईश्वर का अनुग्रह उसका सहायक हो जाता है इसलिए बाधा नहीं पड़ती।

मैं–वाह वाह, स्वाद आ गया। टीकाकार भी सूत्रकारों से कम नहीं होते।

दाता–यह भी पढ़ा है न कि "तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान" क्रिया योग है।

मैं–हां ठीक है, क्रिया योग यही है।

दाता–फिर जिसकी भक्ति करेंगे उसी की अनुग्रह होगी, जिसकी अनुग्रह होगी, उसे प्राप्त करेंगे अथवा नहीं।

मैं–हाय किधर को लिए जा रहे हैं।...ठीक तो है।

दाता–फिर।

मैं–योग दर्शन ने और चूलिका ने सांख्य के २५ तत्वों के साथ ईश्वर भी एक तत्व मिला दिया, प्रकृति, पुरुष और ईश्वर तीनों अनादि और नित्य हो गये। अनीश्वरता तो कम हुई, पर आस्तिकता का मनोरथ अभी भी पूर्ण न हुआ। क्या आप यही कह रहे हैं?

दाता–कह रहा हूं कि तुमने शिक्षा नेत्रहीनों से प्राप्त की है। उन्होंने तुम्हें

---

१. सब कुछ करके ईश्वर को समर्पण करना, अर्थात् भक्ति।

यही सिखाया है कि केवल निरुद्ध योग है, मगर उन्होंने यह नहीं बताया है कि निरुद्ध होकर ईश्वर प्रणिधान[१] योग है।

मैं–पर पढ़ाने वाला क्या करे जब शास्त्र में साथ 'वा' कहा गया है, कि ईश्वर प्रणिधान के साथ समाधि भी होती है। 'वा' कहने से बात गौण हो गई और फिर भी समाधि कौन-सी? पुरुष का अपने स्वरूप में स्थित होना। कैवल्य मात्र।

दाता जी (लम्बा सांस लेकर)–पढ़ाने वाले ने इस बात को न खोला कि तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का नाम क्रियायोग है। शास्त्र भी वन है, कर्महीन से पढ़ने से इसमें ही खो जाने का डर रहता है।

यह कहकर होंठ काटते हुऐ चुप हो गये। थोड़ी देर के पश्चात् चुप को तोड़ने के लिए मैंने बात फिर से चलाई।

मैं–मैं नास्तिक कैसे हूं?

दाता जी हंस पड़े। मैंने फिर पूछा।

दाता–यदि तू आस्तिक है तो तेरा ईश्वर कहां है?

मैं–सर्व व्यापक है।

दाता–तेरा ईश्वर तेरे पास है कि नहीं?

मैं–यदि वह सर्व व्यापक है तो मेरे पास भी है।

दाता–यदि तेरे पास है तो कहां है?

मैं–अंगुष्ठ प्रमाण (अंगूठे जितना) मेरे हृदय में बैठा है।

दाता–कैसा है?

मैं–मैंने उसे देखा थोड़े ही है?

दाता–प्रतीत होता है कि नहीं?

मैं–होता है।

दाता–सच? चर्चा के समय या कहीं आगे पीछे?

मैं–आगे पीछे, क्या मतलब?

दाता–'ईश्वर है' यह विचार दिन रात में कितने समय अन्दर रहता है।

मैं–कितने समय, क्या मतलब?

दाता–कभी चर्चा विवाद के समय, कथा करते समय अथवा कहीं वैसे ही संकल्प मात्र आया, और हवा के झोंके की भांति गुजर गया।

मैंने घबराकर और फिर संभलकर कहा–आपने सच कहा है, कभी-कभी।

दाता–जब तक यह ख्याल मन में नहीं रहता कि 'ईश्वर है', तब तक 'है' का ख्याल या 'आस्तिक भाव' (ईश्वर के अस्तित्व का भाव) अन्दर नहीं है,

---

१. ईश्वर भक्ति।

तब तुम्हारी 'प्रतीति' में वह किस तरह आया है? यदि नहीं, तो तुम कैसे कहती हो कि भीतर है ऑर मालूम होता है। यदि 'ईश्वर है' इस प्रकार का भाव भीतर में निरन्तर नहीं है तो तू आस्तिक किस तरह है? यदि 'अस्तु'–'है' का भाव निरन्तर, अटूट अन्दर है तो आस्तिक है।

मैं–(घबराकर) दाता जी! तुम्हारे कोश अलग, तुम्हारी टीका अनोखी, पर है ज़ोरदार।

दाता–फिर तू 'न+अस्तु' वाली=आस्तिक=वास्तिक है अथवा नहीं?

मैं–ख्याल अथवा समझ में तो नहीं, मैंने श्रुति को पढ़ा है, श्रुति परमात्मा को कर्त्ता मानती है मैं मानती हूं, मैं नास्तिक नहीं हूं।

दाता–पर श्रुति ने जो परमात्मा के रूप का प्रतिपादन किया है, उसके पहले पद को तूने नहीं पढ़ा, क्या तुझे 'सत्य' (='है' का भाव) प्राप्त है?

मैं–क्या कहूं?

दाता–सच।

मैं–सच कहने से लाज आती है, पर है इसी तरह ही, जैसे कि आपने कहा है। मन उड़ता है, 'सत्य प्रतीत' नहीं है।

दाता–तुम्हारा अनुभव आस्तिकता की ओर से बन्द है। तुम्हारे भीतर 'है' का निरन्तर भाव नहीं। न वह वृत्ति में सदैव आरूढ़ है न कभी तुमने उसका अनुभव किया है।

मैं–(सोच सोचकर) और यों तो ठीक है और यों मैं नास्तिक हूं, पर हे दाता! मुझे विद्या जिस ओर को ले गई थी, तू उसमें से मुझे किस ओर लिये जा रहा है? मेरा हृदय हिल चुका है, मेरा मन टूट रहा है, उदासी छा रही है और सुख आ रहा है। पर फिर तू बुरा भी नहीं लगता, तेरी बातों को सुनने को जी चाहता है। साफ-साफ बता कि मैं क्या करूं?" मेरे यह कहते ही उनका रंग बदल गया, नैन मुंद गए, 'प्रियतम जी' का वाक्य निकला, जल भर आया और आंसू छमाछम गिरे। मुझे भी कंपन हुआ, आंखें बन्द हो गईं, सहसा अश्रु निकले और सुध न रही। काफी देर बाद जब मेरे नेत्र खुले। दाता जी जा चुके थे, ड्योढ़ी तक पहुंच चुके थे, पर यह कहते जा रहे थे: 'तू मुर्दा है, तू मुर्दा है तू मुर्दा है।'

मेरे अन्दर भय छा गया। 'मैं मुर्दा हूं?' पहले मुझे अन्धी बनाया, फिर नास्तिक बनाया और अब मुर्दा बना दिया। मैं क्या करूं? जी ने कहा: पिता जी से कह, पर भय-सा लगा और मैं चुप रही। रात को जब मैं सोने लगी तो मेरे कान बार-बार यही सुनते थे, 'तू मुर्दा है', अत: इसी भ्रम में सो गई।

दो चार दिन दाता जी दिखाई न दिए। मेरे शरीर की खुशी और आनन्द की समाप्ति हो गई। चाहे अधिक पढ़ने के कारण मैं कई बार सिर के दर्द और हाज़मे की खराबी के कारण क्रोधी और चिड़चिड़ी-सी होकर दुखी होकर दुखी हुआ

करती थी, पर अब तो मैं डांवांडोल और उदास-सी हो गई। फिकर और सोचों में पड़ गई कि विद्या के सभी ख्यालों, युक्तियों, तर्कों-वितर्कों से इन झंझटों में से जी को निकालूं, पर मैं निकाल न सकी। माता-पिता भी चिन्ता करने लगे। मुझसे पूछते कि तू दुर्बल क्यों होती जा रही है? पर मैं जिस समय कुछ कहने लगती, तब अपनी मूर्खता के इक़रार की लज्जा मुझे कुछ कहने न देती। साथ ही भय लगता कि कहीं पिता जी दाता जी का आना बन्द न कर दें और मेरा जी यह चाहता था कि वे आयें और उनसे और वचन सुनूं। इसलिए माता-पिता को कुछ न बताया। छठे दिन दाता जी लाल सेब की भांति दमकते हुए खुशी-खुशी यह गाते हुए नदी के किनारे पर मिले:

त्रिसन बुझी ममता गई नाठे भै भरमा।
थिति पाई आनन्दु भइया गुरि कीने धरमा।।

मैंने सिर झुकाकर पूछा: "दाता जी! क्या मैं मुर्दा हूं? प्रकृति का भाग तो मुर्दा है, पर मैं तो जागृत ज्योति हूं।"

दाता-(हंसकर) मुर्दे के साथ जीवित भी मुर्दा हो रहा है।

मैं-मेरी समझ में नहीं आता कि यह कैसे मुर्दा हो रहा है।

दाता-आओ देखें तो। यदि तुम्हारे पिता के बाग में गुलाब का एक सुन्दर पौधा हो और तुम मोतियों को जलाकर उनकी राख उसकी जड़ों में खाद के तौर पर डाल दो तो तुम मूर्ख कहलाओगी अथवा बुद्धिमान?

मैं-मूर्ख।

दाता-क्यों?

मैं-इतनी कीमती वस्तु को एक मामूली से पौधे में डाल देने के कारण।

दाता-भला दोनों में से बड़ा कौन है?

मैं-मोती।

दाता-क्या मोती खा-पीकर बढ़ सकता और पनप सकता है?

मैं-नहीं।

दाता-फिर बड़ा कौन हुआ?

मैं-मोती, क्योंकि मोती का मूल्य ज्यादा है।

दाता-हां, यही तो खेल है। तुम्हें मूल्यांकन की समझ नहीं है। मूल्यांकन तो जीवन और मौत के दृष्टिकोण से होता है, केवल बनिये के मूल्य से मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। हां मैं पूछता हूं, अब तू जीवन को दृष्टि में लाकर बता कि दोनों में से कौन बड़ा है?

मैं-गुलाब, क्योंकि मोती मुर्दा है और गुलाब जीवित है। मोती की अपेक्षा गुलाव जीवन में बहुत उच्च है।

दाता-यदि बकरी गुलाब को खा जाए तो तुम क्या करोगी?

मैं–अब तो पता चल गया है यदि बकरी को जीवन की दृष्टि से देखा जाय तो वह गुलाब की अपेक्षा उच्च श्रेणी में है और इस मूल्यांकन में अधिक अमूल्य है।

दाता–तब क्या बकरी के सामने गुलाब मुर्दा है?

मैं–हां।

दाता–इस तरह आदमी के मुकाबले में बकरी क्या है?

मैं–मुर्दा, पर आप यह बताइए कि आदमी किसके सामने मुर्दा है?

दाता–जीवित के सामने।

मैं–और जीवित कौन है।

दाता–जो अपनी वास्तविकता में, अपने वास्तविक स्वरूप में, अपने कारण के साथ अपृथक रूप से जुड़ा हुआ है; वह चेतन है, जागृत है, वह जीवित और मृतक के मूल्य को पहचानता है।

मैं–वह कैसे?

दाता–हमारा वास्तविक रूप तो 'प्रेम' और 'आनन्द' है।[१] पर हम सारा दिन सोचों, गिनतियों, मुर्दा उलझनों में पड़कर दुःखी, चिन्तातुर और कष्ट भोग रहे हैं। क्या तुम जानती हो कि प्रेम का वह प्रकाश (प्रकट रूप) क्या है जिसमें से हमारी बुद्धि अथवा मन को पता चल सके कि प्रेम यह है।

मैं–पता नहीं।

दाता–आकर्षण।

मैं–हैं! आकर्षण?

दाता–जब किसी ओर हमारा मन आकृष्ट होता है, आकर्षित हो जाता है तो हम जानते हैं कि इस वस्तु के साथ हमें प्रेम है।

मैं–(सोचकर) है तो ठीक।

दाता–फिर जिसके अन्दर आकर्षण नहीं है उसके अन्दर प्रेम ने प्रकाश नहीं किया, वह सोया हुआ अथवा मूर्च्छित है।

मैं–जी हां।

दाता–हमारा स्वरूप प्रेम है जब प्रेम मूर्च्छित है तो हम अपने स्वरूप में जीवित कैसे हैं?

मैं–ठीक है; प्रेम कहा तो जाता है, पर आकर्षण तो कभी क्षण भर के लिए किसी लोभ लालच सुख की ज़रूरत को किसी ओर लेकर जाय, तो पड़कर फिर बस, हम उसी तरह खुश्क से कुछ बंधे हुए हिसाबों में चलने वाले हो जाते हैं।

दाता–किसी की ओर आकर्षण का अर्थ है 'कार्य' की ओर आकर्षण, पर

---

१. अस्त, भांति, प्रिय।

खींच होनी चाहिए कारण की ओर। कारण है वाहिगुरू ब्रह्म ईश्वर। जब उधर आकर्षण नहीं, लगन नहीं, तब हम जीवित हैं अथवा मृतक?

मैं–(चौंककर) हाय हम मुर्दे हैं, ठीक!

दाता–देख एक जीवित व्यक्ति ने कहा है:

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतान।
फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै सो तनु जाणु मसाणु॥

मैं–अब समझी कि मैं मुर्दा हूं ठीक। मेरे अन्दर परमात्मा की ओर प्यार का आकर्षण और आकर्षण में रस नहीं है।

इतने में पिता जी आ गये और उन्हें जल्दी थी अतः हम घर पहुंचे।

भोजन करने के पश्चात् मैं दाता जी को अपने पुस्तकालय में ले गई और वहां जाकर कहा, कृपया मुझे समझाइए और सुमार्ग पर चलाइए और बताइए कि क्या बात है?

दाता–तू कुछ कम जानती है, पर पहचानती कुछ भी नहीं है। बता तो, जानने वाला, और जो पदार्थ उसके भिन्न हैं, उनको जानता है, पर अपने-आपको तो पहचान सकता है, आपे को कैसे पहचान सकता है?

मैं–कैसे?

दाता–दृष्टि सारे दृश्य को देखती है, कभी दृष्टि ने अपने-आपको भी उसी तरह से देखा है जिस तरह कि वह सारे दृश्य को देखती है?

मैं–नहीं।

दाता–फिर दृष्टा सच्चा दृष्टा है, वह आपे को अपने लिए दृष्टिमान बनाकर कैसे देख सकता है? वह अपने-आपको स्वयं कैसे अनुभव कर सकता है?

मैं–ठीक है।

दाता–विद्या प्राप्त करके तो जानने योग्य परमेश्वर को अपने ज्ञान के दृष्टिमान की भांति विषम बनाकर समझने का यत्न किया है, जिससे जानते हुए जानने योग्य को जाना नहीं गया है, विद्या तर्क में ले जाती है, तर्क कारण और कार्य की लड़ी को जोड़कर परिणाम निकालती है और सत्य को जानने का यत्न करती है। यह ज्ञान सीधा, सम्पूर्ण और निरपेक्षित नहीं होता, यथार्थ ज्ञान इससे कहीं आगे है। ज्ञान वह है जो स्वाभाविक रूप से अपने आप में स्वतन्त्र आपे को आपे में पहचानता हो।

मैं–जिसे तुम अनुभव कहते हो?

दाता–अच्छा यही कह लीजिए।

मैं–फिर मेरे ज्ञान को आप क्या कहेंगे?

दाता–जानना।

मैं–ठीक-ठीक बताओ?

दाता–तेरी पढ़ी हुई विद्या के हिसाब से शायद तू मनोमय कोश में होगी, सम्भव है तू विज्ञानमय कोश में हो, पर यथार्थ दूर है, बहुत दूर है।

मैं–हैं! अभी तक मैं पांच ज्ञानेन्द्रीय और मन। हैं अभी मैं यहां पर ही हूं?

दाता–होगी। मनोमय कोश अविद्या रूप है, इससे आगे है विज्ञानमय। यही मनोरथ बुद्धि के साथ मिलकर विज्ञानमय कोश बनता है। कर्ता, भोक्ता, सुख, दुख, अंह, सारा ठाठ उसी तरह का।

मैं–मैं तो आनन्दमय से आगे आत्मा तक जानती हूं।

दाता–जब पता चल गया कि आगे भी कुछ है तो समझ ले कि जान गई। क़ैदी को पता चल गया कि बन्दीखाने से बाहर स्वतन्त्रता है, अतः वह ठीक जान गया।

मैं–फिर यथार्थ (सच) में कैसे जाऊं?

दाता–प्रेम की पाठशाला में क, ख से शुरू कर।

मैं–तू तो उस्ताद लगता है, कुछ सिखा दे।

दाता–'प्रियतम जी' सिखा सकते हैं। यह कहकर नैन भर आए और साथ ही मेरे हृदय में आकर्षण हुआ और आंसू भर आए।

मैं–मुझे विद्या प्राप्त करके भी क्यों सुध न आई?

दाता–तूने मुर्दों से विद्या प्राप्त की है, तेरा निवास उन मुर्दों में है जिनमें से दुर्गन्ध निकल रही है।

मैं–(चौंककर) वह कैसे?

दाता–जितने लोगों ने तुझे पढ़ाया वे 'पण्डित आखाए बहुती राही कोरड़ मोठ जिनेहा' थे और जिस घर में तू रहती है, उस घर के लोग अपने-आपको आत्मा कहते हैं, पर उनका मन माया में लीन है वह पुरुष और कैवल्य का शोर मचाते हैं और स्वयं प्रकृति के तख़्ते से कभी भी ऊंचे नहीं उठे।

मैं–कैसे?

दाता–आत्मा का कर्म है 'देना' और माया का धर्म है 'लेना'[१]। तेरे माता पिता और घर के लोग, आठों पहर तू जिनके पास रहती है, वे लेने की शक्ति में प्रबल हैं, वे देना तो जानते ही नहीं हैं। वे अपने किसानों से उनको मारपीटकर, उन्हें दुख देकर, शासकों को घूस देकर अपने हक़ और वायदे से अधिक छीनते हैं। यजमानों को भूल में डालकर उनसे पूजा लेते हैं, चोरी के माल को सस्ते दामों में खरीद लेते हैं। रात-दिन लेने-देने और इकट्ठी करने में उनके शरीर ही नहीं, बल्कि मन और बुद्धि भी डूबे रहते हैं। झूठ बोलते हैं, हक़ मार लेते हैं, दुख देते हैं। अतः माया में लीन और मग्न रह कर जो पाप करते हैं और विद्वान

१. आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु।। [जपुजी]

बनकर आचरण की सुध नहीं रखते, वे न केवल मुर्दे ही हैं बल्कि जल रहे मुर्दे हैं। वे कहते हैं कि बुरे कर्म और अच्छे कर्म दोनों बेड़ियां हैं, पर अब तक तो उनकी बुरे कर्मों की एक बेड़ी भी नहीं टूटी है और दम भरते हैं कि हम आत्मा हैं, कैवल्य हैं। इस कुसंगत का प्रताप है कि तू जानती हुई भी नहीं जानती।

मुझे यह बात हृदय में जा चुभी और मैंने सोचा कि ठीक है पिता जी षट्शास्त्र वेत्ता हैं, पर पैसे जमा करते समय पाप को कुछ भी नहीं समझते, प्रत्येक बात प्रत्येक वस्तु के साथ अत्यन्त पकड़ है। हमने जो कुछ विद्या में पढ़ा है, ठीक है कि वह हमारे मन पर घटित नहीं हुई है।

दाता–तुझे विद्या इसलिए पढ़ाई गई थी कि–

श्रेयष्च प्रेयष्च मनुष्यमेत्ष्ठो संपरीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयोमंदो योगक्षेमाद् वृणीते।

[कठ, वली २ श्लोक दो]

प्रयोजन यह है कि तुझे श्रेष्ठ वस्तु प्राप्त हो, इसलिए नहीं कि तेरे पिता को चर्चा और वाद-विवाद अच्छा लगता है, कि तू विद्या के अखाड़े का मल्ल बनकर विजय प्राप्त करे, पर इसलिए कि तू व्यापारी बनकर गुण के माल का सौदागर बने और 'सच' पर पहुंचे। तुम्हारे बारे में ही शायद लिखा है–

अविद्यायमन्तरे वर्तमानः स्वयंधीरः पण्डितं मन्यमानः।
दन्द्रम्यमाणः परियंति मूढ़ः अन्धेनैव नीयमानः यथान्धः।

[कठ, वली २ श्लोक ५]

इसलिए मानो विद्या तुम्हें अभिशाप दे गई है। मैं यही वाक्य सुनकर कट गई, मैंने देख लिया कि पढ़-सुनकर केवल लड़ने वाली बुलबुल ही बनी हूं। ठीक जिसके बारे में मैंने पढ़ा है, उसकी ओर से मुर्दा हूं, नास्तिक हूं और अन्धी हूं।

फिर एक दिन मैंने दाता जी से कहा कि मुझे रास्ता बताइए, तब आप कहने लगे: रास्ता प्रेम है, पर वह 'प्रियतम जी' के पास है। जब मैंने पूछा कि प्रियतम जी कहां पर हैं, तब कहने लगे, 'यहां पर ही'। मैंने कहा वे किस तरह मिल सकते हैं? तब कहने लगे, 'साई वसतु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ', यह कहकर नैन भर आए और फिर नैनों से दाता जी उठकर चले गये और फिर वापिस न लौटे।

वे तो फिर मिले ही न और मुझे वैराग्य हो गया। रात-दिन या तो 'प्रियतम जी' मुंह से निकलता रहता या दाता जी को ढूंढती फिरती। पुस्तकें और बस्ते बन्द हो गए, मेरे हाथों में केवल एक वैराग्य शतक ही रह गया। बस अपने-आप रोने लगना, उदास हो जाना, बावलों की भांति फिरते रहना, रातों भर जागते रहना, ठण्डे श्वांस भरते रहना। मेरे बाप यह सहन न कर सके। लगे पड़ताल करने, अन्त में उन्हें पता चल गया कि दाता लोग कोई वैराग्य की चिंगारी डाल गये

हैं। पिता जी मुझे समझाने के लिए उनकी निन्दा करने लगे। कहने लगे वह निरक्षर भट्टाचार्य था। हमारे सामने एक दिन संस्कृत की एक पोथी उल्टी करके खोलकर देख रहा था, उस दिन जो बात कही थी, वह सुनी-सुनाई थी। तू पण्डित है, मूर्खों का कहना नहीं मानना चाहिये।

मैं क्या कहती? पिता जी को पिता जी की भूल का पता बेटी होकर मैं कैसे बताती? यदि उनसे मन के रहस्य की बात करती तो दाता जी की और निन्दा सुनती, जिसकी अपेक्षा शरीर दे देना अच्छा था। ज्यों-ज्यों माता-पिता रोकते; अपना बल लगाते, त्यों-त्यों मेरा वैराग्य बढ़ता चला जाता। दाता जी खूब अच्छे लगते। प्रियतम जी का ख्याल बेताब कर देता। मुझे अभी तक भी पता नहीं था कि 'प्रियतम जी' कौन है और कहां पर हैं? पर मेरे अन्दर हर समय एक आकर्षण उनकी ओर रहता है, जो एक श्वांस के लिए भी नहीं भूलता और कभी-कभी मुझे वहम में एक झलक-सी आती है कि मानो शेर की भांति निर्भय प्रेम कै पुञ्ज, सम्पूर्ण दाता और क्षमा का रूप गुणों का एक स्वरूप धारण करके आंखों के आगे से गुज़र गया है। अत: वैद्य जी महाराज! मुझे तो प्रियतम जी का इतना ही पता है। जो बात मैंने आपको सुनाई है, वह जितनी मुझे याद थी इन शब्दों द्वारा सुना दी है। दाता जी के वाक्य और वचन बहुत प्यारे और सुन्दर गुंथे हुए और कटाक्षों से भरे होते थे और साथ-साथ उनके कण्ठ की मधुरता और संगीतिक लहर एक अलग जादू करती थी जिसे मैं अपने कण्ठ से कह नहीं सकती। अत: यदि इनके सुनाने में, अर्थात् बताने में कहीं कोई त्रुटि है तो वह मेरी है; यदि कोई मेरी भूल है, तो दाता जी तो अचूक बातचीत करते थे।

यह वार्ता मैं पहले आपको सुना चुकी हूं कि किस तरह पिता जी मेरे वैराग्य को दूर करने के लिए एक मूर्ख अपढ़ और पापों के पुंज धनाढ्य व्यक्ति के साथ मेरा विवाह करके इसे मेरे वैराग्य का इलाज मानकर इस कार्य में परिपक्व होकर लग पड़े थे और मुझे सिवाय रात को चुपके से घर से चलकर किसी वन में वैराग्य ओर तप करके अपनी परमार्थिक मनोकामना को पूरा करने के लिए कोई रास्ता और चारा बाकी नहीं दीखता था, 'मैं कभी जीवन पद को प्राप्त कर सकूं' इस चाव ने आधी रात के समय मुझे घर से निकलने के लिए प्रेरित किया और यहां पर पहुंचाया है।

कन्या की इस व्यथा को सुनकर वैद्य, जो जाति से ब्राह्मण तो नहीं थे, पर किसी पण्डित की सेवा करने के कारण उसकी कृपा से अच्छे विद्वान और वैद्य हो गये थे, चकित हो गये। कन्या की जो दशा थी, कुछ इसी तरह का होश उसका (वैद्य का) भी खुला और दाता जी प्यारे लगने लगे। पहले तो परोपकार जानकर वह एक विद्वान का इलाज करता था, अब उसे एक योगिराज और वीतरागी की सेवा नजर आने लगी, प्यार आ गया और वह ख्याल जाग उठा कि

किसी तरह ये शीघ्रातिशीघ्र स्वस्थ हो और 'प्रियतम जी' का पता हमें भी चले, जिनके सत्संग से ऐसे योगिराज उत्पन्न हो रहे हैं और यदि बन पड़े तो हम भी उनके द्वार पर पहुंचकर जीवन पद को प्राप्त करें।

: ४ :

चुंड नगर से कुछ कोस पश्चिम की ओर झेलम नदी बहती है। इसके पार एक कोस की दूरी पर कई मील चौड़ा और एक सौ मील लम्बा रेत का टीला-सा दिखाई पड़ता है, जिसे प्रायः लोग थल (रेतीला इलाका) कहते हैं। इसी रेत स्थल में सस्सी की मौत हुई बताई जाती है[१]। इस टीले और नदी के बीच में दूर तक जो धरती चली गयी है, उसे कच्छी कहते हैं। चुण्ड से चलकर नदी को पार करके 'माड़ी' नामक एक गांव है, जो इस कच्छी में टीले की पसली की भांति है। इस गांव में वैद्य जी का घर है। नये प्रेम के रंग के कारण, जो प्रियतम जी की विद्या को सुनकर उत्पन्न हुआ था, वैद्य जी अपने रोगी और कन्या को अपने गांव में ले आए और अपने घर में रखकर अत्यन्त प्रेम सहित सेवा में लग गये थे। प्रभु की कृपा से उनकी सेवा को फल लगा, दाता जी राजी हो गये। आंखें खोलते हैं, बाते सुनते हैं, समझते हैं, पर अभी जुबान बोल नहीं सकती। वे अब समझ गए कि मेरे राजा जी ने अपनी आज्ञा से मुझे ऐसे स्थान पर भेजा है कि जहां पर उसके राज्य की सेवा का कोई और कार्य मेरे सिर पर है। उसी की इच्छा ने मुझे कन्या के पास पहुंचा दिया है और मेरी बेसुधी में ही एक आत्मा मेरे 'प्रियतम जी' के राज्य में प्रवेश करने के योग्य हो गई। जिस दिन आपकी जुबान में बोलने की शक्ति आई, उस दिन कन्या पास बैठी थी, आपने पूछा, 'मैं कहां पर हूं'?

कन्या-'माड़ी शाकर गांव' में, रेत के टीले की कच्छ में। शुक्र है, लाख बार शुक्र है। भगवान ने यह दिन दिखाया है।

दाता-मैं यहां पर कैसे पहुंचा हूं? और तुम चिनाब के किनारे उनके घर बार से[२] इतनी दूर झेलम से पार होकर यहां पर किस तरह आ गई हो?

कन्या ने अपने उदासी, वैराग्य, माता-पिता के कठोर व्यवहार, घर से विदायगी, नदी के किनारे चुण्ड के पास पहुंचने पर दुख, उस समय उनके शव के बजरे में पहुंचने का सारा समाचार फिर अपनी निराशा के कारण दुख, वैद्य जी का पहुंचना और भाई जीवना के प्यार का सारा वृत्तान्त सुनाया। अन्त में वैद्य जी का 'प्रियतम जी' के प्रेमी और श्रद्धालु हो जाने का वृत्तान्त कह सुनाया।

---

१. वास्तव में सस्सी सिंध देश की थी और केच मकरान को जाते समय रास्ते में गर्मी के कारण मरी थी।

२. जहां पर आजकल रामनगर है, इससे कुछ आगे नदी के किनारे उस समय एक गांव हुआ करता था, जिसे नदी बहाकर ले गई है, कन्या उस गांव की रहने वाली थी।

यह सब कुछ सुनकर आपने कहा—'प्रियतम जी' और कहते ही आंखों में से दो-तीन आंसू गिर पड़े और आप सो गये। इसके कुछ दिनों के बाद वे पूरी तरह स्वस्थ हो गए, क्योंकि अब उनकी अपनी परिपक्व सुरति काम करने लगी थी। कन्या के पूछने पर दाता जी ने जब अपनी मार-पिटाई का सारा समाचार सुनाया तब कन्या को बहुत दुख हुआ। "हाय! आपका इस तरह भयानक दशा में पहुंचना और मृत्यु के मुंह में पहुंचकर लौटना, यह सब कुछ मेरी मूर्खता का फल है। न मैं घर से इस तरह निकलती और न आप पर शक होता, न आप दुःख देखते, पर हाय भाग्य! मुझ अन्धी को उस समय कोई और रास्ता दीखता ही नहीं था, मुझ पर धिक्कार है, मेरे जन्म और जीवन पर धिक्कार है।"

दाता जी—इस दुःख की क्या ज़रूरत है? मैंने मार किसी के बल के आगे झुककर तो नहीं खाई, मैं अपने सम्मान और स्वरक्षा के नियम वाला हूं। पर मेरी फकीरी, नम्रता, गरीबी, हार जाने, लड़ने, धक्के को सहन करने अथवा दुःख देने या लेने में नहीं है। मैं संसार का, लोगों का अथवा अपने मन का फकीर नहीं हूं, मैं तो अपने 'प्रियतम जी' के द्वार का भिखारी हूं। मुझ से करवाये जाने वाले कामों की चेष्टा मेरी शक्ति, बल, मन, बुद्धि, इरादे अथवा संकल्प में नहीं, पर 'प्रियतम जी' की आज्ञा में है। वे मेरे अन्दर कर्ता अथवा मुझे पथ पर चलाने वाले हैं और मैं उनकी इच्छा के आगे मन्त्र की भांति हूं। जैसे लेखक के हाथ में कलम होती है, कलम लेखक की आज्ञा में जो कुछ वह चाहता है, वही लिखती है। फिक्र न करो, मुझे न तो किसी ने पीटा है और न ही मुझ पर किसी ने विजय प्राप्त की है और न ही किसी के आगे मैंने हार मानी है। जो कुछ हुआ है, वह 'प्रियतम जी' की आज्ञा थी, उनका कौतुक था, इसमें उनका कोई कार्य था।

कन्या—दाता तुम सचमुच ब्रह्म हो।

दाता—(कांपकर) 'प्रियतम जी'! यह कहते हुए आंखें बन्द हो गई, प्रार्थना में जुड़ गये और दो-तीन बूंदें जल की निकलीं, जब आंख खुली तब कन्या ने कहा—श्री जी! इस मुर्दा और अन्धी से यह भूल हुई है, क्षमा कीजिये।

दाता जी—मैं न तो ब्रह्म हूं और न ही दाता जी हूं। दाता तो मेरे 'प्रियतम जी' स्वयं है और ब्रह्म वह है जो मेरे 'प्रियतम जी' का 'प्रियतम' है।

कन्या—मैं पढ़ी-लिखी हूं, पर हूं मूर्ख। खेती हूं मगर जली हुई। जली हुई खेती हूं, पर जली पानी से हूं। मेरी भूलों का अन्त नहीं है।

हे 'प्रियतम जी' के प्रेमी जी! मुझे क्षमा कीजिए! मैं घर से बनवास का संकल्प लेकर आई थी, पर फिर घर में निवास हो गया है।

दाता—सब कुछ 'प्रियतम जी' की आज्ञा से है। घरों में क्या है? और वनों में क्या है? नदी के किनारे विचरकर देख लिया है। पहला वन तो तुझे तेरी विद्या

और शास्त्रों का मिला था, उसमें तू खोई रही। दूसरा वन नदी का किनारा मिला, मन शान्त न हुआ, रोते हुए समय व्यतीत हो गया। अब जो घर के निवास में घृणा है और वन के निवास में रुचि है, यह भी भूल में पड़ने की बात है। सारी रात वन के समान है, क्योंकि घर के सभी सदस्य सो जाते हैं और पूर्ण एकान्त हो जाता है। उस समय कोई शोर नहीं होता, जिससे डरकर वनों में जाने की जरूरत पड़े। उस वन रूपी रात को सोकर और करवटें बदलकर गुज़ार दिया जाता है। दिन गृहस्थ का है, धर्म और श्रम की कमाई का समय होता है, उस समय पापों के अधर्म की कमाई में लगकर गृहस्थ का नाश किया जाता है। रात जो हमारे लिए संन्यास की थी और दिन जो हमारे गृहस्थ के लिए था, हम उन दोनों को बरबाद कर रहे हैं, आज्ञा को नहीं पहचानते। वनों में जाकर हम शास्त्रों, चेलों, कुटिया के निर्माण और क्षेत्र निर्माण के परिचय की खोज करते हैं। यदि हम घरों में रहते हैं तो माया में डूबकर घरों को नर्क बना लेते हैं[१]। हम कहीं पर भी रहकर आज्ञा की पहचान नहीं करते।

इस समय वैद्य जी और उनकी सुशील पत्नी आ गई। दाता लोग को इस तरह से बातें करते हुए देखकर दोनों प्रसन्न हुए। जो कुछ वे कह रहे थे, वैद्य जी ने उसे सुना था, सिर झुकाकर कहने लगे—"दाता जी! आप धन्य हैं!"

दाता—'प्रियतम जी' दाता है, वही धन्य हैं। हां जी, वीणा धन्य नहीं है, पर वीणा को बजाने वाला धन्य है। वीणा अपने में से वही स्वर निकालती है जो बजाने वाला निकालना चाहता है। धन्य हैं 'प्रियतम जी' जो आपके हृदय में अनुकम्पा भरकर मुझ ऐसे वनचारी की सेवा करवाते और अनाथ वनवासियों की सहायता करवाते हैं, वे धन्य हैं और तुम भी धन्य हो जो प्यार करते हो।

कन्या—श्रीमान जी! मैं विद्या पढ़कर बिगड़ी हुई अभी संशयों के हाथों से मुक्त नहीं हुई आपके विरह में केवल आपकी स्मृति का संकल्प था, आपके मिलने से आपके स्वस्थ होने की लालसा थी। अब चाहिये तो यह कि आपके दर्शन और आपकी सेवा में मस्त रहूं, पर फिर बुद्धि मीन-मेख निकालती है, पूछने को जी चाहता है कि क्या 'प्रियतम जी' (नैनों में आंसू भर आये) संन्यास से वर्जना करते हैं, जो सबसे श्रेष्ठ आश्रम है।

संन्यास

दाता—संन्यास तो सिखाते हैं, पर वह संन्यास अन्य प्रकार का है। कहते हैं—'मैं' का संन्यास करो, 'मेरी' का त्याग करो, शरीर के साथ मोह को तोड़ो,

---

१. गृह राज महि नरक उदास करोधा।। बहु बिधि वेद पाठ संभि सोधा। देही महि जो रहै अलिपता तिसु जनकी पूरन घालीऐ।। (मारु म: ५ अ:)

फिर जो कुछ अपना बनाया था उसका त्याग कर दो, पर यों नहीं, कि 'मैं' का त्याग करके चुप करके पत्थर और भीतर से जड़ होकर बैठे रहो और 'मेरी' (माल, धन) से मुंह फेरकर लोगों पर बोझ बनकर टुकड़े मांगते फिरो, या वैसे ही वनों में बैठे रहो अथवा बड़े गृहस्थी डेरेदार बनकर संन्यासी कहलाओ। वे कहते हैं, 'मैं' और 'मेरी' को अपने अन्दर से तो काटो, पर काटकर फेंक न दो, 'प्रियतम जी' के आगे 'मैं' को रख दो और आज्ञा में काम करो। प्रियतम जी की आज्ञा उस काम को करवाती है, जिसमें 'प्रियतम जी' के 'प्रियतम' की बड़ाई प्रकट होती है और जब वे 'मेरी' का त्याग करवाते हैं, तो उस सारे को, जिसको, 'मेरी' कहा जाता है और शरीर को, जिनके कारण माल धन आदि मेरे बनते हैं, अपनी आज्ञा में सेवा में सफल करवाते हैं।

वैद्य जी–इसे तनिक स्पष्ट समझाने की कृपा करें।

दाता–संन्यास नाम है चोट मारने का, त्याग करने का। पहले माल धन, स्त्री आदि का त्याग करके वानप्रस्थी बना जाता था, फिर त्याग में ही जगत के उद्धार के लिए चक्कर लगाने के लिए निकलते थे, पर अब तो पहले तीन आश्रमों में से गुजरने के बिना ही संन्यासी हो निकलते हैं। त्याग अपने मनोरथ में सफल नहीं हो रहा है। सोचिए, हमारे मनों में माल, धन, परिवार आदि चिपटे नहीं थे, पर इनके मोह प्यार चिपटे थे। हमारी 'मैं' के साथ इनके मोह चिपटे थे अतः अपनी 'मैं' के साथ इनके मोह को तोड़ना था। यह वास्तविक संन्यास था। अतः 'मैं' का अन्तिम त्याग यह है कि अपनी 'राय' अपनी 'इच्छा' को 'प्रियतम जी' की आज्ञा के सामने झुका दें। वह काम करें, वह सोच सोचें और वह बोल बोलें जिनके लिए वे आज्ञा देते हैं और उनके प्यार और ध्यान में मस्त रहें। 'मैं' का प्रसार था 'मेरी'। मेरी का त्याग यह है कि शरीर जिसे मेरा कहा जाता है, इसी के मोह के कारण माल धन 'मेरे' लगते हैं, ये सभी और शरीर तक भी अपने न समझे जायं, पर प्रियतम जी के ही समझे जायं। उनकी आज्ञा को पहचान कर आज्ञा में ही इनको सफल करें। प्रियतम जी 'ब्रह्म' वाहिगुरू से प्यार करते हैं, जो 'प्रिय' स्वरूप है। उस प्रिय स्वरूप को प्यार करें और उसे सदैव अपने अंग-संग जानें। हां उससे हमारी दूरी कभी न हो। पत्नी, पुत्र और किसी प्यारे का जब कभी देहान्त हो जाय, तो उन्हें प्रियतम जी के जानकर उनके अर्पण करें। पदार्थ की कमाई करें, पर धर्म की कमाई के साथ फिर उसे धर्मार्थ में लगाकर भला मनाएं, उसकी पकड़ में न फंसें, न देने की और न ही लेने की, मेरी समझ में तो यही सफल संन्यास है।

योग

रात को ज़रूरत के मुताबिक नींद करने के बाद शेष सारा समय योग में बीते। योग है प्यारे का स्वास-स्वास स्मरण, स्मरण में लौ, लौ में आपा। हमारा

जो अपने संकल्पों के साथ मोह और प्रीति है, इसका अन्त हो और प्रियतम जी की स्मृति, ध्यान, संयोग में प्रीति हो। हां स्मृति श्वांस-श्वांस में हो। दिन को गृहस्थ के आवयक कामों के बाद जो समय हो, वह इस प्यार के रंग में व्यतीत हो और शरीर के साथ 'प्रियतम जी' के बताए हुए स्वर्ग राज्य के काम स्वाभाविक रूप से जो हों सो पड़े हों।

कन्या–यह मन के संकल्प में से निकलकर लौ में रहना जो आपने बताया है, उसे वैराग्य और विवेक के साथ प्राप्त करना है अथवा योग साधन के साथ?

दाता–किसी तरह भी हो। वैसे ही वैराग्य का होना कठिन है, कारण करके ही होता है, पर प्रियतम जी के साथ प्रेम हो जाय तो और सब कुछ से वैराग्य तो स्वाभाविक रूप से ही हो जाता है, इसी तरह प्रियतम जी की आज्ञा के सामने हीला बहाना नहीं चलता, उनकी सुमति अपनी बन जाती है, तब 'आज्ञा की पहचान का विवेक हो जाता है'।

हठ योग और कर्म योग प्रियतम जी इस प्रकार करवाते हैं। कहते हैं कि तुम दृष्टिमान के साथ मोह करते हो, 'नदरी आवै तिसु सिउ मोहु'। फिर कहते हैं, जो दृष्टिमान है वह नाशवान है, 'जो दीसै सो सगल निबासै'। फिर कहते हैं कि 'तिसु सिउ नेहु न कीजई जो दीसै चलणहारु' क्योंकि जिस वस्तु के साथ मोह होता है, जब वह वस्तु विनष्ट होती है, तब वियोग होता है। अतः इस दृष्टि मान के साथ मोह दुख पैदा करने वाला है इसलिए दृष्टिमान है, तब वियोग होता है। अतः इस दृष्टिमान की ओर से मुंह फेर लिया। फिर 'प्रियतम जी' कहते हैं– 'अैसी संचि जो बिनसत नाही' अब उसी मोह को दृष्टिमान की ओर लगा लिया जो अविनाशी है, क्योंकि दृष्टिमान का जो अविनाशी है, उससे वियोग नहीं होता अतः प्रियतम जी कहते हैं 'ना ओह मरै न होवै सोगु'। इसलिए उससे प्यार करने का फल शोक की निवृत्ति और सदैव सुख है।

अब वह देखने वाला (दृष्टा) प्रिय स्वरूप है, हम उसी का अंश है, इसलिए हमारी वास्तविकता भी 'प्रेम' ही है। हमने अपने प्रेम की शक्ति को दृष्टिमान की ओर लगा रखा है, इसका फल दुख होता है। यदि हम अपनी प्यार की शक्ति को दृष्टा (वाहिगुरू) की ओर लगा दें, तब उसके साथ संयोग हो जाएगा। वह भी चेतन है, 'प्रिय' स्वरूप है, हममें भी उसी की चेतन शक्ति और 'प्रेम' का अंश है। जब हमने जीवित साधन को सिद्ध किया, अर्थात् अपने प्राकृतिक प्रेम के स्वभाव को दृष्टिमान की ओर से हटाकर उसी ओर लगा लिया, तब संयोग हो जायगा। योग जुड़ने अथवा 'मिलाप' को कहते हैं। अतः 'प्रियतम

जी' इस प्रकार का योग[1] सिखाते हैं। यों दिन रात, उठते-बैठते, सोते हुए योग में ही रहते हैं और साथ ही गृहस्थ में बैठे हुए वे काम काज़ किए जाते हैं जिनके लिए प्रियतम जी की आज्ञा है, जिनको करने का कारण हमारी अलग इच्छा नहीं होती, पर 'प्रियतम जी' की आज्ञा होती है। इस प्रकार का 'योग' प्रियतम जी करवाते हैं। वे वन और घर को एक तुल्य करवाकर, जिन प्रेमियों को स्वयं पूर्ण कर लेते हैं, उनकी महिमा स्वयं करते हैं-'जित घरु बनु समसरि कीआ ते पूरे संसार।'

वैद्य जी-श्रीमान जी! दृष्टिमान (अर्थात् अपने अहं, शरीर, पत्नी, पुत्र, धन आदि) से प्यार उठकर दृष्टा, जिसे वाहिगुरू कहा है-मैं प्यार हो जाय, यह बहुत ही कठिन कार्य है। क्या इसके लिए प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि साधनों की जरूरत नहीं?'

सत्संग

दाता जी-प्रियतम जी ने 'दुख दारू' कहा है। दुख, जिससे कि लोग डरते हैं, वह दारू है, क्योंकि दुख दृष्टिमान से वैराग्य करवाता है। उधर उन्होंने एक नई वस्तु तैयार की है, 'सत्संग', जो दुखी को दुख देने वाले के मोह की ओर से घसीटकर दृष्टा की ओर खींच लेता है।

कन्या-सत्य है, परन्तु श्रीमान जी! प्रियतम जी के तो हमने दर्शन किये नहीं है, 'सत्संग'[2] उनका प्यार हमें किस तरह से सिखाता है?

प्यार-स्मृति-प्रेम

दाता-पहले प्रेम को समझें कि प्रेम क्या वस्तु है? जो प्रेम आदर्श है अर्थात् जो विशुद्ध आध्यात्मिक अथवा आत्मा और परमात्मा में होता है, उसको अभी हम समझ नहीं रहे हैं। पर दृष्टिमान के साथ जो हमारा मोह है उसको हम समझते हैं। इससे अगली बात को समझने का यत्न करें। जिसके साथ हमारा प्यार होता है, उसके लिये हमारे अन्दर एक आकर्षण सा होता है। यह आकर्षण चाहता है कि प्यारा किसी समय भी न बिछुड़े, आंखों से ओझल न हो, हर समय

---

१. बाबा जुगता जीऊ जुगह जुग जोगी परम तंत महि जोगं।

[आसा मः १]

अर्थात् केवल अपने आप में मग्न होना ही योग नहीं है, परम तत्व वाहिगुरू में जुड़ना योग है।

पुनः प्रानी परम पुरख पग लागो।। [पाः १०]

पुनः जिन प्रेम कीओ तिनही प्रभु पाइओ। [पाः १०]

२. वह संग जो सच में ले जाय, सत्यवादी का संग।

दीखता रहे। जब प्यारा प्राप्त होता है, तब आंखें उसको एक क्षण के लिए भी अपने से ओझल नहीं होने देतीं और यदि कभी प्यारा बिछुड़ जाय, तब मन उसे बिसारता नहीं है। हर समय आकर्षण होता है और भीतर प्यारे की स्मृति बनी रहती है। इसका अर्थ यह हुआ कि 'प्यारा' एक क्षण के लिए भी भूलता नहीं है। लीजिए अब हमें स्पष्ट रूप से पता चल गया कि (१) प्यार के संयोग के समय आंखें प्यारे को परे नहीं होने देतीं और मन में अनन्द भरा होता है और (२) वियोग के समय प्यार की 'स्मृति' अन्दर से दूर नहीं होती और मन में आकर्षण होता रहता है। यह प्यार का निश्चित स्वरूप है, जिससे हम निस्संदेह स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि प्यार का प्रकाश अथवा प्यार का प्रकट होना अथवा 'प्यार' का रूप, जिसको हमारी बुद्धि अब समझ सकती है, क्या वस्तु है? उत्तर–स्मृति।

'सत्संग' सिखाता है कि जब वह वाहिगुरू दीखता नहीं, आंखों के सामने नहीं है, तो तुम यों ख्याल करो कि उससे हमारा वियोग है और हमें जगत के प्यार से समझ आ चुकी है कि वियोग में प्यारे की स्मृति भूल नहीं सकती और आकर्षण होता है। अतः हम यदि प्यारे को बिछुड़ा हुआ समझकर उसे याद किया करें और उसकी स्मृति को प्रतिक्षण परिपक्व करें तब हमें उसका आकर्षण होगा यह आकर्षण ही प्रेम का प्रकट स्वरूप हमारी समझ में आया था कि वियोग के समय हमारे अन्दर होता है। अतः स्मृति के परिपक्व होने पर मानो प्रेम लग गया अथवा स्मृति प्रेम में बदल गई। जैसे बट से बीज और बीज से बट, वैसे ही प्रेम की स्मृति और स्मृति से प्रेम। ज्यों-ज्यों यह प्रेम बढ़ेगा, त्यों-त्यों प्यारे को भी हमारा आकर्षण होगा। वह क्यों? उसके लिए एक अन्य नियम है, उसे समझ लीजिए। वह यह है कि जिसको तुम सदैव याद करोगे, उसको तुम्हारी याद आएगी। यों सदैव याद करते हुए प्रियतम जी तुमसे प्रेम करेंगे। लीजिए मैं इसे फिर से दुहराता हूं–

जब हमारे अन्दर आठों पहर प्यारे की स्मृति का निवास हो जाए तो यह प्रेम प्रकट स्वरूप है। मानों प्रेम पनप उठा है। जब यह स्मृति निरन्तर हो जायगी, तब हममें प्रियतम का आकर्षण पैदा करेगी और वह आकर्षण जब मजबूत हो जायेगा, तब प्रियतम जी भी हमें याद करेंगे और आकृष्ट होंगे। फिर वे बड़े हैं, समर्थ हैं, हमें आकर्षित करेंगे। हम छोटे होने के कारण, हल्के होने के कारण खिंचे चले जायेंगे और प्यारे के साथ जा मिलेंगे। मेल हो गया; संयोग हो गया। इस तरह सुमति प्रदान करके अदृष्ट वाहिगुरू जी के साथ सत्संग संयोग करवा देता है।

कन्या–अदृष्ट प्रियतम जी की प्रतिक्षण की स्मृति का अन्दर पैदा होना भी तो कठिन सा काम है।

दाता—है तो सही, पर जैसे थोड़े से 'जामन' से एक मन दूध जमाया जाता है, इसी तरह सत्संग के एक 'क्षण' से[१] यह कार्य सिद्ध हो जाता है। वह कण अमूल्य है।

"किनका एक जिसु जीअ बसावै ताकी महिमा गनी न आवै।"

वाणी

वह कण इस प्रकार अन्दर आता है कि जब सत्संग में गए, वहां पर प्रियतम जी का प्यार उछल-उछलकर पड़ रहा होता है। 'जैसी संगत वैसा फल'। उनके दर्शन और संयोग के साथ वही रंग लगता है फिर सत्संग में प्रियतम जी का कीर्तन होता है। यह कीर्तन कर्मों का शिरोमणि कर्म है जिससे प्यारे की स्मृति अंदर में निवास करती है। फिर प्रियतम जी ने कीर्तन के लिए हमारे प्रेम के रंग की ओर से कच्चे मनों का निराश्रय नहीं छोड़ा, अपने प्रेम रंग में अपने परिपक्व हो रहे मन से 'वाणी' उच्चारण की है, उस वाणी की महिमा, स्तुति, प्यार, विरह तथा अन्य सुन्दर भाव ऐसे पक्के रंग से भरे हैं कि जब उसकी पक्की वाणी के साथ, चाहे चुप, चाहे बोलकर, चाहे गाकर, चाहे सुनकर किसी तरह भी अमृत का घूंट भरें, साईं की स्मृति अन्दर आ जागृत होती है। इस वाणी के कीर्तन को सुनना अथवा स्वयं कीर्तन करना, वाणी का पाठ करना अथवा वाणी का विचार करना, परम पुरुष की स्मृति की ओर खींचता रहता है।

नाम

अतः इस तरह का रंग जमाकर सत्संग हमें शून्य आकाश में बाहें मार-मारकर तबाह हो जाने के लिए छोड़ नहीं देता, बल्कि वाणी का रस डालकर हमें बताता है कि स्मृति एक सूक्ष्म अवस्था है और हम स्थूल देह वाले हैं। स्थूल देह के सुखों के प्रेम में रात-दिन लगने के कारण हम स्थूलता में परिपक्व हैं, अतः स्मृति को भी स्थूलता से आरम्भ करें। अतः वह अपने प्यारे अर्थात् अकाल पुरुष का नाम बता देते हैं और कहते हैं कि इसको जिह्वा पर रखकर और मन में से विचार को उस ओर लगाकर उस भाव के साथ, जो वाणी के पाठ और कीर्तन ने हमारे अंदर पैदा किया है, साईं का जाप करें। यह प्रेम संदेश है जिसे 'प्रियतम जी' लेकर आये हैं। इसको वे स्वयं 'सचा सोहिला' कहते हैं, 'एहु साचा सोहिला साचै घरि गावहु'। इस सोहले का रूप 'नाम' अथवा 'शब्द' है प्रियतम जी कहते हैं, 'एहु सोहिला सबदै सुहावा' यों इस सोहले से स्मृति का सूक्ष्म भाव जिह्वा का आश्रय लेकर उठता है और फिर मन में जाकर स्मृति बनता जाता है। इसको 'नाम का स्मरण' कहा जाता है। यहां तक कि विशुद्ध स्मृति बन

१. गुरमुखि कोटि उधारदा भाई दे नावें एक कणी।। (सोः मः ५)

जाता है और स्मृति में से आकर्षण और आकर्षण में से पक्के प्रेम में पलट जाता है और प्रेम बनकर प्रियतम जी का आकर्षण उपजाता है और प्रियतम जी हमें अपनी अनुग्रह के साथ खींचकर अपने साथ मिला लेते हैं। यह योग संपूर्ण हो गया। दृष्टिमान, जिससे हमारा प्यार लगा हुआ है। उसकी ओर से हमने स्मृति के साधन से मन का रुख मोड़ लिया था, मुंह फेरते ही हमने उसकी ओर से संन्यास धारण कर लिया था। विचार कीजिए कि जब हम अपने सर्वस्व को नाशवान जानकर अंदर से प्रियतम जी की आज्ञा में त्याग कर देते हैं और दूसरों के सुख के लिए, जिन्हें हम पहले पराए समझते थे, लगाते हैं तो वास्तविक संन्यासी हो जाते हैं अथवा नहीं। हम स्वयं प्रतियोग के सुख का आनन्द भीतर में लेते हैं और अपने संन्यास से बाहर सभी लोगों को, जो अपने पड़ोसी हैं, जो सृष्टि जनता–हैं, या प्रियतम जी के रचे हुए होने के कारण आपस में भाई–भाई हैं, सुख देते हैं, पर स्वाभाविक रूप से। हम इसको 'समस्त का भला' कहते हैं। टेक हमारी नाम पर और ध्यान हमारा प्रियतम जी में है, यों अविनाशी प्रियतम के साथ जुड़े रहते हैं। 'समस्त का भला' स्वाभाविक रूप से ही होता चला जाता है, हमारे संन्यास के स्वभाव के कारण। यों आप भी सुखी, जीवित काल में सुखी, नकदो नकद सुखी हो जाते हैं और शेष सृष्टि, जो अपने से भिन्न थी, हम से दुखी नहीं होती, पर सुख प्राप्त करती है। अतः लोक सुखी 'परलोक सुहेले' हो जाते हैं।

हम यों अपने अंदर से 'प्रेम' स्वरूपता को मोह कह–कहकर उसे काटने के स्थान पर परमपुरुष के साथ प्रेम करके, सफल करते हैं। फिर संन्यासी हो जाते हैं, आज्ञा को पहचानने से अहं के कट जाने के कारण और अहं के दूर हो जाने के कारण। शुद्ध होकर ज्ञानवान हो जाते हैं।

यह बात कुछ और होकर समाप्त हुई तो सुनने वालों के नेत्र बन्द हो चुके थे और सभी किसी ऐसे रस में निमग्न थे जिसे कि कभी देखा अथवा सुना तक नहीं था। दाता जी भी समझते थे, वे अपने रंग में निमग्न हो गए।

दाता जी के प्यार और इस तरह के वचनों का फल, यह हुआ कि विदुषी कन्या, विद्वान वैद्य और विदुषी वैद्य त्रिया यह तीनों व्यक्ति उस रास्ते पर चल पड़े, जिसका कथन राजा जी के सिपाही ने इस प्यार से किया था। अब रंग का जमाव शुरू हो गया। समय व्यतीत होता गया, न जाने दाता जी को माड़ी गांव में रहते एक वर्ष अथवा कुछ कम अधिक समय व्यतीत हो गया। इस बीच क्या हुआ? क्या राजा के सिपाही अपनी महिमा और प्यार किए जाने के रस में मग्न हो गए हैं? नहीं, माड़ी में सत्संग का मण्डल बन गया। कोई पच्ची व्यक्ति इस

१. नानक हुकमै जे बुझै त हऊमै कहै न कोइ।। (जपुजी)

सुख के साझी हो गए। राजा जी के सिपाही जो रेतस्थल के इस सिरे से परले सिरे तक कई गांवों में चक्कर लगा आये और तप्त हृदयों को शीतल किया। इस एक वर्ष में चिनाब और झेलम नदी के इस टुकड़े के किनारे पर, जहां पर गत वर्ष आप मृतक शव के रूप में किनारे पर आकर लगे थे, लगभग तीन सौ लोगों में जीवन, आध्यात्मिक जीवन, हां, हां प्रेम की जागृत लहर के पैदा करने वाले बन गये। परन्तु अब नौकरी तबदील होती है, स्वप्न दर्शन होते हैं और राजा जी, जिन्हें प्यार से कभी 'राजा जी' और कभी 'प्रियतम जी' कहते हैं, संकेत करते हैं कि 'मेरे प्यारे! जहां पर से शुरूआत हुई थी, वह स्थान अभी बंजर पड़ा है, वापिस लौट और उस बंजर स्थान पर जहां पर तेरे पवित्र रक्त की बूंदें गिरी थीं, उसे जाकर देखा कि तेरे विरह ने, हां, विरह सुलतान ने मोह ममता के आश्रय ही फल चला दिया है। तू वहां पर पहुंच और बीज डाल दे ताकि फसल तैयार हो और मैं अपने 'शाहंशाह' के खज़ाने में भण्डार पेश करूं, खोटे जो हैं वे खरे बनकर खज़ाने दाखिल किए जायं।'

'दाता जी' तो उन्हें लोग कहते थे, पर वे यह सुनकर प्रसन्न नहीं होते थे। वे तो राजा जी का सिपाही कहलवाकर प्रसन्न होते थे, क्योंकि उनका जीवन तो 'प्रियतम जी' की सुरति के तार में पिरोया हुआ केवल हुकम मात्र था। आज प्यारे जी ने वही गत वर्ष वाला अपना खून से लथपथ मगर अब धो डाला गया कुर्त्ता और दस्तार सजाई, सोटा हाथ में पकड़कर नदी के किनारे, बजरे में खड़े थे। वही फटे कम्बल और फूस, जिसमें दबे हुए आये थे, रखा है। दो मल्लाह बजरे को रस्से बांधकर ऊपर ले जाने के लिए खड़े थे। तीन सौ शुभ आत्माएं तीन सौ वे बुरे लोग जिन्हें मनुष्य बनाया गया था, जिनके अंदर 'प्रियतम जी' के प्रत्यक्ष दर्शनों के लिए उनकी स्मृति को परिपक्व कर रहे हैं, उस प्यारी सूरत की ओर देख रहे हैं, जो उन मुर्दा दिलों में जीवन का प्रवाह चलाकर आज जा रही है। हां, जिस दाता ने मौत के घाट पर सोए हुओं को जगाकर जीवन के पड़ाव के मार्ग पर चलाया, आज विदा हो रहा है! छः सौ आंखों में से टपटप आंसू निकल रहे हैं। आज चिनाब नदी! तू आज चन्द्रभागा हो गई है, तू धन्य हो गई है; जिसके निर्जीव जल में जीवन वाले जल की छः सौ बूंदें निरंतर और नई-से-नई पड़ रही हैं और तेरे हिमानी ठण्डे पानी को कह रही हैं कि हम जीवन के स्रोतों में से आ रही हैं, हमारी आध्यात्मिक गर्मी से पवित्र हो जा और जाग उठ।

बजरा चल पड़ा, तीन सौ शीश झुक गये, पर वह बिक चुका सिर, जो बजरे में अडोल खड़े प्यारे के रंग में मस्त है, तीन सौ हृदयों के प्यार के कारण आप नहीं रहा—संगत जानकर 'प्रियतम जी' के प्रेमी जानकर प्यार और सत्कार से प्रियतम जी की प्यारी स्मृति में झुक गया है। तीन सौ और एक सिर परस्पर झुक रहे हैं। जिन 'पवित्र' शीशों में 'प्रियतम जी' का प्यार ठाठें मार रहा है।

: ५ :

पंडिताइन, बेटी से प्यार करने वाली मां रो-रोकर आधी हो गई है, चेहरा झड़ गया है, आंखें नीचे उतर गई हैं। विरह कम नहीं हुआ आज फिर सिसकियां भर रही हैं:-

पण्डित जी! मैं तो मूर्ख ममता की मारी ने रो-रोकर अपना आपा खो लिया है, मगर आप तो सयाने थे। एक वर्ष व्यतीत हो गया है, आप ने जो निश्वासों से प्यार लगा लिया है, शरीर तो आपका आधा भी नहीं रहा, घर में से चाव और खुशी निकल गई है। (ऊपर की ओर देखकर) बिटिया! हमें क्यों तबाह कर गई है। हे मेरे घर में बोलने वाली बुलबुल और कूकने वाली कोयल! यदि तूने मोह को यों ही तोड़ना था तो प्यार क्यों किया था? बिटिया! मेरा अन्दर जल गया है तुझे कहीं आकर्षण नहीं हुआ। जरूर ही इस मनुष्य को खाने वाली चिनाब नदी ने कहीं तुझे हड़प कर लिया है, अगर लाली कहीं जीवित होती तो मेरा एक एक अश्रु पत्थर बनकर उसकी छाती पर पड़ता और वह कभी भी इसे सहन न कर सकती, मेरी ओर अवश्य ही भागकर आती। हाय प्यारी (प्रमिला) प्रमलिया! तू ज़रूर मर चुकी है। पण्डित जी! 'बिटिया' पण्डित बिटिया अविगत ही चली गई। क्या अब भी आशा है कि वह जीवित है? मुझे तो इसके बारे में कोई संशय नहीं कि वह मर चुकी है। कुछ तरस कीजिए, प्रेत बनकर पीड़ा मर रही होगी, पोहे चले जाओ उसकी क्रिया तो करवा दो, भटकती तो न फिरे। यह संशय कब तक रहेगा कि जीवित है।

पण्डित-प्रिय! क्या बताऊं सारे पंजाब भर में खोज की है, पूर्व के तीर्थों तक तलाश की है, वन और कन्दराओं की खोज की है, परन्तु अभी पापी मन आशा लगाए बैठा है। यदि तुम्हें निश्चय हो गया है कि मर चुकी है तो प्रेत क्रिया करवा देते हैं। माताओं से बेटियों को काफी प्यार होता है, कहीं स्वप्न दर्शन तो नहीं हुये?

माँ-दर्शन तो हुये नहीं, पर दिल यही कहता है।

पण्डित-अच्छा। अहो दैव! कर्मगति टलती नहीं। मन में क्या था, और क्या हो गया है? बिटिया को गार्गी की भांति यश लेना था, पर बेटी साधारण लोगों की भांति चली गई। मेरा घर खाली कर गई है। यदि कोई बालक, बच्चा होता, तो चित्त में किसी आश्रय का धैर्य बंधता। एक बच्चे के माता-पिता अंधे होते हैं। सच्ची बात तो यह है कि हम बड़े कपटी हैं। कितने ही शास्त्रों को धोखा संसार को स्वप्न और रस्सी में सांप की कल्पना और मृग जल का भ्रम पड़ा और दूसरों को पढ़ाया, पर बिटिया का वियोग कैसा सत्य लगता रहा है। स्वप्न का खेल था, गया, गया, पर पापी मन नहीं मानता, रोता है, सिसकियां भरता है। बाहर तो अब भी ज्ञान की बातें करते हैं, क्योंकि सम्मान नहीं रहता, पर होता

यह हठ ही है। लोग भी कैसे मूर्ख हैं, मेरे कहने को सुनते हैं कि इसने बेटी की हानि को ब्रह्मज्ञान से झेल लिया है। मेरे चेहरे की ओर कोई नहीं देखता जो कि आधा रह गया है। मेरे स्वभाव की ओर कोई नहीं देखता कि खुशी तो रही नहीं है, सदा उदासी रहती है। मेरे व्यवहार की ओर नहीं देखते कि हमारे घर में सात सौ पुत्रों की मौत का सा शोक छा रहा है। जब मैं कहता हूं: जगत तीन काल सुपना है, सुपना क्या हुआ ही कभी नहीं, तब कहते हैं पण्डित जी कैसे ज्ञानी हैं। ओह! संसार सचमुच छल रूप है, मिथ्या है। पर जैसे संसार माया है मेरा ज्ञान भी वैसे ही मिथ्या है।

पण्डिताइन—पर पण्डित जी! अन्त में हमें भी मरना है और अब, न जाने जल्दी ही मर जायं। मन का चाव और खुशी तो रही ही नहीं, जीवन की डोरी से यह शरीर, इस दशा में कितना और समय चिपटा रह सकता है? फिर क्या होगा? मर कर हमारा क्या बनेगा? भय लगता है। अब तो नौकर-चाकर हैं, कोई आता-जाता है, और बताइये पण्डित जी? फिर अब की भांति अकेलापन तो तोड़-तोड़कर नहीं खायेगा?

इस भोलेपन में मौत के ख्याल से पण्डित जी घबरा गए, दिल बैठ गया, सहम सा छा गया, गहरी सोच में पड़ गए, किये हुए कुकर्म और दिये हुए दुख आंखों के आगे घूम गए। 'मृत्यु के समय दौलत के ढेर और भूमि को यहां पर ही छोड़कर चले जाना है', आंखों के सामने इस विचार के आते ही हृदय हिल गया। आह! 'सच' तू निडर और न छिपने वाला है। इससे चाहे मन के मुंह को कितना समय क्यों न छिपाते रहो, कभी-न-कभी झलक देता ही है। आंखों में संसार डरावना हो गया, अंधेरा छा गया, अकेलापन दीख पड़ा। अकेलापन हां अकेलापन, अकेलापन नर्क से भी बढ़कर नर्क होकर लगा। पण्डित जी घबरा गए: दहशत छा गई। अब उन्हें दाता जी याद आ गए, सुन्दर, प्यारा जवान बड़ी निर्दयता से पिट रहा है, मर गया है, फटे-पुराने कम्बलों में लपेटकर बजरे में डालकर बहा दिया गया है। 'खून! हा दैव! मैं खूनी हूं! वैसे खून चाहे भले ही छिप गया हो, पर अन्दर आत्मा की गहरी परत में छिपा हुआ है, अन्दर से कसक उठती है, आज फिर सामने आ गया है।' 'मैं खूनी हूं', कंपन-सा छिड़ा, अंधेरा और गहरा हो गया, अकेलापन और अधिक पीड़ा वाला हो गया और दाता जी के खून का विचार तीखे तीरों की तीक्ष्ण नोकों से भी अधिक तीखे चुभने वाले उलाहने की सूरत बनकर बींधने और छेदने लगा। अकेलापन और किये हुए कुकर्मों का पश्चाताप यह नर्क है। हा हा! पण्डित जी बैठे-बैठे रौरव नर्क से भी अधिक बुरे नर्क के दुखों को भोग रहे हैं। 'हा, मैं खूनी'? ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगे और चक्कर खाकर गिर पड़े। दिल टूट गया, 'मैं खूनी' की चोट के कारण स्मृति आ गई, स्मृति ने कुकर्मों की पोथी खोल दी। सबसे भयानक सूरत उस

साईं लोग का खून था। मित्र, प्यारे, महल, जागीरें, माल आदि साथ नहीं जाते, पर कुकर्मों की स्मृति, स्मृति भी चुभन-भरे उलाहनों से भरी हुई मन में गहरी उतरी हुई होती है। माल, धन की भांति यह भी पीछे रह जाय, मगर यह रहती नहीं।

कुकर्म पहले विचार मण्डल में उत्पन्न होते हैं, फिर शरीर द्वारा इनको किया जाता है, इन्हें बार-बार करने से स्वभाव बन जाता है, किये हुए कर्मों की स्मृति अन्दर नीचे उतरती जाती है और संस्कार बनकर अन्दर छिपकर बैठती है। स्वभाव और यह स्मृति मन के साथ चिपट गए, तद्‌रूप हो गए, जब अकेलापन आया, भय हुआ, कष्ट आया तब स्मृति अन्दर से फूट पड़ी और अपने-आपको काट-काटकर खाने लगी। संसार मिथ्या, तीन काल मिथ्या, पर कुकर्मों का चित्र, जो मन के गहरे स्थान पर चित्रित हो गया, जब अकेलेपन और भय का समय हो, तब प्रकाशित होकर पल्ला नहीं छोड़ता। है तो संकल्पमात्र, पर हाय! संकल्प परिपक्व होकर, बार-बार होकर स्वभाव बन गया है। मन की प्रकृति (स्वभाव) बन जाने की भांति हो चुका है। संसार तो मिथ्या हो गया, क्योंकि मृत्यु इसे छीन लेती है, पर मरते समय कुकर्मों का स्मरण अन्दर चित्रित हुआ ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है कि सत्य ही लगता है, इसको जीते जी किसी ने छुरी से नहीं काटा है। यह चित्र यम की फांसी है, इन्हें न तो किसी ने गज के साथ नापा है और न ही नाप-नापकर किसी ने इसको कैंची के साथ काटा है।[१]

पश्चाताप ने दम्पति की मनोदशा यह कर रखी थी। वैसे 'पण्डित जी मूर्च्छित हो गये' का शोर मच गया। पण्डिताइन की चीखों से घर गूंज उठा, सेविकाओं ने नौकरों को भगा दिया, और नौकर वैद्य जी को ले गये। अब दवा-दारू हो रही है, प्यारे मित्र और चापलूस और मतलबपरस्त हाल-चाल पूछने के लिए आ रहे हैं। होश आ गया था। कोई रोग थोड़े ही था? मन की चोट ही तो लगी थी। पर हाय! किये कर्म का पश्चाताप, उलाहना और कर्मों का पश्चाताप क्या वस्तु है? मानो बर्रों के डंक हैं।

पण्डित जी की तबियत ठीक हो गई, पर दम्पत्ति का मन और चोट खाकर और प्रकार का हो गया। बेटी की पीड़ा अब कुछ कम है क्योंकि 'अपनी' चिन्ता और सहम अधिक नजदीक का दुख बनकर अपनी ओर खींचता है। अब उनका समय पश्चाताप में गुजरता है।

इस सदमे को पन्द्रह दिन बीत चुके हैं। पण्डित जी खिड़की में बैठे हैं पंडिताइन पास बैठी है और अनपढ़ पण्डिताइन अपने कंठ से बिना समझ के गीता पढ़ रही है और आप सुन रहे हैं।

---

१. इस फांसी को काटने का ढंग यह है: "मन मेरो गजु जिहवा मेरी काती।।
मपि मपि काटऊ जम की फासी।।" (आसा नामदेव)

पण्डित—ठहर जा पण्डिताइन! देख विचारकर इस श्लोक का क्या भाव है—सुनः जो मेरी शिक्षा मनन करते हैं, पर उसके अनुसार चलते नहीं, वे ज्ञान में भटक रहे है, सुन ले ऐसे मूर्ख व्यक्ति विनाश को प्राप्त होंगे।

पण्डिताइन! देख यह हमारे लिए है, कौन सा अध्याय है, कर्मयोग का तीसरा। भला नवें अध्याय का विचार कर और तीसवां श्लोक पढ़, ले देख उस श्लोक में हमारे लिए मौत थी, यहां पर हमारी दारू है। देख क्या कहते हैं—यदि कोई बुरे जीवन वाला भी मेरी पूजा करता है और किसी दूसरे की पूजा नहीं करता, तो वह सदैव ही भला है, क्योंकि उसका विचार ठीक है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है, निरंतर शान्ति को प्राप्त करता है; तू निश्चय कर कि मेरे भक्त का विनाश नहीं होगा।

पण्डिताइन! यदि हम भी भक्ति करें तो बच जायें, पर करें कैसे? भक्ति का अन्त ज्ञान है, ज्ञान हमें सारा आता है, 'ऋते ज्ञानान मुक्ति' बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं है। अतः भक्ति भी ज्ञान में ही ले जायेगी। ज्ञान तो हमारे पास है ही। पर जलन फिर यह है कि शान्ति नहीं है, घबराहट है, डर है, दुख है, उलाहना है।

इतने में मोती आया और जल्दी-जल्दी कुछ बोला। पण्डित (चौंककर) हैं, अरे मोती! तूने क्या कहा है?

मोती—महाराज जी कहर है। वह बजरा जिसमें दाता साईं के शव को डालकर गत वर्ष बहाया था, वह किनारे पर लगा खड़ा है। पीपल के पेड़ के साथ बंधा हुआ है, वही फूस और वही दागों वाले फटे-पुराने कम्बल, सब कुछ उसी तरह पड़ा है, पर उसमें शव नहीं है।

पण्डित जी का रंग उड़ गया। घबरा गए। 'सच? नहीं, अरे तू भूलता है।'

मोती—नहीं जी! मैं भली भांति संतुष्टि करके आया हूं।

पण्डित—हा दैव! आगे की तो आगे देखी जायगी, अभी तो यहीं पर ही विनाश हो गया है। ओह! राजा जी का सिपाही अवश्य ही कोई गुप्तचर था। हमारी अक्ल भी खराब हो गई, शव को नदी में न फेंका, यदि फेंक देते तो कोई पता निशान भी न रहता, हमने बजरे को बहा दिया। अधीरता—हाय अधीरता और बुद्धि का विनाश। ओह! पता चल गया, बस राजा के कर्मचारी आए कि आए! पण्डिताइन! तैयार हो जा कर्मों का फल भोगने के लिए। हां कर्मगति! ज्ञान को क्या करना है? कोरा ज्ञान झूठी आशा है। मोती! कोई बता समझ की बात।

यह कहते-कहते पण्डित जी आपे में गर्क होते-होते गुम से हो गये। उधर पण्डिताइन कांपने लगी। काफी समय के बाद जब होश आया तब कहने लगी, यदि सरकारी आदमी है तब तो कोई वश नहीं चलेगा, न भागने से, न छिपने से और न ही मिन्नतें करने से, और यदि कोई और है तो कोई बात नहीं, धन काफी

है, ज्ञान नहीं छुड़ाता, जब कोई देवी-देवता सहायता नहीं करते तो धन उस समय अवश्य ही सहायता करता है। जिस धन को पापों द्वारा इकट्ठा किया है वह पापी धन पापियों के हाथों से अब रक्षा करेगा (चौंककर) हैं! कौन खटखटा रहा है, देख तो सही।

मोती–अभी तो कोई नहीं है।

पण्डित–ज़रा भागकर थाने में चला जा और अपरिचित-सा बनकर कोई पता निकाल लो। हैं···यह आवाज़ कैसी है–। ठहर जा! राग का स्वर है:

मथे टिका तेडि धोती कखाई॥
हथ छुरी जगत कसाई॥
नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु॥
मलेच्छ धानु ले पुजहि पुराणु॥
अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा॥
चऊके ऊपरि किसै न जाणा॥
देकै चऊका कढ़ी कार॥
ऊपरि आइ बैठे कूड़िआर॥
मतु भिटै वे मतु भिटै इहु अन्नु-असाडा फिटै॥
तनि फिटै फेड़ करेनि॥
मनु जूठे चुली भरेनि॥

पण्डिताइन–यह तो वही आवाज़ है।

पण्डित–चुपकर, सुनने दे।

पण्डिताइन–मैं कहती हूं वही आवाज़ है, मरा नहीं, जीवित आ गया है। गुप्त तलवार और सरकारी सिपाहियों को साथ लेकर आ गया है। अब तो समझ लो मेरा कोई स्थान नहीं। चलो छिपकर भाग जायें, मोहरों की दो थैलियां साथ ले लें।

पण्डित–यदि आया है और सरकारी सिपाही हमारे ऊपर चढ़ाकर लाया है तो भागने का समय नहीं है। अब तो सिर पर आई है। मोती! भागकर देख तो, वही दाता है कि कोई और है। आवाज़ तो बिल्कुल उसी जैसी है।

जीवना–(भागा हुआ आया) स्वामी जी! दाता भाई जीता-जागता गाता हुआ मस्त होकर चला आ रहा है।

पण्डित–(घबराकर) अकेला है कि सि···सि···सिपाही साथ हैं?

जीवना–जी अकेला ही है, इधर आ रहा है।

पण्डित जी पर एक प्रचार का जादू-सा हो गया। हक्के-बक्के होकर पत्थर की मूर्ति की भांति आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। इतने में अपनी सुन्दरता,

तेज, टपकते हुए रंग और चढ़ती कला के ठाठ में दाता साईं पण्डित के सामने आकर खड़े हो गये। पहले तो पण्डित जी का रंग पीला था, पर अब कालिमा छा गई और आंखें धरती में गड़ गईं।

दाता लोग–पण्डित जी! कल्याण हो, आप डरो नहीं। मैं राजा जी का सन्देश लेकर आया हूं, पर सन्देश कत्ल करने के लिए नहीं है, क्योंकि मेरा राजा प्रेम का राज्य करता है। मेरे साथ कोई सिपाही नहीं है, पर प्रेम के दूत हैं, जो आपके अन्दर प्रवेश करेंगे, मारेंगे, पर आपको नहीं, बुराइयों को मारकर निकाल देंगे। प्यारे पण्डित जी! तगड़े होवो! यह कहकर पण्डित जी के गले से लिपट गये और कहा–

"जिसु राखै तिसु कोइ न मारै।
सो मूआ जिसु मनहु बिसारै।"

प्रभु ने मेरी रक्षा करनी थी, मैं मारने से भी नहीं मरा। तुमको मन से भुला बैठा हूं। तुम जीवित ही मर रहे हो, पर अब मुझे आज्ञा हुई है कि तुम्हें बताऊं कि तुम्हारे लिए भी जीवन तैयार है, तुम भी जीवित हो सकते हो। तैयार होवो, मेरे दाता जी की 'जीवन बिजली' की लहर आई है।

पण्डित आंखें फाड़-फाड़कर देखता है, उसके अन्दर विश्वास नहीं आया, कुछ अविश्वास-सा है।

दाता ने तनिक-सा झंझोड़ा और कहा: ज्ञान जानने का नाम नहीं है, यह तो हर कोई ज़ानता है कि मेरे अन्दर रोटी जाती है और पचती है और मैं उसके आश्रय से ज़ीवित हूं, पर इस बात को कौन पहचानता है कि कैसे पच रही है और रक्त किस समय और किस तरह बन रहा है और शरीर का लालन-पालन कैसे हो रहा है। मुझे अपनी गुप्त शक्तियों की पहचान नहीं है। (चुप रहकर) विद्या ने मन और बुद्धि को तेज़ कर दिया है, पर मन बुद्धि भी तो दृष्टा नहीं है, इनका दृष्टा कोई अन्य है। फिर जो काम मन बुद्धि के मण्डल में हो रहा है, वह भी तो एक प्रकार दृष्टामान का खेल ही है, दृष्टा का खेल तो आगे है और वह इनसे कहीं ऊंचा प्रकाशमान और स्वाभाविक रूप से प्रकाशमान है। पण्डित जी! पढ़ सुनकर भूल में अटककर दुःखी हो रहे हो। इस मण्डल से ऊंचे उठो, छलांग मारो और उस रंग में जाओ जिसकी केवल खोज वाली पहचान को 'यथार्थ' समझ रहे हैं। तुम्हें तो अभी निश्चित भी नहीं कि 'एकता' का खेल है, अथवा 'द्वैष' का खेल है, अथवा 'त्रिपुटी' का खेल है। कभी एक ब्रह्म कहकर 'दूसरा है ही नहीं' कहते हैं। कभी कहते हैं: नहीं दो हैं, एक पुरुष है और एक प्रधान, कभी तीन को लेकर बैठते हो और कहते हो: प्रधान पुरुष और ईश्वर (पुरुष विशेष) तीनों स्वतन्त्र हैं। कभी विशुद्ध 'प्रकृति' चीखते हो, जिसे चार

तत्व का खेल कहते हो। कभी सारा सुपना जानते हो और शून्य पर पहुंचते हो। कभी शून्य के आगे और असल मानते हो। तुम्हारा ज्ञान क्या है? अपनी थोड़ी-सी जान-पहचान का शोर शराबा।

पण्डित जी को होश आया, दिल ने ढाढस बांधी कि यह तो फकीर ही लगता है, सरकारी व्यक्ति नहीं है। बात को सुना और समझा, पर अभी शरीर में भय है, वैसे कुछ साहस आ गया था, कहने लगे: तू सचमुच फकीर है?

दाता—फकीर तो मैं नहीं हूं? पर मैं बदला लेने के लिए नहीं आया, प्यार करने के लिए आया हूं। मैं प्रेम की सरकार का सिपाही हूं। मेरे प्रियतम जी नर्काग्नि से बचाने वाली सरकार के हाकिम हैं।

पण्डित जी—मैंने तो आपका खून किया था।

दाता—आज्ञा यही थी, आपका दोष नहीं है।

पण्डित—दोष नहीं, आप तो विचार नहीं करते?

दाता—मैं सच कहता हूं कि मैं दोष का तनिक मात्र भी विचार नहीं करता। वह मेरे स्वामी की आज्ञा थी, सुख था और उससे मैंने सुख प्राप्त किया है, मेरे 'प्रियतम' जी का राज्य चमका है, इसलिए मैं आपको अत्यन्त प्यारा सज्जन समझता हूं।

यह कहना ही था कि सबको आशीर्वाद देने वाले और कभी न झुकने वाले पर सदा झुकाने वाले पण्डित जी झुक गए: 'तू धन्य है, तू वीतरागी है', कहने लगे। दाता जी ने उठाकर गले से लगा लिया। इस तरह गले से लगना था कि मुर्दा शरीर का बिजली के साथ स्पर्श कर जाना था। इस शुक्र और प्यार की लहर पण्डित जी के शरीर में झलक मार गई। आज दिखाई दिया कि कथन तो कथन है, पर कथन एक अन्य वस्तु है। संसार को मिथ्या जानना तो यह है और सर्व ज्योति के प्रकाश को देखना इस प्रकार है। साईं के साथ संयोग यह है और दृष्टिमान के साथ संन्यास यह है।

अब बड़े आदर से दाता जी को बैठाया। पण्डिताइन का हृदय भी ठिकाने पर आ गया और पकड़े जाने और दुखी होने तथा मारे जाने का निज का भय दूर हो गया था। अब बेटी की याद आ गई। वह अब बेटी के आकर्षण में पिरोकर उसकी बात को छेड़ना चाहती थी। जब पण्डित जी चुप हो गए तब बोली, "हे किसी प्यार भरे स्रोत से निकली हुई नदी! कहीं मेरी बिटिया का कोई पता है?" यह कह कर साल-भर की सिसकियां और रोना-धोना कह सुनाया।

दाता जी ने शान्ति से सुना और फिर आंखें मूंदकर काफी समय तक चुप रहे। फिर धीरे-से आंखें खोलीं और पण्डिताइन की ओर किसी आश्चर्यजनक प्यार से देखकर कहा: 'मां'। हां मेरी अपनी 'मां'। मां का यह शब्द क्या था, कोई जादू था पण्डिताइन के शरीर में से एक झन्नाहट-सी निकली दाह और

विरह मानो मिल गया और दाता 'अपने सगे पुत्र' की भांति अपना और प्यारा दीखने लगा।

दाता—मां बड़ी भूख लगी है।

नये रंग में आई मां भागी गई, पुत्र की भूख कलेजे को खींच रही है, दौड़कर गई और रसोईघर में से रोटी लाकर आगे रख दी। निर्वैर दाता, वैरियों के पास जाकर उन्हें प्यार करने वाला, पिटने के बाद पुत्र बन जाने वाला, प्यार का पारस किस तरह स्वाद और मौज से रोटी खा रहा है? मां के शब्द सुनकर ममता में भरी मां देख रही है और बलिहारी हो रही है। पण्डित जी के हृदय में भी प्यार भर रहा है। अंदर बाहर से टूट रहे को—जो प्राकृतिक प्यार और मंद, पर बंधे हुए नशे से खाली हो चुके हैं—आश्रय मिल रहा है और प्रेम का पवित्र आश्रय पाकर अब खिल रहे और प्रसन्न हो रहे हैं। घर में भी जहां पर भय और क्लेश हो रहा था, खुशी और सुख आ गया है। दिन ढल गया, आज पण्डित जी का रंग और है, अब तीसरे पहर सैर करने को भी निकले हैं। दाता जी भी साथ गए हैं, कन्या के बारे में बात नहीं छिड़ी। पर रात को जब खाना खाकर तीनों व्यक्ति आग के पास बैठे तब दाता जी ने अपनी और कन्या की सारी व्यथा सुनाई कि कैसे वे वनों बेलों को गई और किस तरह बजरा गया और प्राण बच रहे। फिर जिस प्रकार चुंड से माड़ी गांव और सारे इर्द-गिर्द के इलाके में सत्संग का प्रसार हुआ और वहां पर जो-जो बातें परमार्थ के बारे में हुईं, जिन बातों से कन्या का मन कथन से कर्म की ओर और शुष्क जानकारी से अनुभव की ओर रुख करके वैराग्यवान हुआ था, उस वृत्तान्त को सविस्तार कह सुनाया। पण्डित जी का दिल पलट तो चुका ही था अब वह सारे का सारा बदल गया। वे अपने पापों से घबरा ही रहे थे, अपनी विद्या में जो त्रुटियां थीं उनसे भी उदास थे, अब कर्म और अनुभव की ओर झुक गये। सबसे पहले दाता जी ने यह काम करवाया कि जिस प्राणी मात्र को पण्डित जी ने दुख दिया था, उन सबको सुख पहुंचाया और क्षमा मंगवाई। जिनके अधिकारों को छीन रखा था उनको वापिस करवाया। ऐसा करने से पण्डित जी के मन में एक रस पैदा हुआ, वह रस जो उन्हें लगा कि यह तो वास्तविक जीवन की ठण्डी हवा का झोंका है। कथन मात्र का कोई लाभ नहीं है। अन्दर करनी का रस है तो बाहर वह करनी दया और प्रेम बनकर फिरती है।

इसके पश्चात् प्रेम का वह सारा वृत्तान्त जो माड़ी में हुआ था 'पण्डित जी' की समझ में आ गया और उनके हृदय में भी 'प्रियतम जी' के दर्शन की प्यास लग गई।

दाता—प्रियतम जी के दर्शन का समय निकट है। तुममें उनकी स्मृति और प्यार उत्पन्न हो गयी है। यही एक शक्ति है जो उनसे संयोग करवाती है, पर तुम

अधिक सेवा करो ताकि मैल की काई जल्दी से कम हो और प्रकाश को देखकर उसे सहन कर लेने की तुम्हारे मन को आदत पड़ जाये।

इधर माता-पिता की आत्मा का सुधार हो रहा था, उधर अपने कथन और अपने कर्म में सुधर चुकी कन्या के मिलने की लालसा तीव्र हो रही थी। जिनका उजड़ा हुआ घर फिर से बसने लगा, शुष्क मन हरा हो गया, जल चुकी आत्मा फिर से जीवित हो उठी, उनकी खुशी की कोई सीमा न रही। पर दाता जी नहीं चाहते थे कि कन्या को अभी यहां पर लाया जाय। इसका कारण यह था कि कन्या माड़ी के इर्द-गिर्द 'प्रियतम जी' के प्रेम सन्देश (शबद सोहले) का प्रचार कर रही थी। चाहे पण्डित और पण्डिताइन जी बहुत अधीर थे, परन्तु अब दाता जी के ऊपर पूर्ण विश्वास था और वे पण्डित जी को उस आदर्श के प्रेमी बना रहे थे, जिसके प्रेम में कन्या लग चुकी थी, इसलिए कि संयोग होने के बाद फिर कोई मतभेद पैदा होकर उदासी न ला दे। उधर वे उसकी आज्ञा को सुखदाई समझते थे।

: ६ :

कुछ समय और व्यतीत हो गया। देखिए आज क्या दृश्य दिखाई दे रहा है: फगवाड़े से बहंगियों की एक पंक्ति चली जा रही है, एक बहंगी में तो पण्डित, पण्डिताइन जी और वह विद्वान कन्या है। दूसरी में भाई जीवना, वैद्य जी और उनका परिवार है। अगली बहंगी में दाता जी की पिटाई करने वाले मोती, जीवना और घर के दूसरे नौकर दाता जी के प्यार में रंगे बैठे हैं। पिछली बहंगियों में पण्डित जी के हाथों सताए हुए और अब वरदान प्राप्त कर चुके कुछ लोग हैं, जो अपने भाग्य के इस बदलाव को किसी 'प्रियतम जी' की अनुकम्पा का फल समझकर पहले चकित, फिर श्रद्धालु और अन्त में दाता जी के उपदेश को सुनकर प्रेमी बन गए हैं। इसके पीछे वे लोग बहंगियों में सवार हैं जो झेलम और चिनाब के बीच के और आसपास के इलाके के गांवों में से किसी गांव में से दो और किसी में से चार-चार व्यक्ति इकट्ठे होकर 'प्रियतम जी' के प्रेमी बन चुके हैं। यह सारा साथ जीवित लोगों का है। हृदय में प्यारे सृजनहार का स्मरण है, उस स्मरण में आकर्षण है, और आकर्षण में विरह, चाह, लालसा, आशा और शुक्र सम्मिलित है।

जो लोग पांच प्रकार के स्वादों का आनन्द भोगते हैं और दिन रात पांचों के स्वादों की खोज करने और उनकी प्राप्ति के प्रयास में समय व्यतीत करते हैं, वे पशुओं और जीव-जन्तुओं से ऊंचे किस प्रकार हैं? पांचों ही स्वादों की खोज में पशु बनकर घूमते हैं और पांचों ही रसों में मग्न रहते हैं। यदि मनुष्य की उमंग, यत्न और प्राप्ति की एक सीमा इतनी ही है तो मनुष्य एक पशु ही है जो दूसरों

की अपेक्षा अधिक चंचल और छलिया है। यदि मनुष्य वैसे ही कह सकता है कि 'मुझ में एक ऊंचे स्तर का जीवन है, जिसके मुकाबले पर पशु मुर्दा हैं', तब उसका कथन तो कथन मात्र ही है, व्यर्थ है, क्योंकि यदि मनुष्य की उमंग, उत्साह, यत्न और प्राप्ति का मैदान पशुओं की भांति पांच रसों तक ही सीमित है, तब क्या वह भी पशुओं की भांति नहीं है, उस जीवन के सामने, जो मनुष्य के सिवाय किसी भी अन्य योनि में प्राप्त नहीं है। कहने से तो कोई भी जीवन पद को प्राप्त नहीं कर लेता। ब्रह्म रस, राम रस, आत्म रस, नाम रस, प्रेम रस, जिस रस को इस प्रकार के नामों से प्रकट किया जाता है, वह रस केवल मनुष्य की देह में ही प्राप्त हो सकता है, पर यदि मनुष्य इस उत्तम शरीर को धारण करके उस उच्च और सबसे अद्‌भुत 'परम रस' से खाली है तो वह पशु है, मुर्दा है, चाहे श्रेष्ट ज्ञानी है, चाहे धनवान है और चाहे कुलीन है।

"अति सुन्दर कुलीन चतुर मुखि ज्ञानी धनवंत॥
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नहीं भगवंत।"

[गऊ: बा: अख:]

ऐसे अमूल्य रस जीवन के प्रेमी 'प्रियतम जी' के प्रत्यक्ष दर्शनों के लिए आगे जा रहे हैं। हां, सारे ही कैसे प्रसन्न हैं, कैसे आनन्द में हैं, चेहरे लाली से दमक रहे हैं। एक दूसरे पर न्योछावर हो रहे हैं। यह सारी जमात तो आनन्द में जा रही है, पर वह राजा जी का सिपाही कहीं दिखाई नहीं पड़ता।

एक जमीनदार गन्ने का रस निकाल रहा था कि उसे पता लगा कि जमात चली गयी है। यह भी प्रेमी पुरुष था। प्रियतम जी के प्रेमियों की संगत पास से गुजर जाय और पता न चले, यह बात इसके लिए असह्य थी। अतः घोड़ी पर सवार होकर दाता जी से जा मिला, अपनी भूल और साथ न जाने की मजबूरी का जिक्र किया, तब दाता जी ने साथियों से कहा, आप चले चलो और मैं इस सज्जन के कामों को खत्म करवाकर और इसे साथ लेकर आपको आकर मिल जाऊंगा। यह कहकर उसके साथ लौट आए और अब उसके गन्ने के रस और कड़ाह में पक रहे सामान का प्रबन्ध करने लगे।

वे दाता जी! देखो! जो इतने बड़े ज्ञानियों और शास्त्रज्ञों की अपेक्षा बारीक क़ात रहे थे, जिनका आदर इतने प्रेमियों के मण्डल में हो रहा था, वे किसी के सत्कार, प्यार, ऐश्वर्य से आकर्षित नहीं हुए, राजा जी के सिपाही की हैसियत में अब इस समय मरोड़-मरोड़कर गन्नों का पुलिंदे पर पुलिंदा बेलने में दे रहे हैं, किसी समय कड़ाह के बीच वाले शीरे को देख रहे हैं। जब आपने देखा कि यह धन्धा उनसे समाप्त होने का नहीं है तब गांव से अपनी जान पहचान वाले सत्संगी लोगों का एक जत्था मंगवाकर और उन्हें उत्साह देकर काम समाप्त करवाया और तीसरे दिन मित्र और उसके परिवार को लेकर इन्हीं आशाओं से

तैयार हुए गुड़ का एक ऊंट लादकर 'प्रियतम जी' और उनकी संगतों के लिए ले लिया और स्वयं ऊंटनियों पर सवार होकर चल दिए।

'आनन्दपुर' के बाहर वह सारी संगत, जो पहले पहुंची थी, इकट्ठी हो रही है। सारे अन्दर नहीं जा रहे, खड़े हैं, और प्रतीक्षा कर रहे हैं। दोपहर होने को है, पर दाता जी नहीं आए। 'प्रियतम जी' का देश आ गया है, पर।

"प्रीतम के देश कैसे बातन सिऊ जाईऐ।" पण्डित जी संगत में खड़े हैं, कहते हैं: "दाता जी भूलने वाले नहीं है, कोई कौतुक है, अथवा कोई भलाई है; जिसका हमें पता नहीं है।" इतने में क्या देखते हैं कि शहर की ओर से धूल उठी। पहले दो-चार शूरवीर दिखाई पड़े, वे तो संगत के पास आकर दायें-बायें हो गए और पीछे से एक तेजमय प्रेम का स्वरूप घोड़े पर चढ़कर आ गए, 'मेरा सिपाही' का शब्द बड़ी व्याकुलता से कह रहे हैं। सारी संगत समझ गई कि यही 'प्रियतम जी' हैं और आप आ गए हैं। प्यार और सत्कार सहित सारी संगत नमस्कार करने लगी। अदब के निर्माता 'प्रियतम जी' आप घोड़े पर से उतरे। उस कन्या को धरती से उठा लिया, "मेरी लाली तू धन्य है। तूने मेरे सिपाही की नहीं, बल्कि मेरी सेवा की है। हां तूने मेरी सेवा की है। (सिर पर प्यार देकर) तेरा कल्याण! कन्या निहाल!" लाली की खुशी और आनन्द की कोई सीमा नहीं, आंखें नहीं खुलतीं, प्रियतम जी एक हाथ कन्धे पर और एक हाथ शीश पर रखकर खड़े हैं। इसके शरीर में से थर-थर करके बिजली की एक लहर गुजर रही है। मन, मन में से मानो गुम हो गया। आपा, आपे में टिक गया। इस रंग में से गुज़रकर फिर कांपी। वाह, वाह, आश्चर्य है, इस तरह के भाव मन में से गुजरे। 'शुक्र है' का भाव आया, नैन सजल हो गए हैं। मैं जो नास्तिक थी, मैं जो अन्धी थी, मैं जो मुर्दा थी, क्या मैं अब इस योग्य हूं कि जीवन दाता के पवित्र हाथ मेरे सिर पर रखे जाएं? मैं जो चिनाब की लहरों में मौत की ख़ोज कर रही थी, आज जीवन पद के स्वामी के प्यारे हाथों से जीवनदान प्राप्त कर रही हूं। आंखें खोलती है, पर पलकें नहीं उठतीं, सिर को उठाती है, मगर सिर नहीं उठता। प्रेम की वर्षा हो रही है, रोम-रोम में से धन्य-धन्य के फव्वारे छूट रहे हैं। अब फिर अपना आप भूल गया, "मैं कौन हूं और कहां पर हूं", यह सब कुछ भूल गया। प्रियतम है, प्रीति है, प्रेमी है और तीनों का एक संयोग होकर रस रूप धारण कर रहा है, पिरम रस (परम-रस) की वर्षा हो रही है और सारी संगत के रोम-रोम में इसका संचार हो रहा है। जो केवल बातों और गप्पों से ही शुद्ध बना करती थी, वह इस समय विमल में निर्मल होकर डूबी हुई है। अब उससे कोई पूछे कि तू ब्रह्म है अथवा पुरुष? माया है कि प्रकृति? तब इन बातों को कौन सुनता है और कौन बोलता है? ज्ञात ज्ञान की ओर से पलटकर सर्वज्ञ ज्ञाता में रस रूप हो रहा है। इस आनन्द का कथन कौन कर सकता है? प्रियतम

जी के चरणों की शरण के सुख का वर्णन कौन कर सकता है? इस पर आकाश में खड़े कबीर जी पुष्प वर्षा कर रहे हैं और साथ यह कह रहे हैं:–

कबीर चरन कमल की मउज को कहि कैसे उनमानु।
कहिबे कउ सोभा नहीं देखा ही परवानु॥ [सलोक कबीर जी]

यह मौज कितने समय तक चलती रही? पता नहीं। प्रियतम जी ने अपने नेत्र खोले, कन्या के नेत्र भी खुले। कन्या ने अब बल लगाकर प्रेम सहित झुक–झुककर पड़ रहे अपने चेहरे को उठाया, तब 'प्रियतम जी' बोले, 'त्रिकुटी छूटी विमल मझार'। कन्या जान गई कि दिखाने वाले क्या दिखा रहे हैं।

शीश झुका रहे पण्डित और पण्डिताइन जी को अब प्रियतम जी ने सिर पर हाथ रखकर उठा लिया और हंसकर कहने लगे: 'अपराधी आगे और सिपाही पीछे'। यह कहकर दोनों को गले से लगाकर प्यार किया और कहा: 'जीवन पद यह है, आत्मपद यह है।' यह कहते ही इन दोनों की दशा मूर्च्छित तो नहीं, मगर कुछ बेसुध-सी हो गई। क्या देखते हैं कि जैसे बेलने में से बिनौले गिरते हैं, उसी तरह इनके पाप झड़ रहे हैं और ये साफ़ होते जा रहे हैं। यों निर्मल होते-होते फूल की भांति हल्के हो गए, मानो शरीर का बोझ ही नहीं रहा। तब सतगुरू जी 'निहाल' 'निहाल' कहते हुए 'वैद्य जी' की ओर झुके। 'आ मेरे घाथों पर मरहम लगाने वाले मित्र! आ मेरी बेहोशी को ठीक करने वाले! आ, मेरी छाती से लग' यह कहकर वैद्य जी को गले से लगाया ओर कहा, 'निहाल, हे सिख निहाल! वैद्य का कार्य भी चलता रहेगा।' फिर प्यार करते-करते वैद्य जी को भी आत्म नीरोगता प्रदान की। एक ही बार में ही वही झलक पड़ी, जिसकी लालसा लेकर आया था। इस तरह से फिर भाई जीवना का उद्धार करते हुए सतगुरू जी प्रत्येक व्यक्ति से मिले, सबको निहाल किया। आश्चर्यजनक दर्शन है। कंवल के फूलों का मानसरोवर भरा पड़ा है और एक ही सूरज ने सबको खिला दिया है। प्रत्येक कंवल के फूल में समा रहा है, प्रत्येक को अपने में ध्यानमग्न कर रहा है। प्रत्येक कंवल के फूल में उसी का सारा स्वरूप झलक रहा है। ये हैं 'प्रियतम जी', जिनके कंवल के फूल में उसी का सारा स्वरूप झलक रहा है। ये हैं 'प्रियतम जी', जिनके लिए प्रियतम कहते-कहते दाता जी जैसे वीतरागी और अतीत ऋषियों और मुनियों से भी अधिक अतीत हृदय वाले सज्जन नेत्रों में से आंसू बहाया करते हैं। ये वे प्रियतम जी हैं जो इस समय प्रेमियों के लिए एक भारी सजे हुए दीवान को छोड़कर आए हैं। नहीं-नहीं, जो दुखियों को सुखदाई बनाने के लिए सचखण्ड के आनन्द का त्याग करके इस लोक में, मृत्युलोक में—आकर निरंजन ज्योति जला रहे हैं। किस तरह अपने प्रेमियों में खड़े होकर दमक रहे हैं? आह! यदि इस समय राजा जी के सिपाही उपस्थित होते और अपने 'प्रियतम जी' के प्रेमियों के मण्डल में देखते तो न्योछावर हो हो जाते। क्या सिपाही के

जी में यह लालस नहीं है? वे तो इस दर्शन को सारे ब्रह्माण्ड की अपेक्षा सस्ता समझते, अपने शीश से खरीदना भी सस्ता समझते पर करें क्या? जिस काम के लिए पीछे ठहर गए थे, उसे समाप्त करके अब आगे चले आ रहे है।, पर समय पर नहीं पहुंच सके, ये दर्शन नहीं हुए। लालसा करते, लोच करते चले आ रहे हैं।

अब 'प्रियतम जी' सबको साथ लेकर चले। दिलों के मालिक दिलों को जानते हैं कि ये सभी राजा जी के सिपाही की प्रतीक्षा में हैं। कहने लगे: 'आओ, चलें, हमारे सिपाही जी एक और मुहिम को फतह कर रहे हैं। आओ, वे भी आ जाते हैं?' प्रेम के तार में पिरोए गए प्रेमी, जिस तरह चुंबक के साथ लोहा खिचा चला आता है, वैसे ही प्रियतम जी के साथ-साथ खिंचे चले गये। कहां गए? जहां पर बहुत भारी दरबार है। जहां पर आध्यात्मिक जीवन का समुद्र ठाठें मार रहा है, जहां पर परम रस का महासागर मीठी-मीठी तरंगें निकाल रहा है सारा दरबार दाता जी की करनी और चमत्कारों के बारे में सुन चुका था। पपीहे की भांति सभी आंखें सिपाही और उसकी अपने स्वामी के लिए विजय करके लाई हुई आत्माओं के पवित्र दर्शनों की चाह कर रही थीं। जिस समय प्रियतम जी प्यार से सारे परिवार को लेकर दरबार में पहुंचे, उस समय प्यार भरे नेत्रों को प्रेम भरे नयनों को जो रस मिला, उस रस का पता तो उसकी प्राप्ति से ही चलता है।

वह समय भी आ गया जब राजा जी के सिपाही जी चिनाब के दाता जी भी आ गए, किस समय आए? जिस समय 'श्री प्रियतम जी' अपने पूर्ण शान्ति, प्रेम और आनन्द स्वरूप में खड़े थे और प्रेमी अडोल, एकाग्रचित आगे खड़े थे। 'प्रियतम जी' इनको अपने प्यार के मण्डल में ले रहे थे, जिसको लोग कह रहे थे कि अमृत छका रहे हैं। राजा जी के सिपाही ने दूर से ही देखा कि गुरू रूपी समुद्र सिख रूपी नदी को अपने में मिला रहा है। यह दृश्य था, जिसे देखकर आनन्द भरे राजा जी के सिपाही और आनन्दित हो गये। आगे नहीं बढ़े कि इस रस संगत में सबका ध्यान लगा रहे, और बाधा न पड़े; अडोल चुपचाप दूर से खड़े रहे जब यह कार्य हो चुका तब, 'प्रियतम जी ने' व्याकुल होकर देखा और कहा: 'मेरा सिपाही'। दूसरे क्षण सिपाही के सिर पर प्रियतम जी के दोनों चरणों की त्रिपुटी एकरूप हो रही थी। प्रियतम जी ने सुन्दर शीश उठाया गले से लगाया और इस तरह से कहा कि अंगों में समा लिया, समा लिया, समा लिया। वह देखिए, माता जी खड़ी होकर किस कृपाभरी दृष्टि से प्रतीक्षा कर रही हैं, कि इस लाडले पुत्र से प्यार करें। जब सतगुरू जी ने तीन बार 'निहाल, निहाल, निहाल' कहकर माता जी की ओर देखा तब उनके प्यारे सुपुत्र को, जिसने शरीर को कष्ट में डालकर पिता जी का राज्य स्थापित किया था, अपने प्यार और आत्मा

कृपा के रंग-में-रंग लिया और माथे को सूंघकर, 'बेटा, बेटा, बेटा' 'बलिहारी, बलिहारी, बलिहारी' कहकर आश्चर्यजनक प्रेम और कृपा में आशीर्वाद दिया:

जिस सिमरत सभि किलविख नासहि पितरी होइ उधारो।
सो हरि हरि तुम सद ही जापहु जाका अंत न पारो॥१॥
पूता माता की आसीस॥
निमख न बिसरउ तुम कऊ हरि हरि सदा भजहु जगदीस॥१॥ रहाउ॥
सतिगुरु तुम कउ होह दइआला संत संगि तेरी प्रीति॥
कापड़ु पति परमेसरु राखी भोजनु कीरतनु नीति॥२॥
अंमृतु पीवहु सदा चिरु जीवहु हरि सिमरत अनंद अनंता॥
रंग तमासा पूरन आसा कबहि न बिआपै चिंता॥३॥
भवर तुमारा इहु मनु होवहु हरि चरणा होहु कऊला॥
नानक दासु उन संगि लपटाइओ जिऊ बूंदहि चात्रिकु मऊला॥४॥३॥४॥

[गुजरी म० ४]

माता जी से आशीर्वाद लेकर दाता जी फिर चरणों पर झुके। हां, ज़िन्हें 'प्रियतम जी' कहकर नैनों से मोती निकला करते थे, उस समय प्रियतम जी के चरण-कमलों पर प्यार के मोती गिर रहे हैं। यह प्यारी मोहिनी सूरत; यह प्यार से प्रेम जीवन की झन्नाहट छेड़ देने वाली आत्मा में थरथराहट पैदा करने वाली, प्रेम रस का प्रवाह चला देने वाली और एक बार देकर फिर कभी भी वापिस न लेने वाली मूर्ति, 'प्रियतम जी' करके प्यार करने वाली सूरत किसकी है? यह प्यारे श्री कलगीधर साहब, श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी जगत के स्वामी, सिख बाग़ के माली, तीनों ताप को हरने वाले, प्यार के स्रोत कृपा के झरने और दया के सागर की प्यारी सूरत है। यह वह मोहिनी मूर्ति है जिसका परमेश्वर की ज्योति के साथ वह सम्बन्ध है, जैसा धूप का सूर्य के साथ है अथवा हमारे सम्बन्ध में जैसे पिता पुत्र स्नेह है, प्रेम-ही-प्रेम और प्रेम से दो से एकरूप हो गए व्यक्ति। यह वह सूरत है जिसने 'दाता जी' जैसे महान विद्वान को साईं के संयोग की झन्नाहट प्रदान करके जीवनदान देकर जीवित किया था; जिसके धन्यवाद में से 'दाता जी' राजा जी के सिपाही बनकर जगत को बांट रहे थे, क्योंकि उनको पता चल गया था:-

साध संगि मिटि जात विकार॥
सभ ते ऊच एहो उपकार॥

❑ ❑

३५ भाई अलबेल सिंह शहीद

बालकपन की कथा

अभी सूर्य पूर्व की ओर से उदित नहीं हुआ और धूप का प्रसार भी नहीं हुआ। चारों ओर पौ फटने का प्रकाश फैल रहा है। आनन्दपुर के जंगल के नदी के किनारे जवानी में पैर रख रहा एक बालक तीरंदाजी करता घूम रहा है। उसकी उम्र पंद्रह वर्ष की है और उसका रंग रूप सुहावना है। वह ज़ोर से कमान खींचकर तीर चलाता है। निशाना लगाकर छलांग लगाता है और स्वयं 'वाह! वाह' कहता है और यदि उसका निशाना चूक जाए, जो वह 'हा, हा' करता है और फिर निशाना साधता है। हर रोज़ इसी प्रकार करता है और उसे इसी खेल में कई वर्ष बीत गए हैं। वह एक कुशल तीरंदाज़ बन गया और जिसे चाहता, उसे बींध देता। एक दिन आश्चर्यजनक कौतुक हुआ। वह दोपहर तक तीर चलाने में व्यस्त था उसे घर का ध्यान ही न रहा। निशाना बांधकर एक हिरण के पीछे लग गया। हिरन छलांगें लगाता और इधर-उधर छिप जाता। इस तरह इन दोनों में मुकाबला बढ़ गया और हिरण काफी दूर निकल गया। वह राजा भीरचंद के जंगल में जा घुसा और बालक भी उसके पीछे आ गया। प्राकृतिक रूप में यहां आकर बालक का तीर निशाने पर लगा और हिरण तीर से बिंधकर खून से लथ पंथ हो गिर पड़ा। अचानक राजा के सिपाही उधर निकल आए और उन्होंने बालक को पकड़ लिया और कहा, "बता तू किसका गुप्तचर है? यह वन तो राजा ने सुरक्षित रखा हुआ है। यहां पर शिकार खेलना वर्जित है। तूने निडर होकर हिरण को मार दिया है तुझमें ऐसी कौन-सी अकड़ है? यहां पर राजा के अपने वज़ीर नहीं टिक सके और तूने बेपरवाह होकर तीर का निशाना साधकर शिकार किया है। तू तो मानों इसे अपना ही राज्य समझता है।" बालक ने कहा 'भाई! मैं तुम्हें सही समाचार सुनाता हूँ। मैं तो आनन्दपुर से ही हिरण के पीछे चला आया हूं। हिरण भागता-भागता इधर निकल आया है और मैं कमान चढ़ाकर इसका पीछा करता आया हूँ। यहां पहुंचकर मेरा निशाना लगा है। यह मर गया है और मैं फंस गया हूं। पर इसमें मेरा कोई अपराध नहीं, हिरण इस जंगल का नहीं है। जो आपने यह बात की है कि यहां पर राजा की ओर से शिकार वर्जित हे, पर मुझे इस बात का तो पता नहीं था। मुझे तो यह भी पता नहीं कि मैं

किसके जंगल में आ गया हूं, चलते-चलते कहां आ पहुंचा हूं और किसके राज्य में मैंने कदम रखा है। अतः मुझे क्षमा कर दीजिए, मैं फिर ऐसी भूल नहीं करूंगा। मैं फिर कभी भी इस स्थान पर नहीं आऊंगा, मैं इस बात को नहीं भुलूंगा।' सिपाहियों ने उसकी विनती की परवाह न की और ज़बर्दस्ती पकड़ लिया। उसे पकड़कर किले में पहुंचा दिया और राजा के सामने प्रस्तुत किया। क्रोध में आकर राजा गाली देने लगा। बालक निडर होकर चुपके से सुनता रहा और विनय करने लगा कि सच्ची बात सुन लो। बालक ने अपनी व्यथा सच सच बता दी, पर राजा ने गुस्से में आकर त्योरी चढ़ाई। कहने लगा मैं तुझ पर तनिक भी विश्वास नहीं करता। तू वैसे ही झूठ बोल रहा है। राजा ने कहा, बालक! सच सच बता दे अन्यथा तुझे मार दिया जाएगा।

बालक ने कहा, मैंने सच ही कहा कोई बात छिपाई नहीं है। राजा ने कहा, इसकी मुश्कें कस दी जायं और इसकी खूब पिटाई की जाए। यदि पिटाई करते करते इसकी मृत्यु हो जाए तो इसे गड्ढे में फेंक दिया जाए। इसे न तो जलाया जाए और न ही इसे दफनाया जाए। इसे कोई रोए भी नहीं।

बालक की ओर देखकर

बालक तू झटपट सच बता दे कि किस शत्रु ने तुझे यहां पर भेजा है। यदि तू सच नहीं बताएगा तो तुझे मार कर खत्म कर दिया जाएगा। बालक ने उत्तर दिया, आपको जो कुछ करना है कर लीजिए, मैं झूठ नहीं बोल रहा। जब जल्लाद कोड़े लेकर आ गये तो बालक समझ गया कि अब मौत आ गई है। कहने लगा, मुझें दो पल का समय दीजिए जिससे मैं अपने प्रभु का स्मरण कर लूं। राजा ने कहा कि तुझे जो कुछ करना है उसे तुरंत कर ले। जब तुझे कोड़े लगेंगे तो फिर समय नहीं मिलेगा। बालक ने आंखें बंद कर लीं, हाथ बांधकर खड़ा हो गया। और अपनी सुरति को प्रभु में पिरो लिया। उसने दस गुरुओं का नाम लिया और उनसे सिदक की मांग की। अपने काम से मुक्त होकर ये वाक्य कहे, 'हे राजा! मैं हाज़िर हूं, मुझे मारो अथवा जो कुछ तुम करना चाहते हो करो, मुझे मौत का कोई भय नहीं है'। उसी समय उसकी मुश्कें बांध दी गईं और एक तख्ते के साथ उसे बांध दिया गया। फिर राजा ने कहा कि अभी भी समय है, बता दे तुझे किसने भेजा है? बालक ने कहा कि राजन! मैंने जो कुछ कहा है, सच ही कहा है, झूठ नहीं कहा। तब राजा ने कहा कि यह सच नहीं कहता, इसलिए इसकी चमड़ी उतार दी जाए। अब बालक को कठोर कोड़े पड़ने लगे, जिन्हें झेलना उसके लिए कठिन हो गया। इतना होते हुए भी बालक ने कोई झूठी बात न कही। जब उसे दस बीस कोड़े लग चुके तो वह बेसुध हो गया। राजा

ने कहा कि इसे न मारो इसने झूठ नहीं कहा। इसने सच ही कहा है और यह मुझे सच्चा ही लगता है। अब मेरे मन में तरस आ गया है। इसकी मुश्कें खोल दीजिए, और तख्ते से अलग कर दीजिए। बालक के बंधन खोल दिए गए और कुछ समय के पश्चात उसे होश आ गया। राजा कहने लगा कि तूने सच कहा है, तूने चक्कर नहीं खाया अब मुझे तुझ पर तरस आ गया है, मेरा दिल भर आया है, अब तू बता कि सच बोलने की आदत तूने किससे सीखी है और तेरा गुरू कौन है? बालक ने कहा कि मैं फिर सच कहता हूं। अगर तुम न मानो तो तुम्हारी इच्छा! मैं गुरू के सिख का पुत्र हूं, मेरे पिता ने मुझे झूठ बोलना नहीं सिखाया। कल्ग़ी वाला दशम गुरू इहलोक तथा परलोक का मालिक है उस गुरू के सारे सिख, चाहे वे बालक हैं अथवा वृद्ध, सच ही बोलते हैं। मेरी तो यही भारी लालसा है कि गुरू मुझे अपने गले से लगा लें, मेरे सिर पर प्यार देकर मुंह से 'मेरा बालक' कहकर मुझे बुलाएं। अत: मैं तीर चलाता हूं, गुरू जी को तीरंदाज़ प्यारे लगते हैं, तीरंदाज़ी गुरू जी को अच्छी लगती है। मैं चाहता हूं कि मैं ऐसा तीरंदाज़ बनूं कि गुरू जी मुझे देखकर प्रसन्न हों, मुंह से शाबास, शाबास कहें, तब जाकर कहीं मेरा जीवन सफल हो।

भोले बालक के गुरू प्रेम के रस में भीगे सच्चे वचन सुनकर राजा जल बलकर आग बबूला हो गया और उसका रंग बदल गया। वह दांत पीसने लगा और बालक को मार कर खत्म करने की बात सोचने लगा। पर सांप की भांति वह अपने विष को उगलता निगलता उठकर महलों को चला गया। इस तरह उस सिख को मुक्त कर दिया। बालक घायल तथा थका मांदा बुरे हाल में घर पहुंचा सारा हाल माता-पिता को जा सुनाया। पर वह इस कष्ट के कारण तनिक भी न रोया धीरे-धीरे यह समाचार दशम गुरू जी तक पहुंचा। आपने बालक के वे कष्ट सुने और उसके सच पर परिपक्व रहने के समाचार सुने। दस बीस दिन के बाद सतगुरू जी एक घने वन की ओर आए। आपने जंगल में जाकर उस बालक को देखा जो तीर चला रहा था। उसकी शिस्त तथा उसके निशाना लगाने तथा खींचकर कमान चढ़ाने की कला को देखा। बालक की निशाना लगाने वाली चुस्ती तथा चालाकी गुरू जी को पसंद आई। एक बाघ एक पथिक पर लपककर पड़ा तो बालक ने बाघ के मुंह पर तीर चलाना शुरू कर दिया। उसे तीरों से ऐसे बींध दिया जैसे कि सरकंडे बीज रखे हों। पीड़ा से व्याकुल होकर बाघ ने पथिक को छोड़ दिया। तीर लगने के कारण बाघ तड़पने और चिल्लाने लगा। उसका चेहरा, सिर और गर्दन ऐसे हो गये जैसे सेही का सिर होता है। हिलते तथा तड़पते बाघ पर बालक निशाना बांध बांधकर तीर चलाने लगा, उसकी आंखों तथा कानों और शरीर के सभी अंगों पर तीर लगे। जहां पर वह निशाना बांधता, तीर ठीक

वहीं पर जा लगते, उसका निशाना तनिक भी न चूकता। बालक की कुशल तीरंदाज़ी को देखकर सतगुरू जी ने तीर चलाया। आपने कमान खींचकर निशाना बांधा और पूरे बल से तीर चलाया। इस तीर में यह कमाल था कि जो तीर बालक ने चलाया था यह तीर उस तीर को जा लगा। सिख का निकला हुआ, तीर गुरू जी के तीर लगने से गिर पड़ा। बालक ने चकित होकर कमान रख दी और आगे पीछे देखने लगा। सोचने लगा यह कौन महान खिलाड़ी है जो मेरे ही तीरों को बींध रहा है। मैंने तो तीरंदाज़ी की विद्या पूरी की थी, पर अब तो मेरे हाथ भी कुंठित हो गए हैं। फिर धरती पर पड़ी उसकी कमान में एक तीर आकर लगा; पर बालक को कोई चोट न आई और तीर ठीक निशाने पर आ लगा। फिर एक और ऐसा तीर चलाया जो चुपके से आया और बालक की दस्तार को छू गया, परन्तु उसे कोई चोट न आई। वह अर्जुन हैरान खड़ा रह गया और उसके मन का गर्व टूट गया। उसकी तीरंदाज़ी की कला के मानो छक्के छूट गए। जब उसका गर्व चला गया, अहं टूट गया, तब सयाने वैद्य सतगुरू जी उसके पास पहुंचे और उसके सिर पर हाथ रखा और कंठ से लगाकर कहने लगे, 'मेरे बालक! प्यारे पुत्र! तेरी कमाई सफल है। तेरी तीरंदाज़ी पूरी हुई है और उसके साथ-साथ अहं का भी अंत हुआ है। अब तू सेवा कर, धर्म की रक्षा कर। पाप के राज्य से प्रजा की रक्षा कर और अपना तन भी न्योछावर कर। खुशी, शुक्र, प्रेम से भरकर बालक चरणों पर झुका और कहने लगा, "हे कल्ग़ी वाले स्वामी! मैं अनजान बालक हूं। आपने कृपा करके मुझे अपना दास बना लिया है और आज्ञा पालन तथा सहन करना सिखाया है। अब आप मुझे यह दान दीजिए कि मैं नित्य आज्ञा को मानूं। गुरू जी ने कहा कि तू सफल है, निहाल है। यह सुनते ही बालक ने शीश झुका दिया। उसके मन में जिस वरदान को प्राप्त करने की लालसा थी, वह मन वांछित फल मिल गया। इस तरह गुरू जी ने अपने सेवक की आशा को पूरा करके उसे सम्मान दिया। गुरू जी ने उसके गुण को धर्म की सेवा में सफल करवा दिया। उसके मन में इस बात का गर्व था कि वह पक्का निशानेबाज़ है पर वह गुरू जी की निशानेबाज़ी को देखकर हक्का बक्का रह गया वह पहले शूरवीर था, अब गुरू जी ने उसका अहं निकाल दिया। वह परोपकारी बन गया और फिर उसने तीर नहीं चलाये।"

❑ ❑

३६ गुरू जी के तीन दर्शन

त्रिलोक बाई

मूसन मसकर प्रेम की रही जु अंबरु छाइ॥
बीधे बांधे कमल महि भवर रहे लपटाइ॥

रात काली, आकाश नीला, पर चांद सफेद और चांदनी की कांति-भरी छवि और उसमें मिल रहा है चमकते हुए तारों का मंद पर कान्ति भरा प्रकाश।

हां, जाड़े की रात है और सर्द रात की सर्द चांदनी और सर्द चांदनी की कांति भरी फुहार धीरे-धीरे पड़ रही है। मानो पारे की बर्फ के गोले गिर रहे हों।

यह रंग, यह सुहावनापन देखने वाला तथा यह रस लेने वाला है। शीत के कारण अभी भीतर चले गए हैं और सभी ने रज़ाइयां ओढ़ ली हैं। बाहर के शीत है और मीठी-मीठी चांदनी खिल रही है। शान्ति के प्रभाव वाली एकान्त तथा स्वाद वाली चुप और मौन इतना है कि चुप्पी भी दुबक रही है, पर वन में खिले फूलों की भांति, जिसका रस कोई नहीं लेता, जाड़े की यह रसदाता चांदनी वैसे ही जा रही है। हां, बाहर साधु धूनी लगाकर बैठा है, पर धूनी का धुआं भी इस चांदनी के रस से वंचति है। नियम वाला जाग सकता है, पर समय के अनुसार जागने का नियम उसे शीघ्र ही भीतर ले जाता है और सुला देता है पहरेदार जागता है, पर वह भी पहरे को झंझट ही समझ रहा है। मन नौकरी में है, चांदनी के रस का आनन्द लेने वाली तबियत हाज़िर नहीं है।

ए प्रेमियो! तुम जागो। देखो दुष्ट आंख, स्वादों में पड़ी जिह्वा तथा नींद के रसिक कान सोए पड़े हैं। बाहर एकान्त शान्त रस तथा कान्ति का फुहार के बिना और कुछ भी नहीं है। प्रकृति की निखरी हुई सुन्दरता का रस लीजिए, रस लीजिए कर्तार के प्रभाव का, रस लीजिए प्रियतम की प्यारी स्मृति में मगनता का देखो इस चांदनी में प्रेमी भंवरा कैसे प्रियतम की प्रेमक टोरी में मगनता का रस ले रहा है, देखो चकोर कैसे चांद को देखकर बेसुध हो रहा है-

मूसन मसकर (चांदनी-प्रकाश) प्रेम की रही जु अंबरु छाइ॥
बीधे बांधे कमल महि भवर रहे लपटाइ॥

एक मकान की ऊपर की छत पर इस समय एक प्रेमिका की कैसी सुंदर पालथी लगी हुई है उसमें प्यारे के दर्शन की लालसा है विरह वाले मन को शरद चांदनी में बैठकर शीतल कर रही है और ध्यान में दर्शन का रस लेती है। आगे वीणा टिकी हुई है। आंखें बंद हैं। कभी खुलती हैं, कभी बंद होती हैं कभी-कभी उनमें से एक बूंद टपक पड़ती है। अब अचानक दृष्टि आकाश की ओर पड़ी और चांद पर जा टिकी। टिकी ही क्या? मानो हिलना ही भूल गई। इसी दशा में कुछ समय बीतने के बाद सहसा हाथों ने वीणा उठा ली और पतली उंगलियों ने बहुत सुरीला आलाप शुरू कर दिया। यह आलाप कैसे आश्चर्यजनक है। दिल बिंधा जा रहा है। पहले तो तिलंग राग था, फिर पूरिया होकर यह सोहनी की वैराग्य वाली मूर्ति में पलट गया। कण्ठ में से मीठी-मीठी ध्वनि निकल पड़ी। जो कुछ गायन किया उसका भाव कुछ इस प्रकार था-

हे चांद! हे सुन्दर चांद! तू नयनों को शीतलता प्रदान करता है, मन को लुभाता है और आपे को स्थिर करता है। तेरा नगर आकाश है, तारे तेरी सुहावनी प्रजा हैं। नक्षत्र तेरे दास हैं, जो करबद्ध खड़े सुहावने लग रहे हैं। प्रजा तेरे से प्यार करती है तुझ पर न्योछावर होती है, तू प्यार से सबको मोहित कर रहा है। प्रकाश तेरा रूप है, प्रकाश ही तेरा नगर है, तेरी प्रजा चमक वाली है, तू प्रकाश की वर्षा करता है, शीतल तथा दूध से भी अधिक सफेद तेरा प्रकाश चारों ओर चमकता है, तू कवियों के मनों को चुराता है। तुझे चकोर देखता है, कुमुदिनियां भी देखकर मोहित होती हैं। सामने झुकझुककर दर्शन करती हैं। तूने काली रात को अपनी दुल्हन बनाया है। तूने उस पर अपना रंग चढ़ाकर उसकी काया पलट दी है। जहां पर तेरी पहुंच है, धरती तथा आकाश के ऊपर हे चांद। तू सब जगह पर शान्ति तथा शीतलता फैलता है। हे चांद भैया! मुझे भी तनिक शीतलता प्रदान कर और अपने प्रकाश द्वारा मुझे भी रास्ता दिखा दे हे चांद भैया, स्वयं तो तू गुरू जी के दर्शन करता है तू दर्शन करके आकाश में घूमता है और गुरू जी पर बलि बलि जा रहा है। बता तूने कौन-सा गुण धारण किया था जिसके फलस्वरूप तुझे गुरू जी के दर्शन हो रहे हैं। तूने कौन सा ऐसा कार्य किया है जिससे तेरे काम संवर रहे हैं। चांद कहता है, वह क्या बोलता है? मैं उसके स्वाभाविक बोल को दिल लगाकर सुनूंगी। "आपे को काटकर एक ही प्रेम करना चाहिए। यही अच्छा कार्य है कि आपा आपे में जाए।" हे चांद ठीक यही गुण था, तू ठीक ही कह रहा है, जिससे तूने गुरू को प्रसन्न किया है और तू सुहावना बना है। तुझे प्रेम लगा था, तेरे मन में दर्शन की चाह हुई, तू गुरू जी पर न्योछावर हुआ और जी जान लुटाने लगा। तेरे अन्दर प्यारे की खोज की चाह लगी है, अतः तू सभी संसार में घूमता फिरता है। तू जंगलों तथा पर्वतों को

देखता है, तू समुद्र की खोज करता है। पर प्यारा तो मिला नहीं बल्कि दिल का दर्द और बढ़ गया। विरह की कटार पकड़कर बड़े गहरे घाव लगता है। विरह ने दुखियों को और सता दिया है और तूने तो निज रूप को भी खो दिया है। तू प्रतिदिन विरहिणी की भांति घटता चला जाता है। हे सुन्दर चांद! अंत में इसी लगन में तूने अपना आपा खो दिया है और अपना अहं भी गंवा दिया है। अमावस की रात आती है तू आपा खो देता है, तू अपने अस्तित्व को खो देता है, मानो जीवित ही मर जाता है। जब तू आपे को खो देता है फिर तुझ पर अनुकंपा होती है। तू फिर से जन्म लेता है, तेरा नया जन्म होता है। तू फिर से खिलने लगा है, तेरी निराशा में आशा आ जाती है। तेरे मन में उमंग उठती है और फिर तू खुशियां और आनन्द प्राप्त करता है। जिस तरह आगत पत्नी अपने पति का आगमन सुनकर श्रृंगार करती है और आपे में नहीं समाती, उसी तरह तूने भी अपना रूप बदला है और अधिक बढ़कर चमकने लगा है। तू दिन प्रतिदिन बढ़ता चला जाता है और अपनी अद्वितीय आभा दिखाता है। अतः हे प्यारे! आज तू बहुत ही सुन्दर खिला है, अब दर्शन करने का समय अब आ गया है, अतः तू चढ़ती कला दिखा रहा है। तेरे परिश्रम को फल मिला है, प्यारे गुरू जी तुझ पर प्रसन्न हुए हैं, दर्शन करके तेरा तन तथा मन आनन्दमय हो गया है, फिर सुहागिन की भांति दर्शन में ही मस्त हो रहा है। तू खिलकर आनन्द लेता है और तुझे दर्शन की देन प्राप्त होती है। हे चांद, भैया! तू धन्य है, जिसे आज गुरू जी के दर्शन हुए हैं। तू आकाश पर खड़ा होकर वह दर्शन कर रहा है और नयनों से उनके दर्शन का रस पी रहा है। भैया! मुझे भी वह प्रेम वाली रीति बता, ताकि मेरा जीवन आपे को खोकर तथा मरकर जीवित हो। मेरे चारों ओर अज्ञान का अंधेरा छा रहा है। मैं भूलों के बोझ के नीचे दब रही हूं और प्रतिदिन निःश्वास भरती हूं। मैं गुरू की सिख तो बनी हूं, पर मैंने गुरू की किसी शिक्षा को भी धारण नहीं किया मैं मति भ्रष्ट हो रही हूं, गुरू को हृदय में नहीं बसाती। मुझे न तो प्रेम का ही पता है और न ही मेरे अंतस में विरह की पीड़ा है। मेरा हृदय मानो श्मशान बन रहा है और यह किसी तरह भी द्रवित नहीं होता। हे चांद! यदि तू मुझे प्रेम का ढंग बता दे तो कभी भी तेरा एहसान नहीं भूलंगी। वह ढंग बता जिससे मेरा यह हृदय द्रवित हो जाए और पिघल जाए, नर्म हो जाए। मेरा दिल प्रतिदिन दर्शन की इच्छा करता है, मैं सदैव सतगुरू जी का ही पता पूछती हूं। मेरी तो यह चाह है कि मुझे उसकी स्मृति कभी भी न भूले और वह आकर मेरे नयनों में समा जाए। मुझे उस प्यारे के बिना और कुछ भी प्यारा न लगे और उसके दर्शन का शोक उसकी बाट ही देखता रहे। जिस ओर मेरी दृष्टि जाए,

उसी ओर मुझे प्यारे का ही खेल दिखाई दे और उस प्यारे के बिना दूसरे सारे स्वाद खारे लगें। प्यारे के ही वाक्यों को सुनना, प्यारे की ही बात को करना, प्यारे के ही रास्ते पर चलना, और उसी का सुहावना यश गायन करना। यदि वह प्यारा कृपालु हो जाए, तो वह बख्श दे, बख्श कर मिला दे और इस तरह अपने विरद का पालन करे। हे पूर्णिमा के चांद भैया, तेरा भला होगा, यदि प्रेम वाली यह रीति तू मुझे भी सिखा देगा।[१]

: २ :

अब वीणा हाथ से गिर पड़ी और आंखें चांद की ओर देखते-देखते बंद हो गईं। बंद नयनों में से चांद की आकृति बदलने लगी, उसका आकार बड़ा हो गया, उसकी चमक बढ़ गई, सफेद चमक में एक सुनहरी झलक आ गई। किनारे के आसपास कंगूरे की भांति नीले रंग की चमक पैदा हो गई। बीच में एक सुनहरी रंग का तख्त बिछ गया; जिसके आसपास कुछ कान्तिमय रूप झिलझिल करने लगे। तख्त के ऊपर एक चक्कर-सा दिखाई दिया, जो एक स्वरूप में परिवर्तित हो गया और साफ रंग रूप दिखाई देने लगा। यह प्यारा रूप किसका है? वही, जिसने कभी बिजली की एक चमक से मोहित कर लिया था; जिसके दर्शन की लालसा करते ये दिन आ गए थे। यह वह प्यारी मूर्ति है जिसके फिर दर्शन की चाह करते-करते बाल भी चांद की सफेद किरणों की भांति सफेद होने शुरू हो गए हैं, हां जिसके चेहरे के एक ही बार के दर्शन न दिल पर मोहर लगा दी थी:-

अखीं प्रेम कसाईआं हरि हरि नामु पिखंनि।।
जेकरि दूजा देखदे जन नानक कढ़ि दिचंनि।।

यह वह रसभरी सूरत है, जिसने सभी सुन्दरों को सौंदर्य प्रदान किया है। जिसके दर्शन करने से दर्शन करने वाला अपने आपको पराया और इसे अपना समझने लगता है। अब इस दर्शन में 'आंखें' आपे को भूल गईं और दर्शन ही दर्शन शेष रह गया। इस तख्त के आसपास खड़े स्वरूपों से शब्द की एक ध्वनि निकल रही है, जिसे यदि कोई इस धरती के मनुष्यों को समझाए तो इसका अर्थ होगा:-

सुन्दर प्यार स्वरूप सब में समा रहा है, जो इस स्थान पर बैठा है, वह हर स्थान पर एक ही जैसा है। वह प्रेम बनकर आया है, वह प्रेम ही रहेगा और प्रेम ही था। प्रकट और गुप्त सब ओर एक प्रेम ही फैल रहा है। यह उस सारे का केन्द्र है, जिसकी कोई सीमा ही नहीं है। यह प्यार सीमा से परे है और सर्वव्यापक है, जब कभी कोई प्यार प्यार करके इसका स्मरण करता है तो वहां

१. यहां पर लेखक की पंजाबी कविता का मुक्त अनुवाद प्रस्तुत किया है।

पर ही इसका केन्द्र बन जाता है और यह दर्शन देने लगता है। इसका दर्शन प्रकट है, छिपा नहीं है। परन्तु जिन आंखों में सिदक नहीं है, उनमें जैसे मोतियाबिंद हो रहा है। विद्या भी इसका दर्शन नहीं करा सकती, धन, शक्ति, यौवन तथा बुद्धिमत्ता इसके दर्शन नहीं करवा सकते। प्यार तो हमें प्यार करता है, पर हम उसे प्यार नहीं करते। यदि हम एक बार उससे प्यार कर लें, तो फिर दुख ही कोई न रहे।

तेरा रूप ही हमारा मान है, मेरा स्वरूप ही कृपा है। तेरी सूरत प्यारी है, जिसने सबकी रक्षा की है। तेरा विरद पालन करना और पतितों का उद्धार करना है। तू भूले हुओं को मार्ग पर चलाता है और मृतकों को जीवनदान देता है। तू पापियों पर प्रसन्न होता है और यह बात संसार में प्रकट है। तू स्वयं पर कष्ट झेल लेता है और झेलते हुए थकता नहीं। तू पापों की दीवार को तोड़ देता है और बिछुड़े हुओं को मिला देता है, तू मनुष्यों को बंदी से मुक्त करवाकर सुखी बनाता है। तेरी टेक प्यारी है, तेरा ही आश्रय है। हे प्यारे! तेरी ही ओट है, तू ही हम निम्न व्यक्तियों का मान है। हे प्यारे! हमें अपने चरणों की धूलि में ही रखना, इससे न बिछुड़ने देना, जिसने हमें मिला लिया है। हे प्यारे! मेरी जिह्वा पर तेरी ही कीर्ति हो। मेरे हृदय में मेरे बिना और किसी का निवास न हो, तू ही मेरे रोम-रोम में समाया रहे। यदि मैं देखूं तो केवल एक तुझे ही देखूं, मुझे कोई दूसरा दिखाई ही न दे। हे दीन दयालु! मुझे दान दे, जो मैं मांगू, वही मुझे मिले।

यह सुनते-सुनते आवाज़ तथा सुनहरी झलक मंद होने लगी। दर्शन भी ओझल हो गया और एक बहुत सुन्दर वृद्ध पुरुष दिखाई दिए। जो कुछ उन्होंने कहा उसका तात्पर्य यह है:

दर्शन ओझल हो गया है और प्यार छिप गया है; अब वह रूप दिखाई नहीं देता, वह दर्शन अब छिप गया है। अरूप की झलक दिखाई दी थी, वह आया था, मगर अब वह खेल खेलकर चला गया है। वह तो प्यारा अगम्य का रूप था, उसका दर्शन हुआ और उसने दूसरी ओर तैयारी कर ली।

चांद छिप गया, तारों की सभा लुप्त हो गई। सूर्य अभी चढ़ा नहीं, फिर भी अन्धेरा नहीं हुआ, मंद सुहावना प्रकाश है। सूरत-शक्ल कुछ भी दिखाई नहीं देती, पर "है" का भाव अविच्छिन्न छा रहा है:-

तह पावस सिंधु धूप नही छहीआ
तह उतपति परलउ नाही॥
जीवत मिरत न दुखु सुखु बिआपै
सुंन समाधि दोऊ तह नाही॥१॥

सहज की अकथ कथा है निरारी॥
तुलि नहीं चढ़ै जाइ न मुकाती हलुकी लगै न भारी॥१॥ रहाउ॥
अरध उरध दोऊ तह नाही॥
जलु नही पवनु पावकु फुनि नाही सतिगुर तहा समाही॥२॥
अगम अगोचर रहे निरंतरि गुर किरपा ते लहीऔ॥
कहु कबीर बलि जाउ गुर अपने सति संगति मिलि रहीऔ॥३॥४॥

अचानक माई के नेत्र खुले। क्या देखती है कि आत्म मण्डल में से उत्थित्त होकर शारीरिक प्रदेश में आ गई है। आकाश में चन्द्रमा नीचा हो गया है, दमक रहे तारे चक्कर काट गए हैं। शान्ति तथा शीतलता छा रही है। अब मन में लालसा, चाह तथा प्रेम है। मानों प्रेम आनन्द के समुद्र में डुबकी लगा आया है। हाथ नहीं हिलते; जिह्वा नहीं खुलती, प्यार, शुक्र तथा आनन्द की लहर है। मन शुक्र का स्वरूप है और इस तरह के भाव में है:–

पतित पावन भगति बछलु भै हरन तारन तरन॥१॥ रहाउ॥
नैन तिपते दरसु पेखि जसु तोखि सुनत करन॥१॥
प्रान नाथ अनाथ दाते दीन गोबिंद सरन॥
आस पूरन दुख बिनासन गही ओट नानक हरि चरन॥३॥

[काः मः ५ घर ९]

अब आंखों में आंसू भर आए, भरते ही आंखें मुंद गईं। आंसू बीच में ही रहे, कोई एकाध गिरा। एक पल के बाद फिर नेत्र खुले। नेत्र कभी खुलते हैं, कभी बंद होते हैं, कभी अधखुले होकर खिंचे जाते हैं और सजल हैं। इस तरह अंदर–बाहर आनन्द के झकोरे आ रहे हैं। इस रंग में बैठे कहीं दूर से बड़ी प्यारी तथा मीठी सुरीली आवाज़ कानों में पड़ी, जिसमें इस तरह का कुछ भाव था:–

हे सतगुरु प्यारे! अब मिलो॥१॥
कृपा करके दर्शन दो।
मैं आपके द्वार पर दर्शन के लिए खड़ी हूं,
मैं लालसा में खड़ी पुकार रही हूं,
कृपा कर और दर्शन दे।
हे सदगुरु प्यारे! अब मिलो॥२॥
मेरे पास गुणों की कोई राशि नहीं है,
पर मैं तू ही तू ही करती फिरती हूं।

मेरे नयन तेरे दर्शनों के लिए तरस रहे हैं
हे प्यारे सदगुरु! अब मिलो॥३॥
हे कल्ग़ी वाले मालिक! हे प्रभु स्वामी के बालक!
तूने जगत का स्वयं उद्धार किया है।
अब हे प्यारे! तुम मिलो॥४॥
तू ही एक समर्थ है, मेरा उद्धार तेरे ही हाथों में है।
मैंने और किसी दूसरे को नहीं देखा।
हे प्यारे सदगुरु! अब मिलो॥५॥
तेरे जैसा और कोई दाता नहीं है,
तेरे जैसा और कोई उद्धार भी नहीं है,
तूने ही आपा देकर संवार लिया है।
हे प्यारे सदगुरु! अब मिलो॥६॥
मैं तेरी शरण में पड़ी हूं, आकर मेरी रक्षा कर।
अपना ही विरद पहचान कर मेरी रक्षा कर।
हे अपने विरद का पालन करने वाले!
हे प्यारे सदगुरु! अब मिलो॥७॥

: ३ :

इस तरह आत्म रंग में बैठे रात बीत गई, चांदनी लुप्त हो गई, तारे नीली चादर ओढ़कर छिप रहे हैं, छिप जाओ भाई! प्रेमी भाई रस में मुग्ध है; रोम-रोम में 'नाम' समा रहा है, धरती तथा आकाश नाम से भर रहे हैं। गुरू ने अब शब्द स्वरूप नाम का व्यापक दर्शन प्रदान किया है। यह वह अवस्था है, जिसमें गुरुमुख उठते, बैठते, चलते-फिरते, जागते, सोते, निंदा होते, स्तुति होते, मिलते, बिछुड़ते; संयोग-वियोग झेलते, लगे ही रहते हैं। यों शरीर में होते हुए ज्ञानावस्था की लहर स्वीकृत गृहस्थ उदासियों को नाम के अखंड निवास में प्राप्त होता है। गुरू जी ने प्रेमी माई को सारे दर्शन से निहाल कर दिया है।

यह उस प्रेमी माता के दर्शन है, जो गुरुपर्व के समय आनन्दपुर नहीं पहुंच सकी थी। पर वैराग्य, लालसा, शुक्र तथा विनती के मिले-जुले भावों में 'गुरमुखि जागै सोई सारु' के अनुसार रात 'भिन्नी रैनडीर चमकन तारे॥ जागन संत जना मेरे राम पिआरे।' के रंग में रंगी जा रही है। यह माता त्रिलोक बाई दिल्ली निवासी राधा रत्न की पत्नी थी, जो गुरुपर्व के अवसर पर आनन्दपुर न पहुंच सकने के कारण घर में ही गुरुपर्व का आनन्द ले रही है। प्रेम में है, कीर्तन में है, नाम में है, फिर अपने घर में बैठी संसार यात्रा को सफलतापूर्वक पूरा कर रही है।

❑ ❑

३७ भाई सुजान सिंह

लाहौर शहर में खन्ना जाति के दो धनी विद्वान भाई अपने परिवार सहित रहते थे। बड़े भाई की कोई संतान नहीं थी और वह जगत निस्संतान ही चला गया था। छोटे भाई के घर में ताया की मृत्यु से पहले एक पुत्र ने जन्म लिया। ताया ने उसे गोद ले लिया था और बड़े प्रेम सहित उसका लालन-पालन किया, दुलार ओर लाड़ किया। इस तरह उसने अपनी लालसा पूरी थी। उसने बालक को हिंदी, संस्कृत, फारसी, अरबी आदि भाषाओं की शिक्षा दिलवाई। फिर एक बढ़िया हकीम की खोज करके उसे हिकमत पढ़ाना शुरू करवाया। कई वर्ष के परिश्रम के पश्चात उसे कुशल हकीम बना दिया। वह हकीम हाज़िक बन गया और अच्छी हिकमत (चिकित्सा) करने लगा। उसे सारे सुख प्राप्त हो गए और किसी प्रकार की कोई तंगी न रही। पर एक 'छेद, एक 'दूरी' अथवा रिक्तता' उसके दिल में बनी रही और वह किसी तरह भी पूरी होती दिखाई न देती। दौलत से भी उसकी रिक्तता की पूर्ति न हुई, विद्या ने भी उसकी पूर्ति न की, रंग तथा तमाशे अथवा सम्मान से भी उसकी पूर्ति न हुई। उसकी चतुर पत्नी भी उसकी पूर्ति न कर सकी। पुत्रों की जोड़ी से भी उसकी पूर्ति न हुई। उसके दिल में एक सोच आई कि तीस वर्ष गुज़र चुके हैं, दुनिया में सब कुछ प्राप्त हुआ है और जीवन का यह समय अच्छा व्यतीत हुआ है पर दिल में जो कमी थी, उसकी पूर्ति नहीं होती थी। वह रिक्तता कम होने की अपेक्षा अधिक बढ़ रही थी और कांटे की भांति चुभ रही थी। जगत में जो कोई भी अच्छी वस्तु जो उसके कानों में पड़ती वह सोचता कि उससे यह रिक्तता पूरी हो जाएगी और उसकी मौज हो जाएगी। वह उसकी प्राप्त करने के लिए परिश्रम करता। पर उससे भी वह रिक्तता पूरी न होती और उसकी व्याकुलता बढ़ती ही चली जाती। वह सैर करने के लिए बाहर भी गया, तीर्थ यात्रा भी की, बहुत से साधुओं, संतों से भी भेंट की, चर्चा, वाद विवाद भी किए, पर उसकी रिक्तता की पूर्ति फिर भी न हुई। दोनों, पर्वतों की सैर भी की, नदियों, समुद्रों में भी घूमा, परन्तु उसकी तुप्ति कहीं पर भी न हुई और उसका हृदय रिक्त ही रहा। वह सोचता कि उसके मन की रिक्तता को कौन-सी वस्तु पूरी करेगी? जो रिक्तता अनेक परिश्रम करने के बाद भी पूरी नहीं हुई। देखिए, जिसे सभी पदार्थ प्राप्त हैं, वह भी घबराता है, तन मन से यत्न करके शान्ति प्राप्त करना चाहता है, पर उसे कहीं से भी शान्ति नहीं

मिलती। एक दिन अमृत राय नामक एक बुद्धिमान कवि उसे मिला। काव्य के विषय पर बातचीत चली और दोनों का मन खिल उठा। फिर काव्य की क़दर की बात चली और अमृत राय ने कहा: अब गुण के क़दरदान कम हैं, अब लोगों में इस गुण का शोक ही नहीं रहा।

बाहर से बुलावे आते हैं; पर उद्यम नहीं होता। लाहौर को छोड़कर कहीं और जाने को मन ही नहीं मानता। अब सतलुज नदी के किनारे से बुलावा आया है। एक मित्र कवि सेनापति है उसने बुलाया है, दसवें सतगुरू, गुरू गोबिंद सिंह जी ने कलियुग में अवतार धारण किया है। वे गुरू नानक की गद्दी पर सुशोभित हो रहे हैं और गुणवानों से उनका बहुत प्रेम है। गुरू जी कवि, दानी, राजा, योद्धा तथा विद्या का भण्डार हैं। सेनापति ने कहा है कि यहां पर आकर विद्या के दरबार को देखिए।

कानों में गुरू जी का नाम सुनकर तथा उनकी भारी स्तुति सुनकर मन को एक आकर्षण हुआ और वह आकर्षण प्यारा लगने लगा। जब गुरू जी के नाम को याद करता है, तो नाम उसे प्यारा लगता है। आकर्षण होता है, मन में हलचल होती है और कभी-कभी तो उसका सारा शरीर कांपने लगता है। सोते हुए यदि याद आ जाए तो जाग उठता और आंखों में नींद नहीं आती और यदि खाना खाते समय ध्यान में आ जाए तो उसका खाना वहीं पर रह जाता है। अगर एकान्त में बैठे सोच आ जाती है तो उसी प्रवाह में बह जाता है और यदि रोगी की नाड़ी को देखते समय याद आ जाता है तो उसे रोग की भी समझ न आती और उसी विचार में डूबा रहता है। जब यह आकर्षण नियंत्रण से बाहर हो गया, तब वह प्यारा चल पड़ा। शनैः शनैः गुरू जी के दर्शन करने के लिए आनन्दपुर पहुंच गया। जहां पर सम्पूर्ण गुरू का दीवान लगा हुआ था, यह उस स्थान पर पहुंचा। पहले द्वार पर सिर झुकाया और फिर गले में पल्लू डाला और आगे बढ़कर दर्शन किये। दर्शन करते ही ऐसे लगा जैसे बिजली की लहर अन्दर दौड़ गई है। दर्शन के चमत्कार से आंखें चकाचौंध हो गईं। दीवार के साथ दीवार बनकर खड़ा रह गया। इस दशा में उसको आगे पीछे की कोई सुधि ही न रही मानो वह जीवित ही मृतक हो गया। इसी तरह टिकटिकी बांधकर काफी समय तक वहां खड़ा रहा। जब समाप्ति हुई, तो सारी संगत अपने-अपने घरों को चली गई। सतगुरू जी वे पास आकर सिख को देखा और देखते ही प्रसन्न हुए—"हे सिख! तू यहां से चला जा, यहां मत ठहर। गुरू का निवास संगत में है और संगत की सेवा करके सुख प्राप्त कर।" यह सुनकर वह न तो बोल सका, न सोच सका और वह कहता ही क्या? बस निमाना होकर चरणों पर पड़ गया और आंसू बहाने लगा। फिर सतगुरू जी ने वाक्य उच्चारण किए तू यहां से चला जा। शब्द गुरू

है और गुरू शब्द है, और दुखियों का दुख दूर कर।' आज्ञा पाकर उठकर चल दिया पर क्या देखता है कि गुरू जी की सूरत क़ा मन में निवास हो गया है और रिक्त स्थान भर गया है। कीरतपुर के पास जाकर टिक गया और घर का आकर्षण भूल गया। वह एक पहर रात रहते तड़के उठता, स्नान करके बैठ जाता। बैठकर गुरू के नाम का जाप करता और सतगुरू में ध्यान लगाता। यों मग्न होकर सतगुरू में लौ लगाता सूर्य चढ़ने के बाद बाहर निकलता और अपनी हकीमी की दुकान चलाता। रोगियों की चिकित्सा करके उनके दुख दूर करता। सभी लोगों को निशुल्क दवाई देता और किसी से भी कोई पैसा न लेता। अपने निर्वाह के लिए खर्चा घर से मंगवाता और रत्ती भर भी किसी पर बोझ न डालता। आधी रात हो या कोई अन्य समय, जब भी कोई आकर उसे बुलाता, वह उसी समय रोगियों की चिकित्सा करता और दुखियों की बात को न टालता। "संगत में गुरू का निवास है" गुरू जी के ये शुभ वचन उसके कानों में गूंजते रहते और वह सेवा करता रहता। उसने इसके साथ एक अन्य कार्य शुरू कर दिया, वह यह कि संगत की सेवा करना। आने जाने वाले सिख को अपने पास टिकाता। अन्न-जल की सेवा करता और गर्मी में पंखा करता। सेवा-सुश्रुषा करता और सुख पहुंचाता। सेवा में कोई कमी न रहने देता। उसके मुंह से सदैव गुरू जी का उपदेश चलता रहता। वह नाम जपता रहता, गुरू जी की संगत की सेवा करता और गुरू जी के बिना तो उसका एक भी श्वांस खाली न जाता।

इस प्रकार पांच छः वर्ष व्यतीत हो गए, पर वह सेवा करते और सेवा के भारी बोझ को उठाते हुए बिल्कुल नहीं थका। उसके मन में सतगुरू जी के दर्शन परसन की भूख प्रतिदिन बढ़ती जाती और वह सेवा में लगा रहता। गुरू को गुरू समझकर उसकी स्मृति में लीन रहता। सतगुरू अंतर्यामी, दयालु उसके मन की बात को जानते और उधर से आने जाने वाले सारे सिख उसकी स्तुति करते। एक शीतल रात को सतगुरू जी अपने महल में से चल दिए। आप घोड़े पर सवार होकर अपने इस सिख के मन्दिर की ओर चल पड़े। उस सिख के द्वार पर आ पहुंचे, घोड़ा बाहर बांध दिया। जब द्वार खोला तो क्या देखते हैं कि सिख ध्यान में रसलीन है। सिख के सामने चंदन की एक चौकी रखी थी, जिस पर मन को मोहित करने वाले गुरू जी विराजमान हुए, पहले सिख ध्यान में इस चौकी पर गुरू जी को बिठाता था अब आप सचमुच उस पर आकर बैठ गए। पर इस बात का पता सिख को न चला, क्योंकि वह तो ध्यान में मग्न था। ध्यान में सिख जिस स्वरूप को देखता है, वही स्वरूप गुरू जी ने दिखा दिया। घबराकर सिख ने आंखें खोलीं और उसका जमा ध्यान हिल गया। जब आंख खुली तो क्या देखता है कि सतगुरू जी सामने बैठकर दर्शन दे रहे हैं। वह तो ध्यान लीन हो

रहा था, अतः उसके सारे अंग शिथिल हो रहे थे वह टिका हुआ हिल न सका और प्रेम में आकर देखने लगा। मानो सारी सूरत आंखों से देख रहा है। इस तरह एक घड़ी से अधिक समय व्यतीत हो गया और सिख तथा गुरू एक हो गए। आत्मा वाला यह मिलाप आश्चर्यजनक था गुरू और सिख एक दूसरे के प्रेम में पिरोए गए। इतने में व्याकुल करने वाली एक आवाज़ आई "हे वैद्यराज! मैं दुहाई देता हूं, मेरा उपचार कीजिए। अब सिख की सुरति चौककर बाह्य मुखी हो गई। जब समझ आई तो मन में द्विविधा हुई। सुरति तो सोच में पड़ी है और उधर कोई रोगी आया है जो ऊंचे स्वर में रोया है यह क्षण तरस तरसकर मिला है। यदि जाता हूं, तो विमुखता होगी और यदि नहीं जाता तो आज्ञा का उल्लंघन होता है। यह निर्णय किया कि पहले आज्ञा का पालन करूं और फिर प्यारे के चरणों पर से रोकर भूल के लिए क्षमा मांग लूंगा। यह सोचकर सिर झुका या, गुरू जी वहीं पर विराजे रहे। सूरज की भांति सतगुरू जी की अखंड समाधि लग गई। वैद्य निकलकर बाहर आ गया और रोगी के साथ चल दिया। रोगी की सेवा की और उसे मरने से बचा लिया। सेवा करके घर पर लौट आया और धीरे से अन्दर गया। क्या देखता है कि गुरू जी के नयन बंद हैं और आप पद्मासीन बैठे हैं। इसने धीरे से दूर से ही मस्तक झुकाया, गुरू जी ने अपने नयन खोले। इसने कहा, 'मुझ अपराधी पर क्षमा कीजिए "क्षमा कीजिए" क्षमा कीजिए! कहने लगा हे सतगुरू! जब आप आए, और मैं घर से बाहर चला जाऊं। इसके लिए मुझे किसी भारी नर्काग्नि में डालिए।" इसके सिर पर सतगुरू जी का कोमल हाथ फिर आपने इसे उठाकर गले से लगा लिया और "आज तेरा परिश्रम सफल हुआ है "कहकर कवरदान दिया। आपने कहा कि जो मेरी आज्ञा का पालन करता है वह मुझे प्यारा लगता है। वही सिख है, वही सत्संगी है और वही मेरा दुलारा पुत्र है।" सतगुरू जी उसे अपने साथ ले गए और उसे अपनी संगत के साथ मिला दिया। उसे सुजान सिंह नाम प्रदान किया और उसके परिवार को भी बुला लिया। पत्नी, पुत्रों सभी ने आकर ईश्वरीय दर्शन प्राप्त किये। ये सारे अमृत पीकर जीवित हुए और अपने जन्म को सफल किया। पत्नी अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई घर पर ही रह रही थी। वह पति को खर्चा भेजती थी, आज्ञा का पालन करती थी और अपने आचरण में पक्की थी। गुरू जी को उसका यह आचरण अच्छा लगता था अतः पति के साथ उसका भी उद्धार हो गया। जगत में आने वाले उन सब लोगों का उद्धार होता है जो आज्ञा का पालन करते हैं। सिख कर्म का मार्ग खांडे की धार से भी तीखा है। जिन सिखों ने आज्ञा का पालन किया है, उनका सिख कर्म सफल हुआ है।

❑ ❑

३८ त्रिलोक बाई तथा घुल्लूशाह

नवाब सरहिंद का 'इशरद कदह' नामक एक अद्‌भुत बाग था, जिसका स्वरूप अब सरहिंद के खंडहरों में लुप्त है। आज जहां पर ईंटें ठीकरियों के ढेर तथा खंडहर हैं, कभी वहां पर बारादरियां, संगमरमर के तख्त, फव्वारे, तालाब, झरने, सरों के वृक्षों की पंक्तिया, सुन्दर रविशें, फूलदार पौधे, फलदार वृक्ष तथा सुगंधि भरी घनी छाया, तथा वृक्ष लहलहाते थे। इस बाग में सुख-स्वाद का ऐसा कोई भी सामान नहीं था, जो उपलब्ध न हो। बाग़ में प्राकृतिक सुन्दरता तथा मनुष्य द्वारा आयोजित सुन्दरता का संगम होता है। यह सुन्दरता अपने आप में एक आश्चर्यजनक तासीर रखती है, पर सुन्दरता से व्यक्ति इस रस का आनन्द नहीं लेता, वह इसे भी स्थूल रसों का आनन्द लेने के लिए प्रयोग में लाता है। यों सुरति को पंख लगाकर स्वतन्त्रता में ले जाने वाले सामान व्यक्ति को इन्द्रियों के बस में परतंत्र किए जा रहे हैं। चाहे इस बाग़ का भी प्रयोग इसी प्रकार के बाह्य रसों के लिए किया जाता था, पर रात को जब इन रसों को भोगने वाले महलों में चले जाते थे, तो बाग़ के छा रहे एकान्त में सुन्दरता की विस्मय भरी तासीर मानो चमक उठती थी।

बाग़ का चौधरी अर्थात् बड़ा माली तनिक रसिक पुरुष था। वह कभी-कभी रात को इस एकान्त से प्रभावित होकर साधु-फकीरों से मेलजोल रखने लग पड़ा था, फिर यह एकान्त और अधिक सुहावना लगने लगा था।

इस बाग़ की एक ओर शाही महल था और दूसरी ओर सड़क के पास एक कोने में माली का घर था। इसके घर में आकर टिकने वाले फकीर कई बार रात के समय इस बाग़ का आनन्द लेते थे।

माली का नाम घुल्लूशाह था इसकी पत्नी पीर बुद्धूशाह के एक मुरीद की बेटी थी। वह मायके से ही फकीरी विचार लेकर आई थी। वास्तव में घुल्लूशाह पर इस महिला की संगति के कारण रंग चढ़ा हुआ था।

एक बार पीर बुद्धूशाह अपनी पीरी भेस का त्याग करके साधारण फकीर के भेष में सरहिंद आया, तो वह घुल्लूशाह के पास ठहरा। अमृत वेला में पीर जी बाग़ में जा बैठे और उस एकान्त तथा शान्त समय में मन को मन में एकाग्र करके रसमग्न हो गए। दिन चढ़ने से पहले नयन खोले, और आपने बारीक स्वर में गायन किया—

लाख उलाहने मोहि हरि जब लग नह मिलै राम॥
मिलन कउ करउ उपाव किछु हमारा नह चलै राम॥
चल चित बित अनित प्रिअ बिनु कवन बिधी न धीजीअै॥
खान पान सीगार बिरथे हरि कंत बिनु किउ जीज़ीअै॥
आसा पिआसी रैनि दिनीअर रहि न सकीअै इक तिलै॥
नानक पइअंपै संत दासी तउ प्रसादि मेरा पिरु मिलै॥२॥

घुल्लू के मन पर इन पंक्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा। कहने लगा, "साईं जी! कुछ कृपा कीजिए? मुझे फकीरों की संगति करते हुए आठ वर्ष गुज़र चुके हैं, मैंने यह भी जान लिया है कि 'हमाओस्त' (सब ईश्वर है) यह भी पता चला है कि मैं ईश्वर हूं, पर मेरे मन को कुछ लगता नहीं। आज जो कलाम आपने पढ़ा है, वह मेरे अंदर धंस गया है। कैसे मिला जा सकता है? स्वयं तो नही हो सकते? मिला भी जा सकता है अथवा नहीं, मैं काफ़िर तो नहीं; जब आपको यह कहता हूं।"

बुद्धूशाह–साईं के प्यारे! परमात्मा तो एक है, दो परमात्मा हो ही नहीं सकते, यदि तू भी परमात्मा हो गया, तो दो हो गए। (मुस्कराकर) हां! तू परमात्मा के साथ ऐसे जुड़ सकता है, जैसे तू पौधों को पैबंद लगाता है।

घुल्लू–लिल्ला (खुदा के वास्ते) मुझे उसी मार्ग पर चला दीजिए।

बुद्धूशाह–भाई! मुझे लगता है कि तेरे लिए उपहार माखोवाल आनन्दपुर में है, जहां पर खुदा का नूर प्रकट हुआ है, जिस घराने की वाणी का मैं पाठ करता हूं। यदि तुझे सभी सुखों के शिरोमणि सुख की चाह है, तो उसकी हुज़ूरी में हाज़िर हो। उस मुहब्बत के ज़हूर, उस नूर तथा प्रकाश से जाकर मिल।

यह कहते हुए बुद्धूशाह का कण्ठ अवरुद्ध हो गया, नयन भर आए और वह आगे से कुछ कह न सका, पर घुल्लूशाह तथा उसकी पत्नी पर गहरा प्रभाव पड़ा। रोम-रोम में झन्नाहट छिड़ गई और महसूस हुआ कि हम उस दाता के हैं। बुद्धूशाह तो एक दो दिनों में विदा हो गए और घुल्लूशाह का प्रेम अपने में घुलमिल घुलमिल करने लगा। आठ वर्षों में कोई पौधा अथवा वृक्ष ईश्वर न भासा, पर आज जिधर भी दृष्टि जाती है, आंखों के आगे एक प्यारी झलक झलकने लगती है बुद्धूशाह इसे एक शब्द फारसी लिपि में लिखकर दे गए–

सतिगुरु आइओ सरणि तुम्हारी॥
मिलै सूखु नामु हरि सोभा चिंता लाहि हमारी॥१॥ रहाउ॥
अवर न सूझै दूजी ठाहर हारि परिओ तउ दुआरी॥
लेखा छोडि अलेख छूटह हम निरगुन लेहु उबारी॥१॥
सद बखसिंदु सदा मिहरवाना सभना देइ अधारी॥
नानक दास संत पाछै परिओ राखि लेहु इह बारी॥२॥ ॥४॥ ॥९॥

पति पत्नी ने यह शब्द कंठस्थ कर लिया और इसी का जाप करते रहते। दर्शन की लालसा बढ़ती जा रही है, पर कठिनाई यह है कि यह नौकरी नवाब की है, जिसकी गुरू साहब से शत्रुता है। यदि पता चल गया तो जान चली जाएगी और यदि छुट्टी लेकर जाए और लौट आने पर पता चल गया तो नाम निशान मिट जाएगा। और यदि चोरी चला जाएं और लौटकर न आए तो परिवार तथा कबीले पर नवाब का कहर टूट पड़ेगा और उधर इस बात का भी ध्यान है कि मृत्यु रूपी नवाब का भी पता नहीं कब आ जाए। यदि दर्शन करने से पहले ही आ जाए तो लालसा भरे तरसते ही चले जाएं। इस दशा में दिन गुज़रते गए। यदि किसी सिख की सूरत दिखाई देती है, तो दिल में से बिजली की एक झलक सी गुज़र जाती है। मन में आता है कि यह उस प्यारे की सूरत की मूर्ति उतरी हुई है। विवश ही सिर झुकता है। कभी-कभी कोई सिख साधु आ जाता है, तो यह उसकी सेवा करता है और उससे गुरुवाणी का पाठ सुनता है। ज्यो-ज्यों वाणी का पाठ सुनता है, त्यों-त्यों बिंधता चला जाता है। सुन सुनकर 'मेहताब' ने कई शब्द कंठस्थ कर लिए। अमृत वेला में बाग़ में कहीं पर बैठकर मीठे तथा बारीक स्वर में गाती है। इस तरह प्यार तथा शान्ति का समां बंध जाता है। गुरू जी के दर्शनों की चाह ने दंपत्ति का संगत से प्यार डाल दिया। सिख का नाम सुनते ही हृदय शीतल हो जाता है, सेवा करते हैं। जिस नगर में सिखों को कई बार कष्ट मिलते थे, वहां पर एक प्रेमी का गुप्त ठिकाना बन गया है। घुल्लू को इस बात का पता था कि यदि इस नगर में कोई मुसलमान किसी सिख पर अत्याचार करता है तो उसकी सुनवाई कम होती थी। अत: वह सिखों की सहायता तथा रक्षा जहां तक संभव हो, गुप्त ढंगों से ही करता था। जब कोई सिख उस पर प्रसन्न होकर विदा होने लगता, तब दंपत्ति उसके आगे खड़े होकर करबद्ध विनय करते, "हे गुरू संवारे! आशीर्वाद दे, ताकि इन नयनों को भी उस 'नूर इलाही' का दीदार हो।"

बाग़ के पूर्व में घुल्लू का छोटा-सा घर था और पश्चिम की ओर महल था, जिसमें से बाग़ को कई रास्ते जाते थे। नवाब की एक प्यारी बेगम 'जैना' के महल के कमरे बाग़ की सफील के ऊपर थे। नवाब तो प्रायः आधी रात तक रंगरलियां करता रहता और फिर उसे नशा विवश करके सुला देता, पर 'जैना' कई बार तड़के उठ खड़ी होती और कभी-कभी मेहताब का प्यारा बारीक स्वर उसके कानों में पड़ जाया करता। वैसे भी मेहताब का उसके पास आना जाना था, पर अब प्यार कुछ अधिक बढ़ गया था। सौतों के दुख, अपने ज़बर्दस्ती महलों में डाले जाने तथा परिवार से बिछुड़ जाने की उदासी नवाब का शराबी बन जाना और दुख देना, प्रजा के साथ उसके कठोर व्यवहार के दुख, ज़ैना के सीने को जलाते। वह अपने दुख-दर्द मेहताब के साथ बांटने लगी और गहरी सखियों की भांति उनमें हित हो गया। कई बार इसके व्याकुल मन को मेहताब के सत्संग से शान्ति मिलती।

प्रेम हुए को आठ महीने व्यतीत हो गए। रातें ठण्डी होने लगीं, मार्गशीर्ष ने पैर जमा लिए, सर्दी के कारण नवाब की बाग में लगने वाली मजलिसें मंद होती होती समाप्त हो गईं। जब रंगरलियों के ठाठ, राग, शराब के जल से महलों में होने लगे हैं। अतः माली मालिन को सारी रात बाग खाली मिल जाता है। तारों से सुशोभित भीनी-भीनी तथा ठण्डी रात के पिछले पहर से पति-पत्नी गरम कपड़े ओढ़कर वैराग्य भरे शब्द पढ़ते और प्रार्थना करते, पर देखिए साईं की कुदरत! कलियुग के लिए बनाए गए बाग़ में सत्युग चक्कर लगाता है।

बाग़ के दूसरे कर्मी तथा माली शहर के रिवाज के अनुसार रात को अपने घरों को चले जाते थे, अतः भेद छिपा रहा और माली के प्यार वाले स्वभाव ने भी कुछ सहायता की। वैसे ज्यादा आना जाना सूफी फकीरों का भी था। सूफी मुसलमान होते थे, अतः माली के कर्मों में से सिख कर्म से प्रेम की खबर नहीं निकली, केवल यह बात फैली हुई थी कि "घुल्लू फकीर दोस्त है।"

धीरे-धीरे घुल्लू का प्रेम बाढ़ की भांति चढ़ आया। अब दिल कहता है: जो हो सो हो, प्राण क्या वस्तु है और रोज़गार क्या है? इस तुच्छ भय के बदले प्यारे के दर्शन के बिना श्वासों को व्यर्थ खो देना अपने आपका वध करने तुल्य है चलो अब चलें। अतः एक महीने की छुट्टी ले ली और चलने की गुप्त तैयारी होने लगी। एक दिन सवेरे सवेरे मेहताब को ज़ैना ने बुलवा भेजा। ज़ैना उससे मिलकर रोई। मेहताब ने पूछा: कुशल तो है? उसने कहा, कुशल काहे की? वह देख यह कहकर उसे दूसरे कमरे में ले गई। वहां पर एक जवान स्त्री को रस्सी

के साथ जकड़ रखा था; हाथ पैर नीले हो रहे थे और उसका चेहरा रुई की भांति सफेद हो रहा था। ज़ैना ने मेहताब को इसकी सारी व्यथा सुनाई–

नगर में कल एक सिख विवाह करके डोला घर लाया था। एक काज़ी ने रास्ते में ही डोला घेर लिया और छीनकर उसे नवाब के पास भेज दिया। नवाब ने इसे मेरे डेरे पर भेज दिया। जब आप रात को आए, तो इसे सब्ज़बाग़ दिखाए गए तथा गहनों के लालच दिए गए, पर इसने एक ही 'न' जारी रखी। फिर नवाब ने हंसकर इसे कहा: 'यहां पर तेरी सहायता करने वाला कौन है? जिसके बल पर हठ कर रही है।' देख दीदी! पहले तो यह चुप थी और फिर न जाने किस दर्दनाक आवाज़ से बोली–'मेरा सहायक मेरे संगसाथ है' नवाब ने कहा, 'तेरा सहायक कौन है? कहने लगी 'कल्ग़ीधर मेरा रक्षक मेरे साथ है।' कल्ग़ीधर का नाम सुनकर उसे क्रोध आ गया। पहले तो दासियों से पिटवाया, यह चूर चूर हो गई, पर शुक्र शुक्र करती रही, फिर इसे जो दण्ड दिया उसे देख ही रही हो; मैंने बहुत कहा पर नवाब ने मेरी एक न मानी। मुझे यही आज्ञा दे गए हैं कि इसे अपनी दासी बना ले। अब बताओ बहन! मैं क्या करूं? और क्या न करूं?

मेहताब यह सुनकर वैराग्य के वेग में उठी, एकदम तख्ते के पास गई और एक पल में रस्सी खोल दी और उस महिला को गोदी में ले लिया और कहा, "बेगम साहिबा! न्याय करो। इतना भी निर्बल क्या होना? इस तरह के दुखियों तथा दर्दमंदों पर दया किया करो। अंत तो बात अपने प्राणों की है, यदि चले गए तो बलि हमारी! हम जैसे लाखों करोड़ों लोग प्रतिदिन मरते हैं, यदि हम मर गए तो कोई घाटा नहीं हो जाएगा। लो! अब मैं इसे ले चलती हूं। यदि नवाब साहब को क्रोध आ जाए तो मैं इसके स्थान पर मरने के लिए तैयार हूं। ज़ैना ने कहा: "ले जाओ, फिक्र न करो, मैं संभाल लूंगी" मेहताब अब उस प्यारी को, सगी बेटी की भांति उठाकर अपनी कुटिया में ले गई और जाकर पति को सारा हाल बताया। वह प्यारे के नाम पर से बिक चुका प्रेमी उस सिदक की यज्ञवेदी पर न्योछावर हो रही पुत्री को देखकर गद्‌गद् हो गया। मेहताब ने फिर उसके शरीर पर मालिश की और सेक किया। गरम कपड़े पहनाए और गरम दूध पिलाने का प्रयत्न किया। जब वह प्यारी शुक्र शुक्र करती सो गई, तब घुल्लू ने उसके घर की खोज की और उसके पति को, जो अत्यंत व्याकुल हो रहा था, सारी व्यथा कह सुनाई। उस सिख की खुशी तथा उसके परिवार के आनंद का क्या कहें? घुल्लू को वह रंग, उस सिख के चेहरे की उमंग को देखकर क्या दिखाई दिया कि न जाने इसके गुरू जी की मोहिनी मूर्ति मुस्करा रही है।

तात्पर्य यह कि थोड़े से विचार के पश्चात् यह राय बनी कि नौजवान सिख इस शहर को छोड़कर आनन्दपुर चला जाय और अमुक गांव पहुंचकर बहंगी का

प्रबंध किया जाए। तीसरे पहर से पहले हम उसकी पत्नी को वहां पहुंचा देंगे, और फिर रात-रात में ही निकल जाएें। यह मन्त्रणा करके घुल्लू घर आया। दोपहर के बाद उस लड़की की आंख खुली। सास जो तुर्कों वाला बुरका पहनकर आई हुई थी, बहू पर न्योछावर होने लगी। भोजन करवाया और उसी समय बुरके पहनकर सास तथा बहू, ससुर, बहू तथा मेहताब बहंगी में बैठे और साहसी घुल्लू बाहर बैठा और बहंगी लेकर स्वयं चला। वे सूर्यस्त होने से पहले ठिकाने पर पहुंच गए। वहां से चारों को आनन्दपुर भेज दिया गया। घुल्लू, मेहताब, पति पत्नी ने उसी तरह गले से पल्लू डालकर इनसे भी कहा, "हे गुरू के प्यारे! आशीर्वाद दो, ताकि श्वासों के पूरा होने से पहले हमें भी गुरू का दर्शन प्राप्त हो।"

उधर ज़ैना एक तो खुश थी कि उसके हाथों किसी को सुख तो मिला और दूसरी खुशी यह थी कि नई सौत भी न आई, पर साथ यह भय भी था कि नवाब क्या कहेगा और यदि मेहताब से कोई कमी रह गई और पता चल गया तो कहीं मेहताब को मार न दिया जाए। अतः इसने आते ही एक नई शराब आगे रखी और इसके, गुणों का बखान करके बेलिया भर कर दी और उसे ऐसा मस्त किया कि उसकी रात नशे में ही गुजर गई। दूसरे दिन नवाब से कह दिया कि वह तख्ते में बंधी हुई ही मर गई थी और मैंने उसे दूर एक तलइया में फिकवा दिया है। क़ाफिरों के प्राणों का तब क्या मोल था। नवाब ने कोई फिक्र न की और न ही उसे बदनामी का अथवा सम्राट का कोई भय था।

एक दिन घुल्लू के पास एक सिख आया। उसने घुल्लू को कान में कहा, "सज्जन जी! दिल्ली सहारनपुर आदि स्थानों से संगतें आ रही हैं, यहां से गुजरेंगी। हमने सुन रखा है कि यहां पर कभी-कभी सिखों पर निर्दयता भी हो जाती है, तुम कोई उपाय बताओ जिससे संगत कुशलता से चली जाए।" घुल्लू ने कहा "यदि दो चार व्यक्ति हैं, तब तो मैं उन्हें निकलवा सकता हूं, और यदि संगत अधिक है तो अमुक गांव से रास्ता बदल लें और यों चक्कर काटकर ऊपर ऊपर से चले जाएं। जिस दिन वहां पर पहुंचना हो मुझे बता दिया जाए, मैं अगुआई का प्रबंध कर दूंगा"। यह सुनकर सिख तो सारा समाचार बताकर विदा हो गया और घुल्लू शाह प्रबंध करने लगा। उसने योजना बनाई कि पत्नी को पहले भेज दे और स्वयं बाद में पत्नी और संगत से जा मिले। पर भेदिये भी बहुत चालाक होते हैं। उसी दिन नवाब के पास समाचार पहुंचा कि दिल्ली के सिख आनन्दपुर जाते हैं। उनमें दिल्ली के प्रसिद्ध जौहरी तथा गायक 'राधा रत्न' की पत्नी 'त्रिलोक बाई' भी है। यह ऐसी बढ़िया वीणा बजाती है कि देश के गायक उसे राग का रूप मानते हैं नवाब साहब को राग तथा नृत्य का शोक था। यह सुनकर कि त्रिलोक बाई जैसे कुशल के पकड़े जाने का समय आया है, बहुत

से सवार भेज दिए। संगत अभी उसी स्थान पर पहुंची ही थी कि अचानक घेरा डल गया। घुल्लू को भी खबर मिल गई। सोचने लगा कि क्या किया जाए। इतने में महलों से उसकी पत्नी को बुलावा आ गया। जब मेहताब ज़ैना के पास गई, तब ज़ैना ने बताया कि बहन! अब और आपत्ति आ खड़ी हुई है पहली बात तो मुश्किल से भूली थी, आज एक अन्य नेक आत्मा को पकड़ लिया गया है यह महिला त्रिलोक बाई नामक एक कुशल वीणा वादक है, जिसका विवाह 'राधा रत्न' नामक गायक से हुआ था। राधा रत्न का तो देहांत हो चुका है और यह स्त्री अपना शेष जीवन सतसंग में बिताने के लिए आनन्दपुर जा रही थी, कि आज इसे नवाब साहब ने पकड़वा लिया है। शेष संगत को सवारों ने ज़बरर्दस्ती कई कोस दूर खदेड़ दिया है।

मेहताब—यह क्यों? अनोखी बात है।

बेगम—अनोखी नहीं, यह त्रिलोक बाई बहुत कुशल दीखती है। जब संगत को पकड़ा गया और इसे पता चला कि इसकी ख़ातिर सभी पकड़े गए हैं। तब इसने संगत से चोरी यह कहला भेजा कि सारी संगत को कुछ न कहिए, मैं अपने आप आ जाती हूं और मेरे कारण किसी भी सिख का बाल बांका न हो। तब मैं नहीं आऊंगी और हम सारे चुपचाप बैठे रहेंगे और जो अत्याचार हम पर होगा हम उसे सहन करें अपनी अपनी जानों पर खेल जाएंगे। इस पर नवाब साहब ने सारी संगत को सुरक्षित भेज दिया। वे जाने के लिए तैयार नहीं थे, पर नवाब ने सेना की शक्ति उपयोग करके उन्हें कई कोस तक खदेड़ दिया और त्रिलोक बाई को मेरे पास भेज दिया है। अब देखते हैं, रात को क्या होता है?

मेहताब—त्रिलोक बाई ने सच्चे सिंहों वाली कुरबानी की है। उसने अपने आपको कष्ट में डालकर संगत को बचा लिया। पर दीदी! जब उसके धर्म पर मुसीबत आ बनेगी, तब वह क्या करेगी? क्या धर्म को बेचकर संगत को बचाएगी? यह काम तो सिख कर ही नहीं सकते।

बेगम—जब मैंने पूछा तो कहने लगी, "मैं धर्म पर कभी भी नहीं खेलूंगी, मैं अपनी जान पर खेलूंगी। नवाब क्या वस्तु है? शैतान। वह मेरे धर्म का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। मेरे अंदर कल्ग़ीधर जी का निवास है, वे सदैव अमर हैं, मैं भी उनके चरणों में समाकर अमर हुई हूं। यह शरीर क्या वस्तु है? यदि सिर पर आ बनी तो आंख के झपकने में इसे खत्म कर दूंगी।"

पर मेरा विचार है कि नवाब ने इसे गायन वादन के कारण पकड़ा है, रूप के लिए नहीं। चाहे अब इसकी उम्र पचास वर्ष के लगभग होगी, पर अभी इसका रूप प्यारा लगता है और स्थिर पानी की भांति विशुद्ध झरता है। न जाने शराब पीकर नवाब की बुद्धि भ्रष्ट हो जाए, पर जो कुछ मुझे पता है वह यह

कि इसे गाना सुनने के लिए पकड़ा गया है।

मेहताब–क्या मुझे उसके दर्शन करवा सकती हो?

बेगम–हां, आओ।

बेगम उसे बाग के दीवानखाने की ओर ले गई, जहां पर बैठी बाग़ की ओर देख रही थी। मेहताब ने जाते ही सिर झुकाकर कहा: "गुरू संवारी दीदी! मैं महल की दासी नहीं हूं, मैं तो तेरे चरणों में सेवा पूछने के लिए हाज़िर हुई हूं। मैं वह अभागिन स्त्री हूं, जिसके पति ने कल साधु संगत को ऊपर के मार्ग से गुजारना था। हमारा जन्म नीच कुल में, हमारे इतने अच्छे भाग्य कहां कि हमें सेवा का मान प्राप्त होता। अच्छा शुक्र है, जो संगत सुरक्षित चली गई, पर अब आपकी चिन्ता बहुत दुखी कर रही है।"

यह सुनकर त्रिलोक बाई खुश होकर बोली: "अच्छा! तुम भाई घुल्लूशाह की पत्नी हो। धन्य भाग्य, जो मुझे इस समय तुम्हारे दर्शन हो गए।"

मेहताब–'भाई' हम कहां हैं? हम तो दास भी नहीं हैं।

त्रिलोक बाई–तुम्हारी सेवा ने जो तुमने उस दुखी सिख की है तुम्हें भाई बना दिया है और अब संगतों में तुम्हें 'भाई' कहा जाता है। अच्छा दीदी! तुम मेरे लिए उदास मत होवो, मैं कैद में हूं, पर या तो धर्म की सुरक्षित रखते हुए मुक्त हो जाऊंगी, या धर्म सहित उड़ जाऊंगी तुम चिंता मत करो।

श्री कल्ग़ीधर मन को मोहित कर गए;
दुख को दूर कर गए।
धरती का बोझ उतारने के लिए
आप पटने में प्रकट हुए।
जिन्होंने गुरू के अनुपम रूप को परसा,
वे स्मरण करते करते माला में पिरोए गए।
गुरू जी के बाल्यकाल के कौतुक विचित्र
और सुखदाई थे, वे कभी बैठते और कभी खड़े रहते।
उन संगी साथियों के भाग्य बड़े हैं, जिनके साथी
प्रभु जी हो गए हैं।
इधर उधर से मुस्कराते
हुए आते हैं, उनके दर्शन करने से पाप दूर
होते हैं।
उस स्थान के सदैव बलिहारी, जहां
पर आपने चरण रखे।
हे प्रभु! मुझे उस स्थान

की धूलि बना दो, उनसे बिछुड़े हुए बहुत
समय व्यतीत हो गया है।

इस तरह का प्रेम तथा भरोसा देखकर मेहताब ने सिर झुकाया और कहा, आप मेरे साथ चलो और फिर भोजन करके यहां आ जाना।

त्रिलोक बाई–दीदी! मैं स्वयंपाकी हूं, स्वयं भोजन तैयार करके खाती हूं। चाहे सिखों में ऐसा कोई वहम नहीं, पर जन्म से ही मेरी यह आदत है और मन में यह लालसा थी कि अब के जिस दिन भी गुरू के चरणों में पहुंचू, उस दिन सतगुरू जी के हाथों से लंगर का भोजन लेकर खांऊ और अमृत छकूंगी और फिर इस स्वभाव को तिलांजली दे दूंगी, अतः मुझे भरोसा है कि मुझे अवश्य ही लंगर से भोजन मिलेगा और और यदि गुरू जी की आज्ञा कुछ और है, तब इस शरीर के रक्त में गुरू का प्रेम समा रहा है, वही मेरे धर्म का भोजन बनेगा।

मेहताब–तुम चलो, मेरे पास अलग जगह है, सारा सामान अलग है कुआं भी है, तुम चलकर अपने हाथों से भोजन बना लो।

त्रिलोक बाई–दीदी! अब यह शरीर कुछ क्षणों का ही मेहमान है, इसको अब लालन पालन करने की क्या जरूरत है?

मेहताब–इसका पालन करने के लिए नहीं, पर केवल कृतार्थ करने के लिए। मेरा मन सन्तुष्ट हो जाएगा।

त्रिलोक बाई–तुम धन्य हो, मैं किस योग्य हूं?

मेहताब–प्यारी दीदी! तुम में से प्यारे की सुगंधि आती है, उसके चरणों की खैरात, कृपा कीजिए।

'चरणों की खैरात' सुनते ही रोंगटे खड़े हो गए, नेत्र भर आए और कहने लगीः दीदी! यदि मुझे तुम्हारे, घर तक जाने की स्वतंत्रता है तो चलो मैं हाजिर हूं, (बेगम की ओर देखकर) तुम चिंता न करो मैं रहरास नामक वाणी के पाठ की समाप्ति के पश्चात् तुम्हारे पास पहुंच जाऊंगी।

तात्पर्य यह, कि बेगम से विदा होकर दोनों बाग़ के भीतर की फसील के साथ-साथ छिपे मार्ग से घर आईं। आकर घुल्लू को सारी व्यथा सुनाई। वह इस प्रकार के भरोसे वाली दीदी के दर्शन करके गद्गद् हो गया। अलग कमरे में रसद आदि हाज़िर थे। त्रिलोक बाई ने स्वयं भोजन तैयार किया, गुरू जी के आगे अरदास की फिर भोजन किया। उस दिन माली तथा मालिन ने भी उसके साथ तैयार हुआ भोजन खाया। इतने में संगत में से भेस बदलकर दो भेदिया सिंह घुल्लू के घर आ गए, ताकि माई त्रिलोक बाई का पता निकालने के लिए घुल्लू जी को नियुक्त किया जा सके। देखो गुरू के कार्य, उन्हें भी माई के हाथों से तैयार हुआ भोजन मिला, प्रसन्न हुए, पर जब व्यथा सुनी, तो सोच पड़ गई कि

दीदी तो अभी कैद में ही है। फिर सबने गुरू जी के आगे अरदास की। कहा हे गुरू। अब आप सहायता कीजिए। इतने में सायं की प्रार्थना का समय आ गया; माई ने रहरास की वाणी का पाठ किया। देखिए सिर पर कहर की रात आ रही है, पर सिख हृदय किस बेपरवाही से अपने सृजनहार का आराधन कर रहा है। सिख हृदय इस टेक में है कि सिख धर्म अटल है जब तक श्वांस है, सिख आदर्श निभेंगे।

उधर रात हो गई, दीवानखाने में, जोकि बाग़ के ऊपर है, राग रंग की तैयारी हो रही है। नवाब साहब ज़ैना के पास आए, आकर गायकी का हाल पूछा। उसने कहा, बाग़ को गई है, अभी आ जाएगी।

नवाब–उम्मीद तो नहीं, पर कहीं किसी माली, पहरेदार को कुछ लालच देकर किसी फरेब से निकल ही न जाए।

बेगम–बेफिक्र रहो, ऐसा नहीं होगा, वह निकल तो सकती है, पर निकलेगी नहीं।

नवाब–वह क्यों?

बेगम–इसलिए कि वह वायदा करके गई है, "अपनी नमाज़ के पश्चात् आ जाएगी।"

नवाब–कैदियों के सुखन (वायदे) का क्या भरोसा?

बेगम–'कैदी अथवा आजाद' (मुस्कराकर) सिख के वायदे पर एतबार है। मैं सिखों में रहकर देख आई हूं, सिख कभी भी झूठ बोलकर अपनी जीभ को अपवित्र नहीं करते।

नवाब–देखते हैं।

बेगम–देख लेना।

नवाब–कहीं 'देख लेना' में ही सोने की चिड़िया उड़ न जाए।

बेगम–मैं जो बीच में ज़ामिन बैठी हूं। हां सच, उस पर अत्याचार न करना, गुणवानों की कदर करनी चाहिए।

नवाब–सख्ती कोई नहीं, केवल राग ही सुनना है।

बेगम–गायिकायें भी तुमने दासियां समझ ली हैं, तुम उनका कौन-सा सत्कार करते हो?

नवाब–खैर! कोई डर नहीं, राजाओं के लिए सब कुछ उचित है।

ज़ैना–शराब तथा नृत्य राग की तुम बड़ी चोरी रखते हो, पर प्राय: बातें सब फैल जाती हैं। तुम्हें पता ही है कि औरंगज़ेब शराब, राग और नृत्य का दुश्मन है।

नवाब–फिक्र मत कर, उस तक कोई बात नहीं पहुंचती।

इतने में बाग़ का दरवाज़ा खुला और त्रिलोक बाई शेर की भांति निर्भय, चमकते हुए तथा कान्ति भरे चेहरे वाली ऊपर आई। बेगम नवाब की ओर देखकर कहने लगी–तो देख लो सिख का वायदा।

नवाब उसकी सत्कार योग ढलती उम्र की सुन्दरता तथा नम्रता को देखकर नैनों में कुछ झेंप-सा गया। फिर उसने उसे बैठने का संकेत किया और फिर सत्कार सहत बातें करता रहा। वह निर्भय होकर यों बैठी देखती रही, जिस तरह कोई हकीम किसी रोगी को देखता है।

इतने में समाचार मिला कि सारे गायक दीवानखाने में हाज़िर हैं, साज़ छिड़ रहे हैं। नवाब साहब उठकर चल दिये और दो तीन दासियां त्रिलोक बाई को भी वहां ले गईं। देर तक राग रंग होते रहे, फिर शराब आई और दौर शुरू हो गया। अब त्रिलोक बाई को गाने का आदेश हुआ: उसने उत्तर दिया कि मैं नहीं गाऊंगी।

प्रश्न—क्यों?

उत्तर—इसलिए कि गाना मेरा व्यवसाय नहीं, बल्कि आत्म आधार है।

मुसाहिब—यहां पर भी तो पैसे के लिए तो नहीं गाना है केवल नवाब साहब को खुश करना है।

त्रिलोक बाई—मुझे ज़रूरत नहीं किसी को खुश करने की।

मुसाहिब—यह गुस्ताखी?

त्रिलोक बाई—गुस्ताखी नहीं, यह सच है।

मुसाहिब—गाना तो पड़ेगा ही।

त्रिलोक बाई—गायन तथा मजबूरी? यह नई बात है।

नवाब ने कहा—कोई कारण भी?

त्रिलोक बाई—अंतिम समय मेरे पति ने यह आज्ञा की थी कि मेरे मरने के बाद गुरू परमेश्वर के बिना किसी दूसरे के सामने साज नहीं खोलना और इलाही कलाम के बिना और कुछ नहीं गाना, अतः मैं नहीं गा सकती। मैं पराए पुरुष के सामने गा, बजा नहीं सकती। अतः मेरी प्रतिज्ञा, मेरा उसूल, मेरे पति की आज्ञा, मेरे श्वासों के साथ निभेंगे।

नवाब—हूं। वह गुरू परमेश्वर कही मैं ही न होऊं।

त्रिलोक बाई—तुम नहीं, तुम प्रजा के मालिक, माई-बांप हो। तुम्हारा धर्म है रक्षा करना और अत्याचार न होने देना।

एक मुसाहिब—(अब नशा चढ़ता जा रहा था, सिर को एक चक्कर देकर) उचित बात कही, पर प्रजा का भी तो फर्ज़ है कि बातशाह की आज्ञा का पालन करे। तुम गुणवान हो, समय के हाकिम ने गुण की फरमाइश की है, इसे न मानना भी तो अवज्ञा है। आपके गुण के कारण आपको सहन किया जा रहा है, अन्यथा हाकिमों के आगे तो मौत ही होती है।

त्रिलोक बाई—(धैये से खांसकर) ठीक, पर यह बताइए कि प्रजा के लिए

सरकार होती है या सरकार के लिए प्रजा। प्रजा को नियमानुसार चलाया जाता है या दासता के स्तर पर लाया जाता है।

दूसरा मुसाहिब–गुस्ताख़ी मत करो। यदि बुलबुल आगे से बोले तो बाग़वान के पास छुरी भी होती है और पिंजरा भी।

त्रिलोक बाई–बुलबुल पहले जिगर का खून पी लेती है, फिर गुल पर न्यौछावर होती है।

इस तरह माई झेंपी नहीं। निर्भय होकर हर बात का उत्तर देती रही, शराब का नशा बढ़ता चला गया गुस्सा भी बढ़ता चला गया। गुस्सा भूत हो गया आज्ञा हो गई कि फेंक दो सुसरी को बाग़ में।

आदेश होते ही उसका पालन किया गया। एक नशाखोर के बीन खिड़की में से नीचे फैंक दी, दूसरी खिड़की में से दो तीन ने त्रिलोक बाई को उठाकर नीचे फैंक दिया।

नीचे क्या था? वे दोनों सिख, मेहताब, तथा घुल्लू भारी दोसूती की चादर चारों कोनों से पकड़कर अंधेरे में खिड़की के नीचे खड़े थे। उन्होंने पहले से ही त्रिलोक बाई के साथ यह योजना बना रखी थी कि यदि जान पर आ बने तो दीवानखाने की खिड़की में से छलांग लगा देना, हम सम्भाल लेंगे और महल में से सिपाहियों के आने से पहले ही तुम्हें छिपा देंगे, पर माई का अपना संकल्प था कि यदि जान पर आ बनी तो यह कटार मारकर खत्म हो जाएगी। पर त्रिलोक बाई ने घुल्लूशाह की राय को कुछ मान लिया था। अतः दोनों नीचे बैठे तकरार सुनते रहे और तैयार खड़े रहे कि माई छलांग लगाए और चादर में आ गिरे। अब उनकी चादर में कुछ आ गिरा, पर अत्यंत हलका। जब देखा तो वह बीन थी। दूसरी ओर भारी आवाज आई, दौड़कर देखा तो पता चला कि त्रिलोक बाई है, जिसे मुसाहिबों ने उठकर फैंका था। इधर घुल्लू ने घास बिछा रखी थी, कि कहीं इधर आ गिरी तो चोट नहीं लगेगी। तुरंत माई को उठाकर डेरे पर ले गए और पिछती गुप्त कोठरी में लिटा दिया। माई बेहोश थी। हड्डियां सभी ठीक थीं, पर शरीर में कुछ कांटे चुभ गए थे और कई स्थानों पर रगड़ आ गई थी और नील पड़ गए थे। कांटे निकाले, घावों पर पत्थर चून (ज़खम-ए-हय्यात) के पत्ते रगड़कर बांधे। मुंह पर पानी के छींटे मारे, होश न आया, घबराकर जब फिर शरीर देखा तो सिर की एक हड्डी तनिक-सी टूटकर अन्दर को धस गई लगती थी। उस समय मेहबात तो महलों के नीचे पहरा दे रही थी, ताकि सारी खबर का पता चलता रहे और घुल्लू घर में था और इसकी चिकित्सा कर रहा था। अब मेहताब आ गई क्योंकि ऊपर मौन छा गया था और इधर कोई नहीं आया था। घुल्लू अपने एक दर्दी तथा महरम (रहस्य को जानने वाले) वैद्य को बुला लाया।

उसके आने से पहले ज्वर हो चुका था। इसने सिर की हड्डी पर कुछ दवाई लगाकर सिर को बांध दिया। कुछ दवाई अन्दर लगा दी। रात बीत गई। ज्वर बहुत तेज़ है, माई अब चुप नहीं है, बोलती है और बड़बड़ाती है। एक सिख तो संगत को ख़बर देने के लिए चला गया, कि माई का आचरण, धर्म तथा प्राण बच गए हैं। दूसरा सिख सेवा के लिए वहां पर ठहर गया। उधर रात को शराब पीकर सभी सो गए। दिन चढ़ते ही ज़ैना ने नवाब को चालाकी से जल्दी भेज दिया और यह समाचार पाकर कि त्रिलोक बाई अपने सज्जनों के पास पहुंच गई है, नवाब को सूचना भेज दी कि रात वाला शव मैंने सुबह ही उठवा दिया था, ताकि इसका पता बाग़ के नौकरों को न चले।

इधर दोपहर को मेहताब को बुलाकर ज़ैना ने इतना ही बताया कि निश्चिंत रहो, त्रिलोक बाई की खोज के द्वार मैंने बंद करवा दिए हैं।

अतः बिना किसी भय के माई की सेवा होने लगी, इलाज हो रहा है, पर अभी होश नहीं आया। पहले तो वैद्य त्रिलोक बाई के बच जाने की आशा खत्म कर चुका था, पर एक दिन कुदरत ने कोई पलटा दिया और ज्वर टूट गया। सिर भी ठीक होने लगा, होश भी आ गया और धीरे-धीरे ताकत भी आने लगी और माई स्वस्थ हो गई। जब पूरी ताकत आ गई, तब चलने की तैयारी हुई। माई तथा एक दो प्रेमियों ने पठानी वेशभूषा धारण की तथा घुल्लू और मेहताब नौकरों वाले भेस में रहे। सफ़र खत्म होता गया, पर जब बहुत दूर निकल गए, तो एक छोटा-सा गांव आया, जिसे रंघड़ लुटेरों ने रात को लूटा था। कुछ लोग रात से ही घायल भूखे, प्यासे तड़प रहे थे। जो लोग डाका डलने पर घरबार का त्याग करके चले गए थे, वे अभी लौटकर नहीं आए थे। बहंगी के आगे नागौरी बैलों की जोड़ी थी, जो बड़े आराम से इन्हें ले आई थी। पर अब इन्होंने दुख देखकर, अपनी बहंगी खड़ी की। उतरकर चिकित्सा में लग गए। सिंह, घुल्लू तथा मेहताब घायलों की मरहम पट्टी करने लगे। बहंगी वाले ने भी कुछ सहायता की। घावों को साफ करके उन पर पट्टी बांध रहे हैं। कुछ घायलों के मुंह में पानी डाल रहे हैं। माइयों ने भोजन तैयार किया, गांव में जो दो चार गउएं, भैंसें बच रही थीं, उनका दूध निकाला। आवश्यकतानुसार दूध पिलाया, प्यार किया और हौसला बंधाया।

: २ :

आनन्दपुर से सप्तमी का दिन चढ़ा। सूरज ने किरणें फैलाईं, चारों ओर तैयारी हो रही है, मानो खुशी ने आज अवतार धारण किया है और आनन्द भी आनन्द से उछल रहा है। संगतें इकट्ठी हो रही हैं और आंखें दरवाज़े पर लगी हैं, कि अभी प्यारे आयेंगे, अभी साहबज़ादों के दर्शन होंगे, अभी कल्ग़ीधर का प्रकाश होता है, पर सूरज काफी ऊंचा हो गया। अब काफ़ी परेशानी हो रही है

कि सतगुरू जी बाग़ में आसा की वार के कीर्तन के समय भी नहीं पहुंचे, सतलुज नदी के किनारे पर भी नहीं हैं, किलों में भी नहीं हैं। इस हैरानी में एक सिख भागा हुआ आया और दीवान में आकर कहने लगा, "सच्चे पातशाह मुझ दास को नीचे की ओर जाते हुए मिले हैं, चार साहबजादे साथ हैं, पांच प्यारे तथा दस पंद्रह दूसरे सवार भी साथ थे। आप सरपट घोड़े दौड़ाते चले जा रहे थे। आपने मुझ दास को आज्ञा की है कि मैं संगत को सूचित कर दूं कि आज सप्तमी सूरज की है, गुरुपर्व की सप्तमी परसों होगी।" यह सुनकर सारे सिख समझ गए कि कौतुक सतगुरू जी किसी मौज में हैं। लगता है कि कोई अति प्रेमी व्याकुल है अथवा सिखों पर कहीं कोई कष्ट आया है, विरद पालक दासों को लाड़ लड़ाने वाले, 'गुरु समुदु नदी सभि लिखी' की प्रतिज्ञा को पूरा करने वाले और यह उच्चारण करने वाले तथा इसको व्यावहारिक रूप देने वाले सतगुरू, "इनही की कृपा के सजे हम हैं। नहीं मो सो ग़रीब करोर परे"। किसी भारी मुश्किल का हल करने के लिए गए हैं। सोचते हैं कि किसी प्रेमी के आकर्षण में कहीं चले गए हैं।

उधर गुरू साहब पूरे वेग से चले जा रहे हैं। घोड़े पसीने से नहा रहे हैं, यो जा रहे हैं, जैसे समुद्र का ज्वार नदी के संगम स्थान से कई मील तक ऊपर को जाता है। प्रेमियों के दुलारों से कहते हैं, "देखिए जंगल में मंगल हो रहा है। लंगर पक रहा है, साधु संगत छक रही है, कितना स्वाद है, वाहिगुरू ने रस डाल दिया है, गुरुपर्व मनाया जा रहा है। इस गुरुपर्व ने नित्य के गुरुपर्व को दो दिन प्रतीक्षा में खड़ा कर दिया है।" वे कहते हुए दोपहर के समय उस डाके के कारण बर्बाद हुए गांव में पहुंचे। इस समय तक अभी घायलों के घावों को साफ करके बांधा जा चुका था। सभी खाटों पर पड़े आराम कर रहे थे। आवश्यकतानुसार सबको भोजन दिया गया था। घुल्लू, मेहताब, त्रिलोक बाई, दो तीन सिंह तथा एकाध माई जो रास्ते में साथ मिल गई थी, सेवा-सुश्रुषा से मुक्त होकर अरदास कर रहे थे-हे गुरू! आप कृपा करके इस लंगर को अंगीकार कीजिए और आपका प्रसाद साधु संगत छके। इस अरदास में इतनी मग्नता थी कि घोड़ों की टाप की आवाज़ ने भी प्रार्थना में विघ्न डाला। चोज़ी सतगुरू, जगत से सच्चा प्यार करने वाले, घोड़े से उतरकर जा खड़े हुए। जब 'तेरे भाणे सरबत का भला कहकर संगत ने सिर झुकाया, तो यह आवाज़ सुनाई दी "बहुत भूख लगी है, जल्दी भोजन लाओ।" इस तरह सतगुरू जी को प्रत्यक्ष उपस्थित देखते ही सबके हृदयों में प्रेम उछल आया। जैसे गाय का बछड़ा दौड़कर मां से मिलता है, वैसे ही सारे सतगुरू जी से लिपट गए। उस निराशा में आशा की पूर्ति करने वाले के मिलाप के आनन्द में ऐसे निमग्न हुए कि सुध ही न रही। गुरू जी उन्हें सिर पर प्यार दे

रहे हैं और कह रहे हैं–तुमने घायलों के घावों पर पट्टी नहीं बांधी, मुझे शीतलता प्रदान की है। हे चन्द्र मुखी मेहताब! हे मेरे दुलारे घुल्लू! तुमने त्रिलोक बाई की सेवा नहीं की, 'त्रिलोक' की सेवा की है। तुमने उस अनाथ कन्या को कैद से मुक्त नहीं कराया, मेरे बंधन खोले हैं, तुमने जो आज सेवा की है, उससे मुझे शान्ति मिली है। आज तुमने मेरी वर्षगांठ मनाई है, मेरी सेवा की है।

इस तरह प्यार देते हुए सतगुरू जी के नेत्र सजल हो गए फिर प्रेमियों के हाथ पकड़कर नेत्र बंद करके आप काफ़ी समय तक खड़े रहे। फिर नेत्र खोले और हंसकर कहने लगे, "मेरा सिख, प्यारा सिख हां वह है जो वाहिगुरू के रंग में रहता है और सबका भला चाहता है।"

अब महाराज जी घायलों की ओर गए, उन्हें प्यार दिलासा दिया। फिर सुपुत्रों से कहा, बेटे। ये सेवा करने वाले प्रेमी भी मेरे पुत्र हैं तुम्हारे भाई हैं मेरा परिवार प्रकृति का परिवार है जो कर्तार ने बनाया है।

फिर सतगुरू जी ने सभी सिखों प्रेमियों के साथ बैठकर भोजन किया। फिर आपने दूसरे गांवों से सवार भेजकर, भागकर चले गए लोगों को बुलवाया और गांव को आबाद करवाने का प्रयत्न किया। गांव की रक्षा के लिए कुछ सवार वहां पर छोड़ दिए। सबने वापिस लौटकर अपने प्यारे तथा घरबार सम्भाल लिए। सतगुरू जी ने कुछ धन लोगों को दिया। रात को वहाँ पर उजाड़ में ही दीवान सजाया गया। त्रिलोक बाई ने अब वीणा खोजी, हां अपने आत्म देश के नवाब के आगे 'मेरा मन लोचै' का शब्द आश्चर्यजनक धुनि के गायन किया। रात को कुछ समय कीर्तन में तथा कुछ समय सोकर बिताया और सवेरे आनन्दपुर को कूच किया। अगले दिन गुरुपर्व मनाने की तैयारी की गई।

❑ ❑

३९ भाई नाहर सिंह

तहसील अजनाला में सौड़ीयां नामक एक प्रसिद्ध गांव था, इस गांव में बड़ी कड़वी मिर्चें पैदा होती हैं। उस जगह पर एक मीठी बेल झूमती थी, जो कड़वी बेल की भांति बढ़ गई थी। यह सिख के सिदक वाली बेल थी, जिससे ईश्वर के नाम की सुगंधि आती थी। उस बेल के साथ मुक्ति तथा मुक्ति रूपी फलियां लगी थीं, इन फलियों के गुच्छे बांधकर बहुत शोभायमान हो रहे थे। राधा सिंह गुरू का पूरा सिख है, उसकी प्यारी पत्नी राम कौर है। उन्होंने दशम गुरू से अमृत छका है, और दोनों भव-सिंधु से पार हो गए हैं। इनका ज्येष्ठ पुत्र नाहर सिंह शूरवीर है। उसकी चढ़ती उम्र है और उसने भी गुरू की शरण धारण की है। बहनें, भाभियों, भाई तथा सम्बन्धी, इन सबका गुरू जी के चरणों में भारी सिदक है। सभी धर्म तथा श्रम वाली कमाई करते हैं मानो सारे भजनमूर्ति बन रहे हैं। सारे दान देते हैं, लेते नहीं हैं, सेवा करते हैं और हमेशा हँसमुख रहते हैं। इनके हृदय शुद्ध, ईर्ष्या से मुक्त हैं, इन्होंने सभी वैर दूर कर दिए हैं। ये सारे ज़रूरतमंदों की जरूरतों को पूरा करते हैं और इनकी अपनी कोई ज़रूरत अथवा इच्छा या चाह नहीं है। जब इन्होंने कल्ग़ी वाले का आहान सुना, जो उस समय देश में सुना जाता था। यह आह्वान जो मृतकों में भी प्राण भर देता था और जो कायरों में वीरता फूंक देता था। कौन ऐसा हो सकता है जो आह्वान को सुनकर बैठा रह जाए, आह्वान क्या था प्रेम की फांसी की मानो रस्सी थी। यह प्यार हृदय वेधक था और प्रेमियों को तो यह अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा लगता था। रसिक लोग प्रेम से बंधे भागे आते हैं, क्योंकि उन्हें प्रेम के सिवाय और किसी चीज़ की ज़रूरत ही नहीं थी। वे जानते थे कि प्राणों को सदैव रहना नहीं, उन्हें तो 'सिदक रूपी राशि' की अधिक चिंता थी। जब नाहर सिंह ने प्रेम का आह्वन सुना, तो वह सिंह शेर की भांति गरज उठा। जवानी ने उसे जोश दिया, और धर्म का क्रोध उसके मन में आ गया। "अपने प्राणों को गुरू की शरण में अर्पित कर दें" यही शौक उसके हृदय में भर रहा था। परन्तु माता-पिता की आज्ञा लेना जरूरी है, इसी आशा के कारण चाव ढका रहा। रात को जब सारा परिवार इकट्ठा हुआ, आग के इर्द-गिर्द जब सारे आकर बैठ गए। सारे जने परिवार को इकट्ठा हुआ देखकर खुश होते हैं। बातें तथा कथा वार्ता भी करते हैं। उस समय सिंह ने अपनी इच्छा प्रकट की वह सिख, जिसका हृदय गुरू से न्योछावर होने का इच्छुक था। पिता, माता तथा सारा परिवार उसकी इच्छा को सुनकर खुशी

के नारे लगाने लगे। पिता ने कहा कि जो कुछ मेरा है, वह सब कुछ गुरू का है; मैं स्वयं भी सतगुरू जी का ही हूं। मेरे पास जो कुछ है, वह भी गुरू की ही अमानत है, मैं तो प्रारम्भ से ही गुरू का दास हूं। सारा जगत उसी की चलाई हुई चाल चलता है। मैं दास भी उसी तरह चलता हूं, जैसे वह मुझे चलाता है। सभी स्थानों पर गुरू का ही प्रसार है। गुरू मेरा है और मैं भी गुरू का हूं। बेटा तुम शीघ्रता से तैयार हो जाओ, अब तुम्हें प्राणों और जीवन की चाह नहीं रखनी। हे पूता! यदि गुरू के लिए प्राण भी न्योछावर करने पड़ें तो संकोच नहीं करना। हमें भी याद नहीं करना और जगत से भी प्यार नहीं करना। गुरू की आज्ञा समझकर यज्ञवेदी पर अपना बलिदान दे देना और कुछ नहीं सोचना। माता ने कहा, बेटा! जल्दी जाओ जल्दी पहुंच जाओ, पर्व का समय है। वही सिख होता है जो गुरू जी पर न्योछावर होता है, जो आज्ञा का पालन करता है, वही शान वाला सिख है। वास्तव में वही सिख है, जिसने यह बात समझ ली, कि सब कुछ गुरू का है, जिसे अहं खराब नहीं करता। जिस व्यक्ति की आत्मा जीवित जागृत है, वह सिख होकर सब कुछ न्योछावर करने से पीछे नहीं हटता। जाओ और मुझे सपूती बनाओ और पुत्र! पिता के नाम को भी जाकर सफल करो। जाकर परिवार का कल्याग करो और हरदम अकाल का नाम जपो। यदि हाथ में चमकती तलवार भी हो, फिर भी हृदय से ईश्वर के नाम को न भुलाओ। बेटा! बाहर से शत्रुओं के साथ जाकर लड़ो और अंतस आत्मा में नाम को धारण करो।" इस प्रकार रात को वार्तालाप हुआ। दिन में जब परिवार इकट्‌ठा होता है, तो वह शूरवीरों वाले वस्त्र पहनकर और शस्त्र लगाकर ऐंठता है। उसके साथ बांका घोड़ा सजकर तैयार खड़ा है, घोड़ा भी इस तरह ऐंठता है, जैसे मोर नृत्य करता है। अब परिवार पुत्र को विदा करने लगा है, वह इस तरह सुशोभित हो रहा है जैसे बारात में दूल्हा होता है। अरदास करके पिता ने थपकी दी और माता ने गले से लगाकर माथा चूमा। पुत्र दोनों को वाहिगुरू जी की फ़तेह कहता है; जिसने अदब तथा प्यार का दूध चूस रखा है। सिदक से माता-पिता की ओर देखता है और वीरता से घोड़े को संभालता है। माता उसे अंतिम आशीर्वाद देती है, पर एक वचन ने पुत्र को आघात पहुंचाया है। माता कहती है, प्यारे पुत्र जिस तरह तू सुर्खरू होकर यहां से जा रहा है, उसी तरह गुरू के आगे भी सुर्खरू ही रहना और सिदक से कभी भी न हिलना। संशय रूपी भूत से सदैव दूर रहना और आसुरी संपदा को रोके रखना। हे पुत्र! तेरी युवावस्था है और नया चाव है, अब बता कि जहां पर तू जा रहा है, क्या वहां पूरा उतरेगा? अंतिम वाक्य सुनकर वह कुम्हला सा गया, मानों उसका चेहरा गमों का शिकार हो गया। उसकी आंखें आंसुओं से भर गईं, वीरता का रंग भी घट गया। उसके हाथ नर्म हो गए, लगाम

ढीली हो गई, चमकने वाले माथे पर त्योरी पड़ गई। ठण्डी श्वांस लेने लगा, वीर पुत्र बह गया, मानो कमल पर बरफ ने वार किया हो। पिता ने पूछा बता बेटा कुशलता तो है, बेटा तेरी आकृति क्यों बदल गई? तू तो वीर बांका पुत्र है। पुत्र ने उत्तर दिया कि मां के वचन बहुत ठण्डे हैं, इन्होंने कंपन छेड़ दिया है और मेरे हृदय को उल्टा टेढ़ा कर दिया है। आप भी सिंह हो और मां सिंहणी है, मैं भी सिंह हूं और आपका पुत्र तथा दास हूं। फिर भी मां को मुझ पर संदेह है; कि कहीं पुत्र पीठ न दिखा आए। चाहे यह बात अहं वाली लगती है, पर मैं तो सिदक की साया में बैठकर बात करता हूं। मेरे विचारानुसार यह अहं नहीं है आप पर तथा सिंह स्वभाव पर मुझे पूर्ण भरोसा है। जो तो सिंह है, वह कभी भी पीठ नहीं दिखाता, वह कभी भी ढहती कला का कर्म हृदय में नहीं लाता। माता-पिता को यदि तनिक-सा भी संशय हो जाए तो पिता जी आप ही बताइए कि पुत्र किसके सहारे लड़ेगा? सुनकर पिता ने गले से लगाया और प्यार से कहा बेटा! तेरे पर हमें कोई सन्देह नहीं, हमें विश्वास है कि तू सामने आकर युद्ध में लड़ेगा। मां ने तो परख करके देखा है कि पुत्र कष्ट को सहन कर सकेगा कि नहीं? हमने देख लिया है, हमने जान लिया है, तेरी आदि से अंत तक ठीक निभेगी। तेरी प्रीति गुरू जी के साथ हमेशा ही बनी रहेगी, तू संसार सागर से पार हो जाएगा। तेरा निवास प्रभु की गोदी में होगा और तेरा वियोग कभी भी नहीं होगा। तेरा जन्म तथा मरण दोनो सफल हैं, तेरा इस संसार में आना और यहां से जाना भी धन्य है। मां ने फिर उठकर प्यार दिया और गले से लगा कर पुत्र को आशीर्वाद दिया। फिर घोड़े पर सवार करके पुत्र को विदा किया, ठीक उसी तरह जैसे विवाह के समय कोई मां करती है। इसकी यही लालसा है कि पुत्र का सिदक निभ जाए, यही इस पुत्र दूल्हे के सिर पर छत्र तथा मुकुट है। इसकी यही प्रार्थना है कि यह गुरू के सम्मुख रहे, यही उसके साथ बारातियों को भेजना है।

❑ ❑

१. यहां पर लेखक की कविता का सरल अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

४० गुरु कृपाल कौर

"जा कुआरी ता चाउ वीवाही तां मामले।
फरीदा एहो पछोताउ वति कुआरी न थीऐ"

यह श्लोक आसा राग के एक दर्दनाक स्वर में एक वन में गाया जा रहा है। ऋतु अति सर्दी की, पौष का महीना, ठण्डे पवन के झोंके, पाले के कारण ओस भी जम रही है। सतलुज नदी का पानी उतरा हुआ है, पर है ठण्डा शीतल, पौ फट चुकी है, पर अभी सूरज नहीं चढ़ा। इस पाले में गायन की वैराग्यमई आवाज़ आ रही है। मानों वैराग्य ने स्वयं रागिनी का स्वरूप धारण किया है। कभी ऐसे लगता है कि गायक रुक गया है और कभी लगता है कि वह नदी के ऊपर की ओर चला जा रहा है। कभी आवाज़ बंद हो जाती है, पर थोड़ी सी देर के पश्चात आसा की टेक पलट गई और गडड़ीराग का स्वर छिड़ गया। कानों ने अब ध्यान से सुना–

कवन गुन प्रानपति मिलउ मेरी माई॥१॥ रहाउ॥
रूप हीन बुधि बल हीनी
मोहि परदेसनि दूर ते आई॥१॥
नाहिन दरबु न जोबन माती
मोहि अनाथ की करहु समाई॥२॥
खोजत खोजत भई वैरागनि
प्रभ दरसन कउ हउ फिरत तिसाई॥३॥
दीन दइआल कृपाल प्रभ नानक
साध संगि मेरी जलनि बुझाई॥४॥१॥ (गउ: पू: म: ५)

अंतिम पंक्ति के समाप्त होने तक गाने वाली सूरत वृक्षों, पौधों में से निकल आई और ऐन नदी के किनारे पर आकर खड़ी हो गई। लम्बा, पतला शरीर चेहरा सुन्दर, पर उस सुन्दरता में वैराग्य ने डेरा जमाकर ऐसा रूप प्रदान किया है कि देखने वाले के मन में तथा पवित्रता की तरबों को हिलाती है। आंखों में वैराग्य ने आंसुओं की सेना खड़ी कर रखी है। कण्ठ में मिलाप का नफीरीखाना जोड़

रखा है, माथे की त्योरी में निराशा की मोरचेबंदी कर रखी है, गालों पर उदासी के तंबू छा रहे हैं, गर्दन का झुकाव धनुष का रूप बांध रहा है। जैसे प्रकृति मूक है, वैसे यह भी अब मूक है, पर आंखों में से कोई-कोई आंसू गिरता है, मुंह से कोई ठण्डी श्वांस उठती है। इस वैराग्यभरी सूरत ने एक क्षण के पश्चात फिर होंठ खोले और विरह की आग में जली कोयल की भांति फिर कूकने लगी...

पंथु निहारै कामनी लोचन भरीले उसासा॥
उर न भीजै पगु न ख़िसै हरि दरसन की आसा॥१॥
उडहु न कागा कारे॥
बेगि मिलीज़ै अपुने राम पिआरे॥१॥ रहाउ॥ [ग: क:]

यह गाकर गले में पल्ला डाला, आंखें मूंद लीं और बोली–

सोइ रही प्रभ खबरि न ज़ानी॥
भोरु भइआ बहुरि पछुतानी॥
प्रिअ प्रेम सहज़ि मनि अनदु धरउरी॥
प्रभ मिलबे की लालसा ताते
आलसु कहा करउरी॥१॥रहाउ॥
करि महि अंमृत आणि निसारिओ॥
खिसरि गइओ भूम परि डारिओ॥२॥
सादि मोहि लादी अहंकारें, दोसु नाही प्रभि करणैहारे॥
साध संगि मिटे भरमि अंधारे॥
नानक मेली सिरजणहारे॥४॥ [आसा म: ५]

हे दीन दयालु! कोई गुण नहीं है, कोई सेवा नहीं की, कर्महीन हूं, पर आपका विरद है, उद्धारकर्ता। हे दुर्बलों के बल, मुझे बल प्रदान कीजिए, ताकि मैं पहुंच सकूं। यों कहकर नमस्कार की, झटपट कपड़े लपेट समेटकर सिर पर बांध लिए और नैन भरकर आगे बढ़ी, जल से चरण छुए और नैनों ने आंखों में से लालसा भरे अश्रुओं की दो बूंदें गिराईं–यह ले नदी! निम्नों की भेंट दो खारी बूंदें; जो जिगर को फाड़कर निकली हैं। तनिक फिर संभली, ठहर गई और कुछ बोली। उसका भाव कुछ इस प्रकार था–

हे नदी! तू प्रेम की डोरी से बंधी
किस ओर भागी चली जा रही है?
तू ऊंचे पत्थरों को छोड़कर नीची होकर और
की और चाल चल रही है। बता कि प्रियतम
तो नम्रता वालों को मिलता है, इसी लिए

तूने नम्र होने की आदत डाल ली है।
तू मुझे भी इस मति वाला मार्ग बता,
ताकि मैं भी और अधिक झुककर
उस गुरू से जा मिलूं।

तू स्वयं कठिनाइयों को झेलकर जा रही है, तू दूसरों के मार्ग को मुश्किलों में न डाल। दुख भोगकर ही तेरे को दुख की कदर मिली है, तू दुखियों को और दुख न दे। तू दर्द को झेलकर ही दर्द को बांटने का ढंग सीखी है, तू पीड़ा को भोगकर पीड़ा न लगा। मुझ निम्न को मार्ग दे; मैं खड़ी ठिठुर रही हूं, तू मुझे पार ले चल, मेरे मार्ग में रुकावट मत डाल।

फिर चुप हो गई। छलांग लगाने ही लगी थी कि फिर ठिठकी और फिर कुछ इस तरह के भाव में आ गई--

सतगुरू अनुकंपा करने वाले हैं पापियों से प्रेम करते हैं। दुखियों दर्दमंदों को उठाकर गोदी में बैठाते हैं। दुखी भी आश्रय देखकर गुरू की ओर दौड़कर जाते हैं, कि किसी तरह वह उनके उल्टे कर्मों को मिटा दे। सतगुरू सच्चा शाह है जो जगत रूपी हट्टी पर बैठता है। वह अपार प्यार करता है और सदैव देने में ही व्यस्त रहता है। उसे 'लेने' से तो संकोच है, और 'देने' में झोली भर देता है। इस प्रकार का यह उल्टा खेल केवल सतगुरू से ही संभव हो सकता है। हे मेरे मन! तू भी उसी की आशा धारण करके तैसा शुरू कर दे, जिसकी आशा धारण की है, उसी को अपने अंगों के साथ समझ।

यह कहकर वह कूद पड़ी। ठण्डा हिमानी पानी, पर सिदक का बेड़ा पार। ठिठुरती, ठिठुरती बाहें मारती हुई पार पहुंच गई पार जाकर एक शिला पर जा खड़ी हुई और आनन्दपुर के प्यारे नगर की ओर जो अब चढ़ते सूरज के प्रकाश के कारण चमक रहा था, देखकर नमस्कार किया। सिर पर बांध रखे कपड़े खोले, साफी से शरीर पोंछा। कपड़े पहनकर आगे को चल दी। पर एक सोच आई, जब सतगुरू जी का मेवड़ा पूछेगा कि सिंहों। अपनी भूलों के लिए क्षमा मांगकर आए हो अथवा नहीं? उस समय मैं क्या कहूंगी? क्या कहूंगी कि घर वालों से चोरी आई हूं। न जाने वह कह दें, 'तू परमेश्वर के जीवों को तड़पाकर अपने सुख के लिए आई है? तू सिख काहे की है? उस समय मैं क्या कहूंगी? क्या मुझमें उस समय चाचा की सारी करतूत कह देने का साहस होगा? क्या मैं यह कह सकूंगी कि हे सतगुरू! पिता जी के देहांत के बाद चाचा ने गुरू के निंदकों के घर मेरा विवाह कर दिया, मैं अब उन नातेदारों का क्या करूं जो मेरे परमार्थ के वैरी हैं। पर न जाने वे कहेंगे, जा पहले पति को प्रसन्न कर और फिर आना, तब मैं क्या कहूंगी, पर हैं। वे तो ऐसे नहीं हैं, मेरा अपना मन पापी है, जो संशयों में बह रहा है। सतगुरू जी जानते हैं कि मैं विवश हूं। जिसके हृदय

में पिता ने गुरू की मूर्ति बिठा दी, वह कैसे गुरू से विमुख हो सकता है? हैं, गुरू जी मर्यादा के भी पक्के हैं। न जाने कह दें कि तूने पति की आज्ञा का पालन क्यों नहीं किया? नहीं सतगुरू जी तो दयालु मूर्ति हैं, वे ऐसी छोटी बातें नहीं करेंगे। आप तो उल्लास का उछलता हुआ स्रोत हैं, आप हिसाबी पांडेय नहीं है। हाय! मेरा तो वहम ही मेरा शत्रु है। वहमी मन से क्या जाए? जैसे प्रेम की लहर में चली थी, यदि उसी लहर में पहुंच जाती, तो सब कुछ ठीक था। रास्ते में उदासी आ गई और अब अपने अंदर आप ही 'वहम' तथा 'भय का धुंआ' फैला लिया है, चल री निकम्मी! पीछे चल। निम्नों का गुरू से क्या वास्ता? कर्महीनों का क्या प्रेम?

उठी पर शरीर कांपने लगा, बैठ गई और फिर विचार में पड़ गई। पिता जी आज आप कहां हैं, मुझे अकेला क्यों छोड़ गए? क्या वह कल्गी वाला नूर हमेशा के लिए मुझसे छिन गया है? आप महीने में दो बार मुझे साथ लेकर गुरू महाराज जी के दर्शन करवाते थे, अब एक वर्ष के बाद आई हूं और फिर देखो कि अनिश्चित विमुख हो रही हूं। हे पिता जी! पिता जी! आज यह वहम तथा भय दो शत्रु कहां से आ गए? हे साईं। हे ईश्वर स्वामी! वे शुभ घड़ीयां कहां गईं। वे बापू जी कहां हैं? वे मां की लोरी कहां है? हे मां! यदि तुझे अपने हाथों से मेरा विवाह नहीं करना था, तब तूने लोरियों में सिख धर्म की शिक्षा क्यों दी? क्यों थपकी देकर कहती थी–

** री मेरी गुरू की संवारी, सो जा, सो जा।**
हे गुरू की संवारी, तेरी सोई हुई की नींद मीठी,
सोई हुई को प्यार की चमक देने वाली कल्गी दिखाई दे।
सोई हुई को प्यार की ही झलक दिखाई दे।
सो जा मेरी बालकी, सो जा मेरी लाली।
उलल, उलल, उलल, लो।

हाय री मां! ये लोरियां, ये जन्मघुट्टी देकर तू आप ऐसे चली गई, जैसे कि तू मुझे कभी जानती ही नहीं थी। आओ मां जी! अब देखो गुरू की लोरियों से जिसकी पालना की थी, वह अब निःश्वास मर रही है? अफ़ीम की चाट लगाकर फिर डिब्बी छिपा दी, श्री वाहिगुरू श्री वाहिगुरू। अब वापिस चलूं, सचमुच वापिस जाऊं, गुरू के द्वार को पीठ दिखाकर फिर कदम पीछे रखूं। सिख माता को पिता की बेटी आज गुरू की ओर से पीठ फेरे वह आज विमुख हो। मां आज तो हजारों विमुखों ने सम्मुख होना है, मैं आज पीठ दिखाऊं?

हे प्यारे सिख पीठ देकर न जाना
सतगुरू तेरी ओर देख रहे हैं।
रे भोले! लौट आ, गुरू आंगन में आए हैं।।

आ मां! आज डोल रही बिटिया से भी कह–

इससे तो बेटी तू मर जा पर पीठ न दिखा।

तू बाढ़ को देख, सिदक की नाव को मोड़कर न तैर।

आगे–आगे जा और गुरू जी के चरणों में मिल जा। पीछे उल्टी दृष्टि न डाल हे धरती! तू शीघ्रता से फट जा और मेरी बेटी को निगल जा। इसने अपनी भी और मेरी भी इज्जत खराब कर दी है। मेरी बेटी गुरू को पीठ दिखाने लगी है। सिख की बेटी को कोई उल्टी हवा लग गई है। धिक्कार, संसार में माता–पिता को उलाहना मिलता रहेगा। सिखों को भी अब बहुत अधिक क्रोध आयेगा और उन्हें कंपन होगा। यह लड़की कदम उठाने से पहले ही मर जाए, जहां पर खड़ी है, तुरंत वहीं पर ग़र्क हो जाए। हे धरती! लाज आ रही है, तू शीघ्रता से फट जा। पर यदि मेरे कर्म इतने बलवान होते कि धरती मेरी आज्ञा को मानती तो क्या मैं ससुराल वालों को न संवार लेती और आज सारा परिवार बड़े चाव से मुझे अपने साथ लाता और मैं भीतर जाकर शीश झुकाती और न जाने सतगुरू जी भी मुझ से कहते, "बिटिया जिन्हें साथ लाई है, उन्हें बाहर क्यों छोड़कर आई है?" मेरी प्रसन्नता की उस समय कोई सीमा न होती, पर निम्नों को ऐसी खुशी कहां प्राप्त होती है?–

धरती विमुखों से डरती हुई जगह नहीं देती,

आकाश भी नहीं उठाता, उसकी जान भी थरथर कांपती है।

बापू जी! वह तलवार कहां है जो बंदियों को मुक्त करवाती थी। आज न तो तलवार और न ही बापू जी हैं। न है बांह और न ही बच्चों को पकड़ने और सहारा देने वाली उंगली, न वे मीठे–मीठे उपदेश हैं और न ही प्यार भरी दृष्टि जो मेरे ऊपर पकड़कर कहा करती थी: 'लाडली' मन वाहिगुरू की स्मृति में तथा शरीर सतगुरू जी की सेवा में, यही सिख धर्म का मूल है।" हाय बापू जी! एक बार तो उसी तरह देखो और कहो, "लाडली! एक और दौड़ लगा और गुरू के चरण पकड़ बस यही सिख धर्म है।" कहो भी बापू जी! दिन बड़ा होता जा रहा है, मुझे देर हो रही है। पवित्र माता जी क्या कहेंगी? "बिटिया! तूने हमसे प्यार ही तोड़ लिया। लाडली! तेरा साहस कैसे हुआ कि तू पूरा वर्ष नहीं मिली। प्यारे भैया! हाय! मेरी जीभ जल जाए गुरू के द्रोहियों के घर में बसकर मैं आज इस ईश्वरीय सौंदर्य को भैया कह सकती हूं? धिक्कार मुझ पर उनका विरद तो बहुत प्रेम वाला है...। हाय बापू जी! यदि मैं देर से गई तो भैया कहेंगे, "दीदी! तू बहुत ही रूखी है, देख हम तेरी प्रतीक्षा करते–करते थक गए हैं।" बापू जी! मैं क्या कहूंगी? हाय ईश्वर! कोई गुरुमुख आकर मुझे इस चक्कर में से निकाले। मैंने क्या बुरा किया है? चाचा ने धोखे से गुरू के द्रोहियों के घर मेरा विवाह कर दिया? मैंने सबर का घूंट भर लिया। गुरू के द्रोहियों का भोजन खाया,

उनकी सेवा की, उनके कहने से एक वर्ष तक गुरू जी के दर्शन करने के लिए न गई मैं और क्या करूं? अब भी दर्शन न करूं? बिल्कुल ही टूट जाऊं? नरक की तैयारी कर लूं?...मेरे पैरो! तुम अपने आप ही चल दो, जिधर को चलना है। पर तुम चलो कैसे? न आंखें और न सोच।

लड़की नदी को तो पार कर गई थी पर अब मन-तरंगों में बह रही है। दिल में ऐसा झंझट है कि न कदम आगे उठता है और न पीछे होता है यदि पीछे कदम रखती है, तो गुरू से विमुख होती है, यदि आगे रखती है तो डरती है कि पतिव्रता को आज्ञा भंग करने का आरोप लगता है। आज्ञा को भंग करने वाली गुरू को कैसे मुंह दिखाए? रोती है और निःश्वास भरती है, कभी वहम में और कभी भय में बह जाती है, कभी मूक तथा बेसुध-सी हो जाती है। द्विविधा के भंवर में से मन निकलता ही नहीं। इतनी सर्दी झेली है कि अब रक्त के बहाव पर असर पड़ रहा है। मस्तिष्क सुन्न होता जा रहा है। हृदय की गति मंद है। तड़के का सफ़र, कम कपड़े, नदी में तैरना, हवा का झेलना, भूखा पेट, दिल की हरकत क्या कुछ झेले? जिस शिला पर कदम रखे थे, उसी पर बैठ गई, न आगे को हिली है, न पीछे को। सूरज चढ़ चुका है, पर जहां पर यह बैठी है, वहां अभी छाया है। इसका शरीर कुछ अकड़-सा रहा है, हाथ, पावों की उंगलियां नीली हो गई हैं। दशा बावली सी हो गई है। पल-पल के बाद 'बापू जी' का शब्द मुंह से निकलता है और यह चौंक उठती है, फिर आंखें बंद करके किसी शीतल शून्यता में मूर्छित-सी हो जाती है। अब इस शिला पर धूप आ गई। जब अचानक आंख खुली तो प्रकाश में चौंधियाती हुई बोली, "चाहे तो बापू जी आ गए। बापू जी! मुझे उंगली पकड़ा दो, तनिक ठहरना, मैं आ रही हूं।" यों कहकर उठकर दौड़ी, मानो किसी ओर भागना चाहती है, कुछ सुधि नहीं है। अर्द्ध बावली के कदम लड़खड़ाए और ठण्ड से व्याकुल हुई धड़ाम से नदी में जा गिरी। जल का निर्दय प्रवाह उसे बहाकर ले चला। तैरने के ढंग का पता होने के कारण, अपने आप बाहें मार रही है, पर दुर्बलता तथा सर्दी की मार और सिर में बावलापन कोई बस नहीं चलने देते। प्राणहीन नदी को कोई दर्द नहीं, बहाकर लिए जा रही है। सच है-

दौड़ी दौड़ी घाट पर गई, आगे बेड़ा चल दिया,
पीछे मुड़ूं तो सिदक नहीं निभता
तैरने को भी मन नहीं करता।
हे मन! तैरने से मत झूर, तू सिदक से
मुड़ने के कारण झूर। यदि तू तैरेगा तो
पहुँच ज़ाने पर सुख मिलेगा, यदि मर
जाएगा तो भी कुछ नहीं बिगड़ेगा।

: २ :

बहती जा रही सृष्टि की रक्षा वाहिगुरू स्वयं करता है। धुर से उसके बंधे किसी प्रबंध में से गुरू आता है, जगत का उद्धार करने के लिए। इस विरद का पालक गुरू, देखिए घोड़े पर सवार होकर जा रहा है। नदी का किनारा है। सौंदर्य भरी दृष्टि नदी पर पड़ती है, और पड़ती है और दूसरे क्षण मुशका सिंह की बाग नदी की ओर फेर देते हैं। एकदम घोड़ा नदी में जा घुसा। मालिक की इच्छा से परिचित मुशका सिंह जल में भी बागडोर को समझते हुए इस तरह जा रहा है मानो कोई किश्ती जा रही है। एक भंवर के निकट जाकर उस शान्ति रस के स्वामी, वीर रस के मालिक गुरू ने भक्त वात्सल्यता तथा वीरता का कौतुक दिखाया। उस भंवर में से एक शव ऐसी प्रवीणता से निकला, कि यदि तैराक और मल्लाह देखें तो चकित रह जाएं। अब प्रेम के शिकार को घोड़े पर रखकर किनारे पर ला रहे हैं। आप हैं कल्ग़ी वाले गुरू जी, इन्हें लोग कहते हैं "साहब श्री गुरू गोबिंद सिंह।" **"हम इह काज जगत मो आए॥ धरम हेतु गुरदेव पठाए॥"** दुखियों की पीड़ा दूर कर रहे हैं, जलधारा में बह गए प्रेमियों को अपने पवित्र हाथों से निकाल रहे हैं, वहम तथा भय में फंसने वालों को भंवर में से निकालकर बाहर ला रहे हैं। **बिखड़े दाउ लंघावै मेरा सतिगुरू'**। यह है धर्म, यही है विरद। पापियों से प्यार करने वाला यही गुरू है, पतितों को गले से लगाने वाला यही स्वामी है। मानहीनों का यह मान है और दुर्बलों का आश्रय है, कर्महीनों को पार करने वाला यही मल्लाह है।

देखिए किस तरह घोड़ा पानी को चीरता हुआ आ रहा है, प्रसन्न है कि उसके स्वामी ने दुखियों के दुख दर्द दूर किए हैं, मेरा भी उद्धार करेगा। किनारे पर खड़े प्रेमियों को देखकर घोड़ा हिनहिनाया, मानो कह रहा है, तुम धन्य हो जो इस मालिक की शरण में आए हो, मैं भी धन्य हो गया हूं, जिसे इस मालिक की सेवा प्राप्त हुई है।

सतिगुर मूरति कउ बलि जाउ॥
अंतरि पिआस चात्रिक जिउ जल की
सफल दरसनु कदि पांउ॥१॥ रहाउ॥
अनाथा को नाथु सरब प्रतिपालकु भगति वछलु हरि नाउ॥
जा कउ कोइ न राखै प्राणी तिसु तू देहि असराउ॥१॥
निधरिआ धर निगतिआ गति निथाविआ तू थाउ॥
दह दिस जाउं तहां तू संगे तेरी कीरति करम कमाउ॥२॥
एकसु ते लाख लाख ते एका तेरी गति मिति कह न सकाउ॥

तू बेअंतु तेरी मिति नही पाईऐ सभु तेरो खेलु दिखाउ॥३॥
साधन का संगु साध सिउ गोसटि हरि साधन सिउ लिव लाउ॥
जन नानक पाइआ है गुरमति हरि देहु दरसु मनि चाउ॥४॥१॥
[सा: म: १]

: ३ :

एक वृद्ध पुरुष तथा एक नौजवान दोनों तेज़ चलते जा रहे हैं। इनके चेहरों पर उदासी है।

वृद्ध–क्या हुआ समझ में नहीं आता, क्या तेरे से कोई झड़प हुई थी?

जवान–नहीं, मुझ से तो कुछ नहीं हुआ।

वृद्ध–सास के साथ तो झगड़ा नहीं हुआ, हमने तो कुछ कहा ही नहीं, किसी देवर जेठ ने कोई बुरी बात नहीं कही, गई तो क्यों गई और किधर गई? समझ नहीं आता।

जवान–क्या पता चले? मेरे विचारनुसार तो लगता है कुछ खाकर डूब मरी है।

वृद्ध–संशय तो यही है, पर क्यों? इस बात की समझ नहीं आती।

जवान–उसे कोई दुख तो था, पर मुंह से बोलती नहीं थी। कई बार रात को सोते-सोते सिसकियां भरने लग जाती थी, कई बार बैठी-बैठी रोने लगती थी। अगर कभी मैं उसे हंसते-हंसते कोई बात सुनाता तो उसका चेहरा गुस्से से लाल हो जाता और फिर साफ हो जाता, पर पता न चलता कि उसे क्या होता है? न जाने सिख की लड़की थी और हम गुरू को बुरा भला कह देते थे और वह अन्दर से दुखी होती थी। भगवान जाने क्या था?

वृद्ध–बहुत लज्जावान बहू थी। हमारे भाग्य! उसने कभी आंख उठाकर नहीं देखा, किसी से झगड़ा नहीं किया, कभी किसी से कड़वे शब्द नहीं कहे, अपने दुख को प्रकट नहीं करती थी। चाहे वह बेटी तो कुमार्गी की थी, पर उसमें अमूल्य गुण थे। एक ही अवगुण था जो कभी मूर्ति के आगे माथा नहीं झुकाती थी। सांड की भांति गर्दन ऊंची रखती थी, पर दूसरे गुणों के सामने यह कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी। सारे वर्ष में मेरी तो उसने एक ही अवज्ञा की कि अब कुल गुरू आए तो मंत्र लेने से इन्कार कर दिया। सास तथा शरीके वाले सारे ज़ोर लगा चुके, पर उसने नज़र उठाकर नहीं देखा कि कुल गुरू कहां खड़े हैं। न जाने सिख की बेटी होने के कारण, न जाने यदि उसके दूसरे गुणों की ओर देखें तो उसने कभी किसी दूसरे मनुष्य की ओर नज़र भरकर देखा ही नहीं था पतिव्रत भाव करके, राम की राम ही जाने।

जवान—न जाने अपने अन्दर की तो स्वयं जाने अभी तो वह मुसीबत पड़ गई मुझे पूरा शक है कि वह आनन्दपुर जाना चाहती थी, और मां मना करती थी, मैंने भी रोका था। चुप कर गई थी, पर दुखी होकर…।

इतने में एक मोड़ से दो और व्यक्ति निकले। उनमें से जिसका नाम विसाखा था, वह बोला।

भैया! हम तो दोनों बहुत टक्कर मार आए हैं, कोई पता नहीं चला, पर भैया! एक बात से तो अच्छा हुआ, सिख की लड़की थी, चली गई। यदि माखोवाल (आनन्दपुर) के सिखों को पता चल जाता तो चौधरी खन्ने (लड़की का चाचा) सहित हमें उड़ा देते। अच्छा हुआ जो उनके कानों में खबर नहीं पड़ी और लड़की अपने आप खिसक गई है।

वृद्ध—विसाखा! हमारा सिखों से कोई मतलब तो है नहीं, पर झूठ न कहूं: सिखों जैसा इस समय में कोई दूसरा नेक भी नहीं है। अब कोई सुन तो नहीं रहा, चाहे उन्हें बुरे कह रहे हैं, पर वे भलाई ही करते हैं और किसी से ज्यादती नहीं करते। उनमें सहन शक्ति बहुत अधिक है।

विसाखा—हां, ये बातें हैं तो सच्ची। पर हां, अच्छा अब क्या करना है?

वृद्ध—खोज भाल।

विसाखा—कितनी खोज भाल!

वृद्ध—लड़के की इच्छा है कि माखोवाल तक खोज की जाए।

विसाखा—अच्छी बात है।

इस तरह विचार करके ये आगे को चल दिए। जब भी आगे से कोई आदमी मिलता, तो ये उससे पूछते, 'भाई कोई युवती अकेली जाती हुई तो तुम्हें नहीं मिली?' कोई मुसाफिर कुछ उत्तर देता और कोई कुछ। एक मुसाफिर ने ख़बर दी है कि सवेरे एक महिला नदी में तैरती जा रही थी। यह सुनकर ये नदी के किनारे-किनारे चलकर खोज करने लगे। दिन काफी चढ़ आया था। नाश्ते का समय गुज़र चुका था, भूख भी लगी थी, पर रोटी कहां मिलती? यही राय बनी कि नदी के किनारे-किनारे चलकर आनन्दपुर पहुंचा जाए।

अब ये उस जगह पर पहुंच गए जहां पर श्री गुरू जी उस प्रेमी परन्तु सहनशील लड़की को नदी के भवजल में से निकालकर लाए थे। इन्होंने दूर से कुछ मनुष्यों को खड़ा देखकर दौड़ लगाई, ताकि उनसे पूछते। जब पूछने के लिए आगे बढ़े तो क्या देखते हैं कि एक बड़ा प्रभावशाली रूप है, पर उसके तेज का भय ऐसा छाया कि वे न तो बोल सके और न कदम उठाये।

जब महाराज जी का घोड़ा बल लगाकर बाहर निकला, तब भाई साहब सिंह ने अपना कम्बल नीचे बिछा दिया, शव को संभालकर उस पर लिटा दिया और रकाब पकड़कर श्री गुरू जी को घोड़े से उतारा। अब भाई दया सिंह ने उठ, लड़की के शरीर में से पानी निकालकर, उसके इर्द-गिर्द चादर लपेटकर उसके गीले वस्त्र उतारकर उसे अपने कम्बल में लपेट दिया। श्री गुरू जी भी घोड़े को थपकी देकर उसे धूप में खड़ा करके वस्त्र बदलने लगे। दूसरे पार बहू की खोज करने वाले खड़े देख रहे हैं। लड़की को पहचान लिया और यह भी पता चल गया कि मुर्दा है। उन्हें यह भी पता चल गया कि ये सिख हैं। यह भी पता चल गया कि इनमें से ही एक व्यक्ति अभी-अभी बहती जा रही लड़की को बाहर निकाल लाया है। इनका मन तो चाहता था कि दौड़कर जाएं और शव मांगें, पर भय इनके पांव हिलने नहीं देता। दया सिंह ने जिस बढ़िया ढंग से उसके गीले वस्त्र उतारे और उसे शुष्क कम्बल में लपेटा, उसके लिए वे चकित हो रहे थे, क्योंकि लड़की का कोई भी अंग नंगा नहीं होने पाया था। किसी की नज़र नहीं पड़ी, लपेटने वाले की अपनी नज़र नहीं पड़ी और यह कार्य हो गया। उनके लिए यह पवित्रता तथा आचरण की ऊंचाई आश्चर्यजनक थी, पर परोपकारी सिखों के तो ये बाएं हाथ के करतब थे। इन मूर्खों को पता ही नहीं चला कि ये कौन हैं? पर गुरू साहब के चेहरे को देखकर इनके दिलों में प्यार का कुछ आकर्षण पैदा हुआ और इन्हें गुरू जी भी अच्छे-अच्छे लगने लगे।

उस लड़की पर सतगुरू जी की अनुकंपा हुई, आप कपड़े बदलकर लड़की के सिर पर आ खड़े हुए। बोले: उठो, बिटिया! सावधान! होश लौट आया, आंखें खुलीं। उसी समय एक सिख ने उच्चारण किया:

"रखे रखणहारि आपि उबारिअनु॥
गुर की पैरी पाइ काज सवारिअनु॥
होआ आपि दइआलु मनहु न विसारिअनु॥
साध जना कै संगि भवजलु तारिअनु॥

ठिल्लू समझ गया था कि आप श्री गुरू जी हैं। अपने सामने मुर्दों को जीवित हुआ देखकर ठिल्लू अब विवश हो गया और दौड़कर गुरू जी के चरणों पर जा पड़ा। "पापी की भी रक्षा करो, रक्षा करो, रक्षा करो।" इसी तरह शेष सारे विवश होकर चरणों पर झुक गए; "दया कीजिए, क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए? हमने देवी को दु:ख दिया है, इसे गुरुवाणी का पाठ नहीं करने दिया, इसे दर्शन नहीं करने दिये। सवेरे उठने के कारण झिड़की देते थे, रात को जगती थी तो सताते थे, आपका नाम लेती थी तो इसे रोकते थे, सारे कुनबे की सेवा करते हुए भी इसे कष्ट दिए हैं, संतोष धारण करती तथा सहन करती को समझ नहीं सके। हम अपराधियों को तो तीरों से बेधना चाहिए। हां, हमें क्षमा कीजिए।"

श्री गुरू जी ने तीर से टोहकर कहा, "उठो, उठो।" उधर जब लड़की उठना चाहती थी। बाबा जी का सहारा लेकर उठी। इतने में गर्म दूध आ गया, लड़की को एक-एक घूंट करके पिलाया गया। अब वह उठी। उठकर क्या देखती है कि उसमें बल आ गया है। नगर से आए शुष्क कपड़े पर्दा करके पहन लिए और कल्ग़ीधर की ओर करबद्ध, आंखें मूंदकर बड़ी नम्रता से विनती की: "गुरू बख्शीस करने वाले जी! इन्हें क्षमा कर दीजिए।" गुरू जी हंस पड़े और कहने लगे:

"बिटिया! पहले तुझे क्षमा करना है, जिस निर्दोष का विवाह इन्होंने छल कपट से किया, फिर तंग किया। इनके पाप के लिए अकाल पुरुष ईश्वर इन्हें क्षमा करेगा।" पर पहले तू उन्हें क्षमा करेगी। यह सुनकर विशाल हृदय वाली बोली, "पिता जी! क्षमा करने वाले तो आप हैं, मैं अवगुणों को ध्यान में नहीं लाती, पर पातशाह। आप ही क्षमा करने वाले हैं।" इस प्रेम तथा दया ने श्री गुरू जी के नेत्र अनुकंपा से भर दिए और वचन हुआ, "अनुगृहीत हो गए।"

तब सारे श्री गुरू जी के चरणों से लिपट गए। फिर सारे आनन्दपुर पहुंचे, अमृत छककर सिंह सजे। जिनका कोई आश्रय न हो, जिनकी डोरी केवल गुरू पर हो, जिन्हें पिछले कर्मों के प्रवाह में बहा दें शूरवीर गुरू उनका इस तरह उद्धार करता है। बेसहारों का सहारा गुरू धन्य है।

❑ ❑

४१ भाई दिलबाग सिंह

बापू–बेटी! तेरे क़दम बहुत हल्के पड़ते हैं। मेरे पैर भी उखड़ते हैं, दम भी चढ़ता है, कहीं कोई पहाड़ की चढ़ाई तो नहीं आ गई।

कन्या–बापू जी! पहाड़ की चढ़ाई तो नहीं, पर वैसे चढ़ाई है, सायंकाल हो रहा है; प्रकाश में तो मैं पत्थर, टीले, खाई से बचकर चलती हूं, अब अन्धेरे के कारण कहीं-कहीं पैर तनिक उखड़ते हैं।

बापू–चन्द्रमा नहीं चढ़ा क्या?

कन्या–नहीं बापू जी! अभी तो तारे भी नहीं निकले। कुछ बादल से हैं।

बापू–बिटिया! तनिक देख कहीं कोई प्रकाश नज़र आता हो। कोई कुटिया, झोंपड़ी अथवा कोई कुआं ही कहीं दिखाई देता हो।

कन्या–एक पर्वतीय रौ सी है, पत्थरों के बीच में कोई प्रवाह बहता दिखाई देता है, उसके पार प्रकाश-सा दिखाई देता है, दिया जलता है, अथवा आग जल रही है और इस पार कोई प्रकाश दिखाई नहीं देता।

बापू–(हवा का झोंका लगा)–यह शीतकाल का पवन कहां से चल पड़ा, चाहे तो हरिद्धार का तूफान हो। पहले ही थके मांदे हैं, ऊपर से नाला आ गया है, मैं दृष्टिहीन और तू अनजान। पहाड़ की रौ तो शेरों के पैर भी हिला देती है। न जाने दोनों ही इसकी भेंट हो जाएं और वे आशाएं तथा उम्मीदें कई जन्मों तक पीछे जा पड़ें, जिनके पूरे होने में अब केवल एक दो सूरज चढ़ने तक का ही पर्दा है।

कन्या–बापू जी! भूख भी तो व्याकुल कर रही है। झोले में तो अब पंजीरी भी नहीं है, यदि रोटी का कोई टुकड़ा है, तो वह भी सूखा।

बापू–मेरे भाग्य! तुझ मासूम को मेरे पापों के कारण कष्ट सहन करना पड़ रहा है। मगर मैं उस समय आंखें खोलता, जब मेरे नेत्र ठीक थे, तो आज अंतस की आंखों की खोज न करनी पड़ती, पर हाय! भाग्य! मैंने नैनों के होते हुए न देखा और देखते खोजते न समझा और समझते समझाते मैं न पसीजा। पसीजने वाले भवसागर से पार हो जाते हैं और मैं आज एक छोटा-सा नाला पार करने

के लिए भी कांप रहा हूं। आंखें बहुत अमूल्य वस्तु हैं, यदि आंखें देखने परखने वाली हों तो दृष्टि वाले दृष्टिहीन बने फिरते हैं और दृष्टिहीन दृष्टि की खोज में फिर रहे हैं। हां, दृष्टिहीन आंखें जैसी हुईं, न हुईं, एक समान हैं।

कन्या–बापू जी! यों बातें न कीजिए, सीधे चले चलिए।

बापू–बिटिया! यदि एक बार कान में पड़ जाए कि 'क्षमा कर दिया', तो सारे दुख भूल जाएं। हाय तुझ अनजान को मैंने दुखों में डाल दिया है, करता तो मैं रहा, और भरते समय बोझ तेरे पर डाल रहा हूं।

कन्या–अच्छे बापू जी! यों न कहो, मेरे मन को कुछ होता है। मेरे भी तो तुम ही हो और तुम भी उदासी की भाषा बोलते हो। अच्छे बापू! दुखों को न करो और न करवाओ।

बापू–बिटिया! नाला कितनी दूरी पर है?

कन्या–बापू जी! नजदीक ही है।

बापू–क्या जल का बहाव तेज़ है, अथवा रुका हुआ, डुबो देने वाला?

कन्या–अभी तो पता नहीं चलता।

बापू–देख बिटिया! मेरी लाठी गिर गई, तनिक ठहर जा और मुझे पकड़ा दे।

कन्या–(लाठी उठाकर तथा उसके आगे करके)–लो बापू जी! लाठी, हाय, ऊई।

बापू–क्या हुआ बिटिया।

कन्या–जब लाठी उठाने के लिये झुकी तो कमर में दर्द होने लगा, चलते-चलते कमर अकड़ गई है।

बापू–कितना समय हो गया है जब हम चले थे, ऊपर से यह सर्दी, अंग क्यों न अकड़ते, क्या करें!

कन्या--लो पगडंडी मुड़ रही है, पानी की विपुल आवाज़ कानों में पड़ती है, रास्ता नाले की ओर जाता है। अन्धेरा है।

बापू–बिटिया! चलती चल! हिम्मत हारने से हिम्मत करते हुए यदि भाग्य साथ न दे तो अच्छा है। देखती चल कहीं किसी साधु-संत अथवा फकीर की छत्त वाली फूस की झोंपड़ी अथवा कहीं ईंटों, पत्थरों की आड़ में कोई रात काटने का सहारा दीख पड़े, तो वहां पर टिक जायें और यदि समतल मैदान ही है, तो फिर चले चलें।

कन्या–अच्छा बापू जी!

बापू–जिसके द्वार से भिक्षा मांगने के लिए चले हैं, जिसकी कृपा के सौंदर्य के आगे अपनी कंगाली का अन्धेरा दूर करने चले हैं, उसके आगे विनती करें मिन्नत, तथा जुहार।

पर बिटिया! मैंने तो कोई ढंग न सीखा। सीखने का समय तो दुनियादारी में चला गया, जब दुनियादारी को आकर फल लगे तो सिखाए कौन?

कन्या–बापू जी! चाचा जी कुछ इस तरह की बात कहा करते थे, कि बीत गया सो बीत गया अब ही संभलो।

बापू–सच है! 'अब' को तो बेटा तूने ही संवारना है, मुझे तो तेरे कंधे पर हाथ रखकर पीछे-पीछे ही चलना है।

कन्या–बापू जी! हम चले तो जा रहे थे, पर मन निकम्मा है। यदि चाचा जी के कथनानुसार इसे गुरू के चरणों में लगा दें, वाहिगुरू, वाहिगुरू को याद करें, न जाने गुरू आ ही जाए।

बापू–हां–ठी··ऊई, ठहरना बिटिया।

कन्या–क्या हुआ, बापू जी?

बापू–बिटिया! पैर नीची जगह पर पड़ गया था, मोच आ गई है।

कन्या–थोड़ी देर दम ले लें। लो मैं दबा दूं।··हे गुरू जी! सहायता करो (टांग को दबाती है)।

बापू–बस बिटिया, बस बेटा, चल हिम्मत कर।

कन्या–लो जी, नाला आ गया, न जाने पानी कितना गहरा है?

बापू–हे गुरू सहायता करो। बिटिया! कोई पुलिया तो नहीं है, जरा ऊपर नीचे देख तो।

कन्या–बापू जी! कुछ नहीं दीखता, पानी तो दीख रहा है, पगडंडी के आगे पुलिया नहीं है।

बापू–पानी की आवाज़ सुनाई नहीं देती, पर पानी गहरा और तेज़ होगा।

कन्या–गुरू जाने।

बापू–बिटिया! अब क्या करें!

कन्या–गुरू सहायता करे, गुरू रास्ता दिखाए, गुरू पार ले जाए। हे गुरू जी! रास्ता दिखाओ, हे गुरू! पार ले जा। हे दाता! पार ले चल। आ, स्तंभों में से आ। यह कहती हुई लड़की अरदास में लग गई। उसकी अरदास कुछ इस तरह की थी:

काली घटा छाई है, परवाई चल रही है, शरीर को ठण्ड लगती है, सर्दी भागी आ रही है। गहरा अंधेरा है, जो सब ओर पसर रहा है, संध्या हो गई है, मन सहम रहा है। हाय! अकेले हैं, कोई दर्दमंद नहीं दिखाई देता, कोई आश्रय नहीं हैं, कोई ओट नहीं है।

हाय बूंदें पड़ रही हैं। पत्ते मिन मिन की आवाज़ निकाल रहे हैं। हवा की सांसा की आवाज़ है, आगे नदी आ गई है। नीर ठाठें मार रहा है। मानों

धमकी दे रहा है। कोई किश्ती अथवा डोंअ नहीं है, जो मुझे आकर पार कर दे। हाय! कोई मल्लाह भी सामने नहीं दीखता, जो हमें आकर पार ले जाए। हाय! गुरू गोसाईं! तेरे बिना ओर कोई सहारा नहीं, तू ही अब आकर दुखियों को पार कर दे कोई भी भिखारी तेरे द्वार से अभी तक खाली नहीं गया, तू ही दुखियों की पुकार सुनकर उनकी सहायता करता है।

हम युगों से बड़े भारे पापी भूलते आए हैं। तू हमारी भी रक्षा कर और हमारी भी सहायता कर। हे प्रभु जी! प्रकाश भेजिए, अंधेरे को दूर कर दो, बिजली का प्रकाश डालकर, हमें रास्ता दिखा दो।

हम हर ओर से टूटे हुए हैं, आप हमें अपने चरणों के साथ जोड़ लीजिए। अपने विरद के लिए ही हमारा उद्धार करो। हमारे प्राण सिकुड़ते जाते हैं, दिल उड़ता जा रहा है, हे गोसाईं! अब आप ही आकर हमारी रक्षा करो। प्यारे, हे प्यार वाले! कभी भी गुस्से न होने वाले, दुखियों पर दया करने वाले, आकर दीनों को बचा लीजिए।[१]

(आंखें खोलकर)–बापू जी! आकाश ने आंख झपकी है, बिजली चमकी है, वह क्या है, जो पुलिया की भांति दीख रहा है। बापू जी! आओ देखें तो सही।

बापू–चल बिटिया।

कन्या–(पहुंचकर)–बापू जी! यहां पर नदी का पाट छोटा है। एक बड़ा वृक्ष गिरा पड़ा है। जो नाले के आर-पार पड़ा है। हम इसके ऊपर से गुज़रकर पार हो सकते हैं।

बापू–बिटिया! कुछ प्रकाश है?

कन्या–जी हां; कुछ बिजली की चमक सहायता करती है, यह खेल बहुत ही कठिन है। आओ न जाने गुरू ने हमारे लिए ही यह पुलिया बनाई है, गुरू ही पार करेगा। लो बापू जी! हो, हो, यह है तना, इस पर पांव रख दो।

बापू–(कदम रखकर)–बिटिया! यह तो बड़ा कठिन कार्य है।

कन्या–कठिनाई गुरू दूर करेगा, उसकी टेक रखकर चले चलो।

बापू–हे गुरू! सहायता करो। अजामिल का उद्धार करने वाले, सहायता कीजिए।

कन्या–बस इसी तरह धीरे-धीरे कदम रखते चलिए।

बापू–अच्छा, गुरू जी! पार ले जाना।

कन्या–बापू जी ठहरना, मैं गई, बैठ जा! बिजली की चमक ने चक्कर दे दिया था, आंखें चुंधिया गई थीं, मैं चक्कर खाकर नीचे गिरने वाली थी।

---

१. यहां पर लेखक की पंजाबी कविता का खुला अनुवाद प्रस्तुत किया है।

बापू–बिटिया! बैठ जा, खड़े होकर चलना बहुत मुश्किल है। बैठकर, तने को हाथ डाल-डालकर इसी का सहारा लेकर बतख की चाल चली चल, पीछे-पीछे मैं भी इसी तरह चला आऊंगा।

कन्या (बैठकर, चलकर) ठीक है, जी इस तरह काम हो जाएगा।

बापू–गुरू जी रक्षा करना।

कन्या–(पहुंचकर) शुक्र है, पार हो गए।

बापू–शुक्र है। पार पहुंच गए।

'अजामलु पिंगला लुभतु कुंचर गए हरि के पासि॥
अैसे दुरमति निसतरे तू किउ न तरहि रविदास॥३॥१॥

: २ :

नाले से पार होते ही आग दिखाई दी। सीध में पहुंचे। आग जल रही है। परे कुछ पठान बैठे खा पी रहे हैं। दोनों आग के पास पहुंचकर आग तापने लगे।

एक पठान (पास आकर)–कौन हैं बाबा?

बाबा–(सहमकर)–परदेसी हैं, थके मांदे हैं, जरा आग ताप लें। कंगाल हैं।

पठान–(लड़की की ओर घूरकर देखकर, नरम आवाज़ में) हां बाबा ताप लो। फकीर हो, कुछ ले लो।

बाबा–खाने को भोजन हमारे पास है।

पठान–'अच्छा खाओ' कहकर चला गया।

बाबा–ईश्वर तुम्हारा भला करे।

आग तापकर इन्हें होश आया। दिन की पकी रोटी गरम करके खाई और आग के पास ही लेट गए। थके मांदे थे, झट सो गए। पहली करवट बदली तो सूरज चढ़ चुका था। शीघ्रता से उठे, झोला संभाला और चल दिए।

पठान–(ललकार कर) खबरदार बूड्ढे! जाना नहीं।

बाबा–क्यों भले पुरुष?

पठान–बस, तुम हमारे कैदी हो। कदम नहीं उठाना।

बाबा–भाई! हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

पठान–बकवास मत करो।

(किसान को जो अभी-अभी घर से बैल लेकर खेती करने के लिए आया था।) सुन भाई ज़िमींदार! यह ले बख्शीस! तेरी रक्षा किया करेगी। यदि तेरे पास तीस रुपये हों तो यह लड़की भी तू ले ले।

किसान–यह दास तुमने कहीं से खरीदे हैं, क्या धीरे बोलो, पास ही सिखों की राजधानी है, यदि किसी ने सुन लिया कि दास बिके हैं, तो पकड़कर ले जायेंगे।

पठान (साहस बटोरकर) हुंह, कौन है पकड़ने वाला? यह कहकर नीचे की ओर चल दिया। थोड़ी दूरी पर एक राजपूत कुछ सवारों सहित सैर करता हुआ आ रहा था। सबसे आगे आ रहे हरावल सवार को पठान ने कहा, मियां क्या बरदा (गुलाम) खरीदेगा, चालीस रुपये में यह लड़की।

ठहरो, मालिक से पूछकर बताता हूं।

पठान–जल्दी करो।

सवार–(पूछकर)–तुमने कितने में खरीदी है?

पठान–बीस रुपये में और बीस रुपये नफा लेगा।

सवार–ले रुपये ले। रुपये दे दिए और लड़की को लेकर अपने मालिक के पास गया।

मालिक–अच्छी हृष्टपुष्ट है।

सवार–हां मालिक! आपकी नवविवाहित रानी की अच्छी खिदमत करेगी।

३

दूसरे दिन तड़के ही किसान कुएं पर गया और बाबे को रोता देखकर कहने लगा।

बाबा! तू इतना क्रंदन क्यों कर रहा है? यदि भाग्य में दास बनना हो तो कौन रोक सकता है? आठ पहर हो गए हैं, तेरे आंसू शुष्क नहीं हुए।

बाबा–भैया, बूढ्ढे होकर दास बनने के दु:ख के कारण होता है और जिगर के टुकड़े के छिन जाने का दु:ख है, जो असह्य है। यदि आंखों के सामने मर जाती, तो शायद इतना दु:ख न होता, अब तो टूटे शल्य के घाव में प्रत्येक क्षण कसक है।

किसान–बाबा! तू बन्दी कैसे हुआ?

बाबा–मैं तथा मेरी पोती, हम दोनों आनन्दपुर दर्शन करने के लिए जा रहे थे। रात को यहां आग जलती देखकर थोड़ा सुख लेने के लिए आए थे, सवेरे चलते समय इन्होंने पकड़ लिया।

किसान–(आनन्दपुर सुनकर सहम गया)–तब तो वैसे ही फंस गए। (सोचकर)–क्या तुम सिख हो?

बाबा–सिख का पिता हूं और स्वयं सिख धर्म प्राप्त करने चला था। (नि:श्वास भरकर)–हे कल्गी वाले! यदि तू सच्चा गुरू है, तो अपने प्यारे राम सिंह की बेटी को धर्म तथा शर्म से अपने चरणों में बुला ले। मैं भले ही मर जाऊं, दुख भोगूं, पर तू अपनी बेटी को बचा ले। हे हिन्दू धर्म के लाजपत! हे सच्चे गुरू। तेरे बिना दुखियों का और कोई नहीं, स्तम्भों में से निकलकर सहायता कर फ़िर क्रंदन करने लगा।

किसान—बाबा तू तो भला पुरुष लगता है?

बाबा—मैं जालंधर का सेठ हूं। मैं लखपती था। पिछली महामारी में मर गया। पांच पुत्र थे, शूरवीर शेर जवान। छोटा सिख बन गया, रामसिंह, इस लड़की का बाप, देखता था। जब मेरी बाहें टूट गईं (पुत्र मर गए) तो शरीके वाले हाकिमों के साथ मिलकर मेरा माल धन छीन ले गए। रो-रोकर आंखों की ज्योति खो बैठा। अंत मन में आई कि रामसिंह के गुरू के पास चलूं, हृदय शीतलता प्राप्त करे। यही एक पोती थी, उसे साथ ले लिया। धुर से ही भाग्य खोटे थे, पोती को घर से निकालकर खो बैठा, और स्वयं दास बन गया। (ऊपर को देखकर) हे आनन्दपुर वाले! दुखियों पर तरस कर।

किसान—बाबा मुझे अभिशाप न देना, मैं भी बाल बच्चेदार आदमी हूं। मेरी ओर से तुम मुक्त हो, जाओ आनन्दपुर। सच्ची बात है, अभी चल दो, चाहे सवेरे चले जाना, मेरा कोई दोष नहीं।

किसान सिखों से डरता था, यह कहते हुए जल्दी-जल्दी दूर से बेटे की आवाज़ सुनकर चला गया और दूर निकल गया। बाबा ऊंचा बोल-बोलकर कहता रहा, ईश्वर तेरा भला करे, भला करे, पर भैया दृष्टिहीन कैसे जा सकता है? तरस कर, मार्ग पर चला दे।

: ४ :

आधी घड़ी के बाद पोती बाबे के साथ आकर चिपट गई। बापू जी! बापू जी! मैं आ गई।

बाबा—(घबराकर, खुश होकर, शुक्र में आकर, डरकर, कन्या को कसकर गले से लगाकर)—हाय री बिटिया शुक्र बिटिया, शुक्र, कोई देख तो नहीं रहा, कैसे? कहां से?

कन्या—मैं दाव लगाकर खिसककर भागती-भागती आ गई हूं। बापू जी तुम डरो मत, कोई नहीं देख रहा, अभी अन्धेरा है।

बापू—यदि किसान भी नहीं है, और भी साईं का कोई जीव नहीं देख रहा तो जल्दी-जल्दी निकल चलें, कहीं कोई आ न जाए।

दोनों चलते जाते बातें करते जा रहे हैं।

बापू—बिटिया! शेर बिटिया, सिख बेटी, धन्य गुरू प्रत्यक्ष तथा प्रकट गुरू, मेरी पुकार सुन ली है, बिछुड़े मिला दिए हैं, धन्य गुरू।

कन्या—पिता जी कहा करते थे, कि दुखों के समय वही सहायता करता है।

बापू—बिटिया कैसे छुटकारा मिला? क्या किसी ने तुझ पर दया की? जैसे किसान ने मुझ पर की है।

कन्या—नहीं बापू जी! थोड़ी दूर जाकर पठानों को कुछ राजपूत मिले उनके पास मुझे चालीस रुपयों में बेच दिया। वह जो बड़ा मियां उसका अभी-अभी विवाह हुआ है उसने मुझे अपनी पत्नी की दासी बनाया। यहां से थोड़ी दूर पर एक गांव है, वे उस गांव में किसी के घर में अतिथि बने। मुझे रानी की मुट्ठी चाँपी करने की आज्ञा हुई मुट्ठी चापी की बापू जी! मेरा रोना तथा क्रंदन ही न थमे। रानी ने गुस्से होकर मुझे बाहर निकाल दिया। आधी रात का समय था, मैं छत से नीचे आंगन में आई आगे चौकीदार सो रहा था। हवेली के द्वार को भीतर से ताला लगा था, मैं दरवाजे तथा छत के बीच सेंध में जो जगह थी, उसमें से शरीर को झुकाकर निकली तथा बाहर की ओर बाजूबंद पर पैर रखकर छंलाग लगा दी और दौड़कर घर की ओट में हो गई और फिर चल दी। जाते समय रास्ते की पहचान रखती गई थी, अत: चलती हुई आ पहुंची हूं, चाहे बुरी हालत में। बापू जी, कहकर फिर चिपट गई।

अब ये चलते जा रहे थे, पर पगडंडी भूल गई, सूरज चढ़ गया, नाश्ते के समय वहां पहुंचे, जहां वे पठान खड़े थे। वे इन्हें घूर-घूरकर देखते पर कन्या निर्भय होकर उन्हें ऐसे देखती, जैसे शेर को निर्भय होकर बकरी देखती है। अभी कोई बात नहीं हुई थी कि दो सवार आ गए, सरपट घोड़ा दौड़ाते हुए। ये कल वाले जत्थे में से थे, नई खरीद की हुई दासी की खोज करने आए थे, जो भागकर आ गई थी। अत: दृष्टिहीन वृद्ध तथा कन्या दो मुसीबतों में फंस गए।

: ५ :

दूर से गर्द उठी, अभी देख ही रहे थे कि उस ओर से आवाज़ आई 'अवख'। क्या देखते हैं कि दूर पड़े पीपल के एक भारी तने में एक तीर आकर लगा है। यह उसकी आवाज़ थी। अब घोड़ों की टापों की आवाज़ सुनाई देने लगी। अभी सोच काम ही नहीं कर सकी थी कि एक और तीर पठान के उस घोड़े में आ लगा जो वृक्ष के साथ बंधा हुआ था। इसे देख ही रहे थे कि ललकार हुई—खबरदार! तथा पलक भर में पच्चीस तीस सवारों ने इन्हें अपने घेरे में ले लिया। और 'सत्य श्री अकाल' की आवाज़ गूंजी।

कन्या—आ गए, बापू जी आ गए, मेरे पिता जी के गुरू आ गए। (ताली बजाकर)—देखो बापू जी! गुरू जी आ गए।

इस अति निराशा में, अति भयभीत दशा में, अति अचानक ढंग से आशा के सूरज के चढ़ जाने की आवाज़ ने न जाने बाबे के मन पर क्या प्रभाव डाला; कोई ऐसी सुगन्ध छाई कि उसे इस बात का ध्यान भूल गया कि दृष्टिहीन है, गहरे मन में से 'नैनों में ज्योति नहीं है' का संस्कार उठ गया। उसके भीतर से

कोई ऐसा उछाल आया कि नैनों ने देखा। देखते ही मानों आंखों के आगे से सारे परदे हट गए। रो-रोकर कमज़ोर हो चुकी आंखों में किसी अगम्य ममीरे का असर भर गया। नैन खुले और सचमुच खुले और चमकते हुए सूरज के प्रकाश में नैनों ने दृश्टिमान को देख लिया, जिनके दर्शन को देखने के लिए व्याकुल हो रहे थे नैने, मन तरस रहा था और आभा व्याकुल थी। हां, दिखाई पड़ गए क्ल्ग़ी वाले बंदीयों को मुक्त करने वाले, सचमुच इन चर्म चक्षुओं से, दिखाई पड़ गए गज को ग्राह से छुड़ाने के विरद वाले। दिखाई पड़ गए हैं, दिखाई पड़ गए हैं, मौत के मुंह में फंसे हुए को, दिखाई पड़ गए—एक तो प्राण बच गए दूसरा दर्शन की देन प्राप्त हुई, अनुकंपा की बौछार।

म्रिगी पेखंत बधिक प्रहारेण लख आवधह॥
अहो जस रखेण गोपालह नानक रोम न छेद्ते॥

[सलोक सहसकृती मः ५]

❑ ❑

४२ भाई जय सिंह

श्री गुरू कल्ग़ीधर के दरबार में अनेक विद्वान तथा कवि सुशोभित होते थे। कवियों में से ५२ के नाम प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई दिमाग़ी चमत्कारों के प्रवीण विद्वान ग्रंथों की टीका तथा कविता लिखते थे। कई विद्वान या तो वहां ही टिके रहते, या सेवा में लगकर आज्ञा पाकर बाहर सेवा करने के लिए चले जाते अथवा प्रेम की बाढ़ में विह्वल होकर उच्च आत्मिक रंगों में जीवन-मुक्ति का रस लेते। इन प्रेमियों में एक भाई जय सिंह जी थे। आप बृजभाषा के प्रवीण कवि थे और वहां अपनी प्रवीणता का मूल्यांकन करवाने गए थे। सच्चे गुरू की अनन्त द्युति को देखकर मोहित हो गए। इतने मोहित हुए कि कविता का मूल्यांकन तो भूल गया, कविता के उच्चादर्श की प्राप्ति हुई और लौधारी बन गए। एक दिन एक सिख ने कहा, "श्री महाराज जी! जय सिंह जी हमेशा मग्न रहते हैं, इन्हें युद्धों में साथ चलने की आज्ञा दी जाए।" सच्चे वैद्य जी ने कहा, "इस गोट को प्रेम की चौसर में विरह के घर में परिपक्व होना है।" दूसरी प्रातः सतगुरू जी ने आज्ञा की "जय सिंह! अपने देश में परिवार में जाकर रहो और वहां ध्यान मग्न रहो।"

प्रियतम की आज्ञा पर हाय! कठोर आज्ञा! प्राण से बिछुड़ने वाली आज्ञा आपे से दूर होने की आज्ञा को सिर माथे पर रखा और घर पहुंचे। दो तीन वर्ष विरह को झेला अतः या तो भाई जी जानते हैं, या तो कल्ग़ी वाले प्रियतम जानते हैं। अब फिर बुलावा आया तो प्रियतम जी के दर्शन प्राप्त करके तृप्त हुए वियोग में जो काफियां[१] तथा दूसरे छंत पंजाबी भाषा में रचे थे, बहुत ही विरह भरे थे, पर अब वे समय की धूल में खो चुके थे। हमें दो काफ़ियां उपलब्ध हुई हैं, जो इस प्रकार है–

(१) काफी: देवगंधारी–

'सतिगुर मैंडी (मेरी) क्यों नहीं लैंदा सार।
मैं तैं (तेर) बाझ इवें कुरलावां,
ज्यों कूंज विछुंनड़ी डार।

---

१. एक राग विशेष जो जल्दी गाया जाता है।

जे असीं भुले चुके सतगुरू
तेरा नाम सतार।
जय सिंह दी सुन कूक प्यारे
देवहु कदी दीदार।

(२) काफी देवगंधारी

साहब! असी डिठे (देखे) बाझ न रहिंदे वो।
सिकण सूल ते दर्द विछोड़ा।
असीं तउ बिन कही न कहिंदे वो।
रातीं दिहां सानूं ध्यान तुसाडा
असीं कर आराम न बहिंदे वो।
जय सिंह दी सुन अर्ज प्यारे
असी प्रेम नदी नित्य वहिंदे (बहते) वो॥

❑ ❑

४३ वन युद्ध

[जादू के प्रभाव में सिंहणी दीप कौर चौंदा गांव, पंमा कलाल गुरू का लाल, आलम चन्द बलिया युद्ध]

अमृत वेला है, शान्ति है, एकान्त है, मौन है, सुहावनी ठण्डक पड़ रही है। आनन्दपुर है, कीर्तन है, कीर्तन की मीठी-मीठी ध्वनि कानों में पड़ रही है। मानो 'मूकता' मूक होकर समाधि में टिकी हुई है और इस सुहावने कीर्तन का संगीत प्रधान रस उसे आपे में मग्न कर रहा है। धीरे-धीरे, एक एक, दो दो करके सिख आते हैं और अडोल दीवान में टिकते जाते हैं। इतने चुपके से पैर रखते हैं कि पहले बैठे हुओं को पता न चले और उनकी सुरति पर विचलता का प्रभाव न पड़े इस तरह के शान्त प्रभाव में गुरू साहब के आने का समय हो गया। 'सत्यनाम' 'श्री वाहिगुरु' की ध्वनि शुरू हो गई। सारी संगत सत्कार के लिए खड़ी हो गई आप आए, हां, आए साहब श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी। दीवान में से सबके झुके शीशों में से 'वाहिगुरू जी का खालसा, श्री वाहिगुरू जी फ़तेह' का उत्तर दे मलया गिरि की समीर की भांति धीरे-धीरे चलकर अपने आसन पर जा विराजमान हुए। कीर्तन फिर जारी हो गया। मौन छा गया। शान्ति रस और अधिक हो गया। सारी संगत आनन्द लिया; वह आनन्द जो भीतर है और भीतर से नाम में लगने से प्राप्त हो आता है।

"अंतरि खूहटा अंमृित भरिआ
सबदे काढ़ि पीऐ पनिहारी॥" (वडहंस स: ३)

कीर्तन की ध्वनि मन को दूसरी ओर जाने से रोक रही है। प्रेमीजन वाणी के भाव अपने मन में ला रहे हैं। कीर्तन की ध्वनि तथा वाणी का भाव दोनों मिले जुले प्रभाव से वाहिगुरू के यश में लाकर, ख्याल को उसी ओर लगाकर साईं की स्मृति का एक प्रवाह सा बना रहे हैं। स्मृति एक चलते हुए प्रवाह की भांति अथवा तेल की धारा की भांति निरंतर चल रही है और आपे को वाहिगुरू की शरण में लिए जा रही है। या यों कहें कि जीव तत्व का प्रवाह परम तत्व की ओर हो रहा है।

तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ
नानक सरणि तुमारी॥ [सोरठ म: १]

दीवान में बड़े-बड़े सूरमें भी बैठे हैं। वीररसी ठाठ है, तलवारें लगी हैं, चेहरे लाल दमक रहे हैं, वे भी इस समय नाम जपते हुए आपे को उसमें लगा रहे हैं।

बीच-बीच में त्यागी, वैरागी साधु भी इस नए योग में तथा नए ज्ञान में जुड़े बैठे हैं। यह बात कि आपा परम आपे में मिले—आत्मा परमात्मा के अनुभव में एक स्वर हो। इस प्रकार की जीवित लौधारा है जो सारा दिन कामकाज करने वाले कर्मियों को लग रही है।

समाप्ति हो गई, प्रसाद बंट गया, सतगुरू जी ने अपने मुख से मनोहर वाक्य उच्चारण किए। संगतें गद्‌गद् हो गईं। फिर विभिन्न इलाकों के प्रेमी आए और संगतें पेश हुईं और उनसे वार्तालाप हुआ।

शेखपुर के एक सिख ने अरदास की[१] पातशाह मेरी पत्नी कुसंगति के कारण एक चेटकी पीर मौलाना से मिलकर उसे अपने धर्म का अगुआ मान बैठी है, हम सारे उपाय करके थक गए हैं, बड़ी मुश्किल से उसे आपके पास लाए हैं, कृपा करो ताकि चेटकी का असर दूर हो। हमारे घरों में विशुद्ध सिख धर्म में ही श्रद्धा है, पीरों मौलानाओं का कभी प्रभाव नहीं पड़ा। गुरू साहब ने उस स्त्री को बुलाकर पूछा, तो कहने लगी, "मेरा मन तो नहीं चाहता पर मैं विवश हूं, जबर्दस्ती उधर चल पड़ती हूं, आज्ञा हुई कि अमृत छको।" उसी समय उसे अमृत छकाया गया। अमृत छकते ही वह महिला होश में आई और सावधान हो गई और गुरू गुरू जपने लगी। इधर सतगुरू जी दूसरों का उद्धार करते रहे। अमृत छककर जब वह महिला फिर पेश हुई, तो गुरू साहब ने कहा, "श्री गुरू नानक साहब जी की वाणी के आगे, जंत्र, मंत्र जादू टोनों की पेश नहीं चलती।" जो कोई भी शुद्ध मन से इस वाणी का पाठ करता है, उसके सारे भय तथा भ्रम दूर हो जाते हैं। जिन्न भूत, जादू जो कुछ कहा जाता है, वह वाणी पर अपना कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। वाणी का पाठ सिदक रखकर करो और वाहिगुरू को अपने भीतर बसा लो—

ऊठत सुखीआ बैठत सुखीआ॥
भउ नही लागै जां ऐसे बुझीआ॥१॥
राखा एकु हमारा सुआमी॥
सगल घटा का अंतरजामी॥१॥ रहाउ॥
सोइ अचिंता जागि अचिंता॥
जहा कहा प्रभु तूं वरतंता॥२॥
घरि सुखि वसिआ बाहरि सुखु पाइआ॥
कहु नानक गुरि मंत्र द्रिड़ाइआ॥३॥२॥

[भैरउ मः ५]

---

१. तवारीख खालसा भाग ३ पना ५५।

अब माझे की संगत पेश हुई और संगत ने दीप कौर की वार्ता सुनाई।

उस दिन सारी संगत में से, जिन्होंने अभी अमृत नहीं छका था, सबने अमृत छका। आनन्दपुर में तो अमृत का संचार था ही, पर नाम तथा वाणी के प्रेमी सिंहों के जत्थे जगह-जगह पर फिर कर भी अमृत का प्रचार करते फिरते थे। वैसे भी सिंह शस्त्रधारी होकर विचरते थे। चौंदा नामक एक गांव के पास सिंहों के इसी प्रकार के एक जत्थे ने जा डेरा लगाया। सिंहों ने गांव वालों से रसद मांगी मूल्य आगे रखा, पर गांव के लोगों ने रसद देने से इन्कार कर दिया। नंबरदार भी न माने। बल्कि आगे से झगड़ने लगे। लोग ज्यादा थे, पर विजय खालसे की हुई और भोजन के लिए सामान भी मिल गया, जिसे कृपाण भेंट करके बांटा गया[१]।

इस तरह अनेक प्रकार की घटनाएं नित्य नए रूप धारण करके घटित होतीं पर प्रचार करने वाले प्रेमी प्रचार का काम करते रहते। इस तरह कई जत्थे देश में घूमने लगे। इनका मुख्य कार्य गुरू के सिख धर्म का उपदेश देना तथा अमृत छकाना था। संगतें मसंदों द्वारा डाले गए दबाव के कारण दब गई थीं। मसंदों के आचरण को देखकर लोग उदास हो जाते। श्री राम राय तथा धीरमल आदि ने जो मसंदों की कदर बढ़ाई थी, उसके कारण वे और अधिक स्वार्थी हो गए थे। जब सतगुरू जी की ओर से इस प्रकार का प्रचार शुरू किया गया, तो संगतों में बहुत अधिक उत्साह पैदा हुआ। प्रत्येक व्यक्ति यह समझने लगा कि अब उसका नाता सीधा गुरू जी से हो गया है। सतगुरू जी ने अमृत अर्थात् गुरू दीक्षा का अधिकार पांच प्यारों को देकर "गुरू खालसा" का आदर्श कायम करके धार्मिक स्वतंत्रता की नींव डाली। संसार के दूसरे मतों में पुजारी वर्ग की ओर से मुश्किलें हमेशा आती थीं खालसे के लिए वे सभी दूर हो गईं। प्रजा का दिया दान एक प्रकार से विष बन जाता है। कब! जब यह लोभ का रूप धारण कर लेता है और नाम तथा वाणी के अभ्यास द्वारा आपे को शुद्ध करने वाला नहीं होता; वह अवश्य ही अपनी बुद्धि को मलिन कर देता है।

"तिउं धरमसाल दी झाक है विहु खंडू पाज।"

[वारां भाई गुरुदास]

प्रत्येक सिख एक सिपाही है, क्योंकि सतगुरू जी ने सिख को शस्त्रधारी बना दिया और प्रत्येक सिख दुनियादार है, क्योंकि गुरू जी ने ईमानदारी के साथ व्यवसाय विहित कर दिए हैं। प्रत्येक सिख संत है, क्योंकि वह नाम जपता है और वाणी का कीर्तन करता है, तथा वाणी द्वारा दिखाए गए प्रकाश में चलता है। प्रत्येक सिख जो पूर्ण रूप से तत्पर है, तैयार है, अमृत तैयार करने में शामिल हो सकता

१. तवारीख खालसा।

है, धर्म के संस्कार कर सकता है। यों प्रत्येक सिख अपने धर्म का पुरोहित भी है। अत: सिंह दुनियादार भी है और दीनदार भी, सिपाही भी है व्यापारी भी है, ज़िमींदार भी है और कर्मी भी है, सरदार भी है सेवक भी है। फिर इससे आगे किसी बीमार तथा वृद्ध अथवा किसी शारीरिक कष्ट में फंसे व्यक्ति को देखकर सिख उसकी यथा शक्ति सेवा भी करता है। संगत में जाकर जूते साफ करता है, जल पिलाता है, पंखे झुलाने आदि की सेवा भी सिख करता है। यों गुरू का सिख अपने आप में सभी गुणों से संपन्न: पूर्ण इन्सान है। गुरू जी ने इसे इस प्रकार की धार्मिक स्वतन्त्रता तथा धार्मिक उच्च सुरति अवस्था प्रदान की। फिर सिख की टेक गुरू द्वारा प्रदान किए हुए ईश्वरीय ज्ञान, श्री गुरू ग्रंथ साहब पर है पर पंथ में प्रबुद्ध पुरुषों की संगति का वातावरण इन्हें प्राप्त हुआ है। गुरुमुख का मिलाप, साधु की संगति की मांग प्रतिदिन अरदास में की जाती है। परमार्थ में नाम के अभ्यास में, रूहानी सहायता की आवश्यकता के समय गुरू का सिख 'गुरुमुख' की सत्संगति करके अपने परमार्थ की मंजिल को पार करता है। गुरू जी ने खालसा की रचना करके इसे स्वतन्त्र किया और ऊंचा उठाया और पांच प्यारों को अमृत छकाने का अधिकार दिया। 'गुरू खालसा' तथा 'खालसा गुरू' कहा।

गुरू जी ने विद्या दरबार की रचना की और सिखों में विद्या का प्रकाश भी फैलाया। बहुत बड़े विद्वान इस काम के लिए लगा रखे थे। शास्त्र विद्या के साथ-साथ शस्त्र विद्या तथा दोनों के सिर पर शान्त रसिकों की रक्षा वीर रस के रसिक करें, वीर रसिकों को विद्या का प्रकाश मिले और शांत रस वाले पंथ को धर्म तथा परमार्थ से गिरने न दें। प्रयोजन यह था कि वीर रस मात्र हठविद्या का निर्दयता वाला युद्ध ही न रह जाए, बल्कि 'उत्साह' का विकास करने वाला हो। वीर रस का मूल 'उत्साह' है। 'दान' भी वीर रस वाली वस्तु है। दया में दान देने की भावना से और यदि आवश्यकता हुई तो युद्ध करके आपा न्योछावर करने से भी संकोच न करना। यह था स्वतन्त्र गुर सिख मार्ग, जिसमें स्वतन्त्रता भी आई, आध्यात्मिक जीवन भी कायम रहा और वाहिगुरू की निरोग तथा निर्मल आस्तिकता भी मिली तथा सारे उत्साह तथा शान्ति विकास का प्राण बन गई।

इन शास्त्रधारी, नाम तथा वाणी के प्रेमियों का संगठन बन रहा था। खालसा संगठन आंगिक भाव वाला एक परिवार तैयार हो गया था। जहां पर सेना होती है, वहां पर सैकड़ों ज़रूरतें खड़ी हो जाती हैं, विशेष रूप से अनाज तथा चारे की आवश्यकता। जब खालसा वनों से अथवा गांवों से ये वस्तुएं मांगते, तो यदि पैसे देने से ये वस्तुएं मिल जातीं तो भला और यदि पहाड़ियों के पास आवश्यकता से अधिक वस्तुएं होतीं भी और वे दाम देकर भी उपलब्ध न होतीं, तो खालसे को पर्याप्त कठिनाई आती। इस कठिनाई के समय कई बार कोई ऊंची नीची बात भी

हो जाती, जिसके कारण लोग राजाओं के पास जा शिकायत करते। जब राजाओं की ओर से पूछ पड़ताल होती, तो इधर से उत्तर मिलता कि तुम वस्तुओं के मूल्य निश्चित कर दो और हम लोगों को निश्चित मूल्य देकर ये वस्तुएं ले लिया करेंगे। यह बात कभी आगे चलती और कभी नहीं। वास्तव में बात यह थी कि ओरंगजेब तथा उसकी सरकार शत्रुता रखते थे, जिसके कारण राजा लोग भी सिखों को पैनी दृष्टि से देखते थे। सिख उन्हें बहुत खटकते थे। लगता है कि राजा उसी के संकेतों से अपने वहम, भय तथा लालच करके शत्रुता बढ़ाते थे। यही कारण था कि गुरू जी के आगे कई प्रकार के बहाने बनाकर बाधाएं उपस्थित की जाती थीं। इनमें से कभी तो बिलासपुर का राजा आनन्दपुर का किराया मांगता, चाहे वह ज़मीन गुरू जी ने पैसे देकर खरीदी थी, कभी हाथी और दूसरा सामान मांगता। कभी प्रजा की ओर से अन्नदाना, चारा आदि की कठिनाई शुरू हो जाती, कभी कुछ और कभी कुछ। राजाओं के, विशेष रूप से भीमचंद के दुर्व्यवहार के कारण गुरू जी पाउंटे जा बसे थे। राजाओं ने पहल करके भंगाणी का युद्ध छेड़ा। उसमें राजा पराजित हुए। गुरू जी फिर आनन्दपुर आकर बसने लगे। यहां निवास करते समय, ज़रूरत के समय, जैसे कि नादौण के युद्ध में राजा भी गुरू जी की शरण में आ जाते; सहायता भी लेते, फिर आंखें भी फेर लेते और तंग भी करते। इस प्रकार के व्यवहार में भीमसेन तो चल बसा और उसके स्थान पर उसका पुत्र अजमेर चंद गद्दी पर बैठा। इसका व्यवहार भी पिता की भांति बुरा ही था। एक बार इसने चालाकी की और अपने एक वज़ीर को, जिसका नाम इतिहास में पंमा लिखा है, जो परमानन्द का ही बिगड़ा हुआ रूप है, गुरू के दरबार में भेजा, ताकि वह गुरू जी के साथ किसी प्रत्यक्ष समस्या की सूरत पैदा करे। इसने आकर प्रजा की पुकार की बात की। तब सतगुरू जी के दरबार के मुखिया मामा कृपाल चंद[१] ने कहा: 'हे वज़ीर! हमारा कोई झगड़ा नहीं, तुम अपनी प्रजा को आदेश दे दो कि चारे, घास, लकड़ी आदि के लिए सिखों से झगड़ा न किया करें, तथा दूध, घी, अनाज, शक्कर आदि वस्तुएं पैसे लेकर दे दिया करें। पंमा इन बातों को सुनकर सब कुछ मानकर चला गया, पर उनका व्यवहार पहले जैसा ही रहा और सिखों को कठिनाई होने पर वही कुछ करने पर मजबूर होना पड़ता।

: २ :

एक दिन सायंकाल में दीवान सज रहा था, कीर्तन हो रहा था। तारों में चांद की भांति सभा के स्वामी सुशोभित हो रहे थे। नूरानी चेहरे में से तेज तथा शान्ति की

१. बाद में अमृत छककर कृपाल सिंह बने और दिल्ली में माता सुन्दरी जी के देहांत तक जीवित रहे, थोड़े समय के पश्चात परलोक सिधार गए।

मिली-जुली सौंदर्य की फुहार पड़ रही थी। सिखों के मन रूपी चकोर दर्शन का आनन्द ले रहे थे। एक ओर आंखों के सामने प्रत्यक्ष दर्शन थे, दूसरी ओर कान कीर्तन की अमृत फुहार को पी रहे थे। दोनों का मिश्रित प्रभाव एक सरूर दे रहा था और सरूर चित्त को एकाग्र कर रहा था। सबके मन में उच्चता तथा एकाग्रता का भाव पड़ रहा था। सूरज लटपटा रहा था। शाम हो गई। सोदर वाणी का कीर्तन हुआ और समाप्ति हुई। रहरास नामक वाणी का पाठ होने के बाद अरदास हुई, प्रसाद बंट गया। संगत विदा हो गई। गुरू भगवान आज वहां पर ही विराजे रहे। आज इस समय विद्वानों तथा कवियों का कुछ कार्य होना था। इस समय उद्धारकर्ता सतगुरू जी की दृष्टि दूर जा पड़ी। भीतर वले दरवाज़े के अंदर दीवार के साथ एक लम्बा सुडौल व्यक्ति उदास खड़ा था। गुरू जी के पास खड़े सिंह से पूछा कि वह कौन खड़ा है? उसने विनती की, "पातशाह! कोई प्रेमी है, जो दो-तीन दिन से दोनों समय आ रहा है, इस तरह वहां पर कुछ समय खड़ा रहकर चला जाता है।"

गुरू जी–उरे तो नहीं, आया लगता। दर्शन नहीं किए।

सिंह–पातशाह! पहले तो द्वार के बाहर आकर खड़ा हुआ था, और दहलीज़ पर सिर झुकाकर चला जाता था, अब दहलीज़ पर सिर झुकाकर, चरणधूल को माथे पर लगाकर, भीतर चला आता है, पर उस दीवार के साथ लगकर खड़ा आपके दर्शन करता है। समाप्ति के समय कड़ाह प्रसाद बंटने से पहले ही चला जाता है। आज न जाने क्यों खड़ा रहा है और अब भी उसके चले जाने का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। न जाने कोई बात करना चाहता हो और संकोच के कारण आगे नहीं आ रहा हो; यदि आज्ञा हो तो मालूम करूं?

गुरू जी–हां, मालूम करो।

थोड़े से क्षणों के बाद वह उसके पास से होकर लौट आया और गुरू जी के पास विनती की कि, "पातशाह! पूछने पर कहता है कि 'मैं कलाल हूं।' बस और किसी बात का उसने कोई उत्तर नहीं दिया और जोर से जो कुछ पूछा उसके उत्तर में दो आंसू निकल पड़े।" सतगुरू जी सुनकर कुछ कहने ही लगे थे, कि एक-एक करके कवि आने लगे और आप उस ओर लग गए। बाहर से आए कवियों में से जिनकी रचना पर आप प्रसन्न हुए थे और वे जाने लगे थे, उन्हें धन, घोड़े, वस्त्र, सिरोपाव देकर विदा किया। कुछ कवियों ने अपनी मनोहर कृतियां सुनाईं। जब सारे कवि विदा हो गए, तो गुरू साहब अपने डेरे पर जाने के लिए उठे। चलते समय फिर दृष्टि दीवार पर पड़ी, वह व्यक्ति वैसे ही खड़ा था। तब सतगुरू जी ने फिर देखा कि वही व्यक्ति खड़ा है जिसने पूछने पर अपना पता केवल 'कलाल' बताया और आंखों में से आंसू बहाकर बात की थी। अब आप उसकी ओर देखते हुए दरवाज़े की ओर आए। अभी आप थोड़ी दूरी

पर ही थे कि उसने दंडवत प्रणाम किया और माथा झुकाया। आप रुक गए, आज्ञा की 'सिख! उठ गुरू भला करें।' सिख उठकर फिर खड़ा हो गया। नैन जल से भरे थे और गुरू जी के चरणों पर टिके थे। अनुकंपा के मालिक ने पूछा, "भले पुरुष! तू कौन है?" नि:श्वास भरकर उसने विनय की, "पातशाह! मैं कलाल जाति से हूं, नीच जाति।" गुरू जी मुसकराकर बोले, "भाई! कलाल कौन होता है?"

सिख–पातशाह! एक जाति है जिसे ब्राह्मण नीच कहते हैं। जिस जाति के साथ ब्राह्मण तथा खत्री मेलजोल रखने में संकोच करते हैं।

गुरू जी–"अच्छा...कलाल, हूं कलाल...भाई! कलाल तो गुरू का लाल होता है।"

यह सुनते ही कलाल विह्वल होकर चरणों पर गिर पड़ा। निरोगता, पवित्रता, अनुकंपा तथा प्यार का स्पर्श लगाने वाले बख्शीस करने वाले दाता ने बांह से पकड़कर उठाया और अपनी हरिनाम की पवित्रता से दमकती हुई छाती से लगा लिया और फिर कहा, 'कलाल गुरू का लाल।'

"जाती दै किआ हथि सचि परखीऐ।[१]
मुहरा हौवे हथि मरीऐ चखीऐ॥" [वार मा: प्र: ५]

शरणागत के सिर पर सतगुरू जी का अनुकंपा भरा हाथ फिर रहा है और कह रहे हैं:–

'सभी सीमाएं तोड़ दी हैं, अमृत छक, जाति के फंदे में से निकल, खालसा सज जा।' तू गुरू का लाल है, अपने कलाल, सुनार, जाट, छीपी आदि भावों का त्याग कर दे। तुम लोगों में भी जातियों बन गई हैं, ये दरारें हैं प्रजा के महल में और ये तुम्हारे भीतर घुस गई हैं। ये जातियां कामों का बटवारा हैं, अब ये अहं तथा दबेलपन की दूरी बन गई हैं।

सिख–पातशाह! क्या मैं अमृत छक सकता हूँ?

---

१. कोऊ भइओ मुंडीआ संनिआसी कोऊ जोगी भइओ
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जतीअन मानबो॥
हिंदू औ तुरक कोऊ राफजी इमास साफी
मानस की जात सभै एकै पहिचानवो॥
करता करीम सोई राज़क रहीम ओई
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो॥
एक ही की सेव सभ ही को गुरदेव एक
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो॥१५॥८५ [पातशाही १०]

गुरू जी–क्यों नहीं! अमृत सारे जीवों के लिए है। प्रत्येक व्यक्ति सिंह सज सकता है। मेरा दीवान, मेरा लंगर अछूतों की छूत को दूर करता है।

"सभे सांझीवाल सदाइनि
तू किसै न दिसहि बाहरा जीउ॥" [माझ मः ५]

सिख–(एक लम्बा, सुख भरा निःश्वास भरकर)–हे आप मालिक! विरद पालक! शुक्र है कि मैं भी आपके देवताओं की सभा मैं बैठ सकूंगा। आपकी सच्चे ऋषियों की पंक्ति में बैठकर साझेदार बन सकूंगा। शुक्र है शुक्र। पर हाय गांव के ब्राह्मण तथा ज़िमींदार जाट मुझे कब यह दर्जा देंगे? भोजन के लिए बैठी पंक्ति में कहेंगे; अलग जाकर भोजन करे, यह ब्राह्मणों की पंक्ति है।"

गुरू जी–अमृत तेरी जाति तथा जन्म की नीचता को दूर कर देगा। तू अपने भीतर से अपने भाव में बस रही नीचता को दूर कर दे। उच्चकर्मी बन, उच्च सुरति वाला बन, उच्च भाव में निवास कर। उनकी तनिक भी परवाह न कर जो अभिमान के कारण ऊंचे बन रहे हैं।

सिख–पातशाह! मेरा गांव आधा ब्राह्मणों का और आधा ज़िमींदारों का है। मेरे गांव का एक ब्राह्मण आपका सिख बना है, उसने अमृत छका है, ब्राह्मण उसके साथ ईर्ष्या करते हैं। उसी ने मुझे आपका पता बताया है। उसने बताया है कि गुरू की गोदी में जाति, अजाति का कोई भेदभाव नहीं है। फिर भी मैं डरता-डरता आया हूं। पर मैं आपके नीचों को ऊंचे करने वाले विरद की बलिहारी।

'जैसा सतिगुरू सुणीदा तैसो ही मैं डीठु।
विछुड़िया मेले प्रभू हर दरगह का बसीठु।'

[रामः वार महला ५]

गुरू जी–परमेश्वर से विमुखता, आचरण की नीचता, स्वभाव की नीचता, परस्पर व्यवहार में ईर्ष्या, इस तरह के अवगुण जाति को नीचा कर देते हैं। अवगुणों का त्याग करना, गुणों को ग्रहण करना, वाणी का पाठ करना, वाणी सुनना, उसका विचार करना, नाम जपना, यह उत्तम जाति का होता है।

सिख–धन्य हैं आप दाता गुरू जी!

फिर आज्ञा हुई कि इसे अमृत छकाया जाए और इसे अभेद बनाया जाए। कल के दीवान में कड़ाह प्रसाद यह स्वयं तैयार करके लाए और संगत में उसे बांटे।[१]

यों दाता जी जातियों की सीमाएं तोड़ रहे थे और सबको वाहिगुरू जी की गोदी में डाल रहे थे।

"जाति का गरबु न करीअहु कोई।"

---

१. इस प्रथा का एक कलाल खानदान से पता चला है।

के पवित्र वाक्य को वास्तविक रूप देकर दिखा रहे थे। आज जो सिख धर्म में सभी जातियों को समानता प्राप्त है और अब तो जागृति आ रही है, हिंदू स्वयं अछूतों को अपने में मिलाने लगे हैं, यह चमत्कार तो तीन सौ वर्ष पहले बुद्धिमानों के शिरोमणि गुरू जी ने करके दिखाया था। काश! हिंदू उस समय समझते और मालिक की आवाज़ को सुनते, तो आज से तीन सौ वर्ष पहले स्वतन्त्र तथा सुखी हो जाते। वह जो अमूल्य प्याला गुरू जी ने प्रदान किया था, इन्होंने समय पर न लिया। आज तीन सौ वर्षों के कष्ट मूल्य के रूप में सहन करके स्वयं उसी रास्ते पर चल रहे हैं।

कल्ग़ी वाले की करामात देखिए, उनके वचनों की शक्ति देखिए। पंथ में दो बहादुर वीर जस्सा सिंह नामक हुए हैं। एक इस गुरू के लाल की जाति में से सिंह सजे, दूसरे कारीगर जाति में से दूसरे के अनुयायिओं का नाम रामगढ़िए पड़ा जो खालसे के पहले किले रामगढ़ से संबंध के कारण प्रसिद्ध हुआ और स्वयं रामगढ़िया मिसल के मान्य संस्थापक बने। पहले जस्सा सिंह जी अपने गांव के नाम के कारण आहलूवालिए कहलाए आप बाबा बंदा बहादुर से कुछ समय और पिछले दिनों में कठोर कष्टों के समय सेवा के समय हुए। बाबा बंदा बहादुर के बाद सिखों का पहला कामयाब जत्थेदार आपको ही समझना चाहिए। आहलूवालिया मिसल तथा कपूरथले के वंश के बुजुर्ग आप ही थे। पंथ में आपका आत्मिक प्रभाव बहुत अधिक था; अतः बड़े-बड़े सिंह आपसे अमृत छकना गौरव की बात समझते थे। खत्री ब्राह्मण आदि जो प्रेमी सिख धर्म में प्रवेश करते, वे भी बाबा जी से ही अमृत छकने की इच्छा करते थे। यह है प्रत्यक्ष करामात 'गुरू के लाल' के वरदान की। जिसके द्वारा अनुगृहीत गुरू के लाल के हाथों अन्य जातियों में अमृत छककर खालसा धर्म धारण किया।

: ३ :

इतिहास की पड़ताल करने से पता चलता है कि अजमेर चंद कहलूरी राजा तथा दूसरे राजाओं ने गुप्त मन्त्रणा की कि भंगाणी का युद्ध करके पराजित होकर हमने गुरू की शक्ति को देख लिया है, अलफ खां के युद्ध में गुरू जी को अपनी कुसुम पर बुलाकर उस तुर्क योद्धा की हार में गुरू की शक्ति की परख कर चुके सामने होकर लड़ना खतरे वाली बात है और गुरू की शक्ति को बढ़ने देना भी ठीक नहीं, अतः कोई दाव पेच लगाना चाहिए। वह दाव पेच इस प्रकार का था कि अपने गांवों की रक्षा के लए कहीं-कहीं कुछ सिपाही छोड़ दिए थे। अब अपने वन में कुछ छिपे स्थान बनाए गए जहां पर कुछ सेना तथा उस पर बड़े पदाधिकारी रहे और वनों का पता रखें। जब कभी गुरू जी शिकार करते हुए किसी चोट पड़ जाने के ठिकाने अधीर हो जाएं, तो काट पीट कर दी जाए। इस

तरह विचार करके ऐसा ठिकाना निश्चित करके उसे मानो प्राप्त छावनी बना लिया, दूसरे छोटे-छोटे ठिकाने भी गुप्त बनाए और घात ताकने लगे।

हम पहले बता चुके हैं कि अजमेर चंद ने पंमे को भेजकर सन्धि की बात छेड़ी थी कि गुरू जी सिखों को मना कर दें कि सभी गांवों में दाने, घास, अन्न आदि के लिए सख्ती न किया करें। मानों बात छिपाने के लिए यह एक दिखावा था।

एक दिन श्री गुरू जी सभा लगाकर बैठे थे।

"आनि खालसे दरसन कीना।
कर बंदन ढिग बैठि प्रबीना।
गरज गरज कर फसे बुलावैं।
शस्त्रनि सहित बैति दुति पावैं॥" [सूरज प्रकाश]

इस समय राजाओं की बातें चल पड़ीं। किसी ने बताया कि पातशाह अब वे घात ताक रहे हैं, घने जंगलों में छिपकर बैठे हैं। उन्होंने कई गुप्त स्थान बनाए हैं। आपस में जब मिलकर बैठते हैं तो गर्व से डींग मारते हैं कि यदि किसी वन में गुरू जी हाथ लग गए, तो हम बता देंगे कि हम में कितनी शक्ति है। एक सिख ने कहा कि पातशाह संभलकर शिकार को जाना चाहिए। इस तरह बातें होती रही आप चुपचाप सुनते रहे। दूसरे दिन आपने कहा, "बहुत दिन हो गए हैं शिकार को नहीं गए, संगतों का आना जाना रहा है और इधर इन ईश्वरीय कामों में समय सफल हुआ है। चलो कल शेर का शिकार करने के लिए किसी घने वन में चलेंगे।"

दूसरे दिन रणजीत नगारा बज गया और खालसा पूरी तरह तैयार हो गया। गुरू जी स्वयं भी कमरबंद बांधकर शक्तिशाली घोड़े पर चढ़कर आ गए। सैना साथ ले ली और उसी रास्ते पर चल पड़े, जो वनों को जाता था। नगारे बजे, शलाकायें छूटीं और आप शिकार करते हुए एक ऊंचे टीले पर जा पहुंचे, चारों ओर पर्वतों के वन देखे। यहां पर आपने खड़े होकर एक तीर छोड़ा। कवि संतोष सिंह जी इसकी उपमा का वर्णन इन प्रकार करते हैं:

हमको छोरि गए करि भाणा।
को जाणहि न मनहिं क्वा आण।

[सूरज प्रकाश]

गरजिओ गगन भई धुनि भारी।
इस सम सथल आवाज उचारी।

१. तवरीख खालसा के अनुसार यह घटना संवत १७५७ के होले महल्ले के बाद घटित हुई।

'राख लेहु गुरू जी। रख लेहू।
तुम समानता बनहि न केहू।
तजहु छोभ उर करुना कीजै।
अपने जानहु राख लईजै।"

फिर गुरू जी अपने नीले घोड़े पर सवार टीले से नीचे उतरे और इधर-उधर शिकार के पीछे लग गए। इस तरह शिकार करते-करते बहुत दूर निकल गए। इतनी दूर चले गए कि राजाओं के गुप्त स्थान के घेरे में जा पहुंचे।

राजाओं द्वारा बनाया गया बड़ा गुप्त डेरा अब पास ही था। वहां पर दो सरदार बलिया चंद तथा आलम चंद सेना सहित टिके रहते थे। इस बात का पता लगाकर कि गुरू जी आज शिकार पर आये हैं और इस ओर आ निकले हैं, वे तैयार हो रहे थे और इस बात का पता लगाकर कि अब आगे बढ़ आए हैं और उनके घेरे में पहुंच गए हैं, तो वे बहुत खुश हुए। सवारों को तैयार होने का आदेश दे दिया। बंदूक तैयार करने तथा पैदल सेना को तैयार करने का आदेश भी दिया। आदेश मिलते ही सारे तैयार हो गए और जिधर से सिखों की आवाज़ आ रही थी, उधर को चल दिए। खालसा जी को उस समय पता चला जब बहुत नज़दीक से गोली की आवाज़ आई और पलक झपकने में ही सवारों के सिर दिखाई देने लगे और शालाकायें छूटने लगीं। इधर सिंह कम थे और उधर सेना अधिक थी। जो सिंह साथ थे, वे बलवान थे, पर किसी समय इन्होंने यह गर्व की बात की थी कि खालसा अब बलवान हो गया है, यदि गुरू जी आज्ञा दें, तो दिल्ली को विजय कर लें। यदि सिर पर आ बने तो खालसा अकेले ही दुश्मन को पीस दे। अतः अब समय देखकर जब युद्ध शुरू हो गया तो श्री गुरू जी पूर्व की ओर खालसा से ज़रा ओझल होकर ऊंची जगह पर जा खड़े हुए और युद्ध का रंग देखने लगे। खूब युद्ध छिड़ा और खालसा खूब लड़ा पर इनकी गिनती कम थी अतः राजाओं की अधिक संख्या के सामने सारे दाव पेचों को नहीं बचा सकते थे। लड़े और खूब लड़े, बढ़ चढ़कर लड़े, पर बहुत दबाव पड़ने के कारण पैर पीछे हटे। अब वे दस्ते भी गोलियों की आवाज़ सुनकर आ पहुंचे जो इधर उधर शिकार को गए थे। घोर संग्राम मच गया, पर सिखों के मन डोल गए, और पांव उखड़ गए विशेष रूप से इस समय जब उन्होंने देख कि कल्ग़ीधर जी बीच में नहीं हैं। विचार करने लगे:

'हमको छोरि गए करि भाणा।
को जाणहि मन महि क्या आणा।' [सूरज प्रकाश]

यों घबराकर कदम पीछे हटाया, तो पहाड़िए जोर पाकर पीछे आए। चाहे फिर-फिराकर पहाड़ियों के साथ अच्छा मुकाबिला किया, पर इनके कदम न

टिकते। पीछे को पैंतरा बदलते जाते और पंक्ति को भी उखड़ने ने देते और लड़ते चलते। यों लगता जैसे बढ़-चढ़कर लड़ रहे हैं। लगता है कि खालसा ने यह गुण शुरू से ही सीख रखा था। पर आज चाहे सिखों ने सारा ज़ोर लगा लिया पर इनकी पेश न आई और बचने की कोई आशा भी न रही। तब इन्हें पता चला कि बलदाता श्री कल्गीधर जी के बिना वे कुछ भी नहीं कर सकते, सारा बल लगाया भी पर विजय प्राप्त न हुई। स्वयं वाहिगुरू के हैं, फतेह आपके हाथ में है। हममें गुरू जी ने अपने आप पर भरोसा भर दिया है। हमें स्वावलंबी बनाया गया है, पर यह स्वावलंबिता किसी समय बढ़कर अहं बन जाती है। सतगुरू जी को चढ़ती कला तो प्यारी है, पर उन्हें अहं अच्छा नहीं लगता।[१] न जाने इसीलिए लुप्त हो गए हैं। इस तरह का विचार करके कुछ सिंह पूर्व की ओर दौड़े और पातशाह जी को खोज लिया। आप पूर्व की ओर एक अत्यंत सुन्दर ऊंचे दृश्य वाले स्थान पर घोड़े पर सवार होकर खड़े थे और युद्ध का नज़ारा देख रहे थे कि सिंह वहां पर पहुंच गए और विरद का वास्ता देकर कहने लगे, "सच्चे पातशाह जी रक्षा कर लो, तेरे हैं, तेरे, बुरे भले तेरे ही हैं। हमारे अवगुणों की ओर न देखो, अपने विरद की ओर देखो। हे दाता! विरद तथा बाने की लाज रख लीजिए। अपने खालसा को आप ही बचाओ। आपका विरद है, खालसा की हर समय रक्षा करना; हर जगह पर सहायता करना, पातशाह! इस समय सहायता करो ताकि खालसा पराजित न हो।' इस तरह की विनती सुनकर गुरू जी ने देखा, मुस्कराए तथा तरकश में से एक तीर निकाला, वीरासन होकर सिहों की ओर देखकर कहने लगे:

'सिदक पुकारे खालसा गुरू की वाणी पाठ।
आपे सिंह आपे बिपन विरद बिहारी राठ।[२]

[सूः प्रः सौः साः]

जिस ठिकाने पर गुरू जी खड़े थे, युद्ध की दृष्टि से वह बड़ा लाभदायक स्थान था। युद्ध भूमि यहां से साफ दिखाई देती थी, क्योंकि यह ऊंचा स्थान था। सतगुरू जी ने वीरासन होकर यहां से तीर चलाया जो फुंकारता हुआ आगे बढ़े आ रहे दुश्मन में जा लगा। यों एक-एक करके पांच तीर चलाए जो ठीक निशाने पर लगे। लगता है कि ये तीर शत्रु के महत्त्वपूर्ण वीरों को लगे और उनके गिर जाने के कारण शत्रु का जोश ठण्डा हो गया और वे झिझककर खड़े हो गए।

१. हरि जीउ अहंकार न भावई वेद कूकि सुणावहि।। [मारू वार महला ३]

२. इसका अर्थ है कि तुम कहते थे कि हम स्वयं बनहुं वनों के शेर हैं, वाणी का पाठ करते हुए सिदक की रट लगाते थे और कहते थे कि अब राठ हो गए हैं, अब हमें विरद का वास्ता क्यों कहते हो? खालसा को अहं से मुक्त करने के लिए ये वाक्य कहे थे।

लिखा है कि इस समय यों लगता था जैसे आकाश में दलों के दल छा गए हैं। गुरू जी ने खालसे को दिखाया और आज्ञा की कि जाकर लड़ो। हम यहां से ही रणभूमि को संभालेंगे। इस रंग को देखकर तथा गुरू जी के पांच तीरों की बरकत से दुश्मन के पांव उखड़ते देखकर खालसा नया सहास बटोरकर मुड़ा और युद्ध में जा जूझा। शेष सभी शूरवीरों को ऊंची आवाज़ से बता दिया कि गुरू जी टीले पर खड़े तीर चला रहे हैं, देख लो दुश्मन रुक गया है। उधर देखिए कितने ही पहाड़िए तीरों से बिंधकर गिरे हैं, आकाश की ओर देखो अगम्य की सेनाओं के प्रतिबिंब दिखाई दे रहे हैं। भागे जा रहे तथा पिट रहे खालसे में नए प्राण भर गए सारे रुक गए और पांव जमाकर डट गए। अब युद्ध ने और रूप धारण कर लिया। जो पहाड़िए सिखों पर बढ़े आ रहे थे वे रुक गए और अपने शूरवीरों को गिरता देखकर घबरा गए और सोचने लगे कि ये अचूक तीर कहां से आ रहे हैं। अतः बचाव का विचार करके वे रुक गए। खालसे ने अब तुमुल युद्ध मचा दिया।

"तुमुल जुद्ध तव होवन लागा।
मनहुं रुद्र रस सोवति जागा॥१३॥
भिड़े भेड़ भटमुड़ मुड़ लड़े।
जे भाजति धरि धीरज खड़े।
हती शलख गुलकनि की ऐसे।
हर्‍यो जलद मुचि बरखा जैसे॥१४॥

[सूः प्रः पंना ५२२२]

दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से खूब शस्त्र चले, रक्तपात हुआ, वस्त्र लथपथ हो गए, क्रोध बढ़ा। जहां पर गुरू जी खड़े थे, वहां पर करौंदे का वृक्ष था। आप वहां पर खड़े थे। 'सभ थाईं होइ सहाय" के कथनानुसार आप सहायता कर रहे हैं। आपके अचूक तीर आ रहे हैं। सतगुरू जी के तीर निशाने पर लगते हैं और शत्रु के दल में ऐसे निशाने बांधकर लगते हैं कि उनके साहस को तोड़ते हैं, उन्हें हैरान करते हैं और उनमें घबराहट पैदा करते हैं। खालसा जी अपने सदैव सहायक मालिक के करतब को देखते हैं और प्रतीत कर रहे हैं कि वे कम थे, गुरू जी हावी होकर दुश्मन पर कहर ढा रहे हैं। अदेश की सेनाएं हमारी सहायता कर रही हैं। लिखा है:

"परी आकाशी फौजां आए।
जित कित देखि रहे बिसमाए॥"

[सूः प्रकाश पंना ४२२३]

अतः बढ़े साहस में, बढ़े आत्म विश्वास में खालसा खूब लड़ा।

"परहा बंध जनु घट घन आई।
गन गुलकां बरखा बरखाई।

तुपकनि कड़क गाज जनु परैं।
छुटे पलीते धुखधुख टरैं॥१४॥
दुंदभि ढोलनि शबद महाना।
जनु बरखति धन धुनि गरजाना।
क्रिखि पाकी सम परम पहारी।
तोर फोर चूरन करि डारी॥२०॥
हेला घालि खालसा लरिओ।
भाग्यो प्रथम लाज करि मुरिओ॥"

[सूः प्रः पंना ४२२२]

इस दशा को देखक बलिआ चंद को बहुत शर्म आई सोचने लगा कि इतने थोड़े सिंहों के साथ लड़कर उन्हें रणभूमि में से भागकर काट-कटाई करते हुए हुए पैंतरा खालसे ने कैसा बदला है कि हमें लेने के देने पड़ गए हैं। क्रोधित होकर और दृष्टि डालकर देखा तो अपनी सेना खालसे से अधिक दिखाई दी। वह स्वयं बढ़ा ताकि सेना का साहस कायम रहे और खालसे के पांव उखाड़ दे। उसे बाढ़ की भांति बढ़ा आता देखकर उदय सिंह शेर की भांति गरजकर आगे बढ़ा और सिंह उसके सामने गरजकर आगे बढे। दूसरी ओर आलम चंद ने देखा कि साथी सूरमा झपटकर पड़ा है, वह भी क्रोध में आकर तथा सेना को ललकार कर दूसरी ओर से टूटकर आ पड़ा, ताकि बलिया चंद के आक्रमण को दूसरी ओर से दुमरदा लगकर बिजली की चोट की भांति शत्रु का सफाया हो जाए। पर इसके इन आक्रमणों को देखकर इधर से आलम सिंह ने सिंहों को ललकारा और आप आगे बढ़ा। शत्रु सिर पर आ चुका था, अतः दोनों सूरमा टक्कर लेने लगे। ऐन आमने-सामने आ टकराए और दाव-पेच से पहले ही आलम चंद ने आलम सिंह पर बहुत ज़ोर का वार किया, पर आलम सिंह ने ढाल से उसे बड़े बल से रोका। अब तलवार के दाव घाव चलने लगे। दोनों शूरवीर थे और तलवार चलाने में कुशल थे, दोनों के यत्नों का यह फल हुआ कि आलम सिंह का वार काम आया। आलम चंद का दायां हाथ तलवार समेत कट गया। तलवार सहित हाथ धरती पर गिर पड़ा। पहाड़ियों ने आगे बढ़कर आलम चंद को बचाया और वह पिछले पांवों अपनी सेना में खो गया। साथियों का जोश ठण्डा हो गया और पैर पीछे हटे। दूसरी ओर बलिआ चंद बंदूकों की शलाकायें चलाता हुआ सेना को लेकर आगे बढ़ा आ रहा था, उसकी सेना के ढोल शूरवीरों में वीररस भर रहे थे और सूरमे तीर तुक्का चलाते आ रहे थे। इधर से उदय सिंह डटकर पांव जमाकर आगे बढ़ रहा था और सिंहों की ओर देखकर कहने लगाः बंदूकों की गोलियों की बौछार करो। तात्पर्य यह कि दोनों ओर से तीरों तथा बन्दूकों के ऐसे वार हुए कि मानो ओलों की वर्षा हो रही हो। दोनों दल अभी इतने नज़दीक नहीं

आए थे कि तलवारें लेकर हाथों-हाथ युद्ध होने लगा। बलिआ चंद की टांग में एक फुंकारती हुई गोली आकर लगी। वह बेताब होकर पीछे मुड़ा। सरदार की पीठ दिखाने की देर थी कि सेना का साहस टूट गया और वह भी पीछे हटी। बस पीछे हटना क्या था, सारी पहाड़ी सेना का साहस टूट गया और वह भाग गई। दौड़ती हुई सेना का खालसे ने कुछ दूरी तक पीछा किया ताकि वे त्रसित होकर भागे चले जायं, कहीं उन्हें अटक गया समझकर दोबारा टूटकर न आ पड़े। जब सारे भाग गए और दूर निकल गए तब खालसा जी ने देखा कि आकाश साफ़ है, गुप्त सेना का जो प्रभाव पड़ता था, वह अब नहीं है। ठण्डी हवा चल रही है, साफ़ धूप चमक रही है। फिर सारे गुरू जी की ओर मुड़े। भाई राम कौर जी ने इस युद्ध को अपनी आंखों से देखा। वे लिखते हैं कि गुरू जी ही हुजूरी में युद्ध की भीषणता को देखकर मैं तो कांप गया। मुझे शोकातुर देखकर गुरू जी ने धैर्य दिया ओर समझाया कि रणभूमि में मरने वालों को देखकर शोक नहीं मनाना चाहिए। राम कौर जी लिखते हैं कि इस समय गुरू जी ने भविष्य की बात कही और कहा कि राम कौर! तू हमारे बाद काफी समय तक संसार में रहेगा। फिर खालसे को धैर्य बंधाया और कहा: इनसे मत डरो और तगड़े होवो। ये सारे लोग एक दिन खालसे से भय खायेंगे और अधीनगी स्वीकार करेंगे। फिर सतगुरू जी ने महा सिंह से युद्ध का वृत्तान्त सुना। फिर शहीद हो चुके सिंहों के शव इकट्ठे करवाकर दाह संस्कार किया। घायलों को साथ ले जाने का प्रंबध किया और सायंकाल को फतह का नगारा बजाते हुए आनन्दपुर पहुंचे।

वास्तव में बात यह है कि गुरू जी के साथ सेना थोड़ी थी और आगे जिनके साथ टक्कर लेनी पड़ी, उनकी संख्या बहुत अधिक थी। इस बात को जानकर गुरू ने एक ऐसा ठिकाना खोज लिया था जहां पर पांव जमाकर अपने अचूक तीरों की वर्षा करके अपनी कम संख्या की कमी को पूरा किया। आप बीच में न आकर खालसे को अपनी समझ से ही लड़ने का अवसर दिया, ताकि इनमें बल भर जाए और इन्हें युद्ध कौशल का पता चले। ये पराजित भी हों और पराजय के समय अपराजय का ढंग भी सीखें। तीसरा परमार्थ का उसूल भी गुरू जी ने इन्हें सिखाना था और बताना था कि अहं करना ठीक नहीं, अहं मन को मलिन करता है, पर आत्मविश्वास तथा टेक चढ़ती कला बल भरते हैं और बुद्धि को निर्मल रखते हैं।

गुरू जी तो उस समय के अनुसार युद्ध की चाल को संभाल रहे थे, पर खालसे ने अपने मध्य गुरू जी को न देखकर धैर्य छोड़ दिया। शूरवीर गुरू ने फिर धैर्य बंधाया। अपनी गुप्त शक्ति तथा सदैव सहायता करने का निश्चय परिपक्व करवा दिया और आज के युद्ध में जो शिक्षा दी, वह खालसे का विशेष गुण होकर प्रकट हुआ और आज तक खालसे ने उसे नहीं भुलाया। शत्रु की ओर

से अधिक बल पड़ जाने के कारण तथा भाग उठना और कुछ दूरी पर जाकर पांव जमाकर डट जाना। दुश्मन खुश होकर बढ़ा चला आ रहा है और अपनी सोच में नहीं है; शत्रु द्वारा निर्भय होकर बढ़े चले आने तथा अचानक आगे से टक्कर लेकर उसके पांव उखाड़ देना तथा रण को जीत लेना। दूसरी योजना यह है कि ऐसे बल पड़ने पर पिछले पांव हटना, हटते चले जाना, और अपनी पंक्ति को टूटने नहीं देना। दुश्मन के साथ टक्कर लेते जाना, उसे मारते चले जाना, मरते चले जाना, पीछे हटना, पर ऐसा पैंतरा बांधकर पीछे हटना कि दुश्मन को आक्रमण का साहस ही न हो और यों शत्रु को थका देना। इस करतब का कमाल खालसे ने बड़े घल्लूघारे (बड़े जनसंहार) में दिखाया था। उस समय बारह कोस पीछे हटने पर भी अबदाली एक बार भी उनकी पंक्तियों को तोड़ न सका और थककर उसकी सेना पानी की झील देखकर पानी पीने के लिए रुक गई।

श्री दशमेश गुरू जी का तीरंदाजी का भी कमाल था। अब तो लोग उस कमाल के महत्व को समझ नहीं सकते, क्योंकि अब तीरंदाज़ी का रिवाज ही नहीं रहा, उस समय बंदूक की अपेक्षा तीर तेज़ी से चलाया जा सकता था और इस कला के कमान वाले गुरू जी कई बार इसमें बहुत सफलता प्राप्त किया करते थे।[१]

सिंह समझते थे कि गुरू जी चले गए हैं और उन्हें छोड़ गए हैं; पर गुरू जी लाभ वाले ठिकाने को देखकर वहां पर निश्िंचत खड़े रहे और अपनी धनुविद्या के कमाल से विजय प्राप्त करने की योजना बनाते रहे। आज के छोटे से युद्ध में दाता जी ने अपने सिखों को विजय का करतब सिखाया; आपका यश अब तक होता है।

इस विजय की खुशी में आनन्दपुर में सम्मेलन हुआ, रात को घर-घर में दीपमाला हुई, खुशी के बाजे बजे और बधाइयां दी गईं। माता जी ने अरदास करवाई, सिर पर से माल-धन न्यौछावर किया। श्री गुरू नानक देव जी के हुजूर में कड़ाह प्रसाद रखकर धन्यवाद दिया। अमृत वेला में आसा की वार का कीर्तन हुआ, संगतें उमड़कर आईं, नगर के सारे लोग भी आए। जब दीवान का विसर्जन हुआ, प्रसाद बंट गया तब सबने गुरू जी को बधाई दी। भाई नन्दलाल जी ने उस समय एक ग़ज़ल लिखी, जो इस प्रकार है–

'प्यारे जिधर भी तू जाता है उधर ही प्रभु तेरा रक्षक है। तूने मेरे दिल तथा दीन को छीन लिया है, प्रभु तेरी रक्षा करे। बुलबुल तथा गुलाब, दोनों

१. अब भी तीरंदाजी भील जाति के लोगों में इतनी कुशल है कि सीध बांधकर निशाने पर तीर मार लेते हैं। आ रही आवाज़ को सीध पर पांव में कमान रखकर एक क्षत्री द्वारा चलाया गया तीर निशाने पर लगा सेवक ने स्वयं देखा है।

तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, अब तू आकर हमारे बाग में चक्कर लगा, प्रभु तेरा रक्षक है। हे कल्ग़ी वाले! मेरा हृदय विरह में तड़प रहा है, मेरे लाल होठों से नमक झड़ रहा है, अब तो प्रभु ही रक्षक है। हे सतगुरू! मेरी आंख की पुतली पर आकर बैठ जाओ, आकर मेरी आंखों में समा जा, तेरा रक्षक प्रभु है। तू झूलते हुए सरो की भांति, हमारे बाग़ में चक्कर लगा, मुझे प्रसन्नता हो, तेरा रक्षक प्रभु हो।

(यहां पर भाई नन्दलाल जी की फारसी ग़ज़ल का सरल अनुवाद प्रस्तुत किया है) फारसी ग़ज़ल इस प्रकार है–

बहर कुजा कि रवी जाने मन खुदा हाफिज़।
बिबुरदहई दिलो ईमाने मन खुदा हाफिज़।
बिआ कि बुलबुलो गुल हरदो इंतज़ारे तुअंद,
दई बजनिबे वुसताने मनः खुदा हाफिज़।
नमक जिलाले लबत रेजद बर दिले रेशक,
तपीद सीनहए बिरीआने मन खुदा राफिज।
बिया बमरदऊ के दीदहअम कि खानहए तुसत,
दरूने दीदहे गिरीआने मन खुदा हाफिज़।
चि खुश ववद कि खिरामद कदत चु सखे बुलंद,
दमे बसूए गुलिसताने मन खुदा हाफिज़।

❑ ❑